यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

ISSN:2231-1351

Impact Factor (IIFS): 8

पदचिन्ह

अक्टूबर (October), 2025 वर्ष (Vol.): 14 अंक (Issue): 10

" हिन्दी साहित्य का वैविध्य : साहित्य और संस्कृति "
विशेषांक

राष्ट्रीय संगोष्ठी

20 सितम्बर, 2025

हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर (गुजरात) और
मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज,
अमरेली के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित

अतिथि संपादक
डॉ. अरविन्द कुमार उपाध्याय

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal
www.muditeducation.com/Padchinha

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

यू०जी०सी० के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित Impact Factor (IIFS): 8

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

पदचिन्ह PADCHINHA

'हिन्दी साहित्य का वैविध्य : साहित्य और संस्कृति' विशेषांक

अक्टूबर (October): 2025 वर्ष (Vol.): 14 अंक (Issue): 10

संरक्षक

प्रो० डॉ० गिरीश वी० वेलियत

प्राचार्य

मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली (गुजरात)-365601

अतिथि संपादक

डॉ० अरविन्द कुमार उपाध्याय

सहायक प्रोफेसर

मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली (गुजरात)-365601

संपादक

डॉ० अजय परमार

B-30/239 नगवां, लंका, वाराणसी-221005

सह-संपादक

डॉ० पंकज कुमार सिंह

निदेशक, मुदित शिक्षा संस्था, त्रिमूर्ति नगर

वर्धा (महाराष्ट्र). पिन कोड - 442001

Contact: 9823696685 padchinha@muditeducation.com

www.muditeducation.com/Padchinha

© पदचिन्ह में व्यक्त विचार और सर्वाधिकार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक व संपादक-मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है। उक्त सभी पद अवैतनिक हैं। किसी भी वाद-विवाद का न्याय क्षेत्र वाराणसी होगा।

संपादक-मंडल/ रेफेरीड बोर्ड

प्रो. प्रेमनारायण सिंह
निदेशक
अंतर विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षा केंद्र
बी. एच. यू. वाराणसी (उ. प्र.) पिन - 221005

प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी
पूर्व अधिष्ठाता, संस्कृति विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. मनोज कुमार राय
एसोसिएट प्रोफेसर, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. गोविन्द प्रसाद वर्मा
सहायक प्रोफेसर, मानविकी और भाषा संकाय
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी
(बिहार) पिन - 845401

डॉ. उमेश कुमार सिंह
वर्धा समाज कार्य संस्थान
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. रणजीत कुमार
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
मौलाना मजहरूल हक अरबी व फारसी विश्वविद्यालय
पटना (बिहार) पिन - 800001

डॉ. प्रदीप त्रिपाठी
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक
(सिक्किम) पिन - 737102

प्रो. अमरेन्द्र त्रिपाठी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
(उत्तर प्रदेश) पिन - 211002

डॉ. परिमल प्रियदर्शी
अनुसंधान अधिकारी, शोध सहायता प्रकोष्ठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.) - 221005

डॉ. आशीष कुमार
संपादक, सृजन समय
बहुद्देशीय सामाजिक संस्था, वर्धा - 442001

डॉ. श्रीकांत जायसवाल
प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

सलाहकार समिति

डॉ. राजीव रंजन गिरि
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली - 110007

डॉ. निशीथ राय
सहायक प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन – 442001

डॉ. उमेश तिवारी
सहायक प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास,संस्कृति और
पुरातत्व विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर (बिहार) पिन - 812007

पदचिन्ह के लिए प्रकाशक अजय परमार, बी.- 30/239, नगवां, लंका वाराणसी द्वारा प्रकाशित और सूर्या आफसेट, 30, विवेकानंद कालोनी, मलदहिया, वाराणसी में मुद्रित। संपादक : अजय परमार

यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित ISSN 2231-1351

पदचिन्ह PADCHINHA

'हिन्दी साहित्य का वैविध्य : साहित्य और संस्कृति' विशेषांक

अक्टूबर (October): 2025 वर्ष (Vol.): 14 अंक (Issue): 10

संरक्षक

प्रो० डॉ० गिरीश वी० वेलियत

प्राचार्य

मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली (गुजरात)-365601

अतिथि संपादक

डॉ० अरविन्द कुमार उपाध्याय

सहायक प्रोफेसर

मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली (गुजरात)-365601

अतिथि संपादक मंडल

डॉ० विलासबेन सोरठिया

एसोसिएट प्रोफेसर, मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली

श्रीमती सविताबेन परमार

एसोसिएट प्रोफेसर, मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली

डॉ० मनसुखभाई पटोलिया

एसोसिएट प्रोफेसर, मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली

डॉ० जयश्रीबेन मकवाना

एसोसिएट प्रोफेसर, मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली

डॉ० निरूपा जी० टांक

असिस्टेंट प्रोफेसर, मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली

यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित Impact Factor (IIFS): 8

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

पदचिन्ह PADCHINHA

"हिन्दी साहित्य का वैविध्य : साहित्य और संस्कृति" विशेषांक

अक्टूबर (October) 2025 वर्ष (Vol.): 14 अंक (Issue): 10

अनुक्रम

	संपादकीय	vi-vii
	शुभेच्छा संदेश _ **डॉ० गिरीश वी० वेलियत**	viii
	शुभकामना संदेश _ **प्रो० शैलेश के० मेहता**	ix
	हिन्दी साहित्य का वैविध्य : साहित्य और संस्कृति _**डॉ० अरविन्द कुमार उपाध्याय**	x-xxii
1.	हिन्दी गद्य साहित्य में चित्रित कारावासीय जीवन और स्त्री _**सौरभ**	1-9
2.	भक्ति आंदोलन में मीरांबाई की भूमिका _**डॉ० नयना सी० पटेल**	10-13
3.	हिंदी का सफ़र : राजभाषा से लेकर सोशियल मीडिया की भाषा तक _**प्रियांशीकुमारी बी० पटेल**	14-17
4.	गीतांजलि श्री के कथा-संसार में स्त्री चेतना और सांस्कृतिक पहचान का विकास _**रिद्धि पी० तलाविया**	18-21
5.	हिंदी कविता : आज़ादी की संघर्ष-गाथा _**बेबी कुमारी**	22-26
6.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) में हिन्दी और संस्कृत भाषा का अंतर्संबंध _**परमार विभूतिबेन सुरेशभाई**	27-30
7.	संस्कृत और हिन्दी भाषा का अंतर्संबंध _**ठेसिया दृष्टि मुकेशभाई**	31-35
8.	हिन्दी भाषा में रोजगार के अवसर : एक विशेष पड़ताल _**डॉ० बी० जे० पटेल**	36-43
9.	21 वीं सदी के चयनित उपन्यासों में बदलते मूल्य _**डॉ० गेलजी भाटिया**	44-49
10.	सोशल मीडिया और हिंदी _**डॉ० आर० सपना**	50-52
11.	લોકસાહિત્યમાં સંસ્કૃતિ અને પરંપરાઓ _મકવાણા લાલજી એમ	53-56
12.	ભક્તિ આંદોલન અને સાંસ્કૃતિક ચેતના _હરગાણી હમીરભાઈ દેવુભાઇ	57-62
13.	દલિત સાહિત્ય અને સામાજિક - સાંસ્કૃતિક સમાનતા _ગોપાલ ધનજીભાઈ ચૌહાણ	63-65
14.	हिंदी साहित्य में राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता आन्दोलन _**डॉ० मधुरा केरकेट्टा**	66-69
15.	भगवतीचरण वर्मा के हिन्दी उपन्यास और सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ _**अनिताबेन खिमजीभाई चांडपा**	70-74
16.	हिन्दी साहित्य में पर्यावरण सम्बन्धी चिंतन _**विपुलकुमार बाबुलाल जोषी**	75-78
17.	સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિ અને પરંપરાઓ _વાળા જયદિપ આર.	79-83
18.	हिन्दी साहित्य में पर्यावरण सम्बन्धी चिन्ता _**डॉ० जिज्ञासा रमेशकुमार सीतापरा**	84-86
19.	हिंदी भाषा : साहित्य से रोजगार तक _**डॉ० प्रकाश विट्ठल सोनवणे**	87-92
20.	आधुनिक हिन्दी कविता में स्त्री मुक्ति के स्वर _**वेदप्रकाश भारती**	93-98
21.	हिन्दी भाषा तथा भारतीय भाषाओं का NEP (2020) में महत्व _**प्रो० (डॉ०) राजमोहिनी सागर**	99-102

पदचिन्ह PADCHINHA

22. 'गोदान' उपन्यास में नारी की विविध भूमिका और संघर्षों का चित्रण 103-107
_महेता सुमिता कनैयालाल
23. भक्ति आन्दोलन और सांस्कृतिक चेतना _**डॉ॰ उत्तम राजाराम आळतेकर** 108-110
24. રામાયણમાં ચિત્રિત ભારતીય સંસ્કૃતિ _પ્રા॰ ડૉ॰ વિલાસબેન પી॰ સોરઠિયા 111-115
25. यज्ञकर्म : रामायण के परिप्रेक्ष्य में _**प्रा॰ डॉ॰ एम॰ जे॰ पटोलिया** 116-119
26. वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी : एक समीक्षात्मक अध्ययन _**डॉ॰ संतोष कुमार दुबे** 120-123
27. हिंदी और गुजराती भाषा में अंतर्संबंध _**डॉ॰ निरूपा जी॰ टांक** 124-128
28. हिन्दी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति-भावना _**शिवम् के दवे** 129-134
29. गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में स्त्री स्वर एवं संस्कृति विमर्श 135-139
_**डॉ॰ बिन्दु अनंतराय महेता _डॉ॰ शैलेश के॰ मेहता**
30. हिन्दी भाषा का NEP (2020) में महत्त्व _**डॉ॰ समीना कुरैशी** 140-141
31. दलित साहित्य में सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श _**डॉ॰ पारुल आर. खांट** 142-144
32. भक्ति आंदोलन और सांस्कृतिक चेतना _**डॉ॰ सतीश दत्तात्रय पाटील** 145-147
33. 21 वीं सदी की हिन्दी बालकहानियों में व्यक्त सांस्कृतिक पृष्ठभूमि _**माधवी पडिया** 148-151
34. સાહિત્ય અને સંસ્કૃતિ વચ્ચેનો સંબંધ _ડૉ॰ પ્રા॰ ઊર્મિલા એન.પટેલ 152-154
35. हिंदी उपन्यास और सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ _**शियाल जयदीपकुमार धीरुभाई** 155-159
36. लोक साहित्य में संस्कृति और परंपराएँ : केरल के संदर्भ में _**डॉ॰ कला ए॰** 160-162
37. लोक संस्कृति एवं साहित्य _**डॉ॰ विजय नारायण तिवारी** 163-166
38. हिंदी साहित्य में स्त्री स्वर और सांस्कृतिक विमर्श : मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य के संदर्भ में 167-169
_**देविका किशोरभाई मकाणी**
39. आधुनिक हिंदी साहित्य और भारतीय नवजागरण 170-173
_**Pavasiya Bhumikaben Rameshbhai**
40. भारत रत्न अटल बिहारी वाजपेयीजी के काव्य में सांस्कृतिक चेतना 174-178
_**बापोदरा विशाल रसिकभाई**
41. नागार्जुन के उपन्यास में सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ _**भायाणी संजयकुमार बाबुभाई** 179-181
42. भारतीय संस्कृति की धरोहर 'रामचरितमानस' _**डॉ॰ मारांबहन जेरामभाई भोया** 182-185
43. आजादी का प्रतिबंधित दस्तावेज : 'राजस्थान की पुकार' _**रामप्यारी** 186-190
44. हिन्दी भाषा : साहित्य से रोजगार तक _**रमीला जे॰ कारीया** 191-193
45. ગાંધીજીની ગુજરાતી સાહિત્ય પર અસર: 'ચૂંટેલી વાર્તા' સંદર્ભે _ડૉ॰ હરેન્દ્રકુમાર વી.ચૌધરી 194-197
46. પ્રાચીન સાહિત્યમાં સંસ્કૃતિ અને જીવનદૃષ્ટિકોણ _હરદીપ બી.વાળ 198-200
47. लोकसाहित्य में संस्कृति और परंपरा _**आयर ज्योतिका मनसुखभाई** 201-204
48. हिन्दी साहित्य का सांस्कृतिक वैभव _**Dr. Vaishali U. Patoliya** 205-208
49. हिंदी भाषा : साहित्य से रोजगार तक _**डॉ॰ धवलकुमार रमणभाई चौधरी** 209-211

NOTES FOR AUTHORS

Impact factor Certificate

सम्पादकीय

"पदचिन्ह" (अक्तूबर, 2025) का यह अंक हम एक विशेष उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। यह अंक "**हिन्दी साहित्य का वैविध्य : साहित्य और संस्कृति**" विषयक विशेषांक है, जो 20 सितम्बर, 2025 को **हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर** और **मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली** के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के अवसर पर सम्पन्न बौद्धिक-विमर्शों का साक्षी रहा है।

यह संगोष्ठी और इसका प्रस्तुत विशेषांक हिन्दी साहित्य के विविध आयामों, उसकी सांस्कृतिक जड़ों, सामाजिक सरोकारों और बदलते वैश्विक परिप्रेक्ष्य में उसकी प्रासंगिकता को समर्पित है। **हिन्दी साहित्य का वैविध्य** केवल विधाओं का विस्तार नहीं, बल्कि विचारों, संस्कृतियों और संवेदनाओं का समृद्ध संसार है- जिसमें भक्ति, राष्ट्रीयता, दलित-विमर्श, स्त्री-चेतना, पर्यावरण, शिक्षा-नीति, भाषा-विज्ञान, हिन्दी भाषा में रोजगार और डिजिटल-युग के प्रभाव सभी एक साथ गूँथे हुए हैं।

इस अंक में प्रकाशित शोध-लेख संबन्धित संगोष्ठी के वैविध्य को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं। मैंने अपने शोध-पत्र *'हिन्दी साहित्य का वैविध्य : साहित्य और संस्कृति'* में इस विशेषांक की विशेषता को परत-दर-परत रखने अथवा समझाने की कोशिश की है, वहीं सौरभ द्वारा *'हिन्दी गद्य साहित्य में चित्रित कारावासीय जीवन और स्त्री'* तथा *डॉ० नयना सी० पटेल* का *'भक्ति आन्दोलन में मीराबाई की भूमिका'* जैसे आलेख हिन्दी साहित्य के भीतर निहित संवेदनाओं के विविध परतों को उजागर करते हैं।

इसी प्रकार *प्रियांशीकुमारी बी० पटेल* ने भाषा के विकास को *'हिन्दी का सफ़र : राजभाषा से लेकर सोशल मीडिया की भाषा तक'* शीर्षक के माध्यम से उसे आधुनिक सन्दर्भों से जोड़ा है। *रिद्धि पी० तलाविया* और *डॉ० बिन्दु अनंतराय मेहता* आदि ने *गीतांजलि श्री* के कथा-संसार में स्त्री-चेतना और सांस्कृतिक पहचान की गहराइयों को स्पर्श किया है।

इस अंक में भाषा और संस्कृति के अन्तर्संबंधों पर अनेक महत्त्वपूर्ण शोध प्रस्तुत हुए हैं- *संस्कृत और हिन्दी भाषा का अन्तर्संबंध*, *NEP 2020 में भाषाओं का स्थान*, *हिन्दी और गुजराती भाषा के अन्तर्संबंध* जैसे आलेख न केवल भाषिक विमर्श को सुदृढ़ करते हैं, बल्कि भारतीय भाषाओं की एकता और परस्पर संवाद की परम्परा को भी रेखांकित करते हैं।

दलित, स्त्री, भक्ति, पर्यावरण और लोक-साहित्य से जुड़े आलेख हिन्दी साहित्य के समाजशास्त्रीय और सांस्कृतिक धरातल को विस्तार देते हैं। *डॉ० पारुल आर० खांट*, *डॉ० मधुरा केरकेट्टा*, *डॉ० कला ए०*, *डॉ० विजय नारायण तिवारी*, *डॉ० वेदप्रकाश भारती* तथा *डॉ० संतोष कुमार दुबे* आदि विद्वानों के लेख इस अंक की विषयगत विविधता को समृद्ध बनाते हैं।

इस संगोष्ठी में हिन्दी के साथ-साथ गुजराती विद्वानों की भागीदारी की वजह से साहित्य के क्षेत्र में भाषाई सौहार्द और सांस्कृतिक संवाद का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत हुआ है। विविध भाषाई पारस्परिकता ने यह सिद्ध किया कि साहित्य किसी एक भाषा या भू-भाग का विषय नहीं है, बल्कि यह सम्पूर्ण मानवता की साझी धरोहर है।

"पदचिन्ह" पत्रिका अपने इस विशेषांक के माध्यम से हिन्दी साहित्य की अखण्ड परम्परा को स्पर्श करके विविधता में एकता का सन्देश दिया है। यह अंक न केवल एक संगोष्ठी की स्मृति है, बल्कि उन सभी रचनात्मक चिन्तकों की धरोहर भी है, जो साहित्य को समाज का दर्पण और संस्कृति का संवाहक मानते हैं।

हम **हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर** तथा **मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली** के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ कि उन्होंने इस एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी को साकार किया। इसके साथ ही गुजरात साहित्य अकादमी के *अध्यक्ष श्री डॉ० भाग्येश जहा* और मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली के *प्राचार्य प्रो० गिरीश वी० वेलियत*, *प्राध्यापक प्रो० विलासबेन सोरठिया*, *प्रो० मनसुखभाई पटोलिया*, *प्रो० जयश्री मकवाना*, *श्रीमती नैनाबेन*, *श्रीमती मनीषाबेन*, *श्री भूषण जोशी*, *श्री जैमिन जोशी और श्री द्रविड कुमार गजेरा* तथा कर्मचारियों के सकारात्मक सहयोग की बदौलत ही संबंधित कार्यक्रम सफल हो पाया है। कार्यक्रम में आमन्त्रित विद्वान *प्रो० शैलेश के० मेहता*, *प्रो० योगिनी एच० व्यास*, *प्रो० बी० जे० पटेल*, *डॉ० शशांक कुमार सिंह*, *प्रो० गेलजी भाटिया और डॉ० निरूपा जी० टांक* के गम्भीर और विषयानुकूल व्याख्यान ने संगोष्ठी को जीवंत और प्रासंगिक बनाया है- सभी के प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। इसके साथ ही शोध-कर्ताओं, सम्पादकों और समीक्षकों को इस सृजनात्मक योगदान के लिए विशेष आभार।

आइये, इस विशेषांक के माध्यम से हम हिन्दी साहित्य के वैविध्य और उसकी सांस्कृतिक गहराइयों का पुनर्पाठ करें- ताकि हमारे विचारों का यह **"पदचिन्ह"** आने वाली पीढ़ियों के लिए दिशा-सूचक बन सके।

डॉ० अरविन्द कुमार उपाध्याय
(अतिथि सम्पादक एवं संगोष्ठी संयोजक)

शुभेच्छा संदेश

डॉ० गिरीश वी० वेलियत
कार्यकारी प्राचार्य
मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज,
अमरेली- 365601 (गुजरात)

अमरेली जिला विद्यासभा द्वारा संचालित मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली में 'साहित्य अकदमी, गांधीनगर और मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली के संयुक्त तत्त्वावधान में 'हिन्दी पखवाड़ा' के उपलक्ष्य में 'हिन्दी साहित्य का वैविध्य : साहित्य और संस्कृति' विषय पर दिनांक 20 सितम्बर, 2025 को एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का सफलतापूर्ण आयोजन हुआ। इस संगोष्ठी के विशिष्ट मेहमान के रूप में आर० एम० पी० पी० जी० कॉलेज, सीतापुर (उत्तर प्रदेश) से डॉ० शशांक कुमार सिंह, सारस्वत वक्ता के रूप में डॉ० योगिनी व्यास (पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, उमा आर्ट्स एण्ड नाथीबा कॉमर्स कॉलेज, गांधीनगर), अतिथि विशेष के रूप में डॉ० शैलेष मेहता (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट), अतिथि वक्ता के रूप में डॉ० बी० जे० पटेल (धाणक कॉलेज, बगसरा, अमरेली), वक्ता के रूप में डॉ० निरुपा जी० टांक (अध्यक्षा, गुजराती विभाग, मातुश्री मोंघीबा महिला क़ॉलेज, अमरेली) तथा विशिष्ट वक्ता के रूप में डॉ० गेलजी भाटिया (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद) ने अपने-अपने विषय पर प्रभावशाली, प्रासंगिक, सारगर्भित, विषयानुरुप एवं पांडित्यपूर्ण वक्तव्य दिया।

इस संगोष्ठी के उपलक्ष्य में विविध अध्यापकों व शोध-छात्रों ने विभिन्न विषयों पर अपने सारगर्भित और संशोधनात्मक आलेख/वक्तव्य प्रस्तुत किए। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि संबंधित विषय से जुड़े बहुमूल्य शोध-आलेखों का प्रकाशन हमारे कॉलेज के यशस्वी प्राध्यापक डॉ० अरविन्द कुमार उपाध्याय जी के अतिथि सम्पादक के रूप में ख्यातिलब्ध साहित्यिक पत्रिका 'पदचिन्ह' (अक्तूबर, 2025) के 'हिन्दी साहित्य का वैविध्य : साहित्य और संस्कृति' के विशेषांक के रूप में संपादित होने जा रहा है। इसके लिए मैं 'पदचिन्ह' के मुख्य सम्पादक व प्रकाशक महोदय श्री अजय परमार और डॉ० पंकज कुमार सिंह जी का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

पत्रिका में प्रकाशित शोध-आलेख संबंधित संगोष्ठी के विषयानुकूल है। डॉ० अरविन्द कुमार उपाध्याय ने राष्ट्रीय संगोष्ठी के माध्यम से ज्ञान रूपी जो भागीरथी प्रवाहित की थी, उसमें सभी अवगाहन करके साहित्यिक ज्ञान से तृप्त हो चुके होंगे- ऐसा मुझे पूरा विश्वास है। इस ज्ञान-यज्ञ के लिए सभी को मेरी ओर से हार्दिक बधाई एवं शुभकामना। साथ ही जिन्होंने कार्यक्रम को सफल बनाने में अपनी-अपनी भूमिका का निर्वहन किया है उन सभी को हृदय से साधुवाद एवं धन्यवाद।

शुभकामना संदेश

प्रो० शैलेश के० मेहता

अध्यक्ष, हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट

दिनांक 20 सितम्बर, 2025 के दिन अमरेली में हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर और मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली के संयुक्त तत्त्वावधान में एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। "हिन्दी साहित्य का वैविध्य : साहित्य और संस्कृति" विषय पर आयोजित इस महत्त्वपूर्ण संगोष्ठी में मुझे भी सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ। आयोजक संस्था की ओर से मेरे लिए वक्तव्य का विषय निश्चित किया गया, 'वर्तमान समय में हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता', जिस पर बात करते हुए मैंने हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल, रीतिमुक्त काव्यधारा तथा प्रगतिवादी काव्यधारा से संबंधित उदाहरण प्रस्तुत किए। गद्य साहित्य के अन्तर्गत प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद तथा हरिशंकर परसाई के साहित्य में से समय की परिसीमा को देखते हुए व्यावहारिक चर्चा की।

स्वतंत्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के बाद की स्थिति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए हिन्दी साहित्य तथा उसकी प्रासंगिकता के योगदान को रेखांकित किया। विशेषकर भक्ति साहित्य के अंतर्गत कबीर और तुलसीदास आज भी प्रासंगिक हैं। जटायु का प्रसंग, रामसेतु के निर्माण के समय छोटी-सी गिलहरी द्वारा सहायता करना, हनुमान द्वारा समुद्र लाँघने से पूर्व सेना के सबसे वृद्ध जांबुवंत से आज्ञा लेना, भरत का त्यागयुक्त स्वभाव आदि सर्वथा प्रासंगिक हैं। कबीर के काव्य में निरूपित सहजता, सादगी, संसार के प्रति निर्लिप्त भाव एवं निरंजन-निराकार, ईश्वर की वंदना ये ऐसी विशेषतायें हैं, जो कभी भी पुरानी नहीं होगी।

रहीम के सूक्ति वचन हमें आज भी प्रेरित करते हैं। भारतीय संस्कृति का श्रेष्ठ रूप हिन्दी साहित्य में भी चित्रित हुआ है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास और निबंध इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

विविध वक्ताओं द्वारा हिन्दी भाषा में रोजगार के अवसर, हिन्दी भाषा का राष्ट्रीय महत्त्व और उसकी प्रासंगिकता, हिन्दी भाषा का राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में योगदान, इसकी गुणग्राहिण और सांस्कृतिक वैभव, गुजराती भाषा के साथ अन्य संबंध जैसे विषयों पर ससन्दर्भ और शोधपरक दृष्टिकोण के साथ पर्याप्त उदाहरणों सहित चर्चा की गई। मातृ संस्था द्वारा अतिथियों के लिए समुचित चर्चा की गई। प्राचार्य महोदय डॉ० गिरीश जी० वेलियत साहब भी संगोष्ठी के विषय में प्रासंगिक उद्बोधन प्रस्तुत किया।

संगोष्ठी के इतने सफल और सुचारू आयोजन ने सबका मन मोह लिया। संगोष्ठी के दौरान हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर और मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली का ससम्मान परिचय भी दिया गया। संबंधित आयोग और कॉलेज से संलग्न विविध प्रवृत्तियों का भी परिचय प्रस्तुत किया गया। अतिथियों को शॉल, मेमेंटो तथा पुष्पगुच्छ आदि से यथोचित स्वागत एवं सम्मान किया गया।

अभिन्न मित्र डॉ० अरविन्द कुमार उपाध्याय ने अपने सफल संचालन के द्वारा चार-चाँद लगा दिये। उन्हीं के सदप्रयत्नों से संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-आलेखों तथा वक्तव्यों की पत्रिका-विशेषांक भी प्रकाशित हो रही है। यह अत्यंत हर्ष की बात है। इतना तो विश्वास है कि इस संगोष्ठी को वर्षों तक याद किया जाएगा।

शुभकामनाओं सहित ...

हिन्दी साहित्य का वैविध्य : साहित्य और संस्कृति

डॉ॰ अरविन्द कुमार उपाध्याय*

arvindkumar.hindi@gmail.com

शोध-सार :

हिन्दी साहित्य का वैविध्य ही उसकी प्रमुख विशेषताओं में से एक रही है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक हिन्दी भाषा और साहित्य के उत्तरोत्तर विकास ने इसकी विविधता को और भी स्पष्ट किया है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल और मध्यकाल तक पद्य विधा (महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक काव्य, छंद, तुकांत और अतुकांत) के द्वारा मनुष्य के साथ-साथ प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन होता रहा है। आधुनिक काल में ज्ञान-विज्ञान और तकनीक के विकास की बदौलत साहित्य की अभिव्यक्ति के स्वरूप में परिवर्तन हुआ। 'गायन' शैली के साथ-साथ अब साहित्य की अभिव्यक्ति 'कहन' शैली (नाटक, निबंध, कहानी, उपन्यास, लघुकथा, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज़, एकांकी और आलोचना आदि) में भी होने लगी। काव्य में जहाँ शास्त्रीय पक्ष को (खासकर रीतिकाल में) ज्यादा अहमियत दी गई थी वहीं गद्य में लोक पक्ष को। बावजूद इसके कि आम जन-मानस में साहित्य की इन दोनों विधाओं के प्रति लोगों में सहृदयता का भाव पक्ष बना रहा। दोनों विधायें व्यक्ति के व्यापक जीवन-मूल्यों से जुड़कर उसमें उदार चरित्र, सदाशयता, परोपकार, अहिंसा, मानवता और इन सबसे बढ़कर नैतिक-चारित्र्य का विकास कर रही हैं।

मुख्य शब्द : *साहित्य, सांस्कृतिक, राष्ट्रीयता और रोज़गार*

प्रस्तावना

साहित्य का वैविध्य

आदिकाल

आदिकाल हिन्दी साहित्य का सबसे विवादाग्रस्त कालखण्ड रहा है। विभिन्न विद्वानों ने अपने तर्कों के आधार पर इसका नामकरण और समय-सीमा को स्पष्ट करने की कोशिश की है। यही कारण है कि आचार्य द्विवेदी ने इसे विरोधों या व्याघातों का युग कहा है। हालांकि यह तर्क दुनिया के किसी भी प्रारम्भिक साहित्य के लिए होना स्वाभाविक है। साहित्य की प्रारम्भिक अवस्था कई संक्रमणों से गुजरती है। यही वजह है कि आदिकाल में भी भाषा और साहित्य में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। आदिकालीन भाषाओं के साथ ही आधुनिक भारतीय भाषाओं का भी जन्म हो रहा था। साहित्यिक अपभ्रंश और जन-भाषा के स्वरूप में अन्तर स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा था। लोकभाषा में रचित रचनायें विद्वानों द्वारा सम्मानित की जाने लगी थीं।

आदिकालीन साहित्य में किसी एक प्रवृत्ति की पूर्णत: विशेषता नहीं रही है। धर्म, नीति, श्रृंगार और वीर जैसे प्रवृत्तियों का कम या ज्यादा रूप में प्रभाव अवश्य रहा है। इसके साथ ही 'इस काल में अपभ्रंश, अवहट्ठ, डिंगल, पिंगल, खड़ी बोली तथा मैथिली के साथ-साथ संस्कृत भाषा का अलंकरण प्रधान साहित्य भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा मुक्तक सभी रूपों में धार्मिक एवं लौकिक दोनों काव्य परम्परायें विकसित हुई।'[1] आदिकालीन धार्मिक और साम्प्रदायिक साहित्य के अन्तर्गत् अपभ्रंश भाषा में रचित सिद्धों, नाथों और जैनों की रचनायें आती हैं। सिद्धों और नाथों की अपेक्षा जैनों का साहित्य इस युग में काफी प्रशंसनीय रहा है। पउम चरिउ, पउम चरिय और भविसयत्त कहा (भविष्यदत्त कथा)

* **असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी), मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली - 365601 (गुजरात)**

आदि रचनायें ऐतिहासिक और धार्मिक-दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण हैं। इन रचनाओं में महापुरुषों की जीवन-गाथा के साथ-साथ धर्म, संस्कृति और नीति आदि पर बृहद् रूप में प्रकाश डाला गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल की प्रमुख 'वीर रसात्मक' काव्य-प्रवृत्तियों को देखते हुए इसका नाम 'वीरगाथा काल' रखा था। आदिकालीन वीर रसात्मक कवियों में युद्धादि का वर्णन, आश्रयदाताओं की प्रशंसा तथा उनके वीरता और दानशीलता का काफी रोचक वर्णन मिलता है। डिंगल-पिंगल भाषा में रचित रासो काव्य (चारण काव्य) में ऐसे ही राजाओं और सामंतों का वर्णन मिलता है। 'पृथ्वीराज रासो', 'बीसलदेव रासो' तथा 'खुमान रासो' जैसी रचनायें इस काल के छत्रपों का काफी बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करती हैं। हालांकि आदिकालीन रासो साहित्य की प्रमाणिकता को लेकर विद्वानों का तीन मत रहा है। विद्वानों का एक वर्ग रासो को प्रमाणिक मानता है। दूसरा वर्ग अप्रमाणिक और जबकि तीसरा वर्ग अर्द्ध-प्रमाणिक मानता है। परवर्ती विद्वानों ने उपर्युक्त रचनाओं के आलोक में यह स्वीकार किया है कि इन रचनाओं में आश्रयदाताओं की प्रशंसा अतिशयोक्ति के रूप में की गई है। इन रचनाओं में कल्पना ऐसी है कि जिस पर सायास विश्वास करना कठिन है। लोक और समाज से कटा इस काल का कवि मात्र वृत्ति (धन) अर्जन के लिए राजा की झूठी प्रशंसा करना और अतिरंजना के उस सीमा तक पहुँच जाना जहाँ राजा राजा न होकर देवताओं जैसा पराक्रम और यश-कीर्ति को धारण कर लेता है। … एक राजा दूसरे राजा से इसलिए युद्ध करता है कि उसकी सुन्दर पत्नी, बहन अथवा बेटी को प्राप्त कर सके। या फिर अपने भुजबल के पराक्रम को दिखाकर समाज में यश-कीर्ति को प्राप्त कर सके।

आदिकालीन साहित्य में कुछ ऐसे काव्य मिलते हैं जो लौकिक विषयों को आधार बनाकर लिखे गये हैं। ऐसी रचनाओं में 'ढोला-मारू रा दूहा' और 'वसंत विलास' जैसे ग्रन्थ आते हैं। 'वसंत विलास' के सन्दर्भ में डॉ० नागेन्द्र द्वारा सम्पादित पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा गया है कि- "आदिकाल के विद्वानों ने अब तक वीरगाथाओं और धार्मिक उपदेशों का ही युग माना था। वसंत विलास के सरस वर्णन को पढ़कर सूर की श्रृंगार भावना या उसके पश्चात् रीतिकालीन कवियों के श्रृंगारिक साहित्य में अचानक आ जाने वाली प्रवृत्ति नहीं रह जाती और न उसके लिये संस्कृत साहित्य में परम्परा की खोज करना ही आवश्यक प्रतीत होता है। … स्त्री-पुरुष-प्रकृति तीनों में अजस्र बहती मदोन्मत्तता का इस काव्य में जैसा चित्रण मिलता है, वैसा रीतिकालीन हिन्दी का कवि भी नहीं कर सके।"[2]

आदिकालीन काव्य-रचना के साथ-साथ गद्य रचना की दिशा में भी प्रयास हुए हैं। 'राउलवेल' नामक कृति के प्रारम्भ में रचनाकार ने नायिका के सौन्दर्य-वर्णन का चित्रण पद्य में किया है; किन्तु उसके बाद की रचना में गद्य का प्रयोग हुआ है। इस कृति की भाषा में विविधता है। विद्वानों ने इसमें कुल सात बोलियों का उल्लेख करते हैं, जिसमें 'राजस्थानी' प्रमुख है। साथ ही 'राउलवेल' से ही हिन्दी साहित्य में नख-शिख की श्रृंगार परम्परा का उल्लेख मिलता है। 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' गद्य-पद्य मिश्रित शैलियों में रचित ग्रन्थ है, जिससे हिन्दी की तत्सम् शब्दावली की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का पता चलता है। इसके साथ ही ज्योतिश्वर ठाकुर द्वारा रचित 'वर्ण रत्नाकर' जो मैथिली-हिन्दी में रचित ग्रन्थ है- गद्य शैली में है। हिन्दी गद्य के विकास में इस ग्रन्थों की विशेष भूमिका रही है।

आदिकालीन साहित्य में हमें ज्ञानेश्वर, नामदेव और चन्द्रधर जैसे संतों का हिन्दी में पद मिलने लगे थे। इन संतों ने बाह्य पक्ष की अपेक्षा आत्मानुभूति पर ज्यादा बल दिया है। इन्होंने अपनी बानियों के लिए मुक्तक-गीत शैली को अपनाया। … आदिकाल में खड़ी बोली को काव्य की भाषा बनाने वाले पहले कवि अमीर खुसरो हैं। इन्होंने जनता के मनोरंजन के लिए पहेलियाँ, दो सखुने एवं मुकरियाँ लिखी हैं। साथ ही अमीर खुसरो एक संगीतज्ञ, इतिहासकार एवं कवि भी थे। कई भाषाओं के जानकार खुसरो ने भारतीय शैली में फ़ारसी साहित्य (पर्शियन लिटरेचर इन इण्डियन स्टाइल) लिखा। उनकी भाषा आम बोल-चाल की भाषा है।

अमीर खुसरो के बाद दूसरा बड़ा नाम विद्यापति का आता है। विद्यापति ने संस्कृत, अवहट्ठ और मैथिली भाषा में साहित्य की रचना की। उनकी रचनाओं में चरित्र-काव्य और गीतों की परम्परा एक साथ दिखाई पड़ती है। विद्यापति की प्रसिद्धी का मुख्य कारण उनकी तीन प्रमुख रचनायें हैं - कीर्तिलता, कीर्तिपताका और पदावली। इन्हें अपभ्रंश साहित्य का अन्तिम और हिन्दी साहित्य का प्रथम कवि भी माना जाता है।

अत: यह कहा जा सकता है कि आदिकाल विविध साहित्यिक प्रवृत्तियों का विकास काल रहा है। इस काल में जहाँ एक ओर सिद्धों, नाथों तथा जैनों का साहित्य अथवा दोहे आदि मिलते हैं, वहीं दूसरी ओर वीर और श्रृंगार रस से परिपूर्ण रासो काव्य। अपभ्रंश भाषा परिस्थिरत होते हुए सहज और बोधगम्य होती गई। मुक्तकों के साथ प्रबंध काव्य भी साहित्य का आधार बना।

भक्तिकाल

भक्ति का सर्वप्रथम उल्लेख 'श्वेताश्वेतर उपनिषद्' में मिलता है। भक्ति-मार्ग का प्रमुख सम्प्रदाय 'भागवत धर्म' है, जिसका उदय ईसा के लगभग 1400 वर्ष पूर्व से माना जाता है। भक्ति का उद्भव सबसे पहले दक्षिण भारत के आलवार और नायनार (आड़ियार) संतों (भक्तों) द्वारा हुआ। आलवार वैष्णव भक्त थे, जबकि नायनार शैव। आलवार संतों ने 'नाम संकीर्तन भक्ति धारा' की दक्षिण में जो अलख़ जगायी थी, वह धीरे-धीरे उत्तर भारत में परिव्याप्त होता गया। आलवार संत राम-कृष्ण के भक्त थे। इन्हीं की परम्परा में रामानुजाचार्य हुए।

दक्षिण के आलवार और नायनार की भक्ति परम्परा में ब्राह्मण, अब्राह्मण, राजा और रंक सभी श्रेणी के लोग थे। शंकराचार्य जी का 'अद्वैत दर्शन' सामाजिक और आध्यात्मिक-दृष्टि से चाहे जितना भी तर्क संगत् देकर क्यों न हो किन्तु उसमें हृदयागम्य भक्ति (ऐसी भक्ति जिसमें किसी साकार स्वरूप को 'भक्त' अपने हृदय में स्थान देकर उसकी साधना अथवा भक्ति करता है।) के लिए कोई भी स्थान नहीं था। व्यावहारिकता के धरातल पर निराकार भक्ति साकार भक्ति की अपेक्षा काफी पीछे थी। यही कारण है कि 'अद्वैतमत' की प्रतिक्रिया में चार बड़े आचार्य हुए जिन्होंने अपने मत-सम्प्रदाय आदि के द्वारा भक्ति को वेदसम्मत बताया-

01. रामानुजाचार्य - विशिष्टाद्वैत (श्री सम्प्रदाय)

02. मध्वाचार्य - द्वैत (मध्व सम्प्रदाय)

03. निम्बार्काचार्य - द्वैताद्वैत (सनक सम्प्रदाय)

04. विष्णुस्वामी - शुद्धाद्वैत (रुद्र सम्प्रदाय)

इन आचार्यों में विष्णुस्वामी के शिष्य बल्लभाचार्य थे जो दक्षिण से उत्तर भारत में आये थे। उत्तर भारत में आकर उन्होंने श्रीकृष्ण के परमभक्त सूरदास को दीक्षा प्रदान की। साथ ही भक्ति को प्रतिष्ठित करने में रामानन्द (इनके सम्प्रदाय को रामानन्दी सम्प्रदाय अथवा रामावत सम्प्रदाय, श्री सम्प्रदाय और बैरागी सम्प्रदाय के नाम से भी जाना जाता है।) और चैतन्य देव (इनके सम्प्रदाय का नाम 'गौड़ीय सम्प्रदाय' था। यह सम्प्रदाय कृष्ण भक्ति पर केन्द्रित है। इसे एक अन्य नाम 'बंगाली वैष्णववाद' के नाम से भी जाना जाता है। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय का दार्शनिक आधार 'अचिन्त्य भेदाभेदवादी सिद्धान्त' है।) का भी विशेष भूमिका रही है। इन लोगों ने भक्ति की जो सुर-सरिता प्रवाहित की उससे आम जन-मानस सराबोर हो गया। रामानन्द की भक्ति का द्वार सवर्ण-अवर्ण एवं और हिन्दू-मुस्लिम सभी के लिए खुला था। कबीर, दादू, रैदास जैसे बड़े संत इसी परम्परा के अनुयायी रहे हैं। दूसरी ओर चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति में भजन और लीलागान की परम्परा को सम्मिलित करके लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया।

भक्ति की जो परम्परा दक्षिण में आलवार और नायनार से होते हुए महाराष्ट्र में नामदेव के द्वारा उत्तर भारत में फैली थी वह कुछ ही वर्षों में लोगों के जीवन का आधार बना। उत्तर भारत में भक्ति में ज्ञान और कर्म द्वारा लोकोन्मुख होकर एक अखिल भारतीय सामाजिक और वैचारिक आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया। परिणाम यह हुआ कि भक्ति का बाह्य स्वरूप भले ही धार्मिक और वैचारिक था किन्तु उसकी आत्मा मानवीय करुणा से परिपूर्ण थी। ... रामानन्द भले ही रामानुजाचार्य के मतावलंबी थे किन्तु उन्होंने उपासना के लिए विष्णु की लीलाओं का विस्तार करते हुए 'अवतारवाद' का सहारा लिया। इन्होंने भगवान श्रीराम को आधार बनाते हुए 'राम' नाम रूपी मूल मन्त्र पर बल दिया। संस्कृत के उद्भट विद्वान होते हुए भी उन्होंने लोक-भाषा में कविता लिखी तथा 'राम' नाम की महिमा का उपदेश दिया।

रामानन्द के शिष्यों की संख्या बारह थी। अधिकांश शिष्य निम्न जातियों से ताल्लुक रखते थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी इस सन्दर्भ में रामानन्द की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि- "रामानन्द में कुछ-न-कुछ ऐसी साधना अवश्य थी जिसके कारण योग प्रधान भक्ति-मार्ग, निर्गुण भक्ति-मार्ग और सगुणोपासक भक्ति-मार्ग तीनों ही के पुरस्कर्ता भक्तों ने उन्हें अपना गुरु माना है।"[3] रामानन्द के शिष्यों ने भी लोक भाषा को अपनी वानियों में सम्मिलित करके धर्म, नीति और सामाजिक-मूल्यों की अलख़ जगाई।

हालांकि रामानन्द से पूर्व महाराष्ट्र के संत नामदेव ने एक सामान्य भक्ति-मार्ग का सूत्रपात करते हुए निर्गुण पंथ की स्थापना की थी। नामदेव ने अपनी वानियों के माध्यम से समाज में ऊँच-नीच, छुआ-छूत, ब्राह्मण और अब्राह्मण आदि की गहरी खाई को पाटने का प्रयास किया। उन्होंने बिना किसी भेदभाव के त्याग और ईश्वर की भक्ति के लिए मनुष्य के समान अधिकार को महत्त्व दिया। उनकी रचनायें सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों में हैं। सगुण-रूपी रचनायें ब्रजभाषा में और निर्गुण बानी के पदों की भाषा सधुक्कड़ी (खड़ी बोली) थी, जो बाद के वर्षों में लोगों के कंठहार बनी।

देश के पूर्वी दिशा में जयदेव ने अपनी रचना 'गीत गोविन्द' के द्वारा कृष्ण प्रेम की ज्योति जलायी। 'मैथिल कोकिल' के नाम से सुविख्यात विद्यापति ने कृष्ण से संबन्धित गीतों की रचना करके आम जन-जीवन में रच-बस चुके थे। वहीं 15वीं सदी में रामानन्द ने अवतारी राम-नाम पर बल दिया तो बल्लभाचार्य ने कृष्ण प्रेम पर। कहना न होगा कि इन सभी महापुरुषों ने राम-कृष्ण के रूप और गुण का जो वर्णन किया उससे आम लोगों में आस्था की एक नई लहर दिखाई दी। हिन्दू हो या मुस्लिम सभी के लिए राम-कृष्ण तारणहार बनकर लोक-धमनियों में प्रवाहित होने लगे थे।

कहना न होगा कि दक्षिण से चलकर उत्तर भारत तक पहुँचते-पहुँचते भक्ति निर्गुण और सगुण धारा में विभाजित हो गई। सगुण और निर्गुण के आराध्य में मत, विचार और साधना में कई मतभेद होते हुए भी दोनों विचारों के अनुयाई अपनी वानियों और दोहों के माध्यम से जनता में काफी प्रसिद्धि पाई। निर्गुण पंथ ने हिन्दू-मुस्लिम के लिए एक सामान्य भक्ति-रूपी मार्ग प्रशस्त किया। 'निराकार परब्रह्म' और 'राम' नाम की महिमा पर बल देते हुए निर्गुण संतों ने अपनी वानियों से आडम्बर, छुआछूत, मूर्ति-पूजा, नमाज़, रोज़ा और तीर्थाटन आदि का विरोध किया। सहज मानवता पर बल देते हुए इन निर्गुण संतों ने धर्म और मुक्ति का द्वार सबके लिए खोल दिया।

ज्ञान और प्रेम की प्रधानता के कारण निर्गुण काव्य दो धाराओं में विभाजित हुआ- संत काव्य (ज्ञानाश्रयी शाखा) और सूफी काव्य (प्रेमाश्रयी शाखा)। संत काव्य के कवि परब्रह्म की सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार तो करते हैं, लेकिन अवतारवाद को खारिज़ करते हैं। उनका ईश्वर निर्गुण, अजन्मा, निरंजन, अगम, अगोचर, राम, रहीम, करीम, खुदा आदि है। संतों के राम दशरथ सुत न होकर साक्षात् परब्रह्म हैं-

दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना,

राम नाम का मरम है आना।।[4]

ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि ज्ञान एवं अंतस्साधना द्वारा ही परब्रह्म की प्राप्ति पर ज़ोर देते हैं। 'राम' नाम की महिमा का गुणगान करते हुए संत कवि शास्त्र और ग्रन्थगत् मतों को अस्वीकार करते हैं। 'आँखों देखि' पर उनका ज्यादा विश्वास है-

तु कहता कागद की लेखी,

मैं कहता आँखिन की देखी।।[5]

इस धारा के ज्यादातर कभी अवर्ण जाति के थे। उन्होंने जाति-पाँति, छुआछूत, आडम्बर और पाखण्ड का जमकर विरोध किया। संत कवियों में प्रमुख नाम है- कबीर, नानक, रविदास, दादू, सुन्दरदास रज्ज़ब आदि। इन संत कवियों में सबसे बड़ा नाम कबीर का है। इन्होंने एक साथ ज्ञान, भक्ति के साथ-साथ सामाजिक, धार्मिक और तत्कालीन राजनीतिक-व्यवस्था पर खुलकर प्रहार किया। यही कारण है कि अन्य संत कवियों की अपेक्षा कबीर आज ज्यादा प्रासंगिक हैं। इन संत कवियों की भाषा सधुक्कड़ी या पञ्चमेल खिचड़ी है। इनके यहाँ प्रबंधात्मक काव्य-ग्रन्थ का अभाव है। साखियों अथवा वानियों में उनकी रचनायें मिलती हैं।

निर्गुण शाखा की दूसरी शाखा 'सूफी काव्य' (प्रेमाश्री शाखा) है। सूफी काव्य इस्लामी धर्म, संस्कृति से भले ही प्रभावित रही है, लेकिन काव्य के स्तर में उनमें भिन्नता दिखाई देती है। सूफी कवियों ने अपने काव्य-ग्रन्थों में भारतीय धर्म, संस्कृति, आचार-विचार, समुद्र, तीज-त्यौहार, व्रत और भूत-प्रेत आदि का चित्रण किया है। भाषा में फ़ारसी शब्दों का बाहुल्य है। 'मसनवी' शैली में लिखित सूफी काव्य-ग्रन्थ भारतीय संस्कृति और आम जन-जीवन के ज्यादा करीब है। सूफी कवि संत कवियों की भाँति ज्ञान पर बल न देकर बल्कि प्रेम पर देते हैं। उनका मानना है कि ब्रह्म की प्राप्ति के लिए किसी ग्रन्थ अथवा ज्ञान की जरूरत नहीं है अपितु साधक के हृदय में यदि प्रेम है, तो वह ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है।

सूफी कवियों ने अपने काव्यों में लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार की सत्ता को स्वीकार करते हैं। यहाँ ब्रह्म पुरुष के रूप में न होकर बल्कि साधक के रूप में चित्रित हुआ है। ब्रह्म स्त्री है, जिसे पुरुष रूपी स्त्री प्राप्त करना चाहता है। सूफी काव्य की पहली रचना 'चंदायन' (मुल्ला दाऊद) है और सबसे प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' (मलिक मुहम्मद जायसी) है। इस धारा के ज्यादातर कवि मुसलमान थे जिसमें प्रमुख हैं- मुल्ला दाऊद, मलिक मुहम्मद जायसी, मंझन, कुतुबन, उस्मान, शेखनवी, कासिमशाह और राबिया (एकमात्र महिला साधिका)। सूफी कवियों ने परमसत्ता के साथ दाम्पत्य भाव का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। यहाँ नायिका परमसत्ता का रूप है। यही कारण है कि नायिका के वर्णन में सूफी कवियों ने वेदांत के 'अहं ब्रह्मास्मि', सर्व खाल्विदं ब्रह्म' के सर्वात्मवाद का निर्वहन किया है। दोहे-चौपाइयों में निबद्ध उनकी रचनायें प्रबंधात्मक काव्य में लिखी गई हैं। भाषा अवधी और काव्य-चित्रण के लिए 'बारहमासा' का सहारा लिया गया है।

सगुण भक्ति के अन्तर्गत् राम काव्य और कृष्ण काव्य आते हैं। हिन्दी साहित्य में राम भक्त के प्रवर्तक रामानन्द जी को माना जाता है। साहित्य में राम भक्ति संबंधी तीन धारायें मिलती हैं-

01. निर्गुण संबन्धी काव्य (प्रतिनिधि कवि कबीर)

02. सगुण संबन्धी काव्य (प्रतिनिधि कवि गो० तुलसीदास)

03. रसिक सम्प्रदाय (प्रतिनिधि कवि स्वामी अग्रदास)

राममार्गी सगुण भक्तिधारा के अन्तर्गत् गोस्वामी तुलसीदास को जितनी प्रसिद्धि मिली है, उतनी किसी अन्य कवि को नहीं। इसका कारण है कि तुलसी अपनी रचनाओं को जनता के हृदय तक पहुँचाने में सफल रहे हैं। भाव, भाषा, शैली, मार्मिक स्थलों की पहचान, लोकमंगल की अवधारणा, पारिवारिक, सामाजिक स्वरूप की उत्कृष्ट भावना, त्याग, परोपकार और काव्योत्कर्ष का जो विधान तुलसी के काव्य में मिलता है, वह किसी अन्यत्र काव्य-ग्रन्थों में नहीं।

तुलसी के कुल बारह ग्रन्थ प्रमाणिक माने जाते हैं, जिसमें प्रमुख रूप से हैं- दोहावली, कवितावली, गीतावली, श्रीरामचरितमानस, विनय पत्रिका, रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली और रामाज्ञा प्रश्नावली। इनमें सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'श्रीरामचरितमानस' है, जिसकी भाषा अवधी है। ... तुलसी के राम अधर्म के विनाश और धर्म की स्थापना के लिए अवतार धारण करते हैं। वे सौन्दर्य, शक्ति, और शील जैसे गुणों से परिपूर्ण हैं। तुलसी की भक्ति 'दास्य भाव' की रही है। यही कारण है कि तुलसी के यहाँ दैन्य की अनुभूति जितनी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के प्रति है, उतनी किसी अन्य देवताओं के प्रति नहीं। उन्होंने 'श्रीरामचरितमानस' में जिस 'रामराज्य' की संकल्पना को साकार किया है, वह आज के समाज के लिए प्रासंगिक है। आदर्श पिता, पुत्र, पति, पत्नी, भाई, राजा, प्रजा, स्वामी, शिष्य और मित्र आज इसी रामराज्य को साकार करते हैं। यही नहीं तुलसी का मानना है कि जो व्यक्ति श्रीराम से विमुख है, वह करोड़ों शत्रुओं के समान त्याज्य है-

जाके प्रिय न राम वैदेही

तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।[6]

तुलसी ने अपने समग्र साहित्य में भारतीय सामाजिक-व्यवस्था का जो समन्वय रूप प्रस्तुत किया है, वह अकारण नहीं है; बल्कि उस समय समाज की माँग थी। विधर्मियों से हिन्दू समाज को बचाने के लिए उन्हें राम से अच्छा कोई दूसरा पात्र नहीं मिल सकता था। राम भारतीय जन-जीवन का आधार ही नहीं हैं, अपितु हमारे उत्कृष्ट सामाजिक, सांस्कृतिक तत्त्वों के

नायक भी हैं। मनुष्य जीवन का ऐसा कोई कोना नहीं है, जहाँ तुलसी के राम एक आदर्श के रूप में हमारे सामने उपस्थित न होते हो। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी सन्दर्भ में कहा है कि- "तुलसीदास को जो अभूतपूर्व सफलता मिली, उसका कारण यह था कि वे समन्वय की विशाल बुद्धि लेकर उत्पन्न हुए थे। भारतवर्ष का लोक नायक वही हो सकता है, जो समन्वय का अपार धैर्य लेकर आया हो ... उन्हें लोक और शास्त्र दोनों का बहुत व्यापक ज्ञान प्राप्त था। ... लोक और शास्त्र के इस व्यापक ज्ञान ने उन्हें अभूतपूर्व सफलता दी। उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है, वैराग्य और गार्हस्थ का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृत का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिन्तन का, ब्राह्मण और चाण्डाल का, पण्डित और अपण्डित का समन्वय, रामचरितमानस के आदि और अन्त दो छोरों पर जाने वाली पराकोटियों को मिलाने का प्रयास है। इस महान समन्वय का आधार उन्होंने रामचरित को चुना है। इससे अच्छा चुनाव हो भी नहीं सकता था।"[7] प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक शिवकुमार मिश्र ने तुलसी का विवेचन करते हुये कहा है कि- "गोस्वामी जी पण्डित थे, कला विदग्ध थे किन्तु भीतर कहीं एक नितान्त गँवई मन के भी स्वामी थे। उनके गँवई संस्कार, उनकी भाषा का गँवई लहजा, उसमें रची-पगी लोक-रस की मिठास, उनकी लोकप्रियता का राज हैं। सुख अथवा दुःख के अवसरों पर जैसी उक्तियाँ साधारण जनों के मुँह से सहज ही फूटती हैं। गोस्वामी जी उनकी अन्तरंगता से वाकिफ़ थे। उनके रामचरितमानस तथा दूसरी कृतियों में ढेरों उक्तियाँ ऐसी हैं, जिन्हें अपढ़-से-अपढ़ जन सुख-दुःख के क्षणों में बरबस दुहरा देते हैं। उनके मन-मस्तिष्क में जैसे सदा-सदा के लिए नक्श हो गयी हैं-

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख,

बलि, बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी

जीविका विहीन लोग सीद्यमान, सोच बस

कहैं एक-एकन सो, कहाँ जाइं, का करी?

विपत्ति तथा दुःख के क्षणों में साधारण ग्रामीण जनों के मुख से 'कहाँ जाई, का करी' की यह विवशता तथा निराशा गर्भित उक्ति आसानी से सुनी जा सकती हैं।"[8] तुलसी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान होते हुए भी उन्होंने काव्य-रचना के लिए जन-भाषा अवधी और ब्रज को चुना। यही कारण है कि भक्त नाभादास ने तुलसी को 'कलिकाल का बाल्मीकि' कहा और विसेंट स्मिथ ने 'बुद्धदेव के बाद का सबसे बड़ा लोकनायक' माना तो वहीं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी को 'लोकमंगल की साधनावस्था का कवि' कहकर उनका महिमामंडन करने की कोशिश की है। वास्तव में तुलसी का साहित्य वैविध्यमय है। एक साथ वह सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और पारिवारिक स्वरूपों में समानता, त्याग और परोपकार का जो बृहद् स्वरूप रचते हैं, वह दुनिया के किसी अन्य साहित्य में मिलना दुर्लभ है। यही कारण है कि जब भी हम आदर्श समाज, परिवार और राजनीति की बात करते हैं तो तुलसी के 'राम' हमें सायास याद आ जाते हैं। यही तत्त्व आज भी तुलसी को प्रासंगिक बनाये हुए हैं।

दूसरे सगुण रूप में हमें कृष्ण काव्य-परम्परा का बृहद् स्वरूप मिलता है, जिसके प्रतिनिधि कवि सूरदास हैं। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने उत्तर भारत में कृष्ण भक्ति को जो दार्शनिक आधार प्रदान किया था उससे कृष्ण भक्ति को एक नया आदर्श और प्रेरणा मिली। इन्होंने तीन प्रकार के जीवों पर प्रकाश डाला है- पुष्टि जीव, मर्यादा जीव और प्रवाह जीव। बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित आठ कवियों को मिलाकर विट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना की थी। इन अष्टछाप के कवियों (कुम्भनदास, सूरदास, कृष्णदास, परमानंददास, नंददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी और गोविन्द स्वामी) ने 'माधुर्य भाव' की भक्ति की है। अष्टछाप के कवियों में सूरदास और नन्ददास की कविता काफी प्रसिद्धि पाई है। सूरदास ने श्रीकृष्ण के बाल-सुलभ चेष्टा को आधार बनाकर जो काव्य लिखा है, शायद ही दुनिया में उस तरह का कोई दूसरा काव्य लिखा गया होगा। इसके साथ ही उन्होंने 'भ्रमरगीत' के माध्यम से उद्धव और गोपियों के मध्य जो वाग्विदग्धता दिखाई है, वह अद्भुत है। उद्धव और गोपियों के बीच हुये ब्रह्म की व्याख्या दरअसल निर्गुण कथा सगुण परब्रह्म के निराकार और साकार स्वरूप को लेकर है। जहाँ निर्गुण की अपेक्षा सगुण परब्रह्म का महिमा मण्डन किया गया है-

निर्गुन कौन देस को बासी?

मधुकर! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति, साँच, न हाँसी॥

को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?

कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस कै अभिलासी॥[8]

अष्टछाप के कवियों के अलावा मीराबाई और रसखान का नाम भी कृष्ण भक्त कवियों में अग्रणी रूप से लिया जाता है। मीरा ने कृष्ण के प्रति जो प्रेमभाव दिखाई है, उसकी वजह से उन्हें परिवार से अनेकों कष्टों को सहना पड़ा था; किन्तु उनकी भक्ति इससे और भी प्रगाढ़ होती चली गई। उन्होंने कृष्ण के जिस मोहक रूप का चित्रण किया है, उसमें कृष्ण बाँके बिहारी, गिरधर नागर और मुरलीधर हैं-

म्हारो प्रणाम बांके बिहारी जी

मोर मुकुट माथे बिराजे कुण्डल अलंकारी जी।[9]

मीराबाई प्रमुख संत रविदास की शिष्या थीं। यही कारण है कि उनके पदों में निर्गुण और सगुण दोनों की विशेषता दिखाई देती है। श्रीकृष्ण को उन्होंने प्रियतम् (आध्यात्मिक पति) रूप में स्वीकार करके 'माधुर्य भाव' की भक्ति की है।

रसखान के सवैया में ब्रज, गोपियों, कदंब, मुरली, मोर पंख और पीताम्बर आदि का वर्णन साधारण-से-साधारण व्यक्ति को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेता है-

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।

जो पसु हौं तो कहा बसु मेरा चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।

पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यौं कर छत्र पुरंदर कारन।

जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदी-कूल-कदंब की डारन॥[10]

अतः भक्ति काल का साहित्य वास्तव में 'स्वर्णिम काल' का साहित्य है। जीव, जगत, माया और ब्रह्म कि यहाँ व्याख्या तो की ही गई है, साथ-ही-साथ सांसारिक आडम्बर, मिथ्याचार, छुआछूत, पाखण्ड और जाति-पाँति का खण्डन करके समाज में समानता और मानवीय-मूल्यों को जाग्रत करने की भी कोशिश की गई है। एक आदर्श समाज की संकल्पना को आधार बनाकर इन संत कवियों ने लोकभाषा में जो रचनायें लिखी हैं, वे सभी लोगों के कंठहार बनी। भक्ति काल के इन 400 वर्षों के कालखण्ड में कबीर, नानक, जायसी, तुलसी, सूर, मीराबाई और रसखान जैसे बड़े कवियों का पदार्पण होना ही भक्ति काल के लिए 'स्वर्ण काल' सिद्ध हुआ।

रीतिकाल

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल (1643 से 1843 ई०) को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'रीतिकाल' की संज्ञा दी है। हालांकि इसके प्रवृत्तिगत विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न विद्वानों ने इसके अलग-अलग नाम रखे हैं। जॉर्ज ग्रियर्सन ने इसे 'कला काल' कहा, मिश्र बंधुओं ने इसे 'अलंकृत काल' माना तो वहीं पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे 'शृंगार काल' के नाम से अलंकृत करके इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला है।

रीति का अर्थ है- पद्धति। रस, अलंकार, ध्वनि, गुण और नायिका-भेद से संबन्धित काव्य के विभिन्न लक्षणों के आधार पर किये गये विवेचन को ही 'रीतिकाल' कहते हैं। इस काल के प्रवर्तक कवियों में आचार्य केशवदास (सर्वमान्य) और चिन्तामणि का नाम आता है। रीतिकाल अपनी प्रवृत्तिगत विशेषताओं की वजह से तीन भागों में विभाजित हुआ है-

01. **रीतिबद्ध :-** ऐसे कवि जिन्होंने लक्षण-ग्रन्थों की रचना करके उसके आधार पर काव्य-सृजन किया उन्हें 'रीतिबद्ध कवि' कहा गया है, जिसमें प्रमुख हैं- केशव, मतिराम, देव, पद्माकर, चिन्तामणि आदि।
02. **रीतिसिद्ध :-** ऐसे कवि जिन्हें रीति-परम्परा का ज्ञान है, किन्तु रीति-ग्रन्थ न लिखकर रीति काव्य-परम्परा के आधार पर काव्य की रचना की, उन्हें 'रीति सिद्ध कवि' कहा गया। ऐसे कवियों में बिहारी और रसलीन प्रमुख हैं।

03. रीतिमुक्त :- ऐसे कवि जिन्होंने रीति-परम्परा से मुक्त होकर काव्य की रचना की, उन्हें 'रीतिमुक्त कवि' कहा गया। घनानन्द, आलम, बोधा, ठाकुर और द्विजदेव इस धारा के प्रमुख कवि हैं।

रीतिकाल समृद्धि और विलासिता का काल रहा है। श्रृंगार और विलासिता की अधिकता समाज और साहित्य दोनों में दिखाई देता है। इस काल में कला जहाँ वासना-पूर्ति का साधन बनी तो वहीं नारी उसका आधार। नारी के नख से लेकर शिख तक और उसकी मांसलता का वर्णन करके तत्कालीन कवियों ने 'आत्मवृत्ति' और 'धनवृत्ति' दोनों को ही जाग्रत किया। सुरा और सुन्दरी में डूबा राजा अथवा सामन्त नारी को सम्पत्ति मानकर उसका भोग करना ही अपने जीवन का परम् लक्ष्य समझता था। अर्थात् यह युग नैतिक पतन का युग था। हिन्दू धर्म-स्थान तक पापाचार अथवा विलासिता में डूब चुके थे। कविगण राम-कृष्ण में भी विलासी जीवन का वर्णन करके धार्मिक अनैतिकता का परिचय दिया।

हालांकि रीतिकालीन साहित्य और कलाओं की दृष्टि से काफी समृद्ध रहा है। शास्त्रीय आधार पर जहाँ काव्य का सृजन हुआ वहीं शाहजहाँ के शासन-काल में स्थापत्य कला का उत्कृष्ट स्वरूप भी दिखाई देता है। ललित कला, चित्रकला और संगीत कला का पोषण राजमहलों के द्वारा हुआ। साथ ही रीतिकाल में लक्षण ग्रन्थों का निर्माण, श्रृंगार चित्रण, वीर और भक्ति काव्य, नीति काव्य, प्रकृति चित्रण, ब्रजभाषा, आलंकारिकता और मुक्तक काव्य आदि की प्रधानता रही है। इस कालखण्ड में भूषण एक ऐसे कवि रहे हैं, जो वीर रस से संबन्धित काव्य की रचना करके एक सीमित मात्रा में ही सही राष्ट्रीय चेतना का बीजारोपण किया।

आधुनिक काल

आधुनिक काल की शुरुआत वि० 1900 सं० (1843 ई०) से मानी जाती है। यह वर्तमान के सन्दर्भ में विकसित वह भावबोध है, जो भविष्योन्मुख है। आधुनिकता सम्पूर्ण विकास एवं प्रगति का केन्द्र मनुष्य को मानती है। अर्थात् उसकी दृष्टि मानवतावादी है। साहित्य के आधुनिक काल में नवीन दृष्टिकोण के आविर्भाव से रचना-विधान में परिवर्तन हुआ। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, चिन्तन और समय की जरूरतों ने साहित्य रीतिकालीन मानसिकता से अलग हुई। औद्योगिकरण, नगरीकरण और बौद्धिकता के फलस्वरुप साहित्य में एक नवीन दृष्टिकोण का उदय हुआ। देश, धर्म, राष्ट्र और ईश्वर के सन्दर्भ में नई व्याख्याओं ने साहित्य की दिशा और गति बदल दी। अब नये-नये भावबोधों (विचार अथवा वाद) को साहित्य का विषय बनाया गया। भाषा की व्यंजन क्षमता में वृद्धि हुई। नये उपमान, नये बिम्ब एवं नये प्रतीक साहित्य में गढ़े गए।

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की लड़ाई (1857 ई०) ने भारत में एक नई चेतना को जन्म दिया। अंग्रेज सरकार की दमनात्मक एवं शोषणकारी नीति ने देश के बौद्धिक और युवा-वर्ग को झकझोर कर रख दिया। हम थोड़ा मुगल और अंग्रेजी शासन पर विचार करें तो यह अन्तर पायेंगे कि जहाँ मुस्लिम शासक सामंती व्यवस्था के पक्षधर थे, वही अंग्रेज विशुद्ध पूँजीवादी व्यवस्था के पोषक। अंग्रेज व्यापारी पहले थे, शासक बाद में। उनकी नीतियाँ भारत में इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बनाई गई थीं। यही कारण है कि अंग्रेजों ने भारत के आर्थिक संसाधनों पर कब्जा करने के लिए शोषण और दमन की नीति अपनाई थी। भारतेन्दु को इसीलिए कहना पड़ा कि-

अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।

पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी।।[11]

आधुनिक काल की इस नई आर्थिक व्यवस्था ने पारस्परिक संबन्धों को जटिल बना दिया। पंचायतों का स्थान कचहरी और धर्म का स्थान तर्क ने ले लिया। गाँवों की जड़ता एक हद तक टूटी। जाति-व्यवस्था के शिथिल पड़ जाने से पारम्परिक कामों में बदलाव हुआ। लोगों में राष्ट्रीयता का भाव जाग्रत हुआ। नये आर्थिक वर्गों के उदय की वजह से पूँजीपति एवं श्रमिक वर्ग के बीच एक नये वर्ग का उदय हुआ जिसे मध्यवर्ग कहते हैं। ... ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज तथा अंग्रेजी ढंग के स्कूल और कॉलेजों की स्थापना ने भी भारतीय समाज को आधुनिक बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आदिकाल और मध्यकाल तक भावाभिव्यक्ति का एकमात्र साधन 'कविता' थी किन्तु आधुनिक काल में भाव एवं विचार के लिए गद्य (नाटक, निबंध, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा आदि) विकसित हो गया। काव्य भाषा

के पद पर लम्बे अर्से तक टिकी रहने वाली ब्रजभाषा धीरे-धीरे गायब होती चली गई और उसकी जगह खड़ी बोली हिन्दी (द्विवेदी काल में) ने ले ली। हालांकि भारतेन्दु काल तक ब्रजभाषा काव्य के लिए और हिन्दी खड़ी बोली गद्य की लिए प्रयोग होती रही किन्तु द्विवेदी युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अथक् प्रयासों से गद्य-पद्य की भाषा हिन्दी खड़ी बोली हो गई।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' अथवा 'पुनर्जागरण काल' के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसकी समय सीमा संवत् 1950 विक्रम से 1950 विक्रम (1868-1893 ई०) तक मानी है। वास्तव में भारतेन्दु युग प्रत्येक क्षेत्र में पुनर्जागरण का युग है। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक और साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में कुछ नयापन और आन्दोलन अथवा वैचारिक-क्रान्ति दिखाई देती है। देश-प्रेम, स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बल, बाल-विवाह का निषेध, विधवा विवाह, शिक्षा का प्रचार-प्रसार, मद्य-निषेध और नारी-उत्थान जैसे विषयों पर गद्य-पद्य विधाओं में महत्त्वपूर्ण रचनायें लिखी जाने लगीं। साथ ही राष्ट्रीय चेतना से संबन्धित कविता के उदय से समाज और अंग्रेजी हुकूमत पर काफी असर पड़ा। राष्ट्रीय चेतना की कविता से समाज जहाँ अपने ज़मीर और मातृभूमि के लिए उद्वेलित हुआ वहीं अंग्रेज इसे अपने लिए एक साहित्यिक चुनौती के रूप में स्वीकार करके कई रचनाओं को ज़प्त कर लिये। भारतेन्दु युगीन कवि को भारत की दुर्दशा देखी नहीं जा रही है-

रोवहु सब मिली आवहु भारत भाई।

हा-हा भारत दुर्दशा न देखी जाई।।[12]

भारतेन्दु युगीन कविता में राष्ट्र प्रेम की भावना के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में भी रचनायें लिखी गई हैं। सामाजिक-दुर्दशा का निरूपण, श्रृंगारिकता, भक्ति-भावना, प्रकृति चित्रण, हास्य-व्यंग्य की प्रधानता, समस्यापूर्ति और काव्यानुवाद आदि भारतेन्दु युग की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियाँ रही हैं। भारतेन्दु युग के प्रमुख कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' अंबिकादत्त व्यास, राधाकृष्णदास, ठाकुर जगमोहन सिंह एवं राधाचरण गोस्वामी आदि का नाम लिया जाता है।

1900 से लेकर 1920 ई० तक के कालखण्ड को द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के रचना-व्यक्तित्व की बदौलत ही इसका नामकरण किया गया था। डॉ० नागेन्द्र ने द्विवेदी युग को 'जागरण सुधार काल' के नाम से भी सम्बोधित किया है। भारतेन्दु युग में जिन काव्य-प्रवृत्तियों का सूत्रपात हुआ था उसका विकास द्विवेदी युग में हुआ। देश-प्रेम, स्वदेशाभिमान, आदर्शवाद, समाज सुधार, नैतिकता, नवजागरण, पौराणिक अथवा धार्मिक-ग्रन्थों में उपेक्षित नारी का महिमा-मण्डन, सरल एवं स्पष्ट भाषा और इतिवृत्तात्मकता आदि ऐसे बिन्दु हैं, जिन पर द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने कलम चलाई। साथ ही इस युग के कवियों ने लोगों में देश-भक्ति को जाग्रत करके उन्हें स्वतन्त्रता-प्राप्ति की राह दिखाई।

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।

वह नर नहीं, पशु निरा है और मृतक समान है।।[13]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'कवि कर्तव्य' जैसे निबंध लिखकर कवियों की भाषा-शैली, छन्द-योजना और विषय-वस्तु से संबन्धित कई सुझाव दिए। हिन्दी गद्य में विराम-चिन्हों का सूत्रपात द्विवेदी जी के अथक् प्रयासों की वजह से ही सम्भव हो सका। उनके बताये साहित्यिक रास्तों पर चलकर ही मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही' और लोचनप्रसाद पाण्डेय ने हिन्दी साहित्य को महत्त्वपूर्ण एवं चर्चित रचनायें दे सकें। इन रचनाकारों के अलावा भी अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शर्मा 'शंकर', रायदेवी प्रसाद पूर्ण, नाथूराम शर्मा 'शंकर', राम नरेश त्रिपाठी, रामचरित उपाध्याय, आदि ने द्विवेदी युग को आगे बढ़ाने में काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। साकेत, प्रिय प्रवास (इस काल के ये दो महाकाव्य हैं। 'प्रिय प्रवास' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य भी है।), वैदेही वनवास, जयद्रथ वध, भारत भारती, मिलन, पथिक, स्वप्न, पंचवटी, द्वापर, यशोधरा, कश्मीर सुषमा और एकांतवासी योगी आदि इस काल की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। सरस्वती, मर्यादा, प्रभा, स्त्री दर्पण, प्रताप और मातृभूमि जैसी पत्रिकाओं ने द्विवेदी युगीन विचारधारा को आगे बढ़ाने में काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सन् 1920 से लेकर 1936 ई० तक के साहित्यिक कालखण्ड में एक साथ तीन काव्य धारायें चल रही थीं- छायावादी, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा और प्रणयवादी काव्यधारा। 'छायावादी' कविता में वैयक्तिकता की भावना प्रमुख रही है। भारत में राजनीतिक आकांक्षाओं की पूर्ति न होने से जो निराशा, कुण्ठा, विक्षोभ उत्पन्न हुआ उसकी अभिव्यक्ति छायावादी काव्य में हुआ। यह काव्यधारा द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता, स्थूलता, नैतिकता एवं आदर्शवाद की प्रतिक्रियास्वरूप जन्म लेती है। परिणामस्वरुप छायावादी कविता अन्तर्जगत् की ओर उन्मुख हो गई तथा भाषा में सूक्ष्मता, वक्रता और लाक्षणिकता का समावेश हो गया। जयशंकर प्रसाद (आँसू, झरना, लहर, कामायनी), सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, अपरा), सुमित्रानन्दन पंत (वीणा, पल्लव, गुंजन, ग्रन्थि) और महादेवी वर्मा (निहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा) इस काल के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। छायावादी कवि मूलत: प्रेम एवं सौन्दर्य के कवि हैं। नारी को उदात्त स्वरूप प्रदान करते हुए उसे पुरुष की प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित किया है-

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास-रजत-नग पग तल में।

पीयूष-स्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।[14]

इसके साथ ही कविता में रहस्यवाद, प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण, दुख और वेदना की अभिव्यक्ति तथा खड़ी बोली के माधुर्य रूप का प्रयोग करके छायावादी कवियों ने इसे साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में सफल रहे हैं।

'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा' के कवियों ने भारत के अतीत गौरव का गुणगान किया। अंग्रेजी-शासन को उखाड़ फेंकने के लिए जनता का आह्वान किया। देश में स्वातंत्र्य चेतना को जाग्रत करके उनमें सांस्कृतिक-चेतना और मानव-जनित मूल्यों की प्रतिष्ठा की। इस तरह के कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, रामनरेश त्रिपाठी, रामधारी सिंह 'दिनकर' और सियारामशरण गुप्त आदि प्रमुख हैं।

'प्रणयवादी' काव्यधारा के कवियों ने अपने काव्य में प्रणय की लौकिक एवं मांसल अभिव्यक्ति की है। बच्चन की हालावादी रचनायें भी इसी काव्यधारा के अन्तर्गत् आती हैं। बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' जैसे गीतकारों ने इस काव्यधारा को आगे बढ़ाया।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर साहित्य में 'प्रगतिवादी' (1936-1943 ई०) काव्यधारा की शुरुआत होती है। इस काव्यधारा का प्रमुख उद्देश्य है- सामाजिक यथार्थ का चित्रण करना जिससे समाज का शोषण, कुरूप और सड़ी-गली विसंगतियों का चित्रण हो सके। यही कारण है कि इस काव्यधारा के कवियों ने प्रतिक, बिम्ब, उपमान, मुहावरे, अलंकार और चित्र आदि सभी आम जन-जीवन से लिए हैं। प्रगतिवादी साहित्य की सोद्देश्यता पर बल देता है। हर प्रकार के शोषण का विरोध करते हुए इसने काव्य में मजदूरों, किसानों, गरीबों और स्त्रियों की प्रति सहानुभूति दिखाई है। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', त्रिलोचन शास्त्री, नरेन्द्र शर्मा आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं।

हिन्दी में 'प्रयोगवाद' शब्द उन कवियों के लिए प्रचलित हो गया जो सन् 1943 ई० में 'तारसप्तक' (अज्ञेय) के माध्यम से आई। भाषा, शिल्प, भाव, प्रतिक, बिम्ब और रचना के स्तर पर 'प्रयोग' करना इस काल के कवियों की प्रमुख विशेषता रही है। इस धारा की कविता में मध्यवर्गीय वैयक्तिक पीड़ा, भोगा हुआ यथार्थ, लघु मानव की प्रतिष्ठा, व्यष्टि चेतना का समाजोन्मुख स्वरूप, संत्रास, कुण्ठा, अनास्था, निराशा, क्षण-भंगुरता, उन्मुक्त भोग, स्वच्छंदता और नैतिक-मूल्यों की अवहेलना दिखाई देती है। कहना न होगा कि प्रयोगवादी कविता 'अस्तित्ववाद' से प्रभावित है। उसके जो मूल्य हैं, वह अस्तित्ववाद की देन है। इस धारा के प्रमुख कवियों में अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमीचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर एवं रामविलास शर्मा आदि हैं।

'प्रयोगवादी' काव्यधारा के बाद हिन्दी में 'नई कविता' का विकास होता है। नई कविता से आशय ऐसी कविता से है, जो स्वतन्त्रता के बाद नया भावबोध, नये मूल्य एवं नये शिल्प-विधान को अंगीकृत करके मनुष्य को उसके समूचे परिवेश में चित्रित करता है। वह परम्परा का विरोध न करके बल्कि उसे विकसित करके उसे नवीन जीवन-मूल्यों से जोड़ता है। 'वाद' अथवा 'सिद्धान्त' जैसे संकुचित घेरे से मुक्त होकर नई कविता अनुभूति की सच्चाई तथा बुद्धि-मूलक यथार्थवादी दृष्टि पर बल

देती है। युगबोध से अनुप्राणित कवि का व्यक्तित्व सबका व्यक्तित्व बन जाता है। अर्थात् नई कविता में व्यष्टि बोध से समष्टि बोध तक की यात्रा तय करती है।

सांस्कृतिक वैविध्य

भाषा का अपना लोक-जीवन होता है। 'लोक' के बिना भाषा का जीवंत रहना सम्भव नहीं है। लोक अपनी विविध संस्कृतियों, रीति-रिवाजों, विरासत और परम्पराओं के माध्यम से किसी भाषा को जीवंत बनाये रखता है। भाषा की अतिशय शिष्टता और व्याकरणिक प्रयोग की वजह से वह सामान्य जन-जीवन से दूर होती चली जाती है। संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि भाषायें इसका सशक्त उदाहरण हैं। इस दृष्टि से हिन्दी भाषा व्यापक लोक जीवन और उसकी आस्था से जुड़ने में सफल रही है।

भारत विविध धर्मों, संस्कृतियों, भाषाओं, रीति-रिवाज़ों और जातियों वाला राष्ट्र रहा है। अर्थात् दुनिया का यह पहला ऐसा देश है जो प्रत्येक क्षेत्र में विविध तत्त्वों को समेटते हुये अपने एकीकृत स्वरूप को प्रस्तुत करने में सफल रही है। इसका सबसे बड़ा कारण है इसकी भाषायी-शक्ति। अगर हम राजनैतिक दुराग्रहों को छोड़ दें तो हिन्दी भाषा की स्वीकृति आज प्रत्येक राज्य में होने लगी है। हिन्दी ही वह भाषा है जो भारत की विविध संस्कृतियों और समुदायों को एक साथ करके भारतीय एकीकरण की भावना को जाग्रत कर सकती है।

वर्तमान में हिन्दी भाषा का उपयोग हिन्दू धर्म-ग्रन्थों के साथ-साथ अन्य धार्मिक-ग्रन्थों में काफी व्यापक पैमाने में हुआ है। यहाँ तक कि हिन्दी भाषा के इतर अन्य भाषाओं में रचित धार्मिक-ग्रन्थों का व्यापक अनुवाद हिन्दी भाषा में करके उसे सर्व-सुलभ बनाया जा रहा है। कारण स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा की सर्वग्राही की वजह से अन्य भाषाओं की रचना यदि हिन्दी भाषा में उपलब्ध नहीं हो पायेंगी तो उनके सामने धार्मिक-विस्तार का संकट उत्पन्न हो सकता है। अत: हिन्दी भाषा का उपयोग ही अन्य धार्मिक-समूहों को गतिशील बना सकता है, जो उसे धार्मिक विविधता से जोड़ते हुये उसके भारतीय स्वरूप को प्रस्तुत कर सकता है।

राष्ट्रीयता का प्रतीक

किसी देश की राष्ट्रीयता के प्रतीक के रूप में उसकी भाषा की विशेष भूमिका होती है। इस दृष्टि से हिन्दी भाषा भारतीय गणराज्य की एकीकृत अथवा राष्ट्र-भाषा के रूप में उत्तराधिकारिणी हो सकती है। क्षुद्र राजनीति और सत्ता-लोलुपता की वजह से हिन्दी आज भी राष्ट्रभाषा के रूप में आसीन नहीं हो सकी है। जबकि पूरे देश में हिन्दी में ही वह खूबी है, जो राष्ट्रभाषा के रूप में आसीन हो सकती है। क्योंकि देश में आज हिन्दी भाषा बोलने, समझने, लिखने और पढ़ने वालों की संख्या अन्य राज्यों की अपेक्षा ज्यादा है। भारत में दस राज्यों और एक संघ शासित प्रदेश की राजभाषा हिन्दी है, जिनमें उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड और दिल्ली हैं। इसके साथ ही आज हिन्दी कई राज्यों की द्वितीयक भाषा के रूप में प्रयोग हो रही है। अत: हिन्दी भाषा एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में भारत की एकता और अखण्डता को स्थापित करने में सक्षम है; क्योंकि यह पूरे देश में एक सामान्य संचार भाषा के रूप में अन्य भाषाओं की अपेक्षा ज्यादा प्रयोग की जाती है।

स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान हिन्दी भाषा जन-नायकों और क्रान्तिकारियों के बीच एक शक्तिशाली आवाज के रूप में कार्य किया है। यहाँ तक कि जिन स्वतन्त्रता नायकों की भाषा हिन्दी नहीं रही उन लोगों ने भी हिन्दी भाषा पर बल देते हुये इसे देशहित से जोड़ा। महात्मा गांधी, सरदार पटेल, रविन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसे लोगों ने हिन्दी भाषा की गुणग्राहिता पर बल देते हुये इसे भारत की भाषा मानने के पक्ष में थे। हिन्दी भाषा ने क्रान्तिकारियों के लिये एक शक्तिशाली आवाज़ के रूप में भी कार्य किया। फलस्वरूप लोगों में देशभक्ति और स्वाधीनता की भावना पैदा हो सकी।

किसी देश की वैश्विक पहचान उसकी सांस्कृतिक विरासत और भाषा की बदौलत होती है। आज हिन्दी भाषा एक वैश्विक भाषा के रूप में विकसित होकर अपनी पहचान बनाने में सफल हुई है। हिन्दी ही वह भाषा है, जो भारतीय सीमाओं और संस्कृतियों के पार लोगों को आपस में जोड़ते हुये भारतीय सांस्कृतिक पहचान को वैश्विक मंच पर स्थापित करने में

महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। आज हिन्दी भाषा भारत के अलावा, नेपाल, मारीशस, फिजी, सूरीनाम और पाकिस्तान आदि देशों में बोली जाने वाली भाषाओं में प्रमुख है। इसके साथ ही हार्वर्ड, कोलंबिया, येल, कॉर्नेल, कैम्ब्रिज, टोक्यो, मॉस्को स्टेट, ढाका, पेइचिंग और पीटर वरान्निकोव जैसे विश्वविद्यालयों समेत दुनिया के लगभग दो सौ शैक्षणिक संस्थानों में हिन्दी भाषा में शोध-कार्य अथवा पढ़ाई होती है।

रोज़गार का माध्यम

हिन्दी भाषा की जन-सामान्य समझ और पहुँच ने आज रोज़गार के नये अवसर प्रदान किये हैं। अंग्रेजी जैसी भाषाओं की बंदिशों को तोड़ते हुये हिन्दी भाषा रोज़गार का प्रमुख माध्यम बना है। टेलीविज़न, सिनेमा, रेडियो, अनुवाद, पत्रकारिता, सामग्री-लेखन, कम्प्यूटर और प्रौद्योगिकी (जैसे गूगल, माइक्रोसॉफ्ट) के साथ-साथ सरकारी विभागों (जैसे हिन्दी अनुवादक, राजभाषा अधिकारी) में रोज़गार के कई अवसर उपलब्ध हुये हैं। आज देश की युवा आबादी हिन्दी भाषा में विशेषज्ञता को हासिल करके शिक्षक, अनुवादक, पत्रकार, लेखक, कलाकार, तकनीकी लेखक, संवाद लेखक और वेब अनुवादक के रूप में अपना कैरियर बना रहे हैं।

भारत में हिन्दी भाषी उपभोक्ता वर्ग में वृद्धि होने की वजह से बड़ी-बड़ी कम्पनियों के लिये विपणन और विज्ञापन अनिवार्य हो गया है, जिससे इन क्षेत्रों में हिन्दी भाषा-विशेषज्ञों की माँग बढ़ी है। सोशल मीडिया के विभिन्न माध्यमों पर अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी भाषा की माँग बढ़ने से तकनीकी और सामग्री-निर्माण के क्षेत्र में रोज़गार की वृद्धि हुई है। इसके साथ ही दुनिया के कई देशों ने अपने शैक्षणिक संस्थानों में हिन्दी भाषा को वरीयता देते हुये रोज़गार के नये अवसर प्रदान किये हैं।

निष्कर्ष :

हिन्दी भाषा केवल सम्प्रेषण का साधन मात्र नहीं है, बल्कि यह भारतीय साहित्य, संस्कृति, राष्ट्रीयता और रोज़गार की भी सशक्त माध्यम रही है। इसका वैविध्य ही इसे बहुआयामी और सर्वग्राही बनाती है। हिन्दी का विकास केवल साहित्यिक प्रयोजनों के लिए ही नहीं हुआ, बल्कि यह संस्कृति, समाज और राष्ट्रीयता की संवाहिका भी रही है। यह भाषा अनेक शैलियों और विधाओं में रचित है, जो भारत के विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक स्वरूपों को रेखांकित करती है। हिन्दी भाषा भारत की समृद्ध विरासत का न केवल वाहक है, अपितु विभिन्न संस्कृतियों को जोड़ने में एक सेतु के रूप में भी काम करती है। यह भाषा राष्ट्रीय स्तर पर एकता और अस्मिता का प्रतीक भी है, जिसका प्रयोग स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय में लोगों को भाषा, प्रांत, मज़हब, जाति, धर्म और समुदाय से ऊपर उठकर एकजुट करने के लिये किया गया था।

हिन्दी साहित्य विभिन्न कालखण्डों में जैसे- आदिकाल, मध्यकाल (भक्तिकाल, रीतिकाल) और आधुनिक काल (भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता) में उतरोत्तर विकास किया। आदिकाल में चन्दबरदाई, विद्यापति, अमीर खुसरो, जगनिक, अब्दुल रहमान, स्वयंभू और सरहपा आदि, भक्तिकाल में कबीरदास, मलिक मुहम्मद जायसी, गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास आदि ने इसे ज्ञान, भक्ति, नीति, प्रेम, वात्सल्य और इन सबसे बढ़कर इसे सामाजिक-चेतना से जोड़ा। रीतिकाल में भाषा अलंकारिक एवं श्रृंगार-प्रधान रही। आधुनिक काल में भारतेन्दु, प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', श्रीलाल शुक्ल, नरेश मेहता, हरिशंकर परसाई और अन्य रचनाकारों ने हिन्दी को राष्ट्रीय आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन का औजार बनाया। आज के समय में हिन्दी कविता, कहानी, नाटक, आत्मकथा, जीवनी, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज़, आलोचना, पत्रकारिता और सिनेमा में नई दृष्टि और नये प्रयोगों के साथ व्यापक वैविध्य दिखाई पड़ता है।

हिन्दी साहित्य प्रारम्भ में काव्य-विधा के रूप में आगे बढ़ती है, किन्तु आधुनिक काल में ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार और कागज़ तथा छापाखाना के विकास ने इसे अन्य विधाओं की ओर आगे बढ़ने में काफी मदद की। आज हिन्दी साहित्य पद्य (दोहा, छन्द, सोरठा, सवैया, चौपाई) और गद्य (कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, आलोचना आदि) क्षेत्रों में विकास करते हुये व्यापक सामाजिक अनुभवों एवं मूल्यों को जोड़ने में सफल रही है। भक्तिकाल और आधुनिक काल के रचनाकारों ने साहित्य को मानवीय जीवन से जोड़ा। वहीं आज वह व्यक्ति के मुक्ति और चेतना का

माध्यम बना। इसके साथ ही स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, पर्यावरण विमर्श, वृद्ध विमर्श, किन्नर विमर्श जैसे विषयों को हिन्दी साहित्य में जगह देकर लोगों का ध्यान इन विषयों के प्रति न केवल आकर्षित किया बल्कि लोगों को इनके प्रति संवेदनशील भी बनाया।

सन्दर्भ :-

01. वर्मा, डॉ॰ हरिश्चन्द्र. (1953). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. इलाहाबाद: हिन्दुस्तानी एकेडमी. पृ॰ 78.

02. नागेन्द्र, डॉ॰ (1959). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर. पृ॰ 77

03. https://surl.li/gjmooc

04. सुन्दरदास, श्याम (सं॰). (1928). *कबीर ग्रन्थावली*. काशी: नागरी प्रचारिणी सभा. दोहा 40.

05. जाफरी, अली सरदार (सं॰). *कबीर बानी*. पृ॰ 100.

06. तुलसीदास, गोस्वामी. (1938). *विनय पत्रिका*. गोरखपुर: गीता प्रेस. पृ॰ 119.

07. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद. (1940). *हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास*. इलाहाबाद: हिन्दुस्तानी एकेडमी. पृ॰ 130-131.

08. सूरदास. (1948). *सूरसागर (भ्रमरगीतसार)*. काशी: नागरी प्रचारिणी सभा. पृ॰ 83.

09. https://tinyurl.com/36zcuhv3

10. भाटी, प्रो॰ देशराज सिंह (संपा॰) रसखान ग्रन्थावली सटीक. पृ॰ 155

11. सिंह, ओमप्रकाश (सं॰). (1989). *भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली, भाग-1 (अंधेर नगरी)*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ॰ 290.

12. https://tinyurl.com/47ybz6st

13. https://tinyurl.com/4unbd7cc

14. https://tinyurl.com/3arcwxt4

हिन्दी गद्य साहित्य में चित्रित कारावासीय जीवन और स्त्री

सौरभ*

saurabhramanujanba@gmail.com

सरांश :

आधुनिक काल में हिन्दी गद्य को विशेष रूप से प्रेक्ष्य मिला है और इसके अंतर्गत कई विधाओं का सूत्रपात हुआ है, जिनमें उपन्यास, कहानी, नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रावृतांत, आत्मकथा, जीवनी, डायरी आदि मुख्य है। गद्य साहित्य की इन विधाओं में अनेक विषयों को लेकर रचनाएं की गयीं। स्त्री, दलित, किन्नर विमर्श को रचनाओं में मुख्य स्थान मिला। ऐसे ही कारावास जीवन को भी हिन्दी गद्य की नवीन विधाओं में विशेष स्थान मिला हैं। देश की आज़ादी से पूर्व स्वतंत्रता आंदोलन में तथा आज़ादी के पश्चात् भी कई व्यक्तियों को कारागार में जाना पड़ा। इन व्यक्तियों में दिग्गज़ नेताओं से लेकर साधारण लोगों के साथ - साथ महिलाएं भी शामिल रही है। इनमें कई व्यक्तियों ने अपने कारागार के रोमांचक तथा यातनामय अनुभवों को यथार्थ के धरातल पर चित्रण किया हैं। पुरुषों के लिए कारागार कष्टकारक तथा नरकतुल्य तो है लेकिन स्त्रियों के लिए कारागार उससे कहीं अधिक बढ़कर है। स्त्रियों के लिए कारागार जीवन एक प्रकार से दोहरी क़ैद है। परिवार से दुरी, मातृत्व की पीड़ा के साथ ही साथ सामाजिक तिरस्कार भी उन्हें झेलना पड़ता है। कारागार जाने का एक प्रकार से कलंक उनके माथे पर लग जाता है। राजनैतिक महिलाओं का देश के लिए जेल जाना किसी हद तक समाज बर्दाश्त कर लेता है, लेकिन किन्हीं अन्य कारणों से कतई बर्दाश्त नहीं करता। परिवार, पति तथा सम्बन्धी उन्हें नकारतें है व अपनाने से इंकार कर देते हैं। वहीं दूसरी तरफ कारागार में स्वतंत्रता का हनन, यौन शोषण, सामान्य वस्तुओं से वंचित रहना, कड़ी मेहनत करना, अस्वादिष्ट अस्वस्थ मिलावटी भोजन खाना, कठोर जीवन बिताना, उनके दुख को ओर अधिक बढ़ाता है। कारागार में स्त्रियों की स्थिति पर स्त्रियों ने ही नहीं बल्कि पुरुषों ने भी अधिक लिखा है। इस प्रकार प्रस्तुत लेख में पितृसत्तात्मक समाज में अपनी अस्मिता को पहचानती स्त्री को कारागार के विशेष संदर्भ में प्रदर्शित किया गया है।

बीज़ शब्द *– स्वतंत्रता, समाज, कारागार, स्त्री, दोहरी कैद, कठोर यातना, शोषण।*

शोध आलेख

हिन्दी गद्य साहित्य में तमाम नये विषयों का समावेश हुआ है। सभी महत्वपूर्ण विमर्श तथा विषयों पर लेखन चिंतन चला आ रहा है। ऐसे में करावासीय जीवन भी इससे अछूता नहीं है, करावासीय जीवन पर हिन्दी साहित्य के कई रचनाकारों ने अपनी लेखनी चलायी है। कारागार को समाज के ही एक पहलू के रूप में देखा जाता है। हिन्दी के रचनाकार कामतानाथ, अज्ञेय, रामवृक्ष बेनीपुरी, यशपाल, शिवानी आदि ने माना है की यदि किसी समाज को अच्छे से समझना हो तो वहाँ की जेलों के बारे में जानना आवश्यक है। समाज का एक प्रताड़ित और गरीब तबका वहाँ बसता है। पुरुष क़ैदी ही नहीं स्त्री क़ैदियों की संख्या में भी आधुनिक समय में बढ़ोतरी हुई है। इसकी मुख्य शुरुआत स्वतंत्रता आंदोलन से मानी जा सकती है, जब जेलों को स्वराज्य का मार्ग तथा मंदिर समझा गया। सभी राजनैतिक पुरुष कारागार को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए मुख्य मानते आये है। क्योंकि ब्रिटिश हुकूमत का सबसे बड़ा हथियार भी कारागार को ही माना गया था। प्रेमचंद 'जेल' नामक कहानी में जेल का महात्मय कुछ इस प्रकार अंकित करते हैं - "अब मैं पुलिस के किसी आक्षेप का असत्य आरोपण का प्रतिपाद न करूंगी; क्योंकि मैं जानती हूँ, मैं जेल के बाहर रहकर जो कुछ कर सकती हूं, जेल के अन्दर रहकर उससे कहीं ज्यादा कर सकती हूँ। जेल के बाहर भूलों की सम्भावना है, बहकने का भय है, समझौते का प्रलोभन है, स्पर्धा की चिन्ता है, जेल सम्मान और भक्ति की एक रेखा है, जिसके भीतर शैतान कदम नहीं रख सकता। मैदान में जलता हुआ अलाव वायु मे अपनी उष्णता को खो देता है; लेकिन इंजिन में बन्द होकर वही आग संचालक शक्ति का अखंड भंडार बन जाती है।"[1]

* **शोधार्थी, हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया**

पुरुष ही नहीं स्त्रियां भी अपना चूल्हा-चौका छोड़ स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ी थी। जेल को उस समय स्वतंत्रता की देवी, स्वतंत्रता का मन्दिर समझा गया, जिसमें स्त्रियों ने बराबर भाग लिया तथा जेल की कठोर यातनाओं को सहन किया। स्त्रियों के लिए यह एक प्रकार से दोहरी ग़ुलामी थी, एक वह समाज जो पितृसत्तात्मक है तथा उसपर भी अंग्रेज़ों का अधिकार। स्त्रियों को दोनों ही स्तरों पर मोर्चा लेना पड़ा है। जहांआरा तथा रजिया सुल्तान मध्यकालीन इतिहास में जेल में रही है। उसके बाद स्वतंत्रता संग्राम में ही स्त्रियों की जेल यात्रा प्रारम्भ होती है। "देश के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न अवसरों पर स्त्रियाँ जेल जाने में आगे रहीं। बंग-भंग आन्दोलन रहा हो, चटगाँव केस रहा हो या महात्मा गाँधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन, नमक सत्याग्रह या भारत छोड़ो आन्दोलन, महिलाओं की एक बड़ी संख्या कारागार को आबाद करती रही।"[2]

देश में अंग्रेज़ों का राज होने के पश्चात् कारागार को सभी प्रकार के जुर्मों व अपराधों के दंड के लिए स्थिर कर दिया गया। नई-नई जेलों की स्थापनाएं की गयीं। पुरानी ईमारतों, भवनों, किलों को कारागार का रूप दिया गया। ओपनिवेशिक शासन के लिए यह लाजिमी भी था। फौजदारी, दीवानी, चोरी, हत्या, बलात्कार, के लिए तो कारागार थी ही शासन के प्रति विद्रोह और आक्रोश की ज्वाला भी बुझाने के लिए जेल यातना का सहारा लिया जाने लगा। ब्रिटिश हुकूमत ने अंडमान निकोबार में सेल्यूलर जेल की स्थापना मुख्य रूप से शासन विरोधीयों के लिए की थी। जेल की भयानक यातनाओं द्वारा स्वतंत्रता सेनानीयों तथा क्रान्तिकारीयों को मार तक दिया जाता था। "भारत में दमन चक्र (20 अप्रैल, 1932 तक) शीर्षक इस रिपोर्ट में मालवीय जी ने लिखा है कि, "मातृ-भूमि को स्वतन्त्र बनाने के लिये जो जेल गये हैं, उनके साथ भी जो व्यवहार होता है, वह भी ऐसा ही निन्दनीय और सरकार को कलंकित करने वाला है। वहां खाना और कपड़ा आदि इतना रद्दी दिया जाता है और दूसरे ऐसे बहुत से कष्ट पहुंचाये जाते हैं, जैसे कष्ट संसार के दूसरे सभ्य देशों में साधारण कैदियों को भी नहीं दिये जाते।"[3]

वर्षों से स्त्रियों पर पुरुष समाज का प्रभुत्व रहा है। समाज में विभिन्न प्रकार से स्त्रियों को प्रताड़ित किया जाता रहा है। आज आधुनिक समय में वर्षों पुरानी हिंसा, प्रताड़ना को सहन करने की मादक शक्ति अब स्त्रियों में समाप्त हो गयीं है। जिसके फलस्वरूप स्त्रियों में प्रतिहिंसा का रूप देखने को मिलता है। यह प्रतिहिंसा क्षणिक आवेगों में की गयी होती है। अधिकतर स्त्रियां अपने ऊपर हो रहें अत्याचारों व हिंसा की मुक्ति के लिए अपने द्वारा किये गये उपक्रम के कारण कारागार में आती है। इसलिए वे पुरुषों की तुलना में अधिक महत्व का विषय बन जाती है। शिवानी आधुनिक काल में स्त्री क़ैदियों द्वारा किये जाने वाले अपराधों को कुछ इस प्रकार बताती है – "प्रेम के लिए काटा गया पति का मुंड, ज़िन्दा जला दी गई पुत्रवधू, डकैती में की गई कुपुरुषोचित नृशंस लूटपाट, अबोध बालिकाओं को फुसलाकर हाट-बाज़ार में बेचने का दुःसाहस, भ्रूण-हत्या और फिर एक ऐसा अमानवीय अपराध, जिसे सुन मेरे रोंगटे खड़े हो गए थे।"[4]

अधिकतर महिलाओं का शिक्षित न होने के कारण उनका व्यवहार कुछ इस प्रकार का रहता है – "जरा-जरा सी बातों के लिए उनका आपस में झगड़ना, बनाव-सिंगार की चीजों के लिये लेडीवार्डरों की खुशामदें करना, घरवालों से मिलने के लिए व्यग्रता दिखलाना वही कुत्सा और कनफुसकियाँ जेल के भीतर भी थी।"[5] स्त्रियों की कारागार यातना पुरुषों की कारागार यातना से भी बढ़कर है। हिन्दू रीती-रिवाजों के अनुसार स्त्रियों को जेल जैसी जगह शोभा नहीं देती है। स्वतंत्रता आंदोलन के शुरुआती दिनों में स्वयं गांधी स्त्रियों को जेल भेजने के हक़ में नहीं थें। क्योंकि जेल में जो यातना भुगतनी पड़ती है उसके साथ ही एक कलंक भी माथे पर लग जाता है। बच्चे को एक क़ैदी की संतान कहलाने पर एक स्त्री क़ैदी को बहुत वेदना होती है। स्त्री पर लगे जेल कलंक के कारण उनके परिवार, पति, बच्चों को घर, जगह, नौकरी, स्कूल बदलना पड़ता है। समाज किस प्रकार उनके परिवार को और स्वयं उसे ताने देगा यह सोचकर स्त्री क़ैदियों में एक हीन भावना व्याप्त होने लगती है। "सबसे अधिक बुरा व्यवहार स्त्री कैदियों के साथ किया जाता है। उनके साथ बहुत अनुचित व्यवहार होता है और वे बहुत तंग की जाती हैं। एक बार ऐसा हुआ था कि एक हवालात में बारह स्त्रियां लाठियों, ठोकरों और मुक्कों से बहुत बुरी तरह पीटी गयी थीं और वे बिलकुल नंगी कर दी गयी थीं।"[6]

उर्मिला देवी शास्त्री हिन्दी साहित्य में पहली ऐसी महिला है जिन्होंने अपने कारागार सम्बन्धी अनुभवों को साझा किया। उन्होंने अपने कारागार जीवन के अनुभवों को अपनी पुस्तक 'कारागार' में बयां किया, जिसकी भूमिका कस्तूरबा गाँधी

ने लिखी थी। उर्मिला देवी शास्त्री को 22 वर्ष की उम्र में विदेशी कपड़ों की होली जलाने के जुर्म में 6 महीनों की सज़ा हुई थी। कारागार को वह साधना की भूमि मानती थी। एक दिन उन्हीं की कोठरी में किसी अन्य महिला क़ैदी को रखा गया जो फ़तेहगढ़ जेल से आयी है ओर बताती है की "बीबी, कुछ मत पूछो। जरा सी बात पर मार पड़ने लगती थी; नम्बरदारिनें और बैरकदारिनें तो हमारा खून ही पी जाती थीं।"[7] पहले ही क्रोध, तनाव, मानसिक अस्थिरता से जूझ रही स्त्री क़ैदियों को कारागार में यौन शोषण तथा हिंसा का सामना करना पड़ता है। यह सामना कारागार के कर्मचारियों से ही नहीं साथ में रह रहीं स्त्री क़ैदियों से भी करना पड़ता है। लम्बे समय से रह रही स्त्री क़ैदी सम्भोग से वंचित रहती है जिसकी परिणती इस प्रकार भयानक यौन शोषण में होती है। स्त्री क़ैदियों का यौन शोषण वहां की कर्मचारी तथा दबंग महिला क़ैदी करती है उर्मिला ने उसका चित्रण कुछ इस प्रकार किया है – "मुहम्मदी, "जो लड़कियाँ ख़ूबसूरत होती हैं, उन्हें आराम रहता है। उन्हें वह अपने पास से खिलाती है..." इसके बाद जो-जो बातें उसने बतलाई, उन्हें सुनकर मैं काँप उठी...हे भगवान ...मैं उन बातों को लिख भी नहीं सकती।"[8]

किसी भी स्त्री का कारागार में रहने पर उनके परिवार पर अधिक असर पड़ता है। समाज में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों द्वारा किये गये अपराधों को अधिक गंभीर माना जाता है। समाज में कई तरह के ताने उन्हे सुनने पड़ते हैं। कारागार में आने पर समाज व परिवार द्वारा एक कलंक उन पर लगा दिया जाता है, उनपर शक किया जाता है, उनपर लांछन लगाये जाते हैं, जिसके कारण स्वयं उनके अपने उन्हें त्याग देते हैं। कोई उनकों करगार काटने के पश्चात् अपने पास रखने के लिए तैयार नहीं होता है। प्रेमचंद बखूबी इस समस्या को अपनी 'जेल' कहानी में कहते हैं – "अम्माँ मुझ पर बहुत बिगड़ेंती, बस यही डर लग रहा है। मुझे देखने एक बार भी नहीं आयें। कल अदालत में बाबू जी मुझसे कहते थे, तुमसे बहुत खफा है। तीन दिन तक तो दाना-पानी छोड़े रहीं। इस छोकरी ने कुल-मरजाद डूबा दी, खानदान में दाग लगा दिया, कलमुँही, न जाने क्या-क्या बकती रहीं मैं उनकी बातो को बुरा नहीं मानती। पुराने जमाने की हैं, उन्हें कोई चाहै कि अगर इन लोगों में मिल जाएँ, तो उसका अन्याय है। चल कर मनाना पड़ेगा। बड़ी मिन्नतों से मानेंगी। कल ही कथा होगी, देख लेना. ब्राह्राण खायेंगे। बिरादरी जमा होगी। जेल प्रायश्चित तो करना ही पड़गा।"[9]

परिवार, पति, बच्चोँ से बिछड़ने के कारण एक तनाव हमेशा स्त्रियों में व्याप्त रहता है, जिसका प्रभाव साथ में रह रही स्त्रियों पर भी पड़ता है। मानसिक अस्थिरता के कारण बहुत ही छोटी और मामूली बातों पर स्त्री क़ैदियों में झगड़ा होता है। जिसे उर्मिला देवी इस प्रकार बयां करती है – "अश्लीलता में जो कसर रह गयी थी वह यहाँ पूरी हो गयी। अब उन क़ैदिनों का सारा दिन गाली बकने, लड़ने या गन्दे राग गाने में गुज़रने लगा, कभी-कभी रोना-धोना भी शुरू हो जाता था। लड़ाई का अन्त तो प्रायः ऊँचे स्वर से रोने ही में होता था।"[10]

कारागार में प्रवेश करते समय नियमित रूप से होने वाली तलाशी स्त्री क़ैदियों की कुछ इस प्रकार ली जाती है जो छेड़खानी अधिक प्रतीत होती है, जिससे स्त्री क़ैदियों को बहुत बुरा महसूस होता है उनकी आत्मा ही मर जाती है। स्त्रियों में मर्यादापूर्वक कष्ट सहन करने की शक्ति अधिक होती है जो उनका विशेष गुण है। जेल में जहाँ स्त्रियों को रखा जाता है उस वार्ड को रंडी-किता कहा जाता है 'पतितों के देश में' उपन्यास में रामवृक्ष बेनीपूरी इसका जिक्र कुछ इस प्रकार करते हैं – "रैंडी-किता! हाँ, जेल के नामकरण भी कुछ अजीब होते हैं बाबू! चाहे जो औरत जिस जुर्म में आवे-यहाँ वे सब की सब रंडी हैं! रंडी!"[11] स्त्रियों के कारागार से सम्बंधित किस्से वह आगे भी कहते हैं। किस प्रकार उन पर विशेष ध्यान रखा जाता है। छोटी से छोटी हरकत पर किस तरह उनपर निगरानी की जाती है- "हाँ, जेल में स्त्री सबसे अधिक वर्ज्य प्राणी है! रंडी-किता में जमादार भी अकेले नहीं घुस सकता। सुपरिटेंडेंट का सबसे कड़ा ध्यान इसपर रहता है कि किस स्त्री का मासिक धर्म कब हुआ? बाजाप्ता चार्ट रखे जाते हैं। ज्योंही चार्ट में जरा गड़बड़ी हुई हलचल मच जाती है! पूछताछ, दौड़धूप! जेलर, डॉक्टर!"[12]

पुरुषों से अधिक स्त्रियों के लिए साफ-सफाई की अधिक आवश्यकता है। उनका जीनोम भिन्न है इसलिए यह लज़िमी भी है। हृदय रोग, मानसिक रोग, डायबीटीज, थाईरोइड, की शिकायत स्त्रियों में अधिक देखी जाती है। जेलों में क्षमता से अधिक क़ैदियों के होने के कारण बड़ी कठिनाईयां झेलनी पड़ती है। दमघोंटू वातावरण देखने को मिलता है। पहले ही नियत

क़ैदियों के माफ़िक शौचालय की संख्या कम होती है, फिर उसके बाद क़ैदियों की संख्या क्षमता से अधिक होने के बाद वहाँ की हालत का अंदाजा लगाया जा सकता है। ऐसे में संक्रमण रोगों के होने का खतरा बढ़ जाता है। पानी की आपूर्ति भी जेलों में कम होती है। ऐसे में किसी भारी संक्रमण के फैलने का खतरा ज्यादा रहता है। महिला जेल में यह स्थिति विकट रूप धारण करती है, क्योंकि महिलाओं को मासिक धर्म से भी निपटना पड़ता है। भिन्न शौचालय नियत किये जाने के लिए उर्मिला देवी को भूख हड़ताल तक करनी पड़ती है - "मुझे याद है कि गढ़मुक्तेश्वर के मेले थे, हर साल की तरह इस बार भी बीस-पच्चीस स्त्रियाँ मेले में से चोरी के सन्देह में पकड़कर जेल में लायी गयी थीं; जेल के स्त्री-वार्ड में एक ही पाखाना बना हुआ था; स्वभावतः उसमें गन्दगी बढ़नी थी, मैंने जेलर साहब से कहा- मेरे लिए एक दूसरा प्रबन्ध करवा दीजिये। लगातार चार दिन जब कहते हुए हो गये और कोई प्रबन्ध न हुआ, तब अन्त में तंग आकर मैंने वार्डर के द्वारा जेलर साहब को कहलवाया- 'आज ही शाम तक कुछ-न-कुछ प्रबन्ध करवा दें नहीं तो मैं भूख-हड़ताल निश्चय ही कर दूँगी।"[13]

कारागार में क़ैदियों को रखने की तीन श्रेणियां सरकार द्वारा नियत की गयी है। जो 'ए' 'बी' 'सी' नाम से है। अधिकतर राजनैतिक क़ैदियों को ए क्लास में ही रखा जाता था, जिसमें की खास दिक्क़त तो होती नहीं थीं लेकिन फिर भी अकेलेपन से मन हमेशा खिन्न रहता था। स्त्री क़ैदियों के लिए तो ए क्लास जैसा कुछ था ही नहीं। उन्हें साधारण स्त्री क़ैदियों के साथ डाल दिया जाता था और उसी कोठरी में ए क्लास जैसी सुविधाएं दे दी जाती थीं। कोठरी में दिनचर्या उर्मिला देवी कुछ इस तरह बताती है -"जेल में मुझे खाने-पीने की प्रायः कभी तकलीफ़ न हुई। कपड़े मेरे घर से आते थे, पढ़ने के लिए पुस्तकें और लिखने के लिए एक कापी भी मिल गयी थी; सिलायी आदि का सामान भी घर से माँगा लिया था। सप्ताह में एक बार और बाद में दो बार, एक हिन्दी अख़बार भी जेल द्वारा मिलने लगा था। पहले एक सप्ताह तक तो खाना बाहर से पककर आता था, पर उसके बाद मैंने खुद बनाना शुरू कर दिया। अब कोई तकलीफ़ थी तो अकेलेपन की और उन स्त्रियों की बुरी संगति की। धीरे-धीरे दिल भी लगने लगा।"[14]

कारागार में एकांतवास का एक अपना ही महत्व है। क़ैदी एक प्रकार से दृष्टा हो जाता है। उस निविड़ एकांत में अनसुलझी मानसिक प्रक्रियाएं एकाएक ही सुलझ जाती है, जो मन में एक बल संचित करती है। इस संचित बल से कलाकार प्रवृत्ति के लोग जगत की महत्वपूर्ण रचनाओं का उन्नयन कर जाते हैं। हिन्दी में रामवृक्ष बेनीपुरी, अज्ञेय, यशपाल ऐसे ही कलाकार है जिन्होने कारागार के एकांत वास में अपनी कलम को पेना किया है। वरना साधारण प्रवृत्ति का व्यक्ति तो उस निविड़ एकांत में पागल हुए बिना नहीं रहता। इस कारागार एकांतवास का सुयोग उर्मिला देवी के जीवन में भी आया -"तीन मास तक-जब तक कि दूसरी सत्याग्रही बहन जेल में आयी-मन ने एकान्त जीवन व्यतीत किया। उन दिनों में एकान्त जीवन से मुझे कितना ही कष्ट क्यों न हुआ हो, पर आज मैं अनुभव करती हूँ कि एकान्तवास से अपनी विचारधारा में जो उत्तेजना मुझे प्राप्त हुई, वह उस कष्ट के बदले पर्याप्त पारितोषिक था।"[15]

उर्मिला देवी साधारण स्त्री क़ैदियों के बीच रहकर उनकी कहानी भी कहती है साथ ही कारागार के नियमों वहाँ के कर्मचारियों, अधिकारियों पर रोष भी प्रकट करती है। किस प्रकार वहां के कर्ता-धर्ता लोगों में मानवीयता समाप्त हो चुकी है। कारागार में किस प्रकार भ्रष्टाचार अपने पैर पसारे पहले से ही परेशान लोगों को अधिक प्रताड़ित करता है। जेल में किस प्रकार ड्यूटी पर तैनात महिला कर्मचारी अपना पेट क़ैदियों से जबरदस्ती रोटी लेकर भर लेती है "प्रायः लेडी वार्डर का पेट भी उन्हीं अभागिनी कैदिनों की रोटियों से भर जाता था। जो स्त्री उसे अपनी रोटियों में से एक-दो नहीं दे देती थी, उसको लेडी वार्डर की कुदृष्टि का शिकार होना पड़ता था। भोजन के बाद में वार्ड बन्द हो जाता और रात को पुनः कभी लड़ना और कभी गाना होता।"[16]

कारागार में व्याप्त भ्रष्टाचारों और अत्याचारों, अदालत का स्वांग, न्याय से कोसो दूर क़ैदियों की परिस्थिति को देखकर उर्मिला देवी कहती है - "ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, मेरा अनुभव मुझसे बलात् कहलवाने लगा कि किसी भी व्यक्ति का, चाहे उसने कितना ही भयंकर अपराध किया हो, हिन्दुस्तान के इन जेलों में नहीं भेजना चाहिए।"[17] हिन्दुस्तान की जेलों

और वहाँ कार्यरत कर्मचारियों व अधिकारीयों के विषय में वह लिखती है - "पुलिस के समान ही कदाचित उससे भी बुरी हालत हिन्दुस्तान की जेलों की है। यों तो जान-बूझकर अच्छे स्वभाव वाले आदमी जेल के अधिकारी ही नहीं बनाये जाते और यदि बनते भी हैं तो दूसरे लोगों से मिलकर वह भी बिगड़ जाते हैं। अगर सुपरिंटेंडेंट दूसरे क़ैदियों से गवाही भी माँगे, तो वही गवाही देंगे जो वार्डर उन्हें पहले से याद करा चुके हों। वार्डर जितनी तनख्वाह पाते हैं, उससे कई गुनी अधिक क़ैदियों से प्राप्त करते हैं। किसी मुलाक़ात के समय जिसने वार्डर को चुपके से कुछ रुपये आदि दिला दिये, वह तो ठीक, नहीं तो मारपीट, तनहाई आदि सजा से बदला लिया जाता है।"[18]

हिन्दी गद्य साहित्य में स्त्री और पुरुष लेखकों ने जेल में क़ैद स्त्रियों की यातना को तो विषय बनाया ही है साथ ही उस स्त्री के बारे में भी कहने से नहीं चूकते जो कारागार के बाहर अपने पति के जेल जाने के कारण समाज की लांछन, गरीबी, भुखमरी, यौन शोषण का शिकार होती है। चतुरसेन शास्त्री द्वारा रचित कहानी 'फंदा' इसी प्रकार की है जो उसके पुरे यथार्थ को उजागर करती है - "सन् १९१७ का दिसम्बर था। भयानक सर्दी थी। दिल्ली के दरीबे-मुहल्ले की एक तंग गली में एक अँधेरे और गन्दे मकान में तीन प्राणी थे। कोठरी के एक कोने में एक स्त्री बैठी हुई अपने गोद के बच्चे को दूध पिला रही थी, परन्तु यह बात सत्य नहीं है, उसके स्तनों का प्रायः सभी दूध सूख गया था और उन बे-दूध के स्तनों को बच्चा आँख बन्द किए चूस रहा था। स्त्री का मुँह परम सुन्दर होने पर भी इस वक्त ज़र्द और सूखा हुआ दिखाई दे रहा था। यह स्पष्ट ही मालूम होता था कि उसके पहले शरीर का सिर्फ अस्थि-पंजर ही रह गया है। गाल पिचक गए थे, आँखें धंस गई थीं और उनके चारों ओर नीली रेखा पड़ गई थी तथा ओंठ मुर्दे की तरह विदर्ण हो गए थे। मानो वेदना और दरिद्रता मूर्तिमयी होकर उस स्त्री के आकार में प्रकट हुई थी।"[19] पति के जेल चले जाने के बाद घर पर अकेली रह जाने वाली स्त्रियों की बेचारगी उन स्त्रियों से कतई कमतर नहीं है जो जेल यातना भुगत रहीं है। उनके उपेक्षित जीवन को रामवृक्ष बेनीपुरी ने वाणी दी है - "राजनीतिक पुरुषों के गले में जयमाला पडती है, उनका जय-जयकार होता है। इस रूप में उनकी जेल-यात्रा या त्याग-तपस्या की क्षतिपूर्ति होती जाती है। किन्तु, उनकी पत्नियों की क्या दशा होती हैं, उन्हें कब तक लोगों और परेशानियों में जिन्दगी गुजारनी होती है- क्या इस ओर कभी ध्यान दिया गया है।"[20] किस प्रकार वह स्त्री जिसका पति जेल चला गया है और छोड़ गया है भरा पूरा परिवार और मासूम बच्चे जिनकी जिम्मेवारी अब उस अबला नारी पर है। वह अपने अस्तित्व को भुलाकर परिवार, बच्चों तथा जेल में बैठे उस आदमी के लिए चिंतित रहती है जो उसका पति है जिसने परिवार से पहले देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किये जा रहें उद्योगो को चुना है- "जिसके आलिंगन और चुम्बन की वह कल्पना करके विभोर हुई जाती है; वह तो इस समय पत्थर की दीवारों के अन्दर, उन मोटी-मोटी आहनी सीकचो के भीतर पडे, शायद 'उसी' की कल्पना में विभोर, लम्बी उसाँसे ले रहे होंगे। हा, वे देशभक्त है, कट्टर सिद्धान्तवादी है, किन्तु वे मनुष्य है, हृदय रखते हैं, वैसा हृदय, जिसकी साक्षिणी वह स्वयं है। आह, उनकी मानसिक स्थिति कैसी होगी? आंसुओं का फिर नया हुजूम, हुजूम में फिर तस्वीरों का तांता। आह, वे दिन। आह, वे रातें…"[21]

वह अबला स्त्री जिसका पति जेल चला गया है उसके कंधों पर सारी घर की ज़िम्मेदारी आ जाती है। जो स्वयं अधिकतर अपढ़ है जिसे स्वयं ऐसे समय में सँभालने के लिए किसी की आवश्यकता है वह परिवार की जीर्णो-दिर्ण अवस्था को संभालती है – "जिसे सबसे ज्यादा आश्वासन की जरूरत थी, उसी पर यह बोझ डाला गया, कि वह दूसरों को आश्वासन दे। समझाती, बुझाती, धैर्य देती, ढाढस बँधाती। उसने देखा, वह कुछ सफल भी हो रही है कि एक नई खबर आई-वे गिरफ्तार हो गये। और तूफान का यह झोका इतना बडा, इतना प्रबल था कि अब उसके लिए भी सम्भव न था कि वह खड़ी रह सके"[22] घर में स्त्री को परिवार का भरण पोषण तो करना ही होता है साथ में कचहरी में अपने पति की पैरवी भी करनी पड़ती है। पहले से ही बिना छत के, अभावों, ग़रीबी और भुखमरी में जीवन काट रही वह स्त्री अपने गहने बेचकर अपने पति की पैरवी करती है। बेनीपुरी इस वेदना को इस प्रकार चित्रित करते हैं - "चाचाजी के बाद, 'उनकी' गैरहाजिरी में, वही घर की मालकिन हुई। देवर नावालिग, घर की स्त्रियो की जैसे मत मारी गई। घर-बाहर उसे ही देखना पढता। उस साल फसल बिल्कुल खराब गई। कर्ज वालो के तकाजे इतने थे कि नये कर्ज की चर्चा ही फिजूल थी। गहनें बिक चुके थे। वह क्या करे? सिर्फ एक साडी पर उसने एक साल बिता दिया था, एक साडी पर एक साल?"[23] दूसरी तरफ कपिल ईसापुरी ने भी अपने उपन्यास 'अपराधी' में पति के जेल

चले जाने पर स्त्री की अवस्था की तरफ आकर्षित करते हैं की किस प्रकार उस स्त्री के दुख का पारावार नहीं होता। अपनी हालत, अपनी व्यथा-कथा वह स्त्री स्वयं अपने पति को जेल में पत्र भेजकर कहती है – "मुलाकात घर से निकलकर घर पहुँचना बहुत भारी काम होता है। घर आती हूँ तो घर की हर चीज के साथ आपकी याद आती है, आपके वजूद की कमी उन सब चीजों के साथ भी महसूस होती है। घर के कमरे, सौफा, बैड, किचन- सब जगहकुछ खालीपन एवं अधूरेपन का अहसास होता है। वो पौधे जो आपने गमलों में पिरोए थे, वो जैसे आपको याद करते रहते हैं। वो भी कुछ उदास एवं बुझे-बुझे नजर आते हैं। आप कब आओगे, मेरा मर जाने का मन करता है... आपकी हालत सोचकर रूक जाती हूँ। बच्चे मेरे दुःख पर भारी पड़ जाते हैं। आपका दुःख मेरे दुःख पर भारी पड़ जाता है। कम से कम मेरे पास बच्चे हैं... मम्मी हैं... बाहर की दुनिया है। आपके पास तो वो भी नहीं हैं, आपके पास तो बस जेल की चाहरदीवारी है तथा उससे जुड़ा हुआ अंधकार का सन्नाटा है... भयानक खालीपन है।"[24]

'राही' कहानी में दो भिन्न स्त्रियों के माध्यम से कारागार जीवन का सच दिखाया गया है। एक तरफ अनीता है जो राजनैतिक क़ैदी है जिसे कारागार में ए-क्लास मिला हुआ है और दूसरी तरफ राही है जो सी-क्लास की क़ैदी है, जो एक ऐसी जाति से सम्बंधित है जिसे कोई काम नहीं मिलता, जो मांग कर खाने के लिए विवश है। वह अपने भूखे बच्चों के लिए अनाज़ चुराती है तथा पकड़ी जाने पर जेल पंहुचा दी जाती है। उसके भूखे बच्चे बाहर ही रह जाते हैं। न्यायकर्ता भी उनपर कोई रहम नहीं करता। राही के पति को भी गलत मुक़दमें में फंसाकार मार दिया जाता है। अनीता राही जैसी क़ैदी पर विचार कर कहती है - "सरकारी वकील के चातुर्यपूर्ण जिरह के कारण छोटे-छोटे बच्चों की मातायें जेल भेज दी जाती हैं। उनके बच्चे भूखों मरने के लिए छोड़ दिये जाते हैं। एक ओर तो यह कैदी है, जो जेल आकर सचमुच जेल जीवन के कष्ट उठाती है, और दूसरी ओर हैं हम लोग जो अपनी देशभक्ति और त्याग का ढिंढोरा पीटते हुए जेल आते हैं। हमें आमतौर से दूसरे कैदियों के मुकाबिले में अच्छा बरताव मिलता है। फिर भी हमें संतोष नहीं होता। हम जेल आकर 'ए' और 'बी' क्लास के लिए झगड़ते हैं। जेल आकर ही हम कौन-सा बड़ा त्याग कर देते हैं?"[25]

जानकी देवी बजाज़ हिन्दी साहित्य में पहली आत्मकथा लेखिका रही है, जिन्होंने 'मेरी जीवन यात्रा' नामक आत्मकथा लिखी है। जानकी देवी बजाज़ भी असहयोग आंदोलन में जेल गयीं थीं। अपने जेल अनुभवों को उन्होंने अपनी आत्मकथा में ही 'मेरी जेल यात्रा' शीर्षक से बयां किया है। कारागार में अपने रोजमर्रा के अनुभवों, अभावों, गंदगी तथा अस्वादिष्ट भोजन को वह इस प्रकार बयां करती है - "यहाँ टट्टी के लोटे को उसी का दही जमा लेने का तय किया। बैगन का उबला साग और लूखी रोटी आती। उसी पर बिना तपा घी रखकर खा लिया करती। ठंडे पानी से ही नहाती और कपडे धो लेती। हमारे मिट्टी से माँजने का रिवाज है, पर महाराष्ट्र में इसपर इतना ध्यान नहीं दिया जाता। जब कोई टट्टी होकर आता और अपनी आदत के अनुसार मेरी बाल्टी में लोटा डुबा देता तब मैं वाल्टी को फिर मिट्टी से मॉजती। इस तरह मेरा काम बढता ही जाता था।"[26]

हिन्दी साहित्य में शिवानी ने भी कारागार के भीतर बंद स्त्रियों की दशा का अंकन किया है। किस प्रकार अभावों में, कुचक्र वातावरण में उन्हें अपना समय काटना पड़ता है। कारागार किस प्रकार उनके मानसिक तथा शारीरिक जीवन को प्रभावित करता है। अतः शिवानी लिखती है - "मेरी मेजबान थीं वे बंदिनियाँ, जिन्हें भाग्य, परिस्थिति एवं समाज ने अपने कुचक्र के झंझावात में लपेटकर उन चहारदीवारियों में मूँद दिया था। वहाँ यौवन, वात्सल्य, प्रेम, उमंग, आशा का प्रवेश निषिद्ध था। बीस वर्ष के जवान सलोने चेहरे पर ढूँढ़े से भी तारुण्य की झलक नहीं दीख सकती थी। प्रौढ़ा वयः भारनमिता वृद्धा लग रही थी और वृद्धा अर्थी में बँधी-सी, निर्जीव देह लिए अवश, अचल बैठी थी, जैसे बैठे ही बैठे प्राण छूट गए हों"[27] शिवानी कई बार जेल देखने गयी थीं, उनके पिता तथा भाई राज्य के सेक्रेटरी थें। अपनी तमाम जेल यात्राओं में वह विभिन्न स्त्री क़ैदियों से भेंट करती है तथा उनका साक्षात्कार करती है उनकी जीवन कथा, उनके दुख, उनके विचारों को अपनी कला धार्मिणी कलम के माध्यम से शब्दों में कागज़ पर उड़ेलती है। स्त्रियों में श्रृंगार प्रवृत्ति अधिक होती है। श्रृंगार उनके जीवन में एक आत्मविश्वास जगाता है। ऐसे में कोई उनसे श्रृंगार के साधनों को ही छीन ले तो वह दुख उन्हें बहुत कचोटता हैं। कारागार में

निषेध वस्तुओं में आइना भी शामिल है जिससे स्वयं का प्रतिबिम्ब देखा जाता है। अपने आप को भी न देख पाना स्त्री क़ैदियों को बहुत सालता है। कारावास में स्त्रियों द्वारा सेनेटरी नेपकिन की जगह मोटे कपड़े का प्रयोग किया जाता है। आइना रखने की भी इजाजत स्त्री जेल क़ैदियों को नहीं होती हैं। ऐसे में जेल कर्मचारियों से रिश्वत ले देकर आईने को छिपाकर प्रयोग में लाया जाता है। शिवानी ने इस स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है - "सज़ा मिलते ही प्रत्येक बन्दिनी के आभूषण उतरवा लिए जाते हैं और एक-सी सादी धोती-कुर्ती में, किसी प्रकार की भी साज - सज्जा की गुंजाइश नहीं रहती। इधर-उधर दृष्टि घुमाने पर भी मुझे कहीं एक दर्पण नहीं दिखा तो मन भर आया। यह तो किसी भी नारी के लिए प्राणदंड से भी कठोर सजा थीं, एक साँवली ताड़-सी लम्बी युवती जल से भरी बाल्टी में झुककर अपना प्रतिबिम्ब सँवार रही थी। नारी-सुलभ श्रृंगारप्रियता को क्या आजन्म कारावास भी कहीं छीन सकता है? जली लकड़ी की कालिख से बनी कज्जलरेखा, कोयला पीसकर बनाई गई मिस्सी, या लाल गुलाब की पंखुड़ी काटकर बनाई गई टिकुली, क्या जल-पूरित घट दर्पण देखकर नहीं सँवारी जा सकती?"[28]

शिवानी अपनी जेल विजिट के दौरान स्त्री क़ैदियों द्वारा बनाये गये भोजन को खाती है तो अचंभित हुए बिना नहीं रह पाती और कहती है - "क्या यह सम्भव था कि जिन्होंने गँडासे से, न जाने कितने नरमुंडों की कुट्टी-सी काट दी थी, उन्हीं के पतिहंता हाथों ने ऐसे सस्वादु देव-दुर्लभ भोजन में रस घोला होगा।"[29]

कारागार के कठोर तथा अभावग्रस्त जीवन में स्त्री क़ैदियों में एक जड़ता व्याप्त हो जाती है। स्त्री स्वभाव में जो चंचलता होती है उसके स्थान पर विषाद घर कर जाता है शिवानी इसे अपनी 'जा रे एकाकी' कहानी में बखूबी चित्रित करती है - "अदालत की जिरहमुखर वकीलों की दलील, आत्मीय स्वजनों की प्रताड़ना और अखबारों की निर्मम चीरफाड़ उसे निष्प्राण कर गई थी। नारी-सुलभ लज्जा, संकोच वह सब जैसे इन ऊँची तंग दीवारों के बाहर ही छोड़ आई थी"[30] कचहरी की कार्यवाहियों, कारागार में सुनने-सुनाने की प्रवृत्ति, गाली-गलोच उन्हें मुखरा बना देती है, उनके भीतर एक जहर भर देती है जो उनसे बात करने पर या उनके क्रोध के आवेश में देखने को मिलते हैं, जिसके बारे में शिवानी लिखती है - "जेल के परिवेश की सान में जिह्वा की कतरनी उसने ऐसी तेज बना ली थी कि घर-भर के लोग एक-एक कर उसके जिह्वा प्रहार से घायल हो चुके थे।"[31]

कारागार में स्त्रियों को बंधन मुक्त करने अर्थात् छोड़ने से पहले सुनिश्चित करना होता है की वे छूटने के बाद कहां जाएगी। परिवार के त्यागने के पश्चात् पुनर्वास की समस्या हमेशा के लिए स्त्रियों के आगे खड़ी हो जाती है। स्त्री क़ैदियों की समस्या पुरुष क़ैदियों से भिन्न होती है। स्त्री क़ैदियों में तनाव, क्रोध, बेचैनी, विद्रोह पुरुष क़ैदियों की तुलना में अधिक होता है। स्त्री क़ैदियों के लिए पुनर्वास किस प्रकार उन्हें झंझवात करता है और कैसे वे स्त्रियां आजीवन कारागार को ही गले लगाने के लिए आबद्ध है शिवानी अपनी कहानी 'जा रे एकाकी' में प्रदर्शित करती है - "मैं जानती हूँ दीदी, उन्होंने दूसरी शादी कर ली होगी, यही सोचती हूँ दो साल तो कट गए हैं, दो साल और हैं। पर छूटकर कहाँ जाऊँगी मैं? कभी मिलते तो यही पूछती। जब ले ही नहीं जाना था तो मेरी सजा कम क्यों करवा दी? अब तो यही मेरा मायका और ससुराल है। सच पूछो तो मुझे मायका ही लगता है। यहाँ जब आई तो पढ़ना नहीं जानती थी; अब पढ़ना सीख गई हूँ। दिन-भर तो काम में कट जाता है पर रात नहीं कटती।"[32]

स्त्रियों की शारीरिक व मानसिक आवश्यकता पुरुषों से भिन्न होती है। बच्चों व परिवार की याद उन्हे अधिक सताती है। उनके आंसू हमेशा उनके दुख की कहानी कहते हैं। रात भर या तो वह अपने बच्चों व परिवार को याद करके रोती रहती है या फिर उस गहनतम दुख में कुछ गाकर अपना दुख कम करने की कोशिश करती है। कामतानाथ अपने उपन्यास 'एक और हिंदुस्तान' में उपर्युक्त स्थिति का चित्रण कुछ इस प्रकार करते हैं – "लगभग सभी सो रहे थे। अचानक हमारे कान में किसी स्त्री के गाने की आवाज पड़ी। आवाज बैरक की दीवार पास से आ रही थी। यह जनानी आवाज कहाँ से आ रही है ?" मैंने गौतम से पूछा। यू डोंट नो सर। इसके परली तरफ औरतों की बैरक है। अभी क्या, थोड़ी देर में सुनिएगा। रात-भर रौनक रहती है, योर ऑनर।"[33]

भाई परमानंद कई सालों तक अंडमान की जेल में सज़ा काट चुके है। जेल में दी जाने वाली यातनाओं के साथ-साथ बहुत सारी विशेष बाततों जैसे वहाँ के क़ैदियों, कर्मचारियों, परिस्थितियों, भोजन, कठोर कार्य आदि के बारे में बताते हैं। अंडमान में स्त्री क़ैदियों के बारे में वह लिखते हैं - "कालेपानी की कैदखाने में औरतों का अलग स्थान है। औरतें प्रायः अपने पति को विष देने के अपराध में ही कालेपानी जाती हैं और तीन बरस के बाद रिहा कर दी जाती हैं। पीछे वे किसी स्वतन्त्र कैदी से वहीं शादी कर लेती है।"[34]

जैसे-जैसे समाज के विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियों की भागीदारी बढ़ी है वैसे-वैसे ही उनके द्वारा किए गये अपराधों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हुई है। ज्यादातर स्त्रियां पुरुषों का साथ देने के लिए अपराधों में संलग्न हो जाती है, उदाहरण – वेश्यावृति, नशा खोरी, नशिलें मादक पद्धार्थ की बिक्री, हत्या आदि। कारागार के भीतर कठोरता और समाज के लांछन के कारण वह इस हद तक प्रताड़ित हो चुकी होती है की उन्हें अपने किये का भी कोई पछतावा नहीं होता। जिसके बारे में शिवानी लिखती है – "उनके आत्मनिवेदन में पश्चात्ताप था, न संकोच। मेरी लेखनी ही कई बार सहमकर थर्रा गई, किन्तु उनकी चपला जिहा नहीं थर्राई। अदालती जिरह, हवालात का सान्निध्य और दीवानजी की निर्ममता ने उन्हें मुखरा बना दिया था। किसी नाटक का पूर्वाभ्यास कर पात्राओं की ही भाँति वे मुझे अपना-अपना पार्ट सुनाती चली गई थीं।"[35]

आधुनिक समाज में ओपन जेल एक नया कदम है, एक नयी योजना है किसी क़ैदी को सुधारने का उसे समाज की मुख्य धारा में शामिल करने का। इसके अंतर्गत किसी क़ैदी को छूट होती है की वह दिन में उस जेल के बाहर बिना किसी बंदिश के जा सकता है। लेकिन शाम को निर्धारित समय पर जेल में वापिस आना होता है। लेकिन स्त्रियां उससे भी वंचित है। भारत में एक भी ओपन जेल महिला जेल क़ैदियों के लिए नहीं बनी है। आर्थिक तंगी के कारण जमानत हो जाने पर भी स्त्री क़ैदी जेल काटने के लिए मजबूर रहती है क्योंकि कोई जमानत देने वाला नहीं मिलता। जेल की चिकित्सा सेवाओं की हालत भी बहुत खस्ता होती है। जेल में क़ैदियों की संख्या में बढ़ोतरी और डॉक्टरों की संख्या में कमी इसका विशेष कारण है। ऐसे में गर्भवती महिला क़ैदी को विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

कारागार में 6 साल तक के बच्चों को रखने की अनुमति है। 6 सालों के बाद यदि कोई उनका रिश्तेदार उन्हें रखने में सक्षम है तो उन्हें उनके सुपुर्द कर दिया जाता है अन्यथा बाल आश्रम में भेज दिया जाता है। ऐसे में कारागार के भीतर 6 साल से पाल रही उस माता, उस स्त्री क़ैदी पर क्या बीतती है उसका अंदाजा लगाया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर जेल में रहने और उचित देखभाल न होने के कारण कम उम्र में ही बच्चों में कुसंस्कार घर करने लगते हैं। "जेल के हिंसा, तनाव, बुराई और अविश्वसनीय माहौल का मनोवैज्ञानिक असर महिला कैदियों के बच्चों पर भी पड़ा। ऐसे माहौल में वे पढ़ने-लिखने के बजाय ऊधम मचाते और खेलते रहते।"[36] पहले से ही प्रताड़ित और मानसिक अस्थिरता के चलते स्त्री क़ैदियों को उनके बच्चों से अलग कर दिया जाए तो उनमें पागलपन घर करने लगता है। इस प्रकार कारावासीय जीवन में स्त्रियों का जीवन पुरुषों से भिन्न हैं, यातनामय हैं, जिसे हिन्दी के कई रचनाकारों ने अपना विषय बनाया हैं।

निष्कर्ष

हिन्दी गद्य साहित्य में कई रचनाकारों ने कारागार को अपना विषय बनाया है। कारागार में विभिन्न विषमताओं के साथ-साथ स्त्री क़ैदियों को मुख्य रूप से लक्षित किया है। कारागार में स्त्री क़ैदियों द्वारा झेलें जाने वाली प्रतारणाओं, शोषण, अभाव, मानसिक अस्थिरता, यौन-शोषण, घर, परिवार, पति, बच्चों से दूर विरहाग्नी में जलती आदि को चित्रित किया है। साथ ही रचनाकार उस स्त्री की तरफ भी इशारा करते हैं जो अपने पति के जेल जाने के पश्चात् समाज में गरीबी, अभाव, शोषण का शिकार होती है, समाज के ताने तथा लांछन सहती है। ऐसे समय में जब स्वयं किसी स्त्री को किसी अन्य के सहारे की आवश्यकता होती है तब वह अपने परिवार, बच्चों का सहारा बनती है। हिन्दी साहित्य में पुरुष रचनाकारों ने ही नहीं स्त्री रचनाकारों ने भी कारावासीय जीवन और स्त्री को अपना विषय बनाया है। पुरुषों के समान ही स्त्रियों ने भी स्वतंत्रता संग्राम तथा

उसके पश्चात् जेलों की यात्रा की है, वहाँ की कठिनाइयों को देखा है, भोगा है, जिसकी अनुभूति वे अपनी रचनाओं में करती है। साहित्यिक दृष्टि से भारतीय समाज में कारागार और स्त्री पर यह आलेख दृष्टिपात करता है।

संदर्भ :-

1. प्रेमचंद. (बिना तिथि). *जेल*. हिन्दी समय. https://www.hindisamay.com/contentDetail.aspx?id=469&pageno=1
2. पांडेय, क्षमा शंकर, & सिंह, अनुपमा. (2018). *श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री, कारागार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 7
3. पाठक, गजेंद्र. (2024). *जेल के यात्री, एक अज्ञात स्वतंत्रता सेनानी*. नई दिल्ली: नयी किताब प्रकाशन. पृ. 14
4. शिवानी. (2024). *जा रे एकाकी, अपराधी कौन*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण पेपरबैक्स. पृ. 29
5. प्रेमचंद. (बिना तिथि). *जेल*. हिन्दी समय. https://www.hindisamay.com/contentDetail.aspx?id=469&pageno=1
6. पाठक, गजेंद्र. (2024). *जेल के यात्री, एक अज्ञात स्वतंत्रता सेनानी*. नई दिल्ली: नयी किताब प्रकाशन. पृ. 14
7. पांडेय, क्षमा शंकर, & सिंह, अनुपमा. (2018). *श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री, कारागार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 42
8. पांडेय, क्षमा शंकर, & सिंह, अनुपमा. (2018). *श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री, कारागार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 42
9. प्रेमचंद. (बिना तिथि). *जेल*. हिन्दी समय. https://www.hindisamay.com/contentDetail.aspx?id=469&pageno=1
10. पांडेय, क्षमा शंकर, & सिंह, अनुपमा. (2018). *श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री, कारागार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 44
11. बेनीपुरी, रामवृक्ष. (2024). *पतितों के देश में*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन. पृ. 99
12. बेनीपुरी, रामवृक्ष. (2024). *पतितों के देश में*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन. पृ. 102
13. पांडेय, क्षमा शंकर, & सिंह, अनुपमा. (2018). *श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री, कारागार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 87
14. पांडेय, क्षमा शंकर, & सिंह, अनुपमा. (2018). *श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री, कारागार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 45
15. पांडेय, क्षमा शंकर, & सिंह, अनुपमा. (2018). *श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री, कारागार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 49
16. पांडेय, क्षमा शंकर, & सिंह, अनुपमा. (2018). *श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री, कारागार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 50
17. पांडेय, क्षमा शंकर, & सिंह, अनुपमा. (2018). *श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री, कारागार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 51
18. पांडेय, क्षमा शंकर, & सिंह, अनुपमा. (2018). *श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री, कारागार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 63
19. शास्त्री, चतुर सिंह. (बिना तिथि). *फंदा*. हिन्दी समय. https://hindisamay.com/kahani/fanda.html
20. बेनीपुरी, रामवृक्ष. (1953). *कैदी की पत्नी*. बेनीपुरी ग्रंथावली. पृ. 1
21. बेनीपुरी, रामवृक्ष. (1953). *कैदी की पत्नी*. बेनीपुरी ग्रंथावली. पृ. 31
22. बेनीपुरी, रामवृक्ष. (1953). *कैदी की पत्नी*. बेनीपुरी ग्रंथावली. पृ. 60
23. बेनीपुरी, रामवृक्ष. (1953). *कैदी की पत्नी*. बेनीपुरी ग्रंथावली. पृ. 80
24. ईसापुरी, कपिल. (2018). *अपराधी*. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. 98
25. चौहान, सुभद्रा कुमारी. (बिना तिथि). *राही*. https://www.hindwi.org/story/rahi-subhadrakumari-chauhan-story
26. बजाज़, जानकी ददेवी. (1956). *मेरी जीवन यात्रा*. नई दिल्ली: सत्साहित्य प्रकाशन. पृ. 114
27. शिवानी. (2024). *जा रे एकाकी, अपराधी कौन*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण पेपरबैक्स. पृ. 26
28. शिवानी. (2024). *जा रे एकाकी, अपराधी कौन*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण पेपरबैक्स. पृ. 28
29. शिवानी. (2024). *जा रे एकाकी, अपराधी कौन*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण पेपरबैक्स. पृ. 26
30. शिवानी. (2024). *जा रे एकाकी, अपराधी कौन*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण पेपरबैक्स. पृ. 43
31. शिवानी. (2024). *जा रे एकाकी, अपराधी कौन*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण पेपरबैक्स. पृ. 30
32. शिवानी. (2024). *जा रे एकाकी, अपराधी कौन*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण पेपरबैक्स. पृ. 37
33. कामतनाथ. (2007). *एक और हिंदुस्तान*. नई दिल्ली: भावना प्रकाशन. पृ. 96
34. पाठक, गजेंद्र. (2024). *जेल के यात्री, एक अज्ञात स्वतंत्रता सेनानी*. नई दिल्ली: नयी किताब प्रकाशन. पृ. 159
35. शिवानी. (2024). *साधो, ई मुर्दन कै गाँव, अपराधी कौन*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण पेपरबैक्स. पृ. 60
36. शंकर सिंह, अनु. रमा 'दिव्यदृष्टि', & बेदी, किरण. (बिना तिथि). *यह संभव है*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 87

भक्ति आंदोलन में मीरांबाई की भूमिका

डॉ. नयना सी. पटेल*
patelnayana313@gmail.com

मनुष्य जीवन ईश्वर की देन है। ईश्वर के द्वारा ही यह संसार की रचना हुई है। ईश्वर द्वारा मिला हुआ इस मनुष्य जीवन का ऋण चुकाने के लिए प्रत्येक मनुष्य ईश्वर की भक्ति करके उनका आभार व्यक्त करता है। प्राचीन काल में विविध ऋषियों द्वारा तप करके ईश्वर की भक्ति की जाती थी, जिसका स्थान मध्यकाल में आते-आते साहित्य ने ले लिया था। हिंदी साहित्य में भक्तिकाल का विशिष्ट स्थान है। इस काल में भक्ति से संबंधित साहित्य लिखा गया है। भारतीय धर्मसाधना के इतिहास में भक्ति-मार्ग का विशिष्ट स्थान है। हिंदी साहित्य के अध्येता जानते हैं कि भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्णकाल कहा गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने समय में उपलब्ध भक्ति साहित्य के आधार पर भक्तिकाल का निर्धारण संवत् 1375-1700 विक्रम संवत् अर्थात् सन् 1318 ई. से सन् 1643 ई. तक किया है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भी आचार्य शुक्ल की इस स्थापना को स्वीकार करते हैं। फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए भक्तिकाल को चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक मानना उचित होगा, क्योंकि आदिकाल की रचना प्रवृत्तियां चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक पर्याप्त बलवती रही थीं।[1] इस कालखण्ड में अनेक भक्त कवियों-कवयित्रियों का मूर्धन्य स्थान रहा है। उन सब में सबसे निराला और सदैव प्रभु-भक्ति में लीन व्यक्तित्व हमें अभिभूत करता है, वह व्यक्तित्व है मीरांबाई का ! यह एक ऐसा दैदीप्यमान नाम है, जिनका नाम सुनते ही हम धन्य हो जाते हैं।

भक्ति आंदोलन की शुरुआत दक्षिण में हुई। इसके शास्त्रकार भी सबसे पहले वहीं हुए। प्राचीनतम वैष्णवजन अलवार थे। प्रसिद्ध अल्वारो में सात ब्राह्मण, एक क्षत्रिय, दो शुद्र और एक निम्नतर जाति'पनर' के थे।[2] इन्हीं में एक अलवर महिला अंडाल थीं। शुद्र और महिला का इन प्राचीन वैष्णव में होना महत्त्वपूर्ण है। यह तथ्य इस तथ्य को प्रकट करता है कि भक्ति आंदोलन का प्रारंभ ही वर्णव्यवस्था और नारी पुरुष के भेदभाव को तोड़ने वाला था। भक्ति आंदोलन धार्मिक आंदोलन था। ऐसा आंदोलन जो भावना पर बल देता था। इस आंदोलन की विशेषता यह थी कि यह भावना के धरातल पर सबको समान मानता था। भक्ति आंदोलन देश और काल में दीर्घकाल तक व्याप्त आंदोलन था। अभी भी भारतीय मानस पर इसका बहुत गहरा प्रभाव है। यह आंदोलन देश-काल की सीमाओं में यानी ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत उदार एवं मानवीय था। जो संकीर्णताएं और शुद्रताएं आज भी हमारी सामाजिक विषमता का कारण हैं, उनसे ये संत-साधक दूर थे। यह साधना सदाचार पर बहुत जोर देती है। भक्ति-बोध, अनुभूति और सदाचार का सम्मिलित नाम है। आज देखें, तो इनका विश्वबोध या इनकी विचारधारा पिछड़ी मालूम पड़ती है, लेकिन विचारधारा कोई सामाजिक मूल्य नहीं बन सकती। सामाजिक मूल्य बनता है विचारधारा का आचरण !आचरण अनुकूल न हो तो समाज भिन्न अर्थ ग्रहण करता है। भक्ति आंदोलन मध्ययुग की एक महान सांस्कृतिक घटना है, भक्ति-काव्य जिसकी सबसे सार्थक फलश्रुति है। मध्यकाल में जिस भक्ति आंदोलन का उदय हुआ, तीन शताब्दियों से भीअधिक समय तक समूचे भारत को अपनी परिधि में समेटते हुए उसकी अन्तर्धाराएँ प्रवाहित होती रहीं।

मीरां और आंडाल भारत की सर्वाधिक प्रसिद्ध कवयित्रियाँ हैं। इन दोनों का संबंध भक्ति आंदोलन से है। नारी को कविता का विषय रीति प्रवृत्ति में बहुत बनाया गया, परंतु उसमें कोई प्रसिद्ध कवयित्री नहीं हुई। आदिकाल में तो किसी का उल्लेख तक नहीं मिलता। आधुनिक काल में आकर फिर नारियां साहित्य रचना मेंप्रवृत्त दिखलाई पड़ती हैं। मीरांबाई की कविता भी भक्ति आंदोलन, उसकी विचारधारा और तत्कालीन समाज में नई स्थिति से उनकी टकराहट का प्रतिफलन है। यह प्रतिफलन उस मानवीयता में प्रकट हुआ जो अपने समय की धार्मिक साधनाओं के ही सहारे रूपायित हो सकती थी। ++ ++ ++ निःसंदेह मीरां का विद्रोह एवं संघर्ष भक्ति, प्रेम, रहस्य की अनुभूति के साथ अभिव्यक्त हुआ है। इन सबका एकीकृत,

* **एसोसिएट प्रोफेसर संस्कृत विभाग, श्रीमती बी. वी. धाणक आर्ट्स कोमर्स सायन्स एण्ड मेनेजमेन्ट कोलेज बगसरा, जिला – अमरेली -365 440 (गुजरात)**

अखंड रूप, हमारे सामने उनकी कविता में प्रकट हुआ है। इसलिए उनकी कविता को समझने का मतलब है कविता के इन पक्षों को समझना। साधना, भक्ति, प्रेम, विरह या रहस्य की भावनाएं काव्याभिव्यक्ति में अमूर्त रहकर ही नहीं प्रकट होती। वे मूर्त होती हैं, अनुभव जगत में उदित होकर। इसलिए कविता का जागतिक संदर्भ होता है। इस संदर्भ को ऐतिहासिक दृष्टि उजागर करती है। मीरां का असीम, रहस्यमय प्रिय संकेतित है, जागतिक संदर्भों के चित्रण के माध्यम से। जो कहा गया है उसे ठीक से समझ लें तो उसे काव्यार्थ या रहस्यमय प्रिय की झलक मिल जाएगी। उसे कहा नहीं जा सकता लेकिन जो कहा गया है उसीके सहारे वह झलकेगा।[3] मीरांबाईमध्यकालीन भक्ति आंदोलन की महान संत और कवयित्री मानी जाती है, उन्होंने राजस्थान के धार्मिक जीवन को एक नई दिशा दी। उनका जन्म 1498 ई. में मेवाड़ के कुंभलगढ़ किले के पास हुआ था। उनका जीवन और काव्य भारतीय भक्ति साहित्य केमहत्त्वपूर्ण स्तंभों में से एक बन चुका है। मीरांबाई ने भक्ति, प्रेम और समानता का संदेश दिया। उनका योगदान न केवल धार्मिक अपितु सामाजिक परिवर्तन में भी महत्त्वपूर्ण है। मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन ने धार्मिक और सामाजिक जीवन को नए रूप में प्रस्तुत किया। भक्ति आंदोलन का उद्देश्य भक्तों के बीच ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत प्रेम और समर्पण को प्रोत्साहित करना था। यह आंदोलन मुख्यतः भगवान के प्रति प्रेम को उच्चतम धार्मिक अनुभव मानता था, और इसमें जाति, धर्म और अन्य सामाजिक बाधाओं का कोई स्थान नहीं था। मीरांबाई इस आंदोलन की प्रमुख हस्ती के रूप में उभरीं। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अपनी निष्ठा और प्रेम को अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया।[4]

मीरांबाई की रचनाओं की संख्या बहुत अधिक है। लेकिन जो अब तक प्राप्त हुई है, उनकी कुल संख्या दस है। ये रचनाएँ हैं – 1. गीतगोविंद की टीका, 2. नरसी जी का महरा, 3. राग सोरठ का पद, 4. मलार राग, 5. राग गोविंद, सत्यभामानुं रुसणु, 6.मीरां की गरबी, 7. रुक्मणी मंगल, 8. नरसी मेहता की हुण्डी, 9. चरित 10. स्फूट पद। इनमें से केवल स्फूट पद ही मीरां की प्रामाणिक रचना मानी जाती है। मीरां के 'स्फूट पद' आजकल 'मीरांबाई की पदावली' के नाम से प्रकाशित रूप में उपलब्ध है। मीरां ने कृष्ण की लीलाओं का क्रमानुसार वर्णन नहीं किया है, किंतु दीनता से अपने हृदय की समस्त भावनाओं को कृष्ण भक्ति के सूत्र में बाँधकर कृष्ण की आराधना पति के रूप में की है। स्वयं विरहिणी बनकर विरहभावना की चरम स्थिति तक पहुँचकर इन्होंने प्रियतम से प्रणय निवेदन किया है। कृष्ण से प्रत्यक्ष संबंध के कारण इनकी विरहानुभूति अत्यंत सघन और तीव्र है,यही कारण है कि उसकी अभिव्यक्ति अत्यंत मार्मिक और प्रभावशालिनी है। उनके पद विरह वेदना के प्रतिमान है। इनका विरह निवेदन अन्य कृष्ण कवियों की अपेक्षा उत्कृष्ट है।[5] मीरां की भक्ति-भावना ने उन्हें कवयित्री बनाया है। अतः उनके पदों में उनका समूचा व्यक्तित्व ही उमड़ पड़ा है। व्यक्तित्व का भोलापन रचनाओं में भी चित्ताकर्षक रूप में विद्यमान है। प्रत्येक पद की रसमयता एवं एकसूत्रता का मूल स्रोत मीरां का अनन्य प्रेमरसपूर्ण मानस ही है।[6] मीरां ने सहज भक्ति को भगवान के प्रति सच्ची आस्था को महत्त्वपूर्ण माना है। तथाकथित भक्ति या बाह्याडंबर को निरर्थक माना है। मीरां की भक्ति की विशेषता यह है कि उन्हें भगवान से कोई अपेक्षा नहीं है, इसलिए वे निर्लेप होकर भगवान की सहज रूप से आराधना करती हैं।

उनकी भक्ति सगुण भक्ति तो है ही, साथ-साथ कहीं निर्गुण भक्ति के कुछ लक्षण भी उनकी कविता में समाविष्ट है। मीरां ने जैसे श्रीकृष्ण को ही अपना प्रेमी माना है। अतः इतना दृढ़ तादात्म्य उनके साथस्थापित हो जाता है कि उन्हें लगता है कि भगवान का और उनका निरंतर साथ है। इसलिए मीरां ने बाह्याचार को नहीं, परंतु भगवान के प्रति एकात्म भाव को महत्त्व दिया है।[7] मीरां ने कभी अपने को श्रीकृष्ण से अलग समझा ही नहीं। मानो मीरां और श्रीकृष्ण एक ही हो, यह एकात्म भाव मीरां के भक्तिमय जीवन का एक पहलू है। मीरां ने नारी होने के कारण, श्रीकृष्ण को जिस स्वाभाविक रूप से अपना जन्म-मरण का साथी बना लिया था, वैसा अन्य किसी भक्त के लिए संभव भी नहीं था। कृष्ण के वियोग का अनुभव भी मीरां ने मन के जिस स्तर पर पहुँचकर किया था, वैसा अन्य के लिए सहज नहीं था। राधा की तरह मीरां की विरह व्यथा में स्वाभाविकता है। अतः मीरां की माधुर्य-भाव भक्ति धारा सहज, सरल, निर्मल एवं तीव्र है। भक्तों के जीवन में एक स्तर ऐसा भी आता है जब भक्त की आत्मा उसे परमात्मा से अभिन्नता का अनुभव करती है। सारे द्वैत भाव दूर हो जाते हैं। इस अभिन्नता की अनुभूति में ही सुख और शांति है। जिस प्रकार सूर्य और उसके प्रकाश में कोई अंतर नहीं है, उसी प्रकार मीरां और श्रीकृष्ण में कोई अंतर नहीं है-

"तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं, जैसे सूरज घामा।
मीरां के मन अवर न माने चाहे सुंदर स्यामाँ।।"

-मीरांबाई की पदावली, पद-114

मीरां का जीवनसंघर्ष उनके वैधव्य से प्रारंभ हुआ। मीरां पति की मृत्यु पर सती नहीं हुई और भक्तिन हो गई। उनकी रचनाएं जो प्रधानत: विरहभावना की अभिव्यक्ति है, पति की मृत्यु और उनकी मृत्यु के बीच लिखी गई। मीरां ने जो अलौकिक विरहवर्णन किया है, उसका कोई लौकिक आधार अवश्य होगा। इस विरहभावना को बहुत तीव्र बना देता था राणा और दुर्जनों का अमानवीय व्यवहार। मीरां की कविताओं में अलौकिक प्रियतम को पाने की आतुरता, न पा सकने की व्यथा, उसके पास पहुँचने से रोके जाने का आक्रोश, अपनी असहायता, उसे भाव जगत में प्राप्त कर लेने की पुलक-सब कुछ विद्यमान है। पता नहीं उन्हें जहर दिया गया था या नहीं, वह जहर अमृत बना था या नहीं;लेकिन उनका काव्य उनके दु:ख के सुख में परिणत हो जाने का दस्तावेज ज़रूर है। विष उनका लौकिक यथार्थ है और अमृत उनके भावगत का परमार्थ है। मीरां की कविता में विष और अमृत अपना प्रतिकार्थ प्राप्त कर लेते हैं। विष मीरां के संघर्ष में तप कर अमृत बन जाता है। जिसे अन्य विष समझते हैं, वह मीरां के लिए अमृत बन जाता है। मीरां की कविता में अमृत और विष के जो इतने उल्लेख हैं, वे निश्चित रूप से उनकी भावना और जीवन आचरण के संघर्ष से बहुत गहरे तौर पर जुड़े हैं।

मीरां कहती है कि जो अमूल्य मनुष्य जन्म मिला है, उसे लोग सोकर सांसारिक झगड़ों में पड़कर खो देते हैं। इस प्रकार प्रभु की भक्ति कैसे हो सकती है ! मीरां ने मनुष्य अवतार में ही भगवत भजन को प्रभुमिलन का एकमात्र उपाय बताया है। मीरां ने अपने जीवन का अमूल्य समय व्यर्थ बातों में मत खोने की बात कही है-

प्रभु सो मिलण कैसे होया।। टेक।।
पाँच पहर धंधे में बीते,तीन पहर रहे सोय।
माणष जणम, अमोलक पायो, सोतैडारयोखोय।
मीरां के प्रभु गिरिधर भजीये होणी होय सो होया।।[8]

-मीरांबाई की पदावली, पद-159

मीरां ने मध्ययुगीन भक्ति साहित्य में एक नवीन परंपरा को जन्म दिया। वे अपने गुरु के सिवा किसी भी संप्रदाय विशेष में दीक्षित नहीं थी। उन पर सामान्यत: सभी संप्रदायों की भक्ति-भावना का प्रभाव था, परंतु उनमें से किसी का भी अनुकरण न करके उन्होंने अपने इष्ट आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति प्रेमाभक्ति और माधुर्यभक्ति का मार्ग अपनाया। उनके समक्ष सगुण और निर्गुण में कोई अंतर नहीं है। राम तथा कृष्ण में कोई पृथकता का भाव नहीं है। परम भक्त की दृष्टि अद्वैत होती है। अत: उनके कृष्ण सगुण और निर्गुण दोनों है। मीरां के कृष्ण दिव्य होते हुए भी लौकिक और सगुण है। उनके कृष्ण सौंदर्य और प्रेम से परिपूर्ण है। नारद भक्तिसूत्र में भक्ति के दो स्वरूप बताए गए हैं-प्रथम प्रेमरूपा भक्ति और द्वितीय गौण भक्ति। इन दोनों में से प्रेमरूपा भक्ति को श्रेष्ठ बताया गया है। मीरां की भक्ति इसी प्रेमरूपा भक्ति के अधिक समीप समझी गई है। इसी प्रकार भक्ति के दो भेद और किए गए हैं-परा और अपरा। इन्हें साधना भेद कहा गया है। इन दोनों में भी परा भक्ति श्रेष्ठ समझी गई है, क्योंकि साध्य स्वरूप यह भक्ति साध्य लक्ष्य के अतिरिक्त किसी भी साधन की आवश्यकता को स्वीकार नहीं करती। मीरां भी अपने साध्य श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी अन्य साधना की अभिलाषा नहीं रखती। अत: मीरां की भक्ति को परा भक्ति के समान समझा जा सकता है। वस्तुत: भक्त शिरोमणि मीरांबाई की भक्ति प्रेमाभक्ति मानी गई है।[9]

मीरां का अपना कोई नहीं, केवल गिरधर गोपाल हैं। मीरां ने भाई-बंधु, सगे-साथी सब छोड़ा। साधुओं के साथ बैठ-बैठकर लोकलाज खो दी। भक्तों को देखकर वे प्रसन्न होतीं, जगत को देखकर रोतीं। आँसुओं से सींच-सींचकर उन्होंने प्रेम बेल बोई। राणा ने विष का प्याला भेजा, मीरां ने मगन होकर पी लिया। मीरां को लगन लग गई अब जो होना है, हो-

म्हाराँ री गिरधर गोपाल दूसरां णा कूयाँ।
दूसरां णा कूयाँ साधां सकल लोक जूयाँ।।
++ ++ ++
राणा विषरो प्यालो भेज्याँ पीय मगण हूयाँ।
मीराँ रो लगण लग्याँ साधां होणा हो जो हूयाँ।।

-मीरांबाई की पदावली, पद-18

मीरां की भक्ति कृष्णभक्ति है। उसमें किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं है। वह उदार मानवीय अनुभूति की साक्षी है। उन्होंने अपनी पीड़ा के साथ भक्ति को जोड़कर उसे नया आयाम दे दिया। यह उनकी दर्द की दास्तां को बयां करती है। मीरां नारी के लिए प्रेरणास्रोत बन गई। उनके अपने समाज ने उन्हें कुलनाशी कहा लेकिन लोकमानस ने उन्हें दर्द दीवानी के रूप में जीवित रखा। मीरां ने अपने समय और समाज के द्वारा दिए गए पर्दे, बंधन और दीवार को ठुकराया। मीरां की भक्ति में निर्गुण भक्ति तथा सगुण भक्ति दोनों ही गुण दिखाई देते हैं। उनकी भक्ति निर्गुण तथा सगुण का एक ऐसा संश्लिष्ट रूप बन गई जिसमें मानवीयता की भावना है। भक्ति काव्य शास्त्रीय रूढ़ियों, सामाजिक वर्जनाओं, धार्मिक संकीर्णताओं के विरुद्ध लोक चेतना के स्वाभाविक उन्मेष का प्रतिफलन है। काव्य अपने समस्त भाववैभव और शास्त्रसंपन्नता के साथ इस काव्य में ही प्रकट हुआ। इसमें न केवल मध्ययुगीन समाज, संस्कृति, सामंती समाज की विसंगति और साहित्य की अधिकतम प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं,अपितु युग-युगांतर को प्रेरित-प्रभावित और रसमग्न करने की क्षमता है; क्योंकि इसकी विविधतापूर्ण सर्जनात्मक उपलब्धि, जीवन और जगत के लौकिक-अलौकिक आयामों का चित्रण तथा जीवनमूल्य और संदेश सार्वभौम-शाश्वत महत्त्व के अधिकारी हैं। इसमें दर्शन काव्य संपत्ति बन गया है और दोनों का अंतराल लगभग मिट गया है। भक्ति काव्य में बहुत कुछ ऐसा है जो काव्य समीक्षा के बदलते प्रतिमानों के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करता है तथा हर नई विश्लेषण पद्धति को समीक्षण के लिए सर्जनात्मक और बौद्धिक उत्तेजना प्रदान करता है।[10]

मीरां की भक्ति का आदर्श अत्यंत ऊँचा था। उनके 'परमभाव' का निर्वाह किसी साधारण भक्त के वश की बात नहीं। मीरां ने जो कुछ भी कहा वह उनकी आंतरिक अनुभूति की तीव्रता के कारण रागमय होकर गीत रूप में ही प्रस्फुटित हुआ। मीरां का माधुर्य भाव एक रमणी की ही सच्ची मनोवृत्ति है। भक्त मीरांबाई गिरधर गोपाल की अनन्य उपासिका थी। मीरां के पदों से ज्ञात होता है कि गिरधर गोपाल ही मीरां के परमोपास्य व सर्वस्व थे। मीरांबाई ने वस्तुत: कृष्णभक्ति का आश्रय लिया था। उनकी भक्ति प्रेमाभक्ति थी। उन्होंने अपना सर्वस्व श्रीचरणों में अर्पित कर दिया था। उनकी प्रेमाभक्ति मधुर रस से पूर्णतया आप्लावित थी। भारतीय इतिहास में ऐसी भक्ति अनन्य व बेजोड़ है। लोकलाज से परे गोपाल को भजने वाली मीरां जैसा दूसरा कोई दूर तक नज़र नहीं आता। मीरां का दीवानापन लौकिक नहीं, परंतु अलौकिक है। अतः भक्ति आंदोलन में मीरांबाई की भूमिका स्मरणीय एवं प्रशंसनीय मानी जाएगी।

संदर्भ :

1. नगेंद्र, डॉ. (2000). *हिंदी साहित्य का इतिहास* (27वाँ पुनर्मुद्रित संस्करण). नोएडा: मयूर पेपर बैक्स. पृ. 88–89.
2. दासगुप्त, सुरेंद्रनाथ. (1975). *ए हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन फिलॉसफ़ी* (खंड 3). पृ. 64.
3. त्रिपाठी, विश्वनाथ. (1998). *मीरां का काव्य* (द्वितीय संस्करण). नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. [प्राक्कथन से].
4. मीणा, पंकज कुमार. (2024, दिसम्बर 12). राजस्थान के धार्मिक आंदोलन में मीरां के योगदान का ऐतिहासिक दृष्टिकोण. *आईजेसीआरटी (International Journal of Creative Research Thoughts)*, 12(12), पृ. 312.
5. श्रीवास्तव, रणधीर. (1995). *हिंदी साहित्य का सरल इतिहास*. नई दिल्ली: भारतीय ग्रंथ निकेतन. पृ. 145.
6. शर्मा, गिरधर प्रसाद. (1998). *मध्ययुगीन हिंदी भक्ति काव्य का विवेचन*. नई दिल्ली: तक्षशिला प्रकाशन. पृ. 157.
7. मेहता, शैलेश. (2016). *मीरां का काव्य: भक्ति एवं दार्शनिकता*. नई दिल्ली: रावत प्रकाशन. पृ. 72–73.
8. चतुर्वेदी, परशुराम. (1983). *मीरांबाई की पदावली* (17वाँ संस्करण). प्रयाग: हिंदी साहित्य सम्मेलन. पद 159, पृ. 146.
9. राव, नेहा. (2021, अक्तूबर). मीरां की भक्ति का स्वरूप. *जर्नल ऑफ़ एडवांसेज़ एंड स्कॉलर्ली रिसर्चेज़ इन एलाइड एजुकेशन*, 18(6), पृ. 32.
10. उपाध्याय, करुणा शंकर. (2003). *मध्यकालीन काव्य चिंतन और संवेदना* (प्रथम संस्करण). पृ. 7.

हिंदी का सफ़र : राजभाषा से लेकर सोशियल मीडिया की भाषा तक

प्रियांशीकुमारी बी. पटेल*
priyanshi34patel@gmail.com

मानव एक विचारशील प्राणी है। वो अपने विचारों का भाषा का आदान-प्रदान करने के लिए भाषा का प्रयोग करता है। भारत विविध संस्कृति से भरा देश है, इसमें संस्कृति की विविधता के साथ-साथ भाषा की विविधता भी देखने को मिलती है। भारत में विभिन्न प्रदेशों में विविध प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं। भारत में आधिकारिक तौर पर संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाएँ मान्यता प्राप्त हैं। इन भाषाओं में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा हिंदी है। केवल आधुनिक युग में ही नहीं, परंतु प्राचीन काल से हिंदी भाषा का महत्त्व अधिक रहा है। इस बात का जिक्र हिंदी के साहित्य के इतिहास में विस्तार से हुआ है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में हमें हिन्दी के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। प्राचीन काल में हिंदी साहित्य लेखन में प्रयोग की जाती थी, परंतु उसके बाद हिंदी को उसका नया स्वरूप स्वतंत्रता के बाद मिला।

देश की स्वतंत्रता के बाद देश के शासकीय कार्यों में हिंदी का प्रयोग होने लगा जिसके लिए हिंदी भाषा को कई परीक्षा से गुज़रना पड़ा। देश की सरकार द्वारा हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकारा गया। भारतीय संविधान में हिंदी को संघ की भाषा घोषित किया गया है और इसका प्रयोग भारत सरकार के अधिकारिक प्रयोजनों के लिए किया जाता है। राजभाषा के रूप में हिंदी का स्वीकार होने के बाद जनसामान्य में भी हिंदी का विकास होने लगा। जिसके कारण हिंदी की व्यापकता में बढ़ावा हुआ। आज विश्व के 150 सी अधिक देशों में हिंदी का प्रयोग किया जाता है। विश्व में 200 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। जिसमें खासकर एशियाई और यूरोपीय देशा के प्रमुख विश्वविद्यालयों में। हिंदी अपने विकास क्रम को आगे बढ़ाते हुए सोशियल मीडिया की भाषा तक पहुँच गई है। आज के युवाओं द्वारा सोशियल मीडिया में हिंदी का प्रयोग विभिन्न माध्यमों से हो रहा है। इसमें लोग प्रभावी ढंग से अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए ब्लॉगिंग, चैटिंग, व्लॉगिंग का सहारा ले रहे हैं। हिंदी विश्व में विद्यमान समृद्धतम भाषाओं में से एक है। संरचना की सौंदर्यशीलता, भाव-भंगिमाओं की गहनता, अभिव्यक्ति की तीव्रता तथा शैलियों की विविधता को समेटती हुई हिंदी भाषा अनेक उन्नत रूपों में प्रवाहमान है। आधुनिक युग में हिंदी का व्यापक प्रचार और प्रयोग होने लगा है। आज हिंदी का रूप सिर्फ साहित्यिक नहीं रहा, बल्कि वह प्रशासन, व्यापार, न्याय, शिक्षा, विज्ञान, पत्रकारिता के रूप में जनसंपर्क की भाषा बनी है। स्वतंत्रता के पश्चात् राजभाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार किया गया। पूरे भारत में समाचार माध्यमों, राजनीतिक कार्यक्रमों के लिए उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम तक जिस भाषा का व्यवहार हो रहा है वह हिंदी है। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी के महत्त्व जानकर ही विदेशी चैनल भी सर्वाधिक कार्यक्रम हिंदी में तैयार कर रहे हैं। अतः हिंदी भी अंतर्राष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में उभरकर सामने आई है। विश्व बाज़ार की दृष्टि से हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है।[1] यह कहना अनुचित न होगा कि हिंदी का सफ़र हम सब हिंदी प्रेमियों के लिए एक सुखद एहसास है। अपनत्व की सौरभ फैलाती हुई हमारी अपनी हिंदी अपना सफ़र तय कर रही है।

'हिंदी' शब्द का अर्थ एवं व्युत्पत्ति :

हिंदी मानक कोश में हिंदी का अर्थ कुछ इस प्रकार बताया गया है-हिंदी अर्थात् हिंद या हिंदोस्तान का। भारतीय। हिंद का निवासी। भारतवासी। हिंद या हिन्दोस्तान की भाषा। आज-कल मुख्य रूप से, सारे उत्तर और मध्य भारत की एक प्रधान भाषा जो संस्कृत की प्रत्यक्ष उत्तराधिकारिणी होने के कारण मुख्य रूप से प्रायः सारे भारत की राष्ट्रभाषा रही है, और स्वतन्त्र भारत की राजभाषा मानी गई है, तथा जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। इसका प्रचार उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान में व्यापक रूप से है एवं इनके आस-पास के अनेक प्रदेशों में भी यह बहुत कुछ बोली और समझी जाती है। अवधी,

* **हिंदी भवन, सौराष्ट्र विश्व विद्यालय, राजकोट (गुजरात) पिन-360 005**

बघेली, बिहारी, बुंदेलखंडी, ब्रजी आदि अनेक बोलियाँ इसी के अन्तर्गत मानी जाती हैं, और मैथिली, राजस्थानी आदि भी इसी की शाखाएँ कही जाती हैं। प्रायः 13वीं या 14वीं शती से इस भाषा का आरम्भ माना गया है, और इसका प्राचीन साहित्य बहुत अधिक है। अब भी भारत की आधुनिक भाषाओं में इसका भंडार बहुत बड़ा है और दिन पर दिन इसका प्रचार-व्यवहार, बढ़ता जाता है।[2]

'हिंदी' शब्द का संबंध संस्कृत शब्द सिंधु से माना जाता है। 'सिन्धु, सिन्ध नदी को कहते थे उसके आधार पर उसके आसपास की भूमि को सिन्धु कहने लगे। यह सिंधु शब्द ईरानी 'हिंदी' और फिर हिंद हो गया। बाद में ईरानी धीरे-धीरे भारत के अधिक भागों से परिचित होते गए और इस शब्द के अर्थ में विस्तार होता गया तथा हिंद शब्द पूरे भारत का वाचक हो गया। हिंदी हिन्द–यूरोपीय भाषा–परिवार के अंदर आती है। ये हिंद ईरानी शाखा की हिंद आर्य उपशाखा के अंतर्गत वर्गीकृत है। हिन्द-आर्यभाषाएँ वो भाषाएँ हैं जो संस्कृत से उत्पन्न हुई है। उर्दू, कश्मीरी, बंगाली, उड़िया, पंजाबी, रोमानी, मराठी, नेपाली जैसी भाषाएँ भी हिंदी–आर्य भाषाएँ हैं।

हिंदी राजभाषा के रूप में :

संविधान में हिंदी की स्वीकृति सहसा राजभाषा रूप में नहीं हो गई। इसका एक लम्बा इतिहास देखने को मिलता है। जो सन् 1800 से शुरू होकर 1949 तक चलता रहता है। 'राजभाषा' का सामान्य अर्थ है-राजकाज चलाने की भाषा अर्थात् भाषा का वह रूप जिसके द्वारा राजकीय कार्य चलाने में सुविधा हो। इसकी व्यापकता को स्पष्ट करते हुए आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने व्यक्त किया, "राजभाषा का प्रयोग मुख्यतः चार क्षेत्रों में अभिप्रेत है- शासन, विधान, न्यायपालिका और कार्य-पालिका। इन चारों में जिस भाषा का प्रयोग हो उसे राजभाषा कहेंगे।" 'राजभाषा' से दो अर्थ निकाले जा सकते हैं–राजा की भाषा तथा राज्य की भाषा अब तो 'राजा' है नहीं, अतएव उससे तात्पर्य है प्रशासन तन्त्र को चलाने की भाषा शब्द की दृष्टि से 'राजभाषा' शब्द बहुत पुराना नहीं है।[3] राजभाषा का सामान्य अर्थ राजकीय भाषा भी होता है।जिसका प्रयोग किसी राज्य या देश के आधिकारिक सरकारी कामकाज एवं सामान्य व्यवहार के लिए किया जाता है। हिंदी हमारी राजभाषा है। संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार संघ सरकार के सभी कार्य हिंदी में किये जाने हैं; अतः राजभाषा अधिनियम, 1963, राजभाषा संकल्प, 1968 और राजभाषा नियम, 1976 में हिंदी के कार्यान्वयन संबंधी प्रावधान किये गये हैं, जो भारत सरकार के सभी कार्यालयों में लागू है। इस अनुक्रम में भारत सरकार के गृह मंत्रालय के अधीन 26 जून, 1975 को "राजभाषा विभाग" की स्थापना की गई।

हिंदी को राजभाषा बनने के लिए 149 साल का सफ़र तय करना पड़ा। इन 149 सालों में हिंदी का विकास अविरत रूप से होता रहा है। इस दौरान हिंदी साहित्य की भाषा से संचार माध्यमों की भाषा तक पहुँची है। हिंदी समाचार समाचार पत्रों का भारत की स्वतंत्रता में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हिन्दी के उद्भव से लेकर आजतक हमें हिंदी के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। हिंदी के जो विविध रूप प्रचलित है, उनमें मुख्य है-

(1) मानक हिंदी

(2) बोलचाल की हिंदी

(3) वाणिज्य–व्यापार की हिंदी

(4) कार्यालयी–हिंदी

(5) शास्त्रीय हिंदी

(6) साहित्यिक हिंदी

(7) संसदीय हिंदी

(8) खेलकूद की हिंदी

(9) जनसंचारीय हिंदी–(सिनेमा, टेलीविजन, विज्ञापन)

(10) सामाजिक संचार माध्यमों की हिंदी[4]

सोशियल मीडिया और हिंदी भाषा :

मानव के द्वारा समाज के अभाव में उसके जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। समाज मानवजीवन का एक अभिन्न अंग माना जाता है। मानव की विविध परंपरा एवम् संस्कृति का वहन करने के लिए समाज एवं भाषा दोनों ही समान महत्त्व रखते हैं। भारत में विविध माध्यमों से अपने विचारों का अदानप्रदान किया जाता था-जैसे रेडियो, टेलिविज़न, समाचार पत्र आदि। विज्ञान और तकनीकी के इस युग में हिंदी सिर्फ ज्ञान-विज्ञान, साहित्य और जनसंचार के विभिन्न माध्यमों तक ही सीमित नहीं, अपितु सामाजिक संचार माध्यमों जैसे-फेसबुक, व्हॉट्एप, ट्विटर, इन्टाग्राम, यु-ट्यूब आदि भी खूब लोकप्रिय है। विज्ञान की क्षेत्र में इन्टरनेट का विकास होने के कारण यह विविध प्रकार के सोशियल मीडिया जनसामान्य के प्रयोग में आए हैं।

कुछ सालों पहले समाचार पत्रों का अनुवाद हिंदी में होने लगा, उसके बाद टेलिविजन में आने वाली विविध अंग्रेजी चैनल डिस्कवरी, हिस्टरी चैनल, कार्टून नेटवर्क, निक्लोजडियन तथा पोगो भी हिंदी में उपलब्ध है। खेल-जगत के चैनल जैसे-स्टार स्पोर्ट्स, डीडी स्पोर्ट्स, सोनी सिक्स, सोनी टेन, इएसपीएन आदि हिंदी में कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। विज्ञापन जगत में तो पहले से ही हिंदी की बोलबाला है। किसी एक भाषा के सिनेमा और धारावाहिक को किसी दूसरी भाषा में रूपांतरित करने की प्रक्रिया को डबिंग कहा जाता है। भारत में केवल अंग्रेजी (हॉलीवुड) फिल्म ही नहीं बल्कि दक्षिणी भाषा में बनाई गई फिल्म भी हिंदी भाषा में रूपांतरित करके सिनेमाघरों में चलाई जाती है। मोबाईल, कम्प्यूटर, टेबलेट, लैपटॉप में भी अपनी पसंद की भाषा का चयन करके फिल्म देखी जा सकती है। जिसके कारण हिंदी का प्रचार और प्रसार बढ़ता जा रहा है। हिंदी का विकास सोशियल मीडिया में बहुत तेजी से हो रहा है। सोशियल मीडिया में लोग अपने विचारों का व्यक्त करने के लिए चैटिंग, ब्लॉगिंग और व्लॉगिंग आदि का सहारा लेते हैं। 2025 के आंकड़ों के अनुसार देखें तो आज विश्वभर में सोशियल मीडिया के उपयोगकर्ताओं की संख्या 5.3 बिलियन है और पूरे विश्व की जनसंख्या 8.2 बिलियन के आसपास है। इससे हम जान सकते हैं कि विश्व की आबादी में से करीबन 64% लोग सोशियल मीडिया का उपयोग करते हैं।

सोशियल मीडिया जहाँ वर्तमान में संचार व अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम की भूमिका निभा रहा है, वहीं जनमानस की भाषा मानी जाने वाली हिंदी भी सोशल मीडिया में अपनी मजबूत पकड़ बनाए हुए हैं। यहाँ तक कि कुछ समय पश्चात हिंदी भाषा का वर्चस्व इतना होगा कि ईमेल आईडी भी हिंदी में बनाई जाने लगेगी। आज सोशियल मीडिया के सभी माध्यमों में हिंदी लिखने वालों की संख्या बहुत अधिक बढ़ रही है। नये-नये रचनाकारों के लिए सोशल मीडिया एक अच्छा प्लेटफार्म साबित हो रहा है। ये रचनाकार अपनी मौलिक रचनाओं को फेसबुक और व्हाट्सएप के माध्यम से जन सामान्य तक पहुँचा रहे हैं तथा लोगों की प्रतिक्रिया व समीक्षा भी प्राप्त कर रहे हैं। उनकी प्रतिभा निखार में सोशल मीडिया 'मील का पत्थर' साबित हो रही है।[5] ब्लॉग की दुनिया में सक्रिय अनेक लेखक हिंदी में लिखना ही पसंद करते हैं। हिंदी भाषा में लिखने वालों का एक बड़ा वर्ग हमेशा ही सक्रिय देखने को मिलता है। सोशियल मीडिया ने आज बड़े-बड़े उद्योग, विज्ञापन, फिल्म प्रमोशन, इलेक्शन, राजनीतिक मुद्दे व राजनीतिक टीका-टिप्पणी, साहित्य का विस्तार, व्यापार, वाणिज्य, ऑनलाइन क्रय-विक्रय, टेलीविजन व जनसाधारण आदि के लिए एक विश्वव्यापी प्लेटफार्म वह भी कम खर्च में उपलब्ध कराया है। आज चुनाव के प्रचार-प्रसार का स्वरूप सोशियल मीडिया के माध्यम से बदल चुका है। आज फेसबुक लाइव ने अनेक जनसमूह को ऑनलाइन रूप से अर्थात् वर्चुअल मंच से जोड़ने व लोगों में अपनी बात को कमेंट बॉक्स में लिखकर सार्वजनिक विमर्श करने की गुणवत्ता को बढ़ाया है। इस प्रकार आज सोशियल मीडिया ने ही हिंदी भाषा को राजभाषा से विश्व भाषा बनाने का बीड़ा उठाया है।[6] सोशियल मीडिया ने अपनी एक नई भाषा गढ़ ली है। भाषा और शब्दों के सौंदर्य, मर्यादा, गरिमा और स्वरूप की चिंता करने वाले सभी इस नई भाषा के प्रभाव और भविष्य पर तो चिंतित हैं ही, विशेष चिंता इस बात पर भी है कि इस खिचड़ी, विकृत, कई बार अटपटी भाषा की खुराक पर पल-बढ़ रही किशोर और युवा पीढ़ी वयस्क होने पर किसी भी एक भाषा में सशक्त और प्रभावी संप्रेषण के योग्य बचेगी या नहीं। यह खतरा इसलिए भी गंभीर होता जा रहा है कि नई पीढ़ियाँ पाठ्य-पुस्तकों के अलावा कुछ भी गंभीर, स्वस्थ, विचारपूर्ण लेखन, साहित्य, वैचारिक से लगातार दूर जा रही हैं। अच्छी, असरदार भाषा अच्छा पढ़ने से ही आती है। अच्छी भाषा के बिना गहरा, गंभीर विचार, विमर्श, चिंतन और ज्ञान-निर्माण संभव नहीं।[7] कुछ भाषा प्रेमी विद्वानों की यह चिंता अनुचित भी नहीं है, भाषा की चमक तो हमेशा बनी रहनी चाहिए। हम सबकी जिम्मेदारी भी तय होती है कि हम सब हिंदी लिखते और बोलते समय उसकी गरिमा बनाए रखें।

सोशियल मीडिया में हिंदी प्रयोग का एक मिश्रित स्वरूप हमारे सामने आता है। जैसे-लिपि देवनागरी और भाषा हिंदी। लिपि रोमन और भाषा हिंदी तथा दोनों भाषाओं और लिपियों का मिश्रण एक साथ जिसको समान्यतया हिंग्लिश की संज्ञा भी दी जाती है। अनेक भाषाविद भाषा के साथ इस प्रकार के प्रयोग को सिरे से नकारते हैं और भाषा की पवित्रता के लिए मुखर स्वर भी देते हैं। साहित्य लेखन में भाषा का एक स्वरूप होना ठीक है, किन्तु सोशल मीडिया में इस तरह का बंधन लगाना संभव नहीं लगता। अभिप्राय यह है कि हिंदी के इन सभी स्वरूपों को हिंदी ही मानकर आत्मसात करने के बाद विमर्श करना होगा। अर्थात् भाषा भाव और प्रेषणीयता पर ध्यान देने की अधिक आवश्यकता है, न कि भाषा रचना और व्याकरण पर।[8] लोकमान्य तिलक ने कहा है-"सरलता और शीघ्रता से सीखी जाने योग्य भाषाओं में हिंदी सर्वोपरि है।" हम जानते हैं कि दूसरी भाषा की तुलना में हिंदी सीखना बहुत आसान है। हिंदी की इसी विशेषता की वजह से उसका मान बढ़ रहा है। हिंदी भाषा ने युग की आधुनिकता के कारण होने वाले परिवर्तन का स्वीकार किया है और दूसरी भाषा के शब्दों को भी अपने अंदर समाविष्ट किया है। हिंदी भाषा का प्रचार बढ़ने का एक कारण यह भी है कि इस भाषा ने समय के साथ-साथ खुद को परिवर्तित किया है। इन्हीं सब बातों की वजह से सोशियल मीडिया की प्रमुख भाषा के रूप में लोगों की पहली पसंद हिंदी ही रही है। सुधीश पचौरी जी ने बहुत ही सटीक बात बताई है-जो हिंदी अब है वह 'दूसरी परंपरा' की हिंदी है। यह ग्लोबल गति में तकनीक और मुक्त बाज़ार की दोस्त बनने, लोगों के रोजगार के लायक बनने, 'कम्प्यूटर-मित्र बनने', फोंट सुलझाने की, केन्द्रीय संचार समस्या से जूझती आकुल-व्याकुल हिंदी है। यह अपनी दैनिक समस्याओं से दैनिक ढंग से निपटती हिंदी है।[9] पचौरी जी के इस विचार से हम भी सहमत हैं। बात तो यह है कि हिंदी को अभी और आगे बढ़ना है, उसके सामने अनेक समस्याएँ आएगी, पर उसे बस आगे बढ़ते रहना है।

निष्कर्ष :

हिंदी भाषा प्राचीन काल से ही साहित्य के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण रही है, जिसके कारण उसका विकास कभी रूका नहीं है। भारत में हिंदी का विकास होने के बाद हिंदी का प्रचार-प्रसार विदेश में भी होने लगा। हिंदी भाषा का अपना एक अलग स्वरूप रहा है, जिसके कारण उसकी ख्याति दिन-ब-दिन बढ़ती ही गई है। हिंदी के विस्तार के लिए सोशियल मीडिया एक सशक्त माध्यम है। यदि हम अन्य भाषा के शब्दों को उदार मन से स्वीकार करेंगे तो इससे हिंदी और भी सशक्त बनेगी। हिंदी के उज्ज्वल भविष्य के लिए उसका नई तकनीकों से जुड़ना अत्यंत आवश्यक है। हिंदी तभी सशक्त बनेगी जब वह व्यापार, रोजगार एवं वैज्ञानिक विकास एवं प्रत्येक प्रदेश की संप्रेषण की भाषा बनेगी। हिंदी प्रेमी होने के नाते हम सबका कर्तव्य बनता है कि हम अपनी तरफ से हिंदी को आगे बढ़ाने में यथासंभव योगदान दें, जिससे हिंदी वैश्विक धरातल पर अपना परचम लहराती रहे।

संदर्भ :

1. बन्ने, पंडित. (2008). *हिंदी का वैश्विक परिदृश्य*. कानपुर: अमन प्रकाशन। पृ. अपनी बात से.
2. वर्मा, रामचन्द्र. (द्वितीय संस्करण). *मानक हिंदी कोश (पाँचवा खण्ड)*. इलाहाबाद: हिंदी साहित्य सम्मेलन. पृ. 547.
3. भाटिया, कैलाश चन्द्र. (2001). *प्रशासन में राजभाषा हिंदी*. नई दिल्ली: तक्षशिला प्रकाशन. पृ. 9.
4. श्रीवास्तव, दीपा., कुमारी, अदिती., कुमारी, काजल., एवं कुमारी, गिन्नी. (2019). *Explore – Journal of Research*, 11(2). पृ. 34.
5. यादव, ओरेन्द्र कुमार. (2018). हिंदी के प्रसार में सोशल मीडिया की भूमिका. *IJSRST*, 4(7). पृ. 1267.
6. नामदेव, अंकिता. (2021, नवम्बर 1). सोशल मीडिया में हिंदी भाषा का बढ़ता प्रयोग. *ChhattisgarhMitra*.
7. सिंघ, भूपेन्द्र एवं देव, राहुल. (2016, सितम्बर 14). सोशल मीडिया और हिंदी. *जागरण*.
8. राय, रामप्रवेश. (2023, जुलाई 14). सोशल मीडिया एवं हिंदी विमर्श. *Newswriters.in*.
9. पचौरी, सुधीश. (2012). *हिंदी का नया जन क्षेत्र*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 58.

गीतांजलि श्री के कथा-संसार में स्त्री चेतना और सांस्कृतिक पहचान का विकास

रिद्धि पी. तलाविया*

talaviyaridhdhi1@gmail.com

सारांश

गीतांजलि श्री समकालीन हिंदी साहित्य की ऐसी सशक्त रचनाकार हैं, जिनके कथा–संसार में स्त्री चेतना और सांस्कृतिक पहचान की जटिलताओं को विशिष्ट ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उनके उपन्यास माई, हमारा शहर उस बरस, तिरोहित, खाली जगह और रेत समाधि तथा कहानियों में स्त्री की स्थिति, उसकी स्मृति, उसकी अस्मिता और परंपरा–आधुनिकता के द्वंद्व का संवेदनशील चित्रण मिलता है। यह शोध–लेख उनके कथा–संसार में स्त्री चेतना और सांस्कृतिक पहचान के अंतर्संबंधों की पड़ताल करता है।

मुख्य शब्द :

गीतांजलि श्री, कथा-संसार, चेतना, सांस्कृतिक, पहचान, स्त्री

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में स्त्री लेखन ने बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से एक नई चेतना और ऊर्जा का संचार किया। अब स्त्री केवल घर–परिवार की सीमाओं में बँधी न होकर स्वयं अपने अस्तित्व, अधिकार और पहचान की तलाश में सामने आई। गीतांजलि श्री इस स्त्री–लेखन परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। उनके कथा–संसार में स्त्री की अस्मिता और सांस्कृतिक पहचान का प्रश्न लगातार उठता है।

स्त्री चेतना की अवधारणा

स्त्री चेतना का तात्पर्य केवल लैंगिक समानता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आत्मबोध, आत्मसम्मान और स्वतंत्र अस्मिता से जुड़ी है। गीतांजलि श्री पर पश्चिमी नारीवाद का प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं, बल्कि भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में विकसित दृष्टि है। वे स्त्री को पुरुष के प्रतिपक्ष में नहीं, बल्कि मनुष्य की समग्र स्वतंत्रता के हिस्से के रूप में प्रस्तुत करती हैं। गीतांजलि श्री के यहाँ स्त्री चेतना किसी शोर–शराबे या नारेबाज़ी में नहीं, बल्कि जीवन गहन और सूक्ष्म स्तरों पर उभरती है। गीतांजलि श्री के साहित्य में स्त्री चेतना एक ऐसी अवधारणा है जो व्यक्तिगत अस्मिता, सांस्कृतिक स्मृति और ऐतिहासिक संवेदनाओं को एक साथ लेकर चलती है। उनकी रचनाएँ दिखाती हैं कि स्त्री का संघर्ष केवल बराबरी के अधिकार का नहीं, बल्कि अपने होने को समझने और रचने की सतत प्रक्रिया है।

सांस्कृतिक पहचान की अवधारणा

सांस्कृतिक पहचान वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति या समुदाय अपनी परंपरा, भाषा, स्मृति और रीति–रिवाज़ों से जुड़ा रहता है। आधुनिकता और वैश्वीकरण के दबाव में यह पहचान संकटग्रस्त हो जाती है। गीतांजलि श्री अपने उपन्यासों में इसी संकट और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न स्त्री–अनुभवों को केंद्र में रखती हैं। स्त्री चेतना को वे भारतीय समाज की ऐतिहासिक स्मृतियों से जोड़ती हैं। रेत समाधि में बँटवारे की त्रासदी से गुज़रती वृद्धा की यात्रा बताती है कि निजी अनुभव कैसे सामूहिक इतिहास से जुड़ते हैं। यह चेतना स्त्री को केवल घर की नहीं, पूरे समाज और इतिहास की संवाहक बनाती है।

***शोध छात्र, हिन्दी विभाग, म्युनि. महिला आर्ट्स-कॉमर्स एण्ड होम साइन्स कॉलेज, गोंडल (गुजरात)**

गीतांजलि श्री का कथा–संसार

उनकी प्रमुख कृतियाँ –

माई (1993) हमारा शहर उस बरस (1998) तिरोहित (2001)

खाली जगह (2006) रेत समाधि (2018)

कहानी–संग्रह – अनुगूँज, वैराग्य, यहाँ हाथी रहते थे।

इन सभी कृतियों में स्त्री जीवन की बहुपरतीय परतें मिलती हैं – मौन पीड़ा, स्मृति, विस्थापन, आत्मसंघर्ष और स्वतंत्रता की चाह।

'माई': मौन पीड़ा से चेतना तक

माई गीतांजलि श्री का पहला उपन्यास है। इसमें स्त्री जीवन, परिवार और समाज की परतों को बहुत गहराई से उकेरा गया है। "माई" यानी माँ – लेकिन यहाँ माँ सिर्फ़ परिवार की गृहिणी नहीं, बल्कि स्त्री की अस्मिता और मौन संघर्ष का प्रतीक है। उपन्यास की नायिका 'माई' एक साधारण गृहिणी है, जो परंपरागत भूमिका में बंधी रहती है। उसका जीवन बच्चों की दृष्टि से चित्रित होता है, जिससे उसकी मौन पीड़ा सामने आती है। यहाँ स्त्री चेतना विद्रोही न होकर संवेदनशील मौन में छिपी है। माई की सांस्कृतिक पहचान परिवार और परंपरा तक सीमित है, परंतु उसकी पीड़ा नई पीढ़ी को प्रश्न करने के लिए प्रेरित करती है। उपन्यास के अंत तक माँ की चुप्पी धीरे-धीरे बोलने लगती है। वह अपने अस्तित्व की पहचान कराती है और परिवार को एहसास कराती है कि माई सिर्फ़ "त्याग" नहीं है, बल्कि उसका भी व्यक्तित्व है।

'हमारा शहर उस बरस': विभाजन और स्मृति की त्रासदी

यह उपन्यास 1947 के भारत विभाजन की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसमें बनारस (काशी) शहर और वहाँ के लोग विभाजन के दौर में किस तरह भय, हिंसा और असुरक्षा से गुजरते हैं, उसका चित्रण है। इसमें सिर्फ़ ऐतिहासिक-राजनीतिक विघटन नहीं, बल्कि आम इंसान की निजी ज़िंदगी, रिश्तों और भावनाओं पर पड़े असर को दिखाया गया है। इस उपन्यास में भारत–पाक विभाजन और साम्प्रदायिक हिंसा की पृष्ठभूमि है। स्त्रियाँ हिंसा की शिकार होते हुए भी स्मृति और रिश्तों की संवाहक बनती हैं।उनकी सांस्कृतिक पहचान टूटे हुए शहर और बिखरे समुदाय के बीच भी जीवित रहती है।

'तिरोहित' और 'खाली जगह': अस्मिता की तलाश

तिरोहित" गीतांजलि श्री का एक उपन्यास है, जो एक रहस्यमय, अप्रकट ढंग से घटित होने वाली घटनाओं पर आधारित है, जिसमें पात्रों की आंतरिक मनोदशाओं, इच्छाओं और जीवन की वास्तविकताओं के बीच की दूरी पर केंद्रित किया गया है। यह उपन्यास दो मुख्य किरदारों ललना और भतीजे की स्मृति और चेतना के माध्यम से उनके रिश्तों और स्त्री पात्रों के घरेलू जीवन की बारीकियों को गहराई से उकेरता है। खाली जगह" एक ऐसा उपन्यास है जो एक बम विस्फोट के बाद की त्रासदी और उसमें फँसे लोगों की कहानियों को दर्शाती है। यह उपन्यास हिंसा और यथार्थवाद के बीच तालमेल बिठाते हुए एक माँ की कहानी कहता है, जिसने अपने बेटे के अवशेषों के साथ एक बच्चे को बचाया है। इसके अतिरिक्त, अमृता प्रीतम द्वारा लिखित "एक खाली जगह" भी एक ऐसा उपन्यास है जो एक गरीब घर की लड़की के जीवन में एक विधवा के बेटे से शादी करने के बाद आने वाली दुविधाओं और उसके जीवन की "खाली जगह" पर केंद्रित है।

'रेत समाधि': स्वतंत्रता और सांस्कृतिक स्मृति

गीतांजलि श्री का बुकर विजेता उपन्यास "रेत समाधि" (2018, अंग्रेज़ी अनुवाद Tomb of Sand, Daisy Rockwell द्वारा) स्वतंत्रता और सांस्कृतिक स्मृति के संदर्भ में बेहद महत्त्वपूर्ण है। इस उपन्यास ने गीतांजलि श्री को

अंतरराष्ट्रीय पहचान दिलाई। उपन्यास की नायिका – अस्सी वर्षीय माँ – अपने जीवन के आखिरी पड़ाव पर भी स्वतंत्रता की तलाश करती है। स्वतंत्रता यहाँ केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि व्यक्तिगत और स्त्री की आत्मिक स्वतंत्रता है। वह परंपरागत सामाजिक–परिवारिक भूमिकाओं से बाहर निकलकर स्वतंत्र अस्तित्व जीने की चाह रखती है। इस खोज में वह सीमाएँ तोड़ती है – उम्र की, स्त्री होने की, और यहाँ तक कि राष्ट्र की सीमा (भारत–पाक) की भी। उपन्यास विभाजन और उससे जुड़ी स्मृतियों को पुनर्जीवित करता है। माँ की यात्रा उसे उस अतीत में ले जाती है जहाँ विभाजन की त्रासदी, बँटते रिश्ते और टूटी हुई अस्मिताएँ हैं। यह यात्रा केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और ऐतिहासिक स्मृतियों से जुड़ी है। यहाँ स्त्री चेतना सबसे मुखर और स्वतंत्र रूप में प्रकट होती है। इस तरह उपन्यास याद दिलाता है कि इतिहास केवल किताबों में नहीं, बल्कि लोगों की स्मृतियों में जीवित रहता है।

कहानियों में स्त्री चेतना

1. अनुगूँज में पारिवारिक और व्यक्तिगत संबंधों की जटिलता। कहानियों में स्त्री की अस्मिता, उसका अकेलापन, सामाजिक बंधन और आत्म-स्वतंत्रता की खोज प्रमुख है।

2. वैराग्य में स्त्री का आंतरिक वैराग्य और सामाजिक विसंगतियाँ। स्त्री पात्रों की सोच, संवेदना और उनके आत्म–संघर्ष इस संग्रह का केंद्र हैं।

3. यहाँ हाथी रहते थे में इतिहास और वर्तमान के बीच इसमें समाज, राजनीति, स्मृति और स्त्री–चेतना की जटिलताओं को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

स्त्री चेतना और सांस्कृतिक पहचान का अंतर्संबंध

1. गीतांजलि श्री के उपन्यासों में स्त्री चेतना और सांस्कृतिक पहचान का अंतसंबंध उनके संपूर्ण रचनात्मक संसार का प्रमुख सूत्र है। वे स्त्री को केवल पारंपरिक भूमिकाओं में नहीं, बल्कि बदलते समाज, स्मृति, इतिहास और भाषा के भीतर उसकी स्वायत्त उपस्थिति में देखती हैं। उनके यहाँ स्त्री का अनुभव व्यक्तिगत-सामूहिक, घरेलू-सार्वजनिक और अतीत-वर्तमान सभी स्तरों पर उभरता है। स्त्री चेतना सांस्कृतिक जड़ों की पुनः खोज से जुड़ी है।

2. सांस्कृतिक पहचान आधुनिकता–परंपरा के द्वंद्व में नए अर्थ ग्रहण करती है। गीतांजलि श्री विभाजन, औपनिवेशिक इतिहास, आधुनिकता और उत्तर–औपनिवेशिक समय को स्त्री की दृष्टि से पढ़ती हैं। उनकी स्त्रियाँ सांस्कृतिक स्मृतियों और परंपराओं को ढोते हुए भी उन पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं। उदाहरणार्थ, 'रेत समाधि' में माँ-बेटी का पाकिस्तान यात्रा करना सीमाओं, राष्ट्र और पहचान के स्थिर अर्थों को तोड़ता है।

3. गीतांजलि श्री के उपन्यास स्त्री चेतना को ऐसी सांस्कृतिक पहचान से जोड़ते हैं जो सीमाओं, भाषाओं और इतिहास से परे जाकर नई स्त्री-संवेदनशील दुनिया की कल्पना करती है। यही उनका साहित्यिक वैभव और समकालीन स्त्री विमर्श में महत्त्व है। स्त्री का निजी संघर्ष सामूहिक स्मृति और सांस्कृतिक अस्मिता से जुड़ जाता है।

आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य

आलोचक मानते हैं कि गीतांजलि श्री स्त्री को देवी या दासी नहीं, बल्कि संपूर्ण मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करती है। आत्मान्वेषण: आलोचकों ने माई, हमारा शहर उस बरस और रेत समाधि को स्त्री की आत्म-खोज का दस्तावेज़ माना है। पितृसत्ता पर प्रश्न: वे परंपरागत पारिवारिक ढाँचे, विवाह और मातृत्व के 'एकमात्र' अर्थ को चुनौती देती हैं। मौन की राजनीति: स्त्री के मौन को कमजोरी नहीं बल्कि प्रतिरोध और वैकल्पिक अभिव्यक्ति के रूप में देखा गया है। उनकी भाषा में बहुअर्थकता और शिल्प में प्रयोगशीलता है। वे सांस्कृतिक पहचान को स्थिर न मानकर प्रवाहमान और पुनर्निर्मित मानती हैं। उनके उपन्यास जाति, धर्म, युद्ध, विस्थापन, पर्यावरण और शहरीकरण जैसे मुद्दों से भी संवाद करते हैं। आलोचक मानते हैं कि स्त्री अनुभव को व्यापक सामाजिक संदर्भ से जोड़ना उनकी प्रमुख विशेषता है, जिससे उपन्यास केवल व्यक्तिगत कथा नहीं रहते।

निष्कर्ष

गीतांजलि श्री के कथा-संसार में स्त्री चेतना और सांस्कृतिक पहचान का विकास गहन, बहुआयामी और संवेदनशील है। उनके उपन्यासों और कहानियों में स्त्री केवल पारंपरिक गृहिणी या मातृभूमि के प्रतीक के रूप में नहीं, बल्कि स्वतंत्र, आत्मनिहित और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में सक्रिय व्यक्तित्व के रूप में प्रकट होती है। माई में स्त्री की मौन पीड़ा और धीरे-धीरे प्रकट होती चेतना, हमारा शहर उस बरस में विभाजन और स्मृति की त्रासदी में उसकी सांस्कृतिक पहचान, तिरोहित और खाली जगह में अस्मिता की खोज, तथा रेत समाधि में व्यक्तिगत और ऐतिहासिक स्मृतियों से जुड़ी स्वतंत्रता – ये सभी कृतियाँ यह दर्शाती हैं कि स्त्री चेतना व्यक्तिगत संघर्ष और सामाजिक-सांस्कृतिक जड़ों के बीच लगातार संवाद करती रहती है।

गीतांजलि श्री का साहित्य स्त्री के अनुभव को निजी और सामूहिक, अतीत और वर्तमान, परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व में समेटता है। उनकी रचनाओं में स्त्री की आत्म-खोज, मौन की राजनीति और सांस्कृतिक स्मृतियों की पुनः प्रस्तुति एक ऐसी बहुआयामी दृष्टि प्रदान करती है, जो स्त्री विमर्श को केवल समानता के स्तर तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उसे सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भों में जीवित और गतिशील बनाती है। इस प्रकार, गीतांजलि श्री का कथा-संसार समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री चेतना और सांस्कृतिक पहचान के अंतर्संबंधों की स्पष्ट और संवेदनशील अभिव्यक्ति के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

संदर्भ :-

1. श्री, गीतांजलि. (1993). *माई*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
2. श्री, गीतांजलि. (1998). *हमारा शहर उस बरस*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
3. श्री, गीतांजलि. (2001). *तिरोहित*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
4. श्री, गीतांजलि. (2006). *खाली जगह*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
5. श्री, गीतांजलि. (2018). *रेत समाधि*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
6. वैराग्य, अनुगूँज. *यहाँ हाथी रहते थे*.
7. शर्मा, नामवर. (2005). *हिंदी साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
8. सिंह, मृदुला. (2019). "गीतांजलि श्री के उपन्यासों में स्त्री चेतना." *आधुनिक साहित्य विमर्श*, खंड 4.

हिंदी कविता : आज़ादी की संघर्ष-गाथा

बेबी कुमारी*
msbabykumari@gmail.com

शोध–सार :

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम केवल राजनीतिक आंदोलनों और सामाजिक संघर्षों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भारतीय साहित्य, विशेषकर हिंदी कविता में भी अपनी अमिट छाप छोड़ता है। हिंदी कविता स्वतंत्रता की चेतना का सबसे प्रभावशाली माध्यम बनी। कवियों ने जनता को जागृत किया, अंग्रेज़ी शासन की अन्यायपूर्ण नीतियों पर प्रहार किया और राष्ट्रीय एकता व आत्मसम्मान की भावना को सुदृढ़ किया। हिंदी कविता ने इस प्रकार स्वतंत्रता आंदोलन की संघर्ष-गाथा रच दी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी कविता केवल साहित्यिक कृतियाँ नहीं रही, बल्कि यह आंदोलन की धड़कन बनी।गाँव-गाँव में गाई जाने वाली कविताएँ लोगों को एकजुट करती थीं। छात्र आंदोलनों में कविताएँ नारे का काम करती थीं। क्रांतिकारियों की कविताएँ जेल की दीवारों में गूँजती थीं। इस प्रकार कविता ने पूरे समाज को स्वतंत्रता संग्राम की ओर प्रेरित किया।

बीज–शब्द :–

प्रभावशाली, अन्यायपूर्ण, आत्मसम्मान, दमनकारी, नवजागरण, ऐतिहासिक, राष्ट्रीयता, बलिदानी, अत्याचार.

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से भारतीय समाज में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार होने लगा। अंग्रेज़ी शासन की दमनकारी नीतियों और शोषण से जनता त्रस्त थी। इस दौर में साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं रहा, बल्कि यह जन-जागरण का शस्त्र बन गया। भारतेंदु हरिश्चंद्र को हिंदी नवजागरण का प्रवर्तक कहा जाता है। उन्होंने साहित्य को सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय अस्मिता से जोड़ा।" राष्ट्रीयता एक मनोभावना है जिसका मूल आधार है राष्ट्र का कल्याण। राष्ट्र के प्रति समर्पित प्रेम, श्रद्धा, आस्था और मानव समाज के सामूहिक विकास की तन, मन, धन से मंगलकामना करना ही राष्ट्रीयता है। राष्ट्रीयता एक बलिदानी भावना, आन्तरिक उद्वेलित अनुभूति और सामूहिक चिंतनधारा है। इसमें अपने देश के प्रति, जाति, वर्ग, वर्ण, सम्प्रदाय, धर्म, सीमित भू-भाग आदि की संकीर्ण मनोभावना से बचते हुए, समग्र देश और उसके अन्तर्गत निवास करने वाली समस्त जातियों, आंचलिकताओं, संश्लिष्ट संस्कृतियों, रीति-रिवाजों, सम्यताओं और सभी धर्मों के लिए प्रेम हो, गर्व हो, गौरव हो, आत्मसम्मान, स्वाभिमान और आत्मोत्सर्ग हो।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि 'राष्ट्रीयता' की भावना सामूहिकता में विकसित होती है। राष्ट्रीयता व्यक्ति के निजी व्यक्तित्व को तिरोहित कर देती है। राष्ट्रीयता में विश्वास रखने वाले व्यक्ति का रिश्ता संपूर्ण देश के साथ स्वयंमेव जुड़ जाता है। राष्ट्र का कल्याण और मानव–कल्याण ही राष्ट्रीयता के आधार बिंदु हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की हिंदी कविता और राष्ट्रीय स्वर

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850–1885)

दरअसल,भारतेंदु युग की कविताओं में ही सर्व प्रथम स्वाधीनता आंदोलन की झलक मिलती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी साहित्य को राष्ट्रप्रेम की दिशा दी। उनके नाटकों और कविताओं में स्वतंत्रता की आकांक्षा दिखाई देती है। यद्यपि भारतेंदु की प्रसिद्ध कृति 'भारत दुर्दशा' एक नाटक है लेकिन उसका जो पहला अंक है वह पूर्ण रूप से पद्यमय है। उसमें भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा है–

* **शोधार्थी (नेट , जे . आर . एफ), विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा**

हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई।।
अँगरेजराज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।।[2]

भारत की दुर्दशा पर आँसू बहाते भारतेंदु हरिश्चंद्र दरअसल उक्त पंक्तियों के माध्यम से जनता को जगाने का प्रयास कर रहे हैं.

उनकी प्रसिद्ध पंक्तियाँ—

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल।।"[3]

यह सीधे-सीधे भाषा और स्वतंत्रता के बीच संबंध को स्पष्ट करती हैं।

द्विवेदी युग की हिंदी कविता और राष्ट्रीय स्वर

द्विवेदी युग (1900–1920) में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ा। इसी काल में मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवि उभरे।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्रकवि इसलिए कहा गया क्योंकि उनकी रचनाएँ सीधे स्वतंत्रता आंदोलन की भावभूमि से जुड़ी हुई थीं। भारत-भारती ने हर वर्ग के भारतीयों को एकजुट किया। उनकी कविताओं में प्राचीन भारत का गौरव और स्वतंत्रता की आकांक्षा दोनों मिलते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती (1912) स्वतंत्रता संग्राम की अमर कृति है। वे लिखते हैं—

"हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।"[4]

इन पंक्तियों ने जनता को अपने अतीत और वर्तमान का बोध कराते हुए स्वतंत्रता की ओर प्रेरित किया।

वे लिखते हैं—

"सिन्धु हिंद का है, हिमालय है हिंद का,
दोनों ही तो अभिमान हैं हिंद का।"[5]

यह पंक्तियाँ राष्ट्रीय गौरव और आत्मसम्मान का उद्घोष करती हैं।

छायावादी युग की हिंदी कविता और राष्ट्रीय स्वर

जयशंकर प्रसाद

छायावाद के आधार स्तंभ जयशंकर प्रसाद ने अतीत के गौरवपूर्ण इतिहास को अपनी कविताओं में दोहराकर राष्ट्रीय आंदोलन को गति प्रदान करने की कोशिश की है। यद्यपि वे गांधीवाद के समर्थक थे लेकिन अपने देश पर आसन्न संकट को देख कर खड्ग उठाने का आह्वान करने में संकोच नहीं करते। उक्त संदर्भ में लिखा है–

"वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान
वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य-संतान
जियें तो सदा इसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष"[6]

उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि प्रसादजी कभी भी युद्ध और अशांति की बात नहीं करते परन्तु वे पूरी दुनिया को यह बता देना चाहते हैं कि अगर देश पर बात आएगी तो भारतीय जनता अपने शौर्य और साहस का प्रदर्शन करने में जरा भी संकोच नहीं करेगी। कोई अगर शांति और धैर्य को भारत की कमजोरी समझता है तो वह उसकी भारी भूल है।

छायावाद युग में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा जैसे कवियों ने साहित्य में नई भावधारा प्रस्तुत की। यद्यपि छायावाद का केंद्र बिंदु आत्मानुभूति और प्रकृति था, फिर भी राष्ट्रीयता की ध्वनि भी उसमें प्रमुख रही।

जयशंकर प्रसाद ने ऐतिहासिक चेतना के माध्यम से स्वतंत्रता का स्वर उठाया।
निराला की कविता "तोड़ दो ये मानव श्रृंखला" स्वतंत्रता की जंजीरों को तोड़ने का उद्घोष है।
महादेवी वर्मा ने अपनी करुणा-पूर्ण संवेदना में दासता की पीड़ा को उकेरा।

दरअसल पंतजी की प्रवृत्ति अन्य हिंदी–साहित्यकारों की अपेक्षा भिन्न थी। राष्ट्र की पीड़ा, राष्ट्र का दुख, राष्ट्र की परतंत्रता से वे भी द्रवित थे लेकिन उन्होंने अपनी भावनाओं को कविताओं में विशिष्ट ढंग से अभिव्यक्त किया है। वे सीधे–सीधे अभिधा में युद्ध और क्रांति की घोषणा नहीं करते बल्कि भारत के सौंदर्य और भारतमाता की उदास मूर्ति का वर्णन कर के देश के युवाओं को राष्ट्रीयता से जोड़ने का प्रयास करते हैं। कवि पंत की निम्नांकित पंक्तियां दृष्टव्य हैं –

"भारत माता ग्रामवासिनी।
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल,
गंगा यमुना में आँसू जल,
मिट्टी कि प्रतिमा उदासिनी।"[7]

उपर्युक्त पंक्तियों में भारत माता के दुख को पंत जी ने जिस प्रकार अभिव्यक्त किया है वह अन्यतम है। अंग्रेजों के जूते भारत भूमि को रौंद रहे थे। उसी क्रम में धरती से जो धूल उठती है वह भारत माता के आंचल को धूल धूसरित कर देती है। स्वाभाविक है कि भारत के कोटि–कोटि पुत्र अपनी माँ की यह अवस्था देख कर शांत बैठने की स्थिति में नहीं थे।

छायावादोत्तर युग की हिंदी कविता और राष्ट्रीय स्वर

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतुर्वेदी की कविताएँ स्वतंत्रता आंदोलन के सैनिकों और बलिदानियों का प्रतीक बनीं। पुष्प की अभिलाषा ने युवाओं के हृदय में मातृभूमि के लिए प्राण न्यौछावर करने की चेतना जगाई—

"मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाएँ वीर अनेक।"[8]

यह कविता स्वतंत्रता संग्राम के समय विद्यालयों और सभाओं में गाई जाती थी।

द्विवेदी युग के अन्य कवियों ने भी भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को धार देने में कोई कोताही नहीं बरती। नाथूराम शर्मा शंकर, श्रीधर पाठक, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही राय देवीप्रसाद पूर्ण, रामनरेश त्रिपाठी आदि ने भी अपनी राष्ट्रीय भावना से आप्लावित रचनाओं के माध्यम से जन–जन तक क्रांतिकारी चेतना को प्रसारित किया ।

सुभद्रा कुमारी चौहान

दरअसल सुभद्रा कुमारी चौहान को माखनलाल चतुर्वेदी जैसे राष्ट्रवादी साहित्यकार का पूरा साथ मिला। 'वीरों का कैसा हो वसंत' कविता में वे देश की तरुणाई को जगाती हैं। उक्त कविता की निम्नांकित पंक्तियां दृष्टव्य हैं–

"कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके, तुझमें क्यों लगी आग?
ऐ कुरुक्षेत्र! अब जाग, जाग,
बतला अपने अनुभव अनंत,
वीरों का कैसा हो वसंत?"[9]

महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि अन्य राष्ट्रवादी काव्यधारा के कवियों ने जहां युवकों को अपनी रचनाओं के केंद्र में रखा है वहीं सुभद्रा जी ने स्त्रियों को भी ललकारा है।

सोहनलाल द्विवेदी

सोहनलाल द्विवेदी की प्रसिद्धि का आधार उनकी राष्ट्रीय भावधारा से ओतप्रोत कवितायेँ हैं। स्वतंत्रता के लिए द्विवेदी जी किस स्तर तक समर्पित थे वह उनकी निम्नांकित पंक्तियों में अभिव्यक्त होता है–

"अशेष रक्त तोल दो,
स्वतंत्रता का मोल दो,
कड़ी युगों की खोल दो,
डरो नही,
मरो नहीं,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।"[10]

उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि सोहनलाल द्विवेदी ने अपनी रचनाओं से युवाओं की मनःस्थिति को स्वतंत्रता की ओर उन्मुख करने का सकारात्मक प्रयास किया है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' और क्रांति का स्वर

डॉ. छोटेलाल दीक्षित ने राष्ट्रकवि दिनकर के संदर्भ में ठीक ही लिखा है–

"राष्ट्रकवि (दिनकर) अपने देश की धरती और जनता से प्रेम करता है, उसके हृदय में देश के प्रति अपना सब कुछ अर्पित करने वाले जन-नायकों के प्रति अप्रतिम श्रद्धा होती है।" स्पष्ट है कि दिनकर के लिए राष्ट्र की स्वतंत्रता और अखंडता सर्वोपरि थी। उनकी दृष्टि में कविताएं तभी सार्थक कही जा सकती हैं जब वे मानव के हृदय को संवेदित करने में सक्षम हों। राष्ट्र की परतंत्रता की स्थिति में दिनकर के काव्य ने युवाओं को जिस प्रकार प्रेरित किया वह अपने आप में श्रेष्ठ काव्य का अन्यतम उदाहरण है।"[11]

रामधारी सिंह दिनकर स्वतंत्रता आंदोलन के क्रांतिकारी कवि रहे। उनकी कविताओं में शक्ति, पराक्रम और विद्रोह की गूँज सुनाई देती है। 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में उनकी कविताएँ प्रेरणा का स्रोत बनीं।

उनकी पंक्तियाँ—

"सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।"[12]

यह कविता स्वतंत्रता के बाद भी जन-क्रांति का प्रतीक बनी रही।

आरसी प्रसाद सिंह

आरसी प्रसाद सिंह ने राष्ट्रीय आंदोलन से प्रेरित कविताओं के माध्यम से युवाओं की चेतना को झकझोरा है। हमेशा स्वतंत्रता की कामना करने वाले कवि आरसी प्रसाद परतंत्रता से क्षुब्ध होकर लिखते हैं–

"एक निमिष की पराधीनता से बढ़कर है मृत्यु भली
और दासता के हलवे से भली मुक्ति की मूंगफली।"[13]

उपर्युक्त पंक्तियों से कवि की भावना का स्पष्ट पता चलता है।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त भी अनेक कवियों ने राष्ट्रीय आंदोलन को केंद्र में रख कर कविताएं लिखीं और जन समुदाय को प्रेरित किया। बालकृष्ण शर्मा नवीन, शिवमंगल सिंह सुमन, श्याम नारायण पांडे, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, माधव शुक्ल, रामचरित उपाध्याय, गुरुभक्त सिंह भक्त, तोरन देवी शुक्ल, बंशीधर शुक्ल, छैल बिहारी दीक्षित, करुणाशंकर

शुक्ल करुणेश आदि अनेक कवियों की वैसी रचनाएं उस दौर में प्रकाश में आईं जब भारत परतंत्रता की बेड़ियों से जकड़ा था। आजादी से पहले बहुत कवियों ने छद्म नामों से भी कविता लिखी और देशवासियों को जागृत किया।

क्रांतिकारी कवि और लोकधारा

स्वतंत्रता आंदोलन में कवि केवल साहित्यिक मंचों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि क्रांतिकारी कवियों ने इसे जन-आंदोलन बनाया। रामप्रसाद बिस्मिल की कविता "सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है"[14] आज भी देशभक्ति की ध्वजा है। अशफ़ाक़ उल्ला खाँ, भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद आदि क्रांतिकारियों ने कविता को हथियार बनाया।

इन कविताओं ने जेल की कोठरियों में भी स्वतंत्रता का दीप जलाए रखा। अंततः सभी के समन्वित प्रयास से भारत को 1947 ई. में स्वतंत्रता मिली। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक हिंदी कविता के योगदान को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। देशभक्ति कविताओं से रंगे पन्ने इस बात की हर युग में गवाही देंगे कि हिंदी कवियों ने अंग्रेजी दमन का सामना सीना तान कर किया था। वे न झुके, न रुके। उन्होंने अंग्रेजों के शोषण का यथार्थ अपनी कविताओं में अभिव्यक्त कर के युवा पीढ़ी को जगाया और अंततः भारत की स्वतंत्रता के सपने को साकार किया।

निष्कर्ष

हिंदी कविता भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की जीवंत संघर्ष-गाथा है। भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर दिनकर तक कवियों ने जनता को जगाने, अत्याचार के विरुद्ध खड़े होने और बलिदान की भावना जगाने का काम किया। यह कविताएँ केवल साहित्यिक धरोहर नहीं हैं, बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन का ऐतिहासिक दस्तावेज़ भी हैं। अतः कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता संग्राम की आत्मा को समझने के लिए हिंदी कविता का अध्ययन अनिवार्य है।

संदर्भ :

1. गुप्त, मैथिलीशरण. (1912). *भारत-भारती*. प्रयाग: भारतीय साहित्य परिषद्.
2. चतुर्वेदी, माखनलाल. (1930). *हिमकण*. इलाहाबाद: लोकभारती.
3. दिनकर, रामधारी सिंह. (1947). *हुंकार*. पटना: छात्र सेवा समिति.
4. प्रसाद, जयशंकर. (1936). *कामायनी*. प्रयाग: सरस्वती प्रेस.
5. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. (1929). *परिमल*. प्रयाग: लोकभारती.
6. मिश्र, नामवर. (1991). *हिंदी कविता और राष्ट्रीय चेतना*. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
7. शर्मा, रामविलास. (1984). *भारतीय कविता का इतिहास*. दिल्ली: लोकभारती.
8. गुप्त, मैथिलीशरण. (1984). *भारत–भारती* (दशम संस्करण). झांसी: साहित्य सदन. (प्रस्तावना से)
9. दीक्षित, छोटेलाल. (प्रथम संस्करण). *दिनकर का रचना संसार*. पृ. 61.
10. सिंह, जितेंद्र कुमार. (2013). *प्रगतिवादी भावना में आरसी प्रसाद सिंह का योगदान*. प्रगतिशील प्रकाशन. पृ. 112.
11. कविता कोष. (2025 अगस्त). *Kavitakosh.org* से प्राप्त. http://www.kavitakosh.org
12. साहित्यपीडिया. (2025 अगस्त). *Sahityepedia.com* से प्राप्त. http://www.sahityepedia.com

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) में हिन्दी और संस्कृत भाषा का अंतर्संबंध

परमार विभूतिबेन सुरेशभाई*

vibhutiparmar872002@gmail.com

सारांश

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 भारत की सांस्कृतिक और भाषाई विरासत को संरक्षित करते हुए 21वीं सदी की शिक्षा प्रणाली को सशक्त बनाने का एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। यह नीति हिंदी और संस्कृत के बीच गहरे ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक अंतर्संबंध को रेखांकित करती है। हिंदी, जो संस्कृत से विकसित एक आधुनिक भारतीय भाषा है, संचार और शिक्षा का माध्यम है, जबकि संस्कृत प्राचीन भारतीय ज्ञान, साहित्य और दर्शन का स्रोत है। NEP 2020 में त्रिभाषा सूत्र के माध्यम से दोनों भाषाओं को एकीकृत किया गया है, जिसमें हिंदी मातृभाषा और संस्कृत शास्त्रीय भाषा के रूप में शामिल हो सकती है। यह नीति डिजिटल संसाधनों, शिक्षक प्रशिक्षण, और अंतःविषय दृष्टिकोण के माध्यम से हिंदी और संस्कृत को समृद्ध करती है, जिससे सांस्कृतिक निरंतरता, राष्ट्रीय एकता, और वैश्विक प्रासंगिकता को बढ़ावा मिलता है। दोनों भाषाएँ मिलकर समावेशी शिक्षा, सांस्कृतिक गौरव, और भारतीय ज्ञान परंपराओं को जनसमुदाय तक पहुँचाने में ओर वैश्विक मंच पर महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

मुख्य शब्द : *राष्ट्रीय शिक्षा नीति, NEP 2020, हिन्दी, संस्कृत, भाषा, त्रिभाषा फॉर्मूला*

प्रस्तावना

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21वीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास को अग्रेसर करने के लिए प्रयुक्त है। यह शिक्षा नीति भारत की परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को यथावत रखते हुए, 21वीं सदी की शिक्षा के संयोजन में शिक्षा व्यवस्था, उसके नियमन और गवर्नेनेंस सहित, सभी पक्षों के सुधार और पुनर्गठन का प्रस्ताव रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रत्येक व्यक्ति में निहित रचनात्मक क्षमताओं के विकास पर विशेष जोर देती है। यह नीति इस सिद्धांत पर आधारित है कि शिक्षा से न केवल साक्षरता और संख्याज्ञान जैसी बुनियादी क्षमताओं के साथ-साथ उच्चतर स्तर की तार्किक और समस्या समाधान संबंधी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास एवं नैतिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर भी व्यक्ति का विकास होना आवश्यक है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भाषाओं का संवर्धन

विभिन्न भाषाएँ दुनिया को भिन्न तरीके से देखती हैं। विशेष रूप से, किसी संस्कृति के लोगों का दूसरों के साथ बात करना जैसे परिवार के सदस्यों, प्राधिकार प्राप्त व्यक्तियों, समकक्षों, अपरिचित आदि भाषा से प्रभावित होता है तथा बातचीत के तौर-तरीकों को भी प्रभावित करती है। हमारी भाषाओं में संस्कृति समाहित है। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति में संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार के विषय को समाहित किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में त्रिभाषा फॉर्मूला

1964-1966 के शिक्षा आयोग ने एक संशोधित या क्रमिक त्रिभाषा फार्मूले की सिफारिश की थी। कुछ समय के बाद, मूल त्रिभाषा फार्मूला 1968 में भारत की संसद द्वारा अपनाया गया।

* **पीएच.डी. संशोधन छात्र, संस्कृत भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट**

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भाषा के विकास हेतु त्रि-भाषा सूत्र को पुनर्निर्माण किया गया है, जो भारत की भाषाई विविधता को बढ़ावा देने और राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने एवं हमारी संस्कृति को जीवित रखने का योगदान प्रदान करता है।

पहली भाषा: मातृभाषा या राज्य/क्षेत्रीय भाषा (हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी)।

दूसरी भाषा: कोई अन्य आधुनिक भारतीय भाषा (जैसे तमिल, बंगाली, या अंग्रेजी)।

तीसरी भाषा: कोई भी भारतीय भाषा, जिसमें संस्कृत या अन्य शास्त्रीय भाषाएँ (जैसे तमिल, तेलुगु, या पालि) शामिल हो सकती हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में हिन्दी ओर संस्कृत भाषा का अंतर्संबंध

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में हिंदी और संस्कृत को भारत की भाषाओं में महत्वपूर्ण भाषा के रूप में देखा गया है। दोनों भाषाएँ भाषाई और सांस्कृतिक स्तर पर एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं, ओर शिक्षा के क्षेत्र में भी इनके बीच एक गहरा अंतर्संबंध है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इन दोनों भाषाओं को शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करके भारत की सांस्कृतिक निरंतरता, समावेशिता और वैश्विक प्रासंगिकता को बढ़ावा देता है। हिंदी और संस्कृत के अंतर्संबंध को NEP 2020 के संदर्भ में समझाया गया है:

1. सांस्कृतिक और ऐतिहासिक अंतर्संबंध

❖ **ऐतिहासिक में हिन्दी ओर संस्कृत भाषा**

हिंदी और संस्कृत का ऐतिहासिक और भाषाई संबंध है। हिंदी एक इंडो-आर्यन भाषा है, जो संस्कृत से विकसित हुई है। "संस्कृत प्राचीनता की आधारशिला है और हिन्दी उसकी संतति रूप में विकसित हुई वाणी, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य करती है।" संस्कृत को हिंदी सहित कई आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी माना जाता है। हिंदी का शब्द भंडार, व्याकरण और साहित्यिक परंपराएँ संस्कृत से प्रभावित हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में संस्कृत को प्राचीन भारतीय ज्ञान और साहित्य का स्रोत माना गया है, जबकि हिंदी को आधुनिक भारत की संचार और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की भाषा के रूप में देखा गया है। यह दोनों भाषाओं को सांस्कृतिक निरंतरता का हिस्सा बनाता है।

❖ **सांस्कृतिक अंतर्संबंध**

NEP 2020 में दोनों भाषाओं को भारत की सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण, संवर्धन और प्रचार के लिए महत्वपूर्ण माना गया है। हिन्दी साहित्य की भूमिका में भी कहा गया है कि "संस्कृत हमारी सांस्कृतिक चेतना की जननी है और हिन्दी उसकी सहज संतान।" संस्कृत प्राचीन ग्रंथों के माध्यम से भारतीय दर्शन, विज्ञान और संस्कृति को प्रस्तुत करती है, एवं हिंदी आधुनिक साहित्य, कला, सिनेमा और मीडिया के माध्यम से इन परंपराओं को समाज तक पहुँचाती है।

नीति में संस्कृत के प्राचीन ज्ञान को हिंदी के माध्यम से आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करने की संभावना पर बल दिया गया है, जैसे कि संस्कृत ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद और शिक्षण। राष्ट्रीय शिक्षा नीति हिंदी और संस्कृत को सांस्कृतिक धरोहर के हिस्से के रूप में जोड़ता है।

2. शिक्षा में अंतर्संबंध

❖ **त्रिभाषा सूत्र:**

NEP 2020 में त्रिभाषा सूत्र में हिंदी और संस्कृत को एक साथ पढ़ाने का लचीलापन प्रदान किया गया है। हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी और संस्कृत को त्रिभाषा सूत्र के हिस्से के रूप में शामिल किया जा सकता है, जिसमें हिंदी मातृभाषा के रूप में और संस्कृत वैकल्पिक या तीसरी भाषा के रूप में पढ़ाई जा सकती है।

गैर-हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी और संस्कृत दोनों को वैकल्पिक भाषाओं के रूप में पढ़ाने का विकल्प है, जिससे दोनों भाषाएँ एक-दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए, एक छात्र स्थानीय भाषा, अंग्रेजी और संस्कृत या हिंदी में से किसी एक को चुन सकता है।

❖ **मातृभाषा और शास्त्रीय भाषा का समन्वय:**

हिंदी को प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा के रूप में उपयोग करने की सिफारिश की गई है, जो बच्चों की समझ और सीखने की प्रक्रिया को आसान बनाती है। दूसरी ओर, संस्कृत को शास्त्रीय भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है, जो प्राचीन ज्ञान और साहित्य तक पहुँच प्रदान करती है।

यह समन्वय हिंदी को आधुनिक शिक्षा का माध्यम बनाता है और संस्कृत को बौद्धिक और सांस्कृतिक गहराई प्रदान करता है। हिंदी में पढ़ाए जाने वाले पाठ्यक्रम में संस्कृत साहित्य या दर्शन को शामिल किया जा सकता है।

❖ **अंत:विषय दृष्टिकोण:** NEP 2020 संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में निहित ज्ञान को हिंदी के माध्यम से आधुनिक शिक्षा में एकीकृत करने की बात करता है। इससे हिंदी और संस्कृत का अंतर्संबंध और मजबूत होता है, क्योंकि हिंदी शिक्षण का माध्यम बनती है और संस्कृत सामग्री का स्रोत।

3. शिक्षण सामग्री और शिक्षक प्रशिक्षण में अंतर्संबंध

❖ **सामग्री विकास:** NEP 2020 में हिंदी और संस्कृत दोनों के लिए उच्च-गुणवत्ता वाली पाठ्यपुस्तकें, डिजिटल संसाधन और ऑनलाइन सामग्री विकसित करने पर जोर दिया गया है। ई-पुस्तकालय, डिजिटल टेक्स्टबुक, और ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म पर संस्कृत और हिन्दी सामग्री को एक साथ उपलब्ध कराने पर बल है।

विज्ञान, गणित, प्रौद्योगिकी आदि विषयों की सामग्री हिन्दी और संस्कृत दोनों में तैयार करने की पहल नीति में है। हिंदी में उपलब्ध शिक्षण सामग्री में संस्कृत साहित्य, दर्शन, या वैज्ञानिक अवधारणाओं को शामिल करके दोनों भाषाओं का उपयोग एक-दूसरे के पूरक के रूप में किया जा सकता है।

❖ **शिक्षक प्रशिक्षण:** NEP 2020 में शिक्षक प्रशिक्षण के लिए एक समन्वित दृष्टिकोण की सिफारिश की गई है, जिसमें हिंदी और संस्कृत शिक्षक एक-दूसरे के साथ सहयोग करके पाठ्यक्रम को अधिक प्रभावी बना सकते हैं। राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (NCTE) द्वारा तैयार किए जाने वाले प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में संस्कृत और हिन्दी दोनों के समन्वित मॉड्यूल शामिल करने की योजना है।हिंदी शिक्षक जहाँ मातृभाषा में शिक्षण पर ध्यान देते हैं, वहीं संस्कृत शिक्षक प्राचीन ग्रंथों और शास्त्रीय ज्ञान को पढ़ाने में विशेषज्ञता रखते हैं।

4. डिजिटल और तकनीकी एकीकरण में अंतर्संबंध

❖ **डिजिटल संसाधन:** NEP 2020 में हिंदी और संस्कृत दोनों को डिजिटल युग में प्रासंगिक बनाने के लिए डिजिटल संसाधनों, ऑनलाइन कोर्स, और ऐप्स के विकास पर जोर दिया गया है। संस्कृत ग्रंथों को डिजिटल रूप में संरक्षित करने और हिंदी में उनके अनुवाद को ऑनलाइन उपलब्ध कराने की योजना है। हिंदी के डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर संस्कृत की सामग्री को शामिल करके दोनों भाषाओं का उपयोग व्यापक दर्शकों तक पहुँचाया जा सकता है।

❖ **आधुनिक और प्राचीन का मेल:** हिंदी को आधुनिक तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा का माध्यम के रूप में देखा गया है, जबकि संस्कृत को प्राचीन ज्ञान का स्रोत माना गया है। संस्कृत के गणितीय या वैज्ञानिक ग्रंथों को हिंदी में पढ़ाया जा सकता है, जिससे दोनों भाषाएँ एक-दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करती हैं।

5. राष्ट्रीय और वैश्विक मंच पर अंतर्संबंध

❖ **राष्ट्रीय एकता:** हिंदी भारत की राष्ट्रीय एकता और संचार को मजबूत करती है, क्योंकि यह विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों को जोड़ने का काम करती है। दूसरी ओर, संस्कृत प्राचीन ज्ञान और सांस्कृतिक धरोहर को प्रस्तुत करती है,

जिसे हिंदी के माध्यम से जनसमाज तक पहुँचाया जा सकता है। NEP 2020 में हिंदी और संस्कृत दोनों को त्रिभाषा सूत्र में पढ़ाने का लचीलापन प्रदान करके राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक गौरव को बढ़ावा दिया गया है।

❖ **वैश्विक प्रासंगिकता:** NEP 2020 में भारतीय भाषाओं को वैश्विक मंच पर ले जाने की बात कही गई है। संस्कृत, जो योग, आयुर्वेद, और भारतीय दर्शन जैसी वैश्विक रुचि के क्षेत्रों से जुड़ी है, और हिंदी, जो विश्व स्तर पर तेजी से बोली जाने वाली भाषा बन रही है, मिलकर भारत की सॉफ्ट पावर को बढ़ा सकती हैं। नीति में सुझाव दिया गया है कि संस्कृत के ग्रंथों का हिंदी और अन्य भाषाओं में अनुवाद करके वैश्विक स्तर पर भारतीय ज्ञान को प्रचारित किया जाए।

6. सामाजिक प्रभाव में अंतर्संबंध

हिंदी और संस्कृत को बढ़ावा देने से शिक्षा सभी वर्गों तक पहुंचती है, खासकर उन लोगों तक जो अंग्रेजी में कमजोर हैं। यह सामाजिक समानता को बढ़ावा देता है। दोनों भाषाएं भारतीय संस्कृति और परंपराओं को पुनर्जनन करती हैं, जिससे युवा पीढ़ी अपनी जड़ों से जुड़ती है। NEP 2020 में हिंदी और संस्कृत का प्रचार भारत की भाषाई विविधता को बनाए रखने में मदद करता है, जो सामाजिक एकता ओर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को चरितार्थ करता है।

7.उच्च शिक्षा और अनुसंधान में योगदान

NEP 2020 में उच्च शिक्षा में संस्कृत को एक विषय के रूप में बढ़ावा देने की बात कही गई है, विशेष रूप से भारतीय दर्शन, साहित्य, और भाषा विज्ञान के अध्ययन के लिए। हिंदी, जो भारत में सबसे व्यापक रूप से बोली और समझी जाने वाली भाषा है, इस अनुसंधान को जनसामान्य तक पहुंचाने का माध्यम बनती है। संस्कृत के ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद और व्याख्या उच्च शिक्षा में अनुसंधान के लिए महत्वपूर्ण है। NEP 2020 में इस बात पर जोर दिया गया है कि भारतीय भाषाओं को वैश्विक मंच पर ले जाया जाए, और हिंदी और संस्कृत का संयुक्त अध्ययन इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

निष्कर्ष

NEP 2020 में हिंदी और संस्कृत का अंतर्संबंध सांस्कृतिक, शैक्षिक, और वैश्विक स्तर पर गहरा और पूरक है। हिंदी आधुनिक भारत की संचार और शिक्षा की भाषा के रूप में कार्य करती है, जबकि संस्कृत प्राचीन ज्ञान और सांस्कृतिक धरोहर का स्रोत है। त्रिभाषा सूत्र, डिजिटल संसाधन, शिक्षक प्रशिक्षण, और अंतःविषय दृष्टिकोण के माध्यम से दोनों भाषाएँ एक-दूसरे को समृद्ध करती हैं। यह अंतर्संबंध भारत की सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने, समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने, और वैश्विक मंच पर भारत की सॉफ्ट पावर को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संदर्भ :-

1. भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. नई दिल्ली: भारत सरकार प्रकाशन विभाग.
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. (प्रकाशन वर्ष उपलब्ध नहीं). *हिन्दी साहित्य की भूमिका*. बम्बई: हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय.
3. मीणा, महेंद्र सिंह. (2024). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भारतीय भाषाएं. *AIJRA – Asian International Journal of Research in Arts & Social Science, 9*(1), 40–45. Retrieved from https://www.ijcms2015.co/file/2024/aijra-vol-9-issue-1/aijra-vol-9-issue-1-40.pdf

संस्कृत और हिन्दी भाषा का अंतर्संबंध

ठेसिया दृष्टि मुकेशभाई*
drashtithesiya00@gmail.com

सारांश: (abstract):

संस्कृत और हिन्दी भाषा का संबंध भारतीय भाषिक एवं सांस्कृतिक परंपरा में अत्यंत गहरा है। संस्कृत भाषा की समृद्ध साहित्य परम्परा ने हिन्दी भाषा के साहित्य जगत को नई प्रेरणा दी है। संस्कृत भाषा का विलास हिन्दी भाषा उतर आया है। संस्कृत भाषा की शब्दावली, व्याकरण, छंद, अलंकार, हिन्दी भाषा के लिए प्रेरणा सूत्र है। हिन्दी की आरंभिक काव्यधारा — भक्ति काव्य—से लेकर आधुनिक साहित्य तक संस्कृत से प्रेरित विषय-वस्तु, शैली तथा शब्दावली की निरंतरता दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत भाषा ने हिन्दी को न केवल समृद्ध बनाया है बल्कि उसकी अभिव्यक्ति को विस्तारित करने में मदद की है।

शब्दकुंजी (Key words): *संस्कृत भाषा, हिन्दी भाषा, साहित्य, व्याकरण, अंतर्संबंध, संस्कृति।*

प्रस्तावना (Introduction):

भारतवर्ष की सांस्कृतिक और भाषिक परंपरा अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण रही है। यहाँ की भाषाएँ केवल संप्रेषण का साधन नहीं रही हैं, बल्कि ज्ञान, साहित्य, दर्शन, धर्म और संस्कृति की संवाहक भी रही हैं। इस परिप्रेक्ष्य में संस्कृत और हिन्दी का स्थान विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत को विश्व की सबसे प्राचीन, व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक भाषाओं में गिना जाता है। वहीं हिन्दी आज भारत की राजभाषा होने के साथ-साथ विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है।

संस्कृत और हिन्दी दोनों का पारस्परिक संबंध अत्यंत गहरा है। हिन्दी का उद्गम संस्कृत से हुआ है और उसकी शब्द-संपदा, व्याकरणिक संरचना एवं साहित्यिक परंपरा में संस्कृत का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। संस्कृत ने न केवल हिन्दी को जन्म दिया, बल्कि उसकी अभिव्यक्ति क्षमता, भाव-संपन्नता और वैज्ञानिकता को भी पुष्ट किया। इस शोध-पत्र का उद्देश्य संस्कृत और हिन्दी भाषा के बीच विद्यमान आंतर संबंधों का विवेचन करना है। इसमें दोनों भाषाओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, व्याकरणिक साम्य, शब्दावली का आदान-प्रदान, साहित्यिक परंपरा में योगदान तथा आधुनिक समय में संस्कृत के प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और विकास यात्रा (Historical Background and Evolutionary Journey):

संस्कृत का उद्भव और विकास: संस्कृत का इतिहास वैदिक काल (लगभग 1500-500 ईसा पूर्व) से शुरू होता है। यह दो मुख्य रूपों में विकसित हुई:

वैदिक संस्कृत: वेदों, उपनिषदों, और ब्राह्मण ग्रंथों की भाषा।

लौकिक संस्कृत: पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' द्वारा मानकीकृत, जो रामायण, महाभारत, और कालिदास की रचनाओं की भाषा बनी।[1]

संस्कृत से हिंदी तक का सफर: संस्कृत से हिंदी का विकास एक लंबी प्रक्रिया थी जो कई चरणों में हुई:

प्राकृत भाषाएं: संस्कृत से पाली, अर्धमागधी, शौरसेनी जैसी प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ। बौद्ध और जैन धर्म के ग्रंथ इन्हीं भाषाओं में लिखे गए।

* **पीएच.डी. संशोधन छात्र, संस्कृत भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट**

अपभ्रंश भाषाएं: प्राकृत से अपभ्रंश भाषाओं का जन्म हुआ, जो मध्य कालीन भारतीय आर्य भाषाओं और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की कड़ी थीं।

पुरानी हिंदी: शौरसेनी अपभ्रंश से हिंदी का प्रारंभिक रूप विकसित हुआ, जिसे 'पुरानी हिंदी' कहा जाता है। अमीर खुसरो और कबीर की रचनाओं में इसका प्रारंभिक रूप देखा जा सकता है।[2]

हिन्दी साहित्य के विकास को चार भागों में बता गया है।[3]

आदिकाल (वीरगाथा-काल, सवत् १०५०-१३७५)

पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, १३७५-१७००)

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, १७००-१६००)

आधुनिक काल (गद्यकाल, १६००-१६८४)[4]

व्याकरणिक और भाषिक संबंध (Grammatical and linguistic relations):

हिन्दी का व्याकरण लगभग पूरी तरह संस्कृत के व्याकरणात्मक ढांचे पर आधारित है, जैसे-विभक्ति, क्रिया रूप, संज्ञा-विशेषण सम्बन्ध आदि ।[5]

हिन्दी के स्वर और व्यंजन काफी हद तक संस्कृत के समान हैं, हालांकि कुछ बदलावों के साथ हिन्दी में ग्यारह स्वर और तैंतीस व्यंजन हैं, वहीं संस्कृत में तेरह स्वर मिलते है।[6]

संस्कृत साहित्य का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव (Influence of Sanskrit literature on Hindi literature):

हिन्दी के पूर्व के साहित्यकार संस्कृत के नाटक एवं काव्य के सन्निकट थे। संस्कृत के सभी प्रसिद्ध ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया गया है। सन् 1680 में कवि हृदयराम ने 'हनुमन्नाटक' के आधार पर 'भाषा हनुमन्नाटक' लिखा। औरंगजेब के समकालीन मारवाड़ के महाराजा जसवन्त सिंह ने 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक का हिन्दी में अनुवाद किया। निवाज कवि ने सन् 1737 में 'शकुन्तला' का अनुवाद किया। कवि गणेश "प्रद्युम्न विजय" नामक नाटक लिखा, जिसका आधार भी संस्कृत ही था। यह परम्परा अधिक समय तक चली, किन्तु आज महसूस होता है कि और चलनी चाहिये थी।[7]

हिन्दी का प्रचीन नीति साहित्य एवं दर्शन साहित्य संस्कृत की ही देन है। कृष्ण कवि ने सन् 1792 में "विदुर प्रजागर" की रचना की। पंचतंत्र एवं हितोपदेश का अनुवाद हिन्दी में हुआ। श्रीरामप्रसाद निरजनी ने सन् 1768 में "भाषा योगवसिष्ठ" नामक गद्य ग्रन्थ खड़ी बोली हिन्दी में लिखा, जो योगवसिष्ठ पर आधारित था। इन्हें प्रौढ़ गद्य का प्रणेता माना जाना चाहिये, जिसकी भाषा सुव्यवस्थित एवं सुन्दर है। भिखारीदास ने "विष्णु पुराण" का भाषा अनुवाद किया। इसके साथ-साथ अनेक वैज्ञानिक ग्रन्थों के अनुवाद आदि भी किये गये। हिन्दी साहित्य की आत्मा संस्कृत साहित्य में बसती है और संस्कृत साहित्य का अमृत निरन्तर इस बहता रहे, यही महात्मा गाँधी जी का भी कहना था। उन्होंने कहा था – "संस्कृत हमारी भाषा के लिये गंगा नदी है। मुझे लगता रहता है कि वह सूख जाये तो हमारी भाषायें निर्माल्य बन जायेंगी।[8]

इस का विभाजन निम्नलिखित है।

काव्य परंपरा : संस्कृत के महाकाव्य और नाटक हिन्दी काव्य की प्रेरणा बने। कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' ने हिन्दी नाट्य साहित्य को प्रभावित किया।

भक्ति साहित्य : संस्कृत के वेदांत और पुराणों की परंपरा ने हिन्दी के भक्तिकाव्य को दिशा दी। तुलसीदास, सूरदास, मीरा आदि ने संस्कृत के आध्यात्मिक भावों को अपनाया।

रीतिकालीन साहित्य : संस्कृत के अलंकार शास्त्र, काव्यशास्त्र और छंदशास्त्र का गहरा प्रभाव रीतिकालीन कवियों पर पड़ा।

धार्मिक साहित्य : संस्कृत शास्त्रों के आधार पर हिन्दी में अनेक धार्मिक ग्रंथ रचे गए।

संस्कृत और हिन्दी का भाषिक-आधार (Linguistic basis of Sanskrit and Hindi):

हिन्दी भाषा की ध्वनियों का प्राचीनतम रूप वैदिक ध्वनि समूह है, जिन्हें वर्ण या अक्षर कहते हैं। संस्कृत के व्याकरणकार पाणिनी ने वैदिक ध्वनियों की संख्या ६३ या ६४ बताई है जिनमें से ५९ स्वर एवं व्यंजन ध्वनियाँ हिन्दी में भी आती हैं – इन में पर्याप्त ध्वनियाँ वैदिक हैं। हिन्दी भाषा का विकास संस्कृत से हुआ है और इसकी पुरातन विकास धारा वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत से पाली, पाली से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी भाषा के विकास की मानी जाती है। [9]

हिन्दी की जड़ें संस्कृत में गहराई से समाई हुई हैं। हिन्दी की अधिकांश शब्दावली संस्कृत से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आई है। उदाहरण स्वरूप –

संस्कृत शब्द: गृह ⟶ हिन्दी: घर

संस्कृत: माता ⟶ हिन्दी: माँ

संस्कृत: नयन ⟶ हिन्दी: नयन[10]

हिन्दी की व्याकरणिक संरचना भी संस्कृत पर आधारित है। संज्ञा-विशेषण, कारक-प्रत्यय, समास, उपसर्ग, प्रत्यय आदि संस्कृत से ही आए हैं। यद्यपि हिन्दी में अपभ्रंश और प्राकृत के प्रभाव से व्याकरण सरल हुआ, परंतु उसकी मूल संरचना संस्कृतनिष्ठ ही है।[11]

शब्दावली में आंतर संबंध (Interrelationships in vocabulary):

हिन्दी की शब्दावली को चार स्तरों में बाँटा जा सकता है:

1. **तत्सम शब्द:** सीधे संस्कृत से लिए गए – जैसे धर्म, कर्म, ज्ञान, शांति, संस्कार आदि।
2. **तद्भव शब्द:** संस्कृत से परिवर्तित रूप – जैसे अग्नि ⟶ आग, जल ⟶ जील/जील ⟶ झील।
3. **देशज शब्द:** लोक में प्रचलित शब्द।
4. **विदेशज शब्द:** उर्दू, फारसी, अंग्रेज़ी आदि से आए शब्द।[12]

इनमें से तत्सम और तद्भव शब्दों की संख्या सर्वाधिक है, जो हिन्दी के संस्कृत से गहरे संबंध को स्पष्ट करते हैं।

अनुवाद और रूपांतरण परंपरा (Translation and adaptation tradition):

संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद हिन्दी में बड़े पैमाने पर हुआ। रामायण, महाभारत, गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित धार्मिक ग्रंथों, उपनिषदों और पुराणों के हिन्दी अनुवाद ने संस्कृत साहित्य को सामान्य जन तक पहुँचाया। यह परंपरा केवल धार्मिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रही, बल्कि दार्शनिक और वैज्ञानिक ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद ने भी आधुनिक काल में ज्ञान के प्रसार में योगदान दिया।

आधुनिक हिन्दी में संस्कृत का स्थान (Place of Sanskrit in Modern Hindi):

आधुनिक हिन्दी, विशेषकर शुद्ध साहित्यिक हिन्दी में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग अधिक मिलता है। प्रशासनिक, वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली भी संस्कृत मूलक है।

उदाहरण – संविधान, संसद, न्यायालय, ऊर्जा, विज्ञान, तकनीक, साम्राज्य, नीति आदि।[13]

संस्कृत और हिन्दी के परस्पर प्रभाव (Mutual influence of Sanskrit and Hindi):

संस्कृत ने हिन्दी को आधार दिया, वहीं हिन्दी ने भी संस्कृत को जीवित बनाए रखने में भूमिका निभाई। हिन्दी साहित्य और जनजीवन में संस्कृत के श्लोक, सूक्तियाँ और स्तोत्र आज भी प्रचलित हैं।

कई हिन्दी कवियों और लेखकों ने संस्कृत काव्यशैली, छंद और अलंकार परंपरा का अनुसरण किया। साथ ही, हिन्दी भाषा के प्रसार ने संस्कृत शब्दों को जनसामान्य तक पहुँचाने का माध्यम प्रदान किया।

Nep 2020 में संस्कृत और हिन्दी का महत्त्व (Importance of Sanskrit and Hindi in Nep 2020):

Nep 2020 में भारतीय भाषाओं में संस्कृत और हिन्दी भाषा को महत्त्व दिया गया है। तीन भाषा में एक संस्कृत भाषा और हिन्दी भाषा पर जोर दिया गया है। लुप्त संस्कृत साहित्य का अनुवादित कर संरक्षण करना और राष्ट्रीय भाषा हिन्दी पर काम करना।

हिंदी को शिक्षा के माध्यम के रूप में बढ़ावा दिया गया है, खास तौर पर हिंदी भाषी क्षेत्रों में, जबकि संस्कृत को ज्ञान की विरासत, भाषाएं व सांस्कृतिक एकता और संज्ञानात्मक विकास के स्रोत के रूप में देखा गया है। NEP 2020 त्रिभाषा सूत्र के तहत इन भाषाओं को वैकल्पिक रूप से शामिल करने की वकालत करती है, जिससे क्षेत्रीय भाषाओं का विकास होता है और बहु भाषावाद को बढ़ावा मिलता है।

शिक्षा और साहित्य में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग भाषा को गंभीरता और गौरव प्रदान करता है।[14]

आधुनिक समय में हिन्दी का संस्कृत पर प्रभाव (Influence of Hindi on Sanskrit in modern times):

वर्तमान समय हम देखते रहे है कि संस्कृत भाषा का हिन्दी भाषा पर प्रभाव है पर हाल में संस्कृत भाषापर हिन्दी भाषा का प्रभाव देख सके है। हिन्दी साहित्य में प्रचलित सामाजिक, राजनीतिक और मानवीय विषय संस्कृत साहित्यकारों ने भी इन विषयों को अपनाया है। हिन्दी के छायावादी, प्रगतिवादी और आधुनिकतावादी साहित्य से प्रेरणा लेकर संस्कृत काव्य और नाटकों में भी भावुकता, सामाजिक सरोकार और राष्ट्रीय चेतना का समावेश हुआ।

अधिकांश संस्कृत विद्यार्थी और विद्वान हिन्दी भाषी क्षेत्र से आते हैं। इस कारण उनके संस्कृत लेखन और वार्तालाप में हिन्दी-शैली का प्रभाव स्वाभाविक है।

हिन्दी माध्यम से लिखी गई संस्कृत व्याकरण और पाठ्यपुस्तकें संस्कृत की नई पीढ़ी को प्रभावित कर रही हैं। आज के संस्कृत नाटकों और भाषणों में हिन्दी जैसी लय और लचीलेपन का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए हिन्दी की अनुवाद शैली और पत्रकारिता शैली अपनाई गई है। वर्तमान समय में हिन्दी फिल्मों, नाटक संस्कृत के नाटकों और कथा के आधार पर बनाए जाते हैं। इससे संस्कृत शब्द हिन्दी भाषा के अभिन्न अंग बन चुके हैं।

निष्कर्ष (Conclusion):

संस्कृत और हिन्दी भाषा का संबंध अत्यंत गहरा और अभिन्न है। संस्कृत ने हिन्दी को न केवल शब्दावली और व्याकरण दिया, बल्कि उसकी साहित्यिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक परंपराओं को भी पोषित किया। हिन्दी, संस्कृत की पुत्री कही जा सकती है, जो अपनी जननी से निरंतर ऊर्जा और प्रेरणा प्राप्त करती रही है। इसी लिए तो संस्कृत और हिन्दी का संबंध मां - बेटी के समान है।

संदर्भ (Bibliography):

[1] अग्रवाल, हंसराज. (1950). *संस्कृत साहित्य का इतिहास*. दिल्ली: राजहंस प्रकाशन. पृ. 19.

[2] चटर्जी, सुनीति कुमार. (1947). *भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी*. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 169.

[3] शुक्ल, रामचंद्र. (1929). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. काशी: नागरी प्रचारिणी सभा. पृ. 1.

[4] शुक्ल, रामचंद्र. (1929). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. काशी: नागरी प्रचारिणी सभा. पृ. 1.

[5] वेद, डॉ. *हिन्दी और संस्कृत का अभिन्न संबंध*.

[6] वर्मा, धीरेन्द्र. (1954). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. इलाहाबाद: हिन्दुस्तानी अकादमी. पृ. 235.

[7] हिन्दी पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव

[8] हिन्दी पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव

[9] प्रेमपुष्प. हिन्दी भाषा की मानकता पर सांस्कृतिक प्रभाव. [लेख].

[10] वेद, डॉ. *हिन्दी और संस्कृत का अभिन्न संबंध*.

[11]गुरु, कामता प्रसाद. (2000). *हिन्दी व्याकरण* (संशोधित संस्करण). दिल्ली: पवन पॉकेट बुक्स

[12] वर्मा, धीरेन्द्र. (1954). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. इलाहाबाद: हिन्दुस्तानी अकादमी.

[13] शर्मा, चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद. (1917). *संस्कृत–हिन्दी कोष*. प्रयाग: साहित्य निकेतन.

[14] भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. नई दिल्ली: भारत सरकार प्रकाशन विभाग

अन्य संदर्भ

अग्रवाल, हंसराज. (2022). *संस्कृत साहित्य का इतिहास* (चतुर्थ संस्करण). वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन.

चटर्जी, सुनीतिकुमार. (1998). *भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

शुक्ल, रामचंद्र. (1940). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. काशी: नागरी प्रचारिणी सभा.

वर्मा, धीरेन्द्र. (1940). *हिन्दी भाषा का इतिहास* (द्वितीय संस्करण). प्रयाग: हिन्दुस्तानी अकादमी.

गुरु, कामता प्रसाद. (2009). *हिन्दी व्याकरण*. काशी: नागरी प्रचारिणी सभा.

शर्मा, चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद. (1917). *संस्कृत–हिन्दी कोष* (प्रथम संस्करण). लखनऊ: एम.एल. भार्गव, न्यूल किशोर प्रेस.

वेद, डॉ. (न.व.). हिन्दी और संस्कृत का अभिन्न संबंध. *Jagran*. Retrieved from https://www.jagran.com/punjab/hoshiarpur-10094923.html

(लेखक अज्ञात). (2019, April). हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव. *Sahityakarsapan (ब्लॉग)*. Retrieved from https://sahityakarsapan.blogspot.com/2019/04/blog-post.html?m=1

चस्वाल, प्रेमपुष्प. (न.व.). हिन्दी भाषा की मानकता पर सांस्कृतिक प्रभाव. *Anhad Kriti*. Retrieved from https://www.anhadkriti.com/premlata-chaswal-lekh-hindi-bhasha-kee-maanakta-par-sanskritik-prabhav

भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. Retrieved from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

हिन्दी भाषा में रोजगार के अवसर : एक विशेष पड़ताल

डॉ. बी. जे. पटेल*
dr.patelbj@gmail.com

साहित्य और संस्कृति परस्पराभिन्न है। हमारा हिंदी साहित्य कितनी प्रचुर मात्रा में और कितनी ही विधाओं में लिखा गया है, जिसने न सिर्फ भूतकाल या इतिहास को उजागर किया है; बल्कि वर्तमान के साथ-साथ भविष्य के कुछ प्रश्नों व समस्याओं को भी सुलझाने का प्रयास किया है। भारतेंदु बाबू से लेकर चंद्रधर शर्मा गुलेरी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, उपन्यास सम्राट प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर जी, प्रसाद-पंत-निराला-महादेवी वर्मा...कितने नाम गिनाएँ, सबने भारतीय संस्कृति की रक्षा हेतु तन-मन-धन न्यौछावर कर हिंदी साहित्य को धन्य किया। विविधता से पूर्ण हमारा हिंदी साहित्य आज वैश्विक पटल पर अपनी हाजिरी दर्ज करा चुका है। विविधता से सजी-धजी हमारी सबसे प्राचीन भारतीय संस्कृति ने अपनी महानता व गरिमा के बलबूते पर विश्व की अनेक संस्कृतियों को अपनी ओर आकर्षित किया है ! विविधताओं से भरे इस देश में एकता कैसे आ सकती है ? एक ही उपाय है हिंदी के साथ अन्य प्रांतीय भाषाओं का मधुर संबंध। हिंदी प्रांतीय भाषाओं की पोषक है, शोषक नहीं। सम्पूर्ण भारत की सांस्कृतिक-आध्यात्मिक परंपरा को एक-साथ देखने की समग्र दृष्टि हिंदी के विकास से ही संभव है।[1] हम अपनी स्वरचित एक कविता के जरिए हिंदी के प्रति अपना श्रद्धाभाव व्यक्त कर रहे हैं-

है सुकून देती हमें अनवरत, हिन्दी की यह मधुर बानी; / हो कृतकृत्य हम, उतारें लचीली हिन्दी की आरती सुहानी।
हिन्दी-प्रेमी गुण तुम्हारे अविरत गाते, पुलक-पुलक रूहानी; / हिन्दी तेरी ही क्रोड़ में बिताया हमने बचपन और ये जवानी।
भारत की जमीं पर सदैव दयनीय रही हिन्दी की कहानी; / हिन्दी विरोधियों ने उसे अन्याय कर की अपनी मनमानी।
सदा न्यौछावर हिन्दी पर जिंदगी हमारी, है प्यार से लुटानी; / हिन्दी को उच्च सोपान पर बिठाने, शक्ति हमको है जुटानी।
हिन्दी से ही गुंजित है चहुदिशी, ऋषियों की यह अमर बानी; / कैसे उऋण हो पाएंगे, हिन्दी तूने की हम पर इतनी मेहरबानी।
है निरंतर रोशन तुम्हीं से, हिन्दी ही हमारी जिंदगानी; / भारत की दैवी संस्कृति को, हिन्दी से दुनिया ने पहचानी।
है संस्कृत और हिन्दी में संग्रहित, ग्रंथों और वेदों की बानी; / हिन्दी से ही भारत गौरवगाथा बच्चों को याद रहती जबानी।
प्यारी हिन्दी तेरी स्थितप्रज्ञता पर होती सबको हैरानी; / सच की राह चल उन्नति को लालायित करती तेरी ये कहानी।
हे भारतीयों, है सत्यं शिवं सुंदरम् न्यारी हिन्दी की बानी; / है हिन्दी से याद हमें, प्रताप-शिवाजी-लक्ष्मीबाई की कहानी।
भावुक हो गाता 'ब्रिजेश' हिन्दी की गौरवगाथा अपनी ज़ुबानी; / हिन्दी को सर्वस्व समर्पित कर, जिंदगी है हम सबको सजानी।[2]

रवीन्द्रनाथ टैगोर जी ने कहा था, किसी भी सभ्य देश में विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान नहीं की जाती है और विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने वाले छात्रों का मन विकारग्रस्त हो जाता है और वे स्वयं को अपने ही देश में विदेशी सिद्ध करते जान पड़ते हैं। आपने हिंदी के महत्त्व पर जोर देते हुए इसे भारत की भाषाओं की नदियों के बीच 'महासागर' बताया- "भारत की भाषाएँ नदियाँ हैं और हिंदी महानदी "।[3] हमारी सांस्कृतिक और भाषाई विविधता एक अनमोल उपहार है, जिसे हमें अपनाना चाहिए। हिंदी हमारी समृद्ध विरासत और संस्कृति का अभिन्न अंग है, जो हमें पूरे भारत को एकजुट करती है। एक कड़वी सच्चाई यह भी है कि आज़ादी के 77 सालों के बाद भी हम आज अपने को विदेशी भले ही न मानते हों, लेकिन हमारे कार्यकलाप और मुख्य रूप से हमारी भाषा के रूप में हम कुछ हद तक विदेशी ताकतों के पदचिन्हों पर चल रहे

* **एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), श्रीमती बी. वी. धाणक आर्ट्स कॉमर्स साइंस एण्ड मैनेजमेंट कॉलेज बगसरा**
जिला – अमरेली - 365 440 (गुजरात)

हैं। यह भले ही आधुनिकता के संदर्भ में ज़रूरी हो, इस दौड़ती-भागती दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाने के लिए आवश्यक हो, परंतु हम अपनी मातृभाषा, राजभाषा-राष्ट्रभाषा को हर हाल में अपने साथ लेकर चलें। इस भाषा में जो अपनत्व की सुगंध है, वह अन्य किसी भी भाषा में नहीं है।

हिंदी भाषा में रोजगार के अवसर पर एक सरसरी दृष्टि:

21वीं सदी वैसे भी सूचना और प्रौद्योगिकी की सदी है। आज न जाने कितने प्रकार के नए-नए आविष्कार हो रहे हैं- ऐसा लग रहा है कि ये अत्याधुनिक मशीनें-तकनीकें मानुषी ताकत को दयनीय बनाकर छोड़ेगी। यह अवश्य ही चिंता का विषय है कि समूची दुनिया आज अनेक मुसीबतों का समस्याओं का सामना कर रही है। युद्ध की विभीषिका से मानव-धन मिट्टी में मिल रहा है, शांति के मसीहा अपनी ओर से प्रयास कर रहे हैं, पर हम दुनिया की मौजूदा दयनीय हालत देख रहे हैं। कुदरती आपत्तियाँ प्रत्येक देश को विभिन्न रूप से परेशान कर रही है। मानवजाति पर यह खतरा हम सबके लिए चिंता का विषय तो है, क्योंकि मानव बचेगा तो रोजगार बचेगा। हमारी आवश्यकता यह है कि हम मानव के साथ मानवता बचाएँ। मानव के द्वारा अपनाए गए युद्ध जैसे अनुचित कदम और इन्सानियत को शर्मसार करे ऐसे निंदनीय कार्यों से हम निजात पाएँ, हमारे मत से यही समय की माँग है।

वर्तमान समय में अनेक समस्याओं के बीच एक गंभीर और सबको चिंता में डालनेवाली - सबको सतानेवाली समस्या है - रोजगार की समस्या ! यह भारत देश की गंभीर समस्याओं में से एक है। ऐसा कौन-सा जादू किया जाए, जिससे कि प्रत्येक को भिन्न-भिन्न प्रकार के रोजगार दिए जाएँ। आज रोजगार कौन नहीं चाहता ? क्या हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी में इतनी ताकत है कि वह रोजगार देने में सक्षम साबित हों ! यहाँ विभिन्न पक्षों पर सरसरी तौर पर दृष्टि डालने पर और पिछले 30 सालों से हिंदी भाषा की सेवा कर रहे हैं, उस अनुभव के आधार पर हम इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि हाँ, हिंदी इतनी सक्षम है कि इसके अध्येता को उसकी योग्यता के आधार पर रोजगार मुहैया करवा सकती है। लोकमान्य तिलक ने हिंदी की महत्ता को प्रस्थापित करते हुए कहा है –"सरलता और शीघ्रता से सीखी जाने योग्य भाषाओं में हिंदी सर्वोपरि है।" हिंदी भारत की राजभाषा होने के साथ-साथ विश्व की एक प्रमुख भाषा भी है। यह न केवल एक सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक है, बल्कि आज के वैश्विक युग में आर्थिक, शैक्षणिक, और तकनीकी क्षेत्रों में भी इसके महत्त्व में वृद्धि हो रही है। लंबे समय तक यह धारणा बनी रही कि हिंदी भाषी युवाओं को रोजगार के अवसर सीमित मिलते हैं, विशेषकर जब अंग्रेजी को सफलता की कुंजी माना जाता रहा, किंतु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह सोच धीरे-धीरे बदल रही है। अभी हाल ही में राजस्थान लोक सेवा आयोग, अजमेर का विज्ञापन दर्शाता है कि अभी हिंदी की माँग और तेजी से बढ़ेगी। इस सहायक आचार्य (Assistant Professor) के 30 विषयों के 574 पदों में से सबसे ज्यादा 58 पद हिंदी विषय के हैं।[4] विज्ञापन का डिजिटल युग, स्थानीय भाषाओं की माँग और सरकार की बहुभाषी नीतियों के कारण हिंदी में रोजगार के नए और विविध अवसर जन्म ले रहे हैं।

हिंदी और रोजगार का पारंपरिक परिप्रेक्ष्य और वर्तमान संदर्भ:

लोहिया जी ने 24 फरवरी, 1965 में संसद में कहा था- "अगर देश अंग्रेजी समर्थक और हिंदी समर्थक दो भागों में विभाजित होता है तो पुन: देश को दो भागों में विभाजित होने दो लेकिन हिंदी को मत रोको।"[5] वर्षों तक हिंदी भाषा को एक साहित्यिक या भावनात्मक भाषा के रूप में देखा गया। इसके अध्ययन को केवल शिक्षक, लेखक या पत्रकार बनने तक सीमित समझा गया। सरकारी नौकरियों में हिंदी भाषा के ज्ञान की आवश्यकता तो थी, लेकिन उसे एक करियर के रूप में नहीं देखा जाता था। इसका एक बड़ा कारण यह भी था कि निजी क्षेत्र, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ और तकनीकी संस्थान अंग्रेजी भाषा को प्राथमिकता देते थे। ऐसे में हिंदी भाषी युवाओं को अंग्रेजी में दक्षता के बिना नौकरियों में प्रतिस्पर्धा करना कठिन हो जाता था, परंतु अब समय बदल रहा है। हिंदी भारत की आत्मा है। यह सिर्फ संवाद की भाषा नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक पहचान, सोचने का माध्यम और अब तेजी से उभरती हुई आर्थिक शक्ति भी बन रही है। लंबे समय तक हिंदी भाषी युवाओं को यह भ्रम रहा कि अंग्रेजी के बिना करियर बनाना मुश्किल है, परंतु डिजिटल क्रांति और वैश्वीकरण ने इस सोच को चुनौती दी है। आज हिंदी भाषा का स्वरूप केवल साहित्य या विद्यालयों की चारदीवारी तक सीमित नहीं रहा। अब यह डिजिटल मार्केटिंग, तकनीक, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और ऑनलाइन शिक्षा तक अपनी पहुँच बना चुकी है। आज हिंदी भाषा खुद को रोजगार के क्षेत्र में स्थापित कर रही है और युवाओं के लिए नित नए अवसर पैदा कर रही है।

पत्रकारिता, मीडिया और जनसंचार:

आज हिंदी भाषा की बढ़ती लोकप्रियता को देखकर ही अंग्रेजी के लोग भी हिंदी मीडिया की ओर आकर्षित हो रहे हैं। निश्चित तौर पर हिंदी के विद्यार्थियों के लिए भी चुनौती कम नहीं है। इस चुनौती से निपटने के लिए उन्हें भी द्विभाषी बनना होगा। किसी भी भाषा में निपुणता के लिए उस पर पकड़ बनाना अनिवार्य होता है। हिंदी में भी लोगों को पूर्णता व दक्षता हासिल करनी पड़ेगी।[6] हिंदी का अध्ययन करने वाले छात्रों के बीच पत्रकारिता रोजगार के एक आकर्षक विकल्प के रूप में सामने आया है। इस समय सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले समाचार पत्रों और सबसे ज्यादा देखे जाने वाले समाचार चैनलों में दो तिहाई से अधिक हिंदी भाषा के ही हैं। समाचार चैनलों और अखबारों के अलावा भी हिंदी के अनेक चैनल और पत्र-पत्रिकाएँ हैं, जो योग्य उम्मीदवारों को मौका दे रहे हैं। समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, समाचार चैनलों आदि में रोजगार के अनेक अवसर मिलते हैं। इस क्षेत्र में रिपोर्टर, प्रेस फोटोग्राफर, संपादकीय विभाग में संपादक या उपसंपादक, कॉपी राइटर, उदघोषक के रूप में कार्य कर सकते हैं। इसके अलावा रेडियो जॉकी एक ऐसा कॅरियर है, जिसमें आपकी आवाज देश-दुनिया में सुनी जाती है। ब्लॉग लेखन भी इन्हीं विकल्पों में से एक है।

प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया:

मीडिया के दो रूप हैं- (अ) प्रिंट मीडिया और (ब) इलेक्ट्रॉनिक मीडिया। प्रिंट मीडिया में पत्रकारिकता का वर्चस्व है। अखबार और पत्र-पत्रिकाओं में क्षेत्र में पत्रकार, संवाददाता, प्रूफ रीडर तक इन सबका एक बहुत बड़ा नेटवर्क है। इस क्षेत्र में एडिटर, पत्रकार संवाददाता के रूप में बहुत सारी पोस्ट रहती हैं। हिंदी पत्रकारिता का क्षेत्र निरंतर विस्तारित हो रहा है। डिजिटल मीडिया, समाचार चैनल, रेडियो और पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी पत्रकारों की भारी माँग है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में समाचार वाचक, संवादलेखक, धारावाहिकों में अनेक किरदार निभाने वाले हिंदी के ज्ञाता को धारावाहिकों के अलावा फिल्मों में भी इनको अच्छे खासे पैसे मिलते है। यानी हिंदी के लिए यहाँ पर भी रोजगार की अनेक संभावनाएं है। मीडिया बहुत बढ़िया क्षेत्र है, जिसे हम रोजगार से जुड़ते हुए देख सकते हैं। वर्तमान समय में भारतीय मीडिया में हिंदी भाषा की स्थिति बेहद जीवंत और विविधतापूर्ण है। मीडिया के सभी माध्यम में हिन्दी भाषा की काफी सुदृढ़ स्थिति है। एक विशाल पाठक श्रोता और दर्शक होने के कारण हिन्दी मीडिया की सबसे ज्यादा माँग है। व्यावसायिक दृष्टि से भी भारतीय मीडिया में हिन्दी भाषा की मीडिया माध्यम बहुत मजबूत स्थिति में है। बाजारवाद के इस दौर में हिन्दी मीडिया माध्यम बहुत मुनाफे पर चल रही है क्योंकि व्यवसायिक प्रतिष्ठान, औद्योगिक घराने, राजनेता एवं अन्य संस्थान अपनी बात को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिए हिन्दी मीडिया माध्यम को सबसे ज्यादा विज्ञापन देना पसंद करते हैं। फायदे का धंधा होने के कारण बहुत सारे लोग मीडिया में संलग्न होने में रुचि दिखा रहे हैं। इसके साथ ही मीडिया, अब रोजगार के साधन के रूप में भी लोकप्रिय हो चुका है। लगभग सभी प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थान में मीडिया और जनसंचार को एक पाठ्यक्रम के रूप में स्वीकार किया गया है। जिसे पढ़ने, डिग्री हासिल करने और फिर उस क्षेत्र में रोजगार हेतु युवा वर्ग बहुत रुचि दिखा रहा है।[7]

प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में संवाददाता, समाचार संपादक, उप-संपादक, यूट्यूब शो एंकर, स्क्रिप्ट लेखक, कंटेंट क्रिएटर, सोशल मीडिया मैनेजर रेडियो जॉकी साथ ही साथ FM रेडियो और आकाशवाणी रेडियो पर भी हिंदी ज्ञाताओं के लिए विभिन्न पद मौजूद है। प्रिंट मीडिया जैसे दैनिक भास्कर, नवभारत टाइम्स, अमर उजाला; टेलीविजन मीडिया जैसे आजतक, एनडीटीवी इंडिया, ज़ी न्यूज़; डिजिटल मीडिया जैसे Scroll Hindi, The Lallantop, BBC Hindi आदि में हिंदी के ज्ञाताओं की विशेष जरूरत है। हिंदी वालों के लिए अनेक भूमिकाएँ उपलब्ध है-डिजिटल और तकनीकी क्षेत्र में गूगल जैसे सर्च इंजन और विभिन्न हिंदी वेबसाइटों के कारण इंटरनेट पर हिंदी का उपयोग बढ़ा है। हिंदी भाषा के लिए हिंदी सॉफ्टवेयर और ऐप विकसित किए जा रहे हैं, जिससे इस क्षेत्र में नए अवसर पैदा हो रहे हैं। सोशल मीडिया में बिज़नेस हाउसेस और राजनीतिक पार्टियां सोशल मीडिया पर हिंदी कंटेंट को बढ़ावा दे रही हैं, हिंदी जानने वाले लोग सोशल मीडिया मैनेजर के तौर पर काम कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर The Lallantop एक हिंदी डिजिटल प्लेटफॉर्म है, जिसने हज़ारों हिंदी भाषी पत्रकारों को मंच और पहचान दी। इसकी भाषा-शैली युवा पीढ़ी को आकर्षित करती है। हिंदी यूट्यूब चैनल के अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं। जैसे-ध्रुव राठी, Bhadipa (हिंदी में महाराष्ट्र का व्यंग्यात्मक कंटेंट), योग, कृषि, शिक्षा, खाना, गाना...आदि से

सम्बंधित अनेक यू टयूब चैनल हैं; जिसमें हिंदी भाषा को महत्त्व दिया जा रहा है। डिजिटल मीडिया के विस्तार के साथ यू टयूब चैनल, पॉडकास्ट और हिंदी ब्लॉग की लोकप्रियता बढ़ रही है, जिससे स्वतंत्र पत्रकारों को भी पहचान और आय प्राप्त हो रही है। आज लाखों लोग हिंदी में यूट्यूब चैनल चला रहे हैं और उससे अच्छी कमाई कर रहे हैं। यह शिक्षा, मनोरंजन, समाचार, तकनीकी जानकारी, फिटनेस, खान-पान आदि जैसे विषयों पर अपने हुनर को अपने-अपने निराले ढंग से प्रस्तुत कर आय प्राप्त कर रहे हैं। शायद यह प्रादेशिक भाषा में उतना न हो पाता जितना हिंदी भाषा के जरिए हो रहा है।

अनुवादक, दुभाषिया, स्थानीयकरण विशेषज्ञ और अन्य बहुभाषी सेवाएँ:

अनुवाद एक बहुत बड़ा क्षेत्र है, जो हिंदी को रोजगार से जोड़ता है। प्रदेश स्तर पर अनुवाद ब्यूरो स्थापित है। राष्ट्रीय स्तर पर भी अनुवाद ब्यूरो स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है और कार्यालयों में हिंदी अधिकारी के पद सृजित किए गए हैं। कर्मचारी चयन आयोग परीक्षाएँ करवाता है- खास करके वरिष्ठ अनुवादकों और कनिष्ठ अनुवादकों के पद पर अनेक व्यक्ति चुने जाते हैं। अनुवादकों के लिए आज अनेक द्वार खुले हुए हैं। अपनी योग्यता के मुताबिक वह अपना पद हांसिल कर सकता है। अंग्रेज़ी से हिंदी अनुवादक, तकनीकी दस्तावेज़ अनुवादक, वेबसाइट और ऐप्स के स्थानीयकरण विशेषज्ञ, फिल्म व वेब सीरीज़ सबटाइटलिंग में Netflix, Amazon Prime, Hotstar – इन सभी प्लेटफॉर्मों पर अब हिंदी सबटाइटल और डबिंग के लिए विशेषज्ञों की भारी माँग है।

इसके साथ-साथ दुभाषिया का पद भी उल्लेखनीय होता है, जो विदेश से आए प्रतिनिधि शिष्ट मंडल के सदस्यों को और संसद की कारवाई का अनुवाद या फिर हिंदी की या अन्य भाषाओं की फिल्म का डबिंग और अनुवाद का कार्य इसमें भी अनुवादकार के रूप में रोजगार का एक अच्छा अवसर अनुवाद के क्षेत्र में भरा पड़ा है। दुभाषिया वह व्यक्ति होता है जो एक भाषा से दूसरी भाषा में मौखिक या सांकेतिक रूप से संचार को संभव बनाता है, जिससे दो अलग-अलग भाषा बोलने वाले लोग आपस में बातचीत कर सकें। वह अपनी बात को पहले एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवादित करता है और फिर उसके जवाब को पहली वाली भाषा में अनुवाद करके बताता है। दुभाषिया निष्पक्ष होता है, अपनी राय नहीं देता है और संचार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विश्व की प्रमुख बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बहुत बड़ा क्षेत्र है। यह कंपनियाँ भारत में अपना निवेश कर रही हैं। इन कंपनियों का पूरा कारोबार वैसे तो अंग्रेजी में चलता है, पर वे हिंदी भाषा को भी महत्त्व दे रहे हैं; क्योंकि भारत का बहुत बड़ा बाजार उनकी नज़र में है। भारत के ज्यादातर हिंदी भाषी उपभोक्ताओं के लिए कंपनियाँ अब अपने उत्पादों और सेवाओं को बड़ी जनसंख्या तक पहुँचाना चाहती है। हिंदी भाषा में असरदार संप्रेषण कर सके ऐसे हिंदी भाषा के लोगों की आवश्यकता होती है। इसके लिए उन्हें अनुवादकों और स्थानीयकरण विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। यह कंपनियाँ हिंदी अधिकारी हिंदी विशेषज्ञ की नियुक्ति करती है या हिंदी कर्मचारियों के रूप में अपना कामकाज बढ़ाने के लिए लोगों को रोजगार देती है। यहाँ पर और एक क्षेत्र है, विज्ञापन का। हमें लगता है कि इसके बगैर मानो दुनिया थम सी जाएगी। इस क्षेत्र में प्रमुख भूमिकाएँ हैं-अनुवादक, संपादक, स्थानीय विशेषज्ञ, इंटरप्रेटर आदि। विशेषज्ञ अंग्रेज़ी से हिंदी अनुवादक, तकनीकी दस्तावेजों के अनुवाद के रूप में या अन्य कई प्रकार के अनुवादक के रूप में अपनी सेवाएँ दे सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र, Google, Amazon, Microsoft जैसी कंपनियाँ भी हिंदी भाषा में सेवाएँ प्रदान कर रही हैं, जिससे इस क्षेत्र में अवसरों की भरमार है। बड़े-बड़े उद्योग समूहों का कामकाज भले ही अंग्रेजी में चलता हो, लेकिन इन कार्पोरेट दफ्तरों में हिंदी भी पूरे सम्मान के साथ मौजूद है। अंग्रेजी का ज्ञान अनिवार्य है, लेकिन हिंदी जानने वालों के लिए खास जगह और तरक्की के सुनहरे मौके हैं। ज्यादातर जनसंपर्क कंपनियाँ ही कॉरपोरेट म्युनिकेशन यानी जनसंपर्क का काम करती हैं। यह जानकर हैरानी होगी कि 2016 में देश में जनसंपर्क कंपनियों का कारोबार 1120 करोड़ का रहा है और 2020 तक बढ़ कर 2100 करोड़ रुपए हुआ था। जाहिर है, हिंदी वालों के लिए यह एक सुनहरा क्षेत्र है।

इंटरनेट और सोशल मीडिया के युग में कंटेंट की माँग बेतहाशा बढ़ी है। हिंदी में रोचक और गुणवत्तापूर्ण सामग्री लिखने वाले लेखकों की माँग निरंतर बढ़ रही है। इसमें प्रमुख क्षेत्र हैं-ब्लॉगिंग, स्क्रिप्ट लेखन, विज्ञापन लेखन, कॉपीराइटिंग, फ्रीलांस राइटिंग आदि। फ्रीलांस राइटिंग एक ऐसा काम है जहाँ आप किसी एक कंपनी के कर्मचारी नहीं, बल्कि स्वतंत्र पेशेवर के रूप में विभिन्न ग्राहकों के लिए लेखन सेवाएँ प्रदान करते हैं। आप स्व-रोज़गार के लिए स्वतन्त्र होते हैं, अपने काम के घंटे

और स्थान खुद तय कर सकते हैं और अपने प्रोजेक्ट और दरों पर निर्णय ले सकते हैं। इसमें ब्लॉग पोस्ट, वेबसाइट कॉपी, लेख, और ई-पुस्तकें लिखना शामिल हो सकता है। इधर आय स्रोत के व्यापक अवसर उपलब्ध है-वेबसाइट्स, डिजिटल मार्केटिंग एजेंसियाँ, यूट्यूब चैनल, ई-बुक्स, ऑनलाइन कोर्स आदि में। हिंदी में कहानी, कविता, व्यंग्य और प्रेरणादायक लेखों के लिए ऑनलाइन मंच उपलब्ध हैं, जो लेखकों को न केवल पहचान, बल्कि आर्थिक लाभ भी प्रदान कर रहे हैं।

देश-विदेश में शिक्षा और अध्यापन के क्षेत्र में रोजगार के अवसर:

भारत की लगभग 44% **से अधिक जनसंख्या** की पहली भाषा हिंदी है। देश के 11 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में हिंदी प्रथम भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। भारत सरकार की अधिकांश योजनाएँ अब हिंदी में भी प्रकाशित और प्रचारित की जाती हैं। हिंदी न केवल भारत में, बल्कि विश्व भर में एक लोकप्रिय भाषा बन चुकी है। एक सर्वे के अनुसार आज विश्व में हिंदी बोलनेवालों की या समझनेवालों की संख्या 60 से 70 करोड़ (609 मिलियन) बताई जाती है। मातृभाषा के रूप में हिन्दी बोलनेवालों की संख्या 45-48 करोड़ (425 मिलियन) और दूसरी भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करने वाले लोगों की संख्या लगभग 12-15 करोड़ (120 मिलियन) के आसपास है। विश्व की अंग्रेजी और चीनी भाषा के बाद तीसरे क्रम की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा हिंदी है। जिसमें लगभग 60 करोड़ से अधिक लोग पारंगत हैं। अमेरिका, कनाडा, मॉरिशस, फिजी, नेपाल, यूएई, यूके, दक्षिण अफ्रीका सूरीनाम आदि में हिंदी भाषी समुदाय बड़ी संख्या में मौजूद हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने की माँग वर्षों से चल रही है।

देश, विदेश एवं सरकारी क्षेत्र में हिंदी के लिए अवसर:

हिंदी विषय के शिक्षकों की माँग विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में बनी रहती है। इसके अलावा ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफॉर्म जैसे- BYJU'S, Vedantu, Unacademy आदि भी हिंदी में शिक्षण सामग्री विकसित कर रहे हैं। रोजगार के लिए ऐसे प्लेटफोर्म से भी रोजगार इच्छुक जुड़ सकते हैं। स्कूल शिक्षक (CBSE, राज्य बोर्ड), कॉलेज लेक्चरर (UGC NET/SET पात्रता), ऑनलाइन ट्यूटर (Unacademy, BYJU'S, Vedantu), हिंदी भाषा प्रशिक्षक (विदेशी छात्रों के लिए) के रूप में हिंदी ज्ञाताओं के लिए रोजगार उपलब्ध है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख पद हैं-विद्यालय शिक्षक, व्याख्याता, प्रोफेसर, ऑनलाइन ट्यूटर। व्यावसायिक स्पर्धा के इस क्षेत्र में बी.ए., एम.ए., बी.एड., यूजीसी नेट (हिंदी), पीएच.डी. जैसी पात्रता चाहिए।

विदेशों में भी हिंदी पढ़ाने के अवसर हैं, जहाँ हिंदी भाषा को विदेशी छात्र एक विदेशी भाषा के रूप में सीखते हैं। आज हिंदी भाषा शिक्षक के रूप में, अनुवादक या सांस्कृतिक दूत के रूप में, भारतीय दूतावास या पर्यटन विभागों में हिंदी अधिकारियों के रूप में रोजगार मिल सकते हैं। हिंदी को Foreign Language के रूप में सिखाया जाता है। खास करके अमेरिका, जर्मनी, जापान आदि देशों में हिंदी शिक्षक नियुक्त होते हैं। ICCR (Indian Council for Cultural Relations) कई देशों में हिंदी अध्यापन के लिए शिक्षक भेजती है।

संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 तक हिंदी को राजभाषा के रूप में स्थापित करने की व्यवस्था की गई है, जिससे सरकार के विभिन्न विभागों में हिंदी का प्रयोग आवश्यक है और इसके लिए अनेक पदों पर हिंदी विशेषज्ञ की ज़रूरत कदम-कदम पर पड़ रही है। सरकारी कार्यालयों, मंत्रालयों, और सार्वजनिक उपक्रमों में हिंदी भाषा से संबंधित पद होते हैं, जैसे- राजभाषा अधिकारी, सहायक राजभाषा अधिकारी, हिंदी अनुवादक, हिंदी आशुलिपिक, हिंदी टाइपिस्ट, हिंदी संपादक (राज्यसभा टीवी, लोकसभा टीवी) आदि। विशेष योग्यता प्राप्त हिंदी भाषा के ज्ञाताओं को अपनी योग्यताओं के आधार पर अच्छे वेतनमान के साथ नियुक्तियाँ मिलती है। मुख्य रूप से नियुक्तियों के संस्थान होते हैं-संसद सचिवालय, केंद्रीय मंत्रालय, रेलवे, बैंकिंग क्षेत्र, अन्य सरकारी संस्थान आदि। UPSC, SSC, IBPS परीक्षाओं के माध्यम से ये रिक्त स्थान भरे जाते हैं।

सिविल सर्विसीस: एक बहुत बड़ा क्षेत्र:

बैंक, न्यायिक सेवा, सिविल सेवा और रेलवे जैसी प्रतियोगी परीक्षाओं में हिंदी का ज्ञान सहायक होता है, जिससे इन क्षेत्रों में रोजगार के अवसर मिलते हैं। राज्य स्तर पर / केंद्र स्तर पर सिविल सर्विस की परीक्षाएँ होती है और उसमें बहुत सारे विद्यार्थी अपने करियर को आगे बढ़ाने के लिए हिंदी विषय का चुनाव कर सिविल सर्विस की परीक्षाओं में भाग लेते हैं। पिछले

कुछ वर्षों में लगातार टॉप टेन में हिंदी विषय वालों ने अपना स्थान प्राप्त किया है। हिंदी विषय को लेकर लोगों ने सिविल सर्विस परीक्षा में भी अपना सिक्का जमाया है और इसकी उपयोगिता को देखते हुए तमाम तरह के कोचिंग सेंटर भी पूरे देश में खुले हुए हैं; खास करके इलाहाबाद, दिल्ली, पटना, जयपुर, अहमदाबाद आदि। उसमें तमाम सिविल सर्विस की तैयारी करने वाले प्रतिभागी हिस्सा ले रहे हैं। भारत में ऐसे कई उदाहरण मिल जाएँगे, जिसमें कुछ बुद्धिमान-विद्वान् लोग अपना सरकारी पद छोड़कर; वे अपने स्वतन्त्र कोचिंग क्लास से परिक्षार्थियों को कोचिंग देकर उनके सपनों को पूरा कर रहे हैं। जो भी अन्य फैकल्टी ऐसे कोचिंग सेंटरों से जुड़े हुए हैं, परीक्षार्थियों को पढ़ा रहे हैं; उन्हें हिंदी के कारण ही अच्छा रोजगार मिल रहा है।

डिजिटल युग और हिंदी की पुनर्स्थापना:

एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में हिंदी इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या अंग्रेज़ी से कहीं अधिक है। सन् 2024 ई. तक हिंदी कंटेंट की माँग दोगुनी से अधिक हो चुकी है। हिंदी इंटरनेट की बढ़ती पहुँच को सभी कंपनियाँ अच्छी तरह से बाज़ारवाद की दृष्टि से देख रही हैं। कुछ आँकड़ों और रिपोर्ट्स से पता चलता है कि 2025 तक भारत में 75% नए इंटरनेट उपयोगकर्ता हिंदी में सामग्री पढ़ना पसंद करेंगे (स्रोत: KPMG, Google, UNESCO)। 2023 में हिंदी यूट्यूब चैनलों की औसत वृद्धि दर अंग्रेजी से 30% अधिक थी। भारत के 60% डिजिटल पाठक हिंदी भाषी हैं। परिणाम स्वरूप कंपनियाँ वेबसाइट्स, ऐप्स और सेवाओं का हिंदी संस्करण बनाने को प्राथमिकता दे रही है। नतीजा यह हुआ है कि कंटेंट लेखक, संपादक, अनुवादक और सोशल मीडिया प्रबंधकों के लिए रोजगार के नए द्वार खुले हैं।

स्वरोजगार और उद्यमिता में हिंदी की भूमिका:

हिंदी भाषा के माध्यम से अब स्वरोजगार के अवसर भी तेजी से बढ़ रहे हैं। स्वतंत्र लेखक या ब्लॉगर की भूमिका आज महत्त्व की बन रही है। अपनी वेबसाइट बनाकर या ब्लॉगिंग प्लेटफॉर्म पर लिखकर आप अच्छी कमाई कर सकते हैं। दूसरा एक स्कोप है-ई-बुक प्रकाशन। किंडल डायरेक्ट पब्लिशिंग (KDP) अमेज़न का एक नि:शुल्क स्व-प्रकाशन मंच है, जहाँ लेखक ई-पुस्तकें और पेपरबैक / हार्डकवर किताबें सीधे अमेज़न पर प्रकाशित कर सकते हैं। यह पारंपरिक प्रकाशन के विपरीत है क्योंकि यह लेखकों को पुस्तक पर पूर्ण नियंत्रण, 70% तक की रॉयल्टी और वैश्विक दर्शकों तक पहुँच प्रदान करता है। जिससे वे बिना किसी अग्रिम लागत के अपनी रचनाएँ दुनिया भर के पाठकों को बेच सकते हैं। KDP लेखकों के लिए फ़ाइल रूपांतरण, बिक्री ट्रैकिंग और पेशेवर स्वरूपण के लिए किंडल क्रिएट जैसे टूल भी प्रदान करता है। हिंदी में अपना ब्लॉग बनाकर आप कमाई कर सकते हैं, उदाहरण है-AchhiKhabar.com**,** Hindime.net आदि। हिंदी में वीडियो या ई-बुक कोर्स बनाकर Skill share, Udemy जैसे प्लेटफॉर्म पर हिंदी में कोर्स बनाकर बेचा जाता है। इस बिक्री से अच्छी आमदनी हो सकती है-यह सब उपलब्ध हो सकता है, आपकी विशेष योग्यता पर ! हिंदी में डिजिटल एजेंसी या स्टार्टअप के जरिए हिंदी मार्केटिंग, हिंदी सोशल मीडिया मैनेजमेंट, हिंदी विज्ञापन स्क्रिप्ट राइटिंग कर अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है।

नई शिक्षा नीति (NEP 2020) में हिंदी की आवश्यकता :

नई शिक्षा नीति 2020 ने मातृभाषाओं में शिक्षा देने पर बल दिया है। इससे हिंदी भाषा में शिक्षण सामग्री और अध्यापकों की माँग में तेजी आएगी। इस नीति से हिंदी ज्ञाताओं को अनेक लाभ मिलेंगे। शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी माध्यम को बढ़ावा मिलेगा। हिंदी में पाठ्यपुस्तकों, ई-कंटेंट और प्रशिक्षण कार्यक्रमों की माँग बढ़ेगी, जिससे हिंदी से सम्बद्ध लोगों को आर्थिक फायदा होगा। E-Learning प्लेटफॉर्म हिंदी में कोर्स तैयार करने में अनेक लोगों को रोजगार मिलेंगे।

हिंदी भाषा में रोजगार के लिए आवश्यक कौशल एवं भविष्य की संभावनाएँ:

व्याकरण एवं लेखन क्षमता, शुद्ध हिंदी लेखन, रचनात्मक लेखन, हिंदी टाइपिंग (Inscript, Remington, Krutidev, Unicode), अनुवाद दक्षता - अंग्रेज़ी से हिंदी और हिंदी से अंग्रेज़ी, तकनीकी ज्ञान - ब्लॉगिंग, SEO, Word Press, संपादन एवं प्रूफरीडिंग - समाचार, किताबें, वेबसाइट सामग्री की शुद्धि, आवाज़ और भाषण कला, वॉइस ओवर, रेडियो, पॉडकास्ट आदि के लिए समयानुसार हिंदी में रोजगार प्राप्त करने के लिए ये सब जरूरी कौशल प्राप्त करने होंगे; तभी आप हिंदी भाषा से अच्छी आय की उम्मीद कर सकते हैं। भविष्य की संभावनाओं के रूप में AI और भाषा मॉडल में हिंदी का बढ़ता उपयोग जैसे-हिंदी GPT। लोकलाइज़ेशन इंडस्ट्री में हिंदी की माँग कई गुना बढ़ेगी। भारत सरकार की डिजिटल इंडिया

योजना से हिंदी डिजिटल क्रांति को बहुत बल मिलेगा। हिंदी तकनीकी शब्दावली और टूल्स का विकास - जैसे हिंदी OCR, हिंदी स्पीच-टू-टेक्स्ट। कुल मिलाकर कहें तो हिंदी के सामने अनेक चुनौतियाँ भी है जो प्रकारांतर से हिंदी ज्ञाताओं के लिए भी है, जैसे- हिंदी में तकनीकी शब्दों की कमी मानकीकरण की कमी (वर्तनी, टाइपिंग की-बोर्ड), क्षेत्रीय भाषाओं के साथ प्रतिस्पर्धा, कई क्षेत्रों में अंग्रेज़ी का वर्चस्व, ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल संसाधनों की कमी, हिंदी शिक्षण में आधुनिक तकनीकों की कमी; परन्तु इसके कुछ उपाय भी मिल जाएँगे जैसे- तकनीकी शब्दों का हिंदीकरण, हिंदी में तकनीकी पाठ्यक्रमों की शुरूआत, हिंदी में उच्च गुणवत्ता का डिजिटल कंटेंट तैयार करना, हिंदी भाषा में प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन, सरकारी और निजी क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देना, डिजिटल हिंदी लाइब्रेरी और ओपन कंटेंट प्लेटफॉर्म, हिंदी भाषा के लिए सरकारी और निजी क्षेत्र की साझेदारी, स्थानीय स्तर पर हिंदी उद्यमिता को प्रोत्साहन।

हिंदी में रोजगार की इच्छा रखने वालों के लिए पत्रकारिता, जन-संचार में डिग्री-डिप्लोमा के साथ-साथ हिंदी में अकादमिक योग्यता रखना महत्त्वपूर्ण है। कोई व्यक्ति रेडियो, टीवी, सिनेमा के लिए स्क्रिप्ट राइटर, डायलोग राइटर, गीतकार के रूप में भी काम कर सकता है। इस क्षेत्र में प्राकृतिक और कलात्मक रूप में सृजनात्मक लेखन आवश्यक होता है। लेकिन किसी व्यक्ति के लेखन के स्टाइल में सृजनात्मक लेखन में डिग्री-डिप्लोमा निश्चित तौर पर निखार ला सकता है। इसमें प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय लेखकों के कार्यों का हिंदी में अनुवाद तथा हिंदी लेखकों की कृतियों का अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य करना भी सम्मिलित होता है। फिल्मों की स्क्रिप्टों-विज्ञापनों को हिंदी-अंग्रेजी में अनुवाद करने का भी कार्य होता है। इस रूप में हिंदी भाषा आज सिर्फ साहित्य की भाषा नहीं, बल्कि अनेक संभावनाओं की भाषा बन चुकी है।

निष्कर्ष:

हिंदी अब केवल एक भाषा नहीं, बल्कि एक उभरता हुआ व्यावसायिक क्षेत्र बन चुकी है। जहाँ एक समय अंग्रेज़ी के बिना भविष्य अधूरा लगता था, वहीं आज हिंदी भाषा आत्मनिर्भर भारत की नींव बन रही है। यह केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि रोजगार और आत्मनिर्भरता का स्रोत भी बन रही है। पत्रकारिता, अनुवाद, लेखन, शिक्षा, तकनीक, सोशल मीडिया और सरकारी क्षेत्रों में हिंदी की भूमिका लगातार बढ़ रही है। चाहे आप लेखक पत्रकार, शिक्षक, तकनीकी विशेषज्ञ, कंटेंट निर्माता या सरकारी नौकरी के इच्छुक हों–हिंदी आपके लिए अवसरों के नए द्वार खोल सकती है। आवश्यक है कि हम अपनी भाषा पर गर्व करें, उसे अपनाएँ, और उसकी शक्ति को समझें। कहीं ऐसा न हो कि हमारे मन में सदियों से रस-बस गई मान्यता हम हिंदी भाषा के लिए अभी भी स्वीकृत करते चलें-"घर का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध"[8] हमारी यह सोच कम से कम हमें अपनी हिन्दी के लिए तो बदलनी पड़ेगी। एक स्वीकार्य सत्य है कि विश्व की तमाम भाषाओं का अपने-अपने स्थान पर निजी महत्त्व है। वैश्विक भाषा के तौर पर हिन्दी को जो स्वीकृति मिली है, उसे नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए। हिंदी को बढ़ावा देने के लिए जितना हो सके सरकारी प्रयासों के साथ-साथ न केवल व्यक्तिगत बल्कि सामूहिक प्रयास करना होगा। यहाँ हम जनसत्ता दैनिक के वरिष्ठ पत्रकार आलोक रंजन पांडेय जी के विचारों को दोहराना चाहेंगे- "जिस तरह एक घर में माँ के बिना घर, परिवार और उस घर के बच्चे अधूरे हैं, उसी तरह हिंदी भाषा के बिना भारत और भारतीयता अधूरी है। इस अधूरेपन को दूर करने के लिए हमें हिंदी में जीना होगा और वह भी दिखावे के लिए नहीं, बल्कि उसे दिल से जोड़ना होगा।"[9]

हमने यहाँ एक गंभीर विषय 'हिंदी भाषा में रोजगार के अवसर : एक विशेष पड़ताल' पर जो भी कहा है वह अंतिम सत्य नहीं है। हिंदी भाषा में रोजगार की व्यापक संभावनाएँ अवश्य है, हिन्दी प्रेमी अपनी योग्यता के बलबूते पर अपना पसंदीदा क्षेत्र अपनाकर अपने उज्जवल भविष्य के सपने को साकार कर सकता है। अंतत: हम यही कहना चाहेंगे-

"हमारी हिंदी सिर्फ भाषा ही नहीं, असीम संभावनाओं का सर है !

यह प्रत्येक भारतीय का हिंदी के प्रति अमिट विश्वास का स्वर है।

नित्यप्रति अपराजेय हिंदी ही हमारी राजभाषा राष्ट्रभाषा भास्वर है !

हिंदी को अपनाओ तुम प्रतीक्षारत रोजगार के व्यापक अवसर है।"

इसलिए इसमें कोई संशय नहीं कि हिंदी में दम है और इस हिंदी के दम पर हम दुनिया में भारतीय संस्कृति का परचम लहरा सकते हैं। हमें उम्मीद ही नहीं, बल्कि पूरा विश्वास है कि हिंदी से ही हमारी वैश्विक पहचान बनी है और भूतकाल में यही हिंदी हमारी भारतीय संस्कृति और बौद्धिक क्षमता को विश्व के सामने लाई है और भविष्य में भी लाएगी।

संदर्भ :-

1. गोस्वामी, योगेन्द्र. (2001). *राष्ट्रीय एकता और हिंदी साहित्य.* In प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय (संपा.), *राष्ट्रीय एकता और हिंदी.* नई दिल्ली: अखिल भारतीय साहित्य परिषद्. पृ. 125.
2. परिट, डॉ. सुनील, एवं पटेल, डॉ. बी. जे. (2024). *हिंदी हैं हम.* In डॉ. बी. जे. पटेल 'ब्रिजेश' (संपा.), *हिंदी की गौरवगाथा अपनी ज़ुबानी.* बेंगलूर: एच. एस. आर. ए. पब्लिकेशन्स. पृ. 33.
3. मिश्रा, डॉ. शुभंकर. (2024, 14–20 सितंबर). हिंदी: भारत और उसके बाहर विविध संस्कृतियों को एकजुट करना. *रोजगार समाचार,* विशेष लेख, Issue No. 24. https://rojgarsamachar.gov.in
4. राजस्थान लोक सेवा आयोग, अजमेर. (2025, 18 सितंबर). *विज्ञापन संख्या: 10 / परीक्षा / सहायक आचार्य / कॉलेज शिक्षा / EP-I/2025-26 (क्रमांक: एफ. 8ए (19) परीक्षा/ A.P. (college EDU.) / RPSC / EP-I / 2024-25/63).*
5. सिन्हा, डॉ. विनोद कुमार. (2001). *राष्ट्रभाषा हिंदी: कुछ विचार.* दिल्ली: सन्मार्ग प्रकाशन. पृ. 70.
6. शर्मा, डॉ. विजय. (2021–2022). *हिंदी में कम्प्यूटर की भूमिका.* In डॉ. निर्मल सिंह (संपा.), *हिंदी भाषा के विद्यार्थियों के लिए रोजगार के अवसर.* अम्बाला छावनी: सनातन धर्म कॉलेज. पृ. 72.
7. शुक्ल, डॉ. अजय कुमार. (2024, मई). *Innovation and Integrative Research Center Journal,* 2(5). पृ. 45.
8. कपूर, डॉ. बदरीनाथ. (2002). *हिंदी मुहावरे और लोकोक्ति कोश* (द्वितीय संस्करण). इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 420.
9. पाण्डेय, आलोक रंजन. (2024, 14 सितंबर). हिंदी भाषा और रोजगार. *जनसत्ता,* विशेष लेख.

21 वीं सदी के चयनित उपन्यासों में बदलते मूल्य

डॉ. गेलजी भाटिया*
geljibhai.bhatiya@gmail.com

सारांश

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में जीवन मूल्यों का चित्रण व्यापक, विविध और यथार्थपरक रूप में प्रस्तुत हुआ है। इन उपन्यासों में भारतीय जीवन-मूल्यों के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन की जटिलताओं को गहराई से अभिव्यक्त किया गया है। आधुनिक समय में परिवर्तित सामाजिक परिवेश, स्त्री-पुरुष संबंधों की नई परिभाषाएँ, युवावर्ग की बदलती मानसिकता, पारिवारिक विघटन, वृद्धावस्था की समस्याएँ, शहरीकरण की चुनौतियाँ और कृषक जीवन की त्रासदी जैसे विषय प्रमुख रूप से उभरे हैं।

इस शोध पत्र में दर्शाया गया है कि आर्थिक प्रतिस्पर्धा और भौतिकतावादी दृष्टिकोण ने पारिवारिक संबंधों में तनाव और विघटन को जन्म दिया है। इस प्रकार, इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यास जीवन-मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन और मानवीय संवेदनाओं के पुनःस्थापन का सशक्त माध्यम बनकर उभरे हैं।

की-वर्ड :

परोपकार, करुणा, सहिष्णुता, साहजिकता, सहनशीलता, धर्म निरपेक्षता अकेलेपन, सांस्कृतिक मूल्य, संकीर्णता, हिंसाचार, आतंक, अकेलेपन, यथार्थ, उन्मुक्त बंधनहीन जीवन, स्व की तलाश, विघटन, पाश्चात्य जीवन शैली

उद्देश्य

21 वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में पाश्चात्य जीवन शैली का प्रभाव एवं भारतीय पितृसत्तात्मक व्यवस्था खास करके नारी जीवन की विवाह संस्था की आस्था में विश्वास का उठना दिखाई देता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था यथार्थ के प्रेरणास्रोत एवम् स्वर्ग के रूप में समझा जाता रहा है, उनकी जटिलता, उन्मुक्त बंधनहीन जीवन, विघटित मानसिकता की परिणति, पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों से मुक्ति, स्व की तलाश, सहजीवन के विश्वास, वायदे, समर्पण, संस्कृति के संक्रमण से उपजी सहजीवन की मान्यता का विश्लेषण मुक्तरूप से उजागर होता हुआ मिलता है। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों में बदलाव चयनित उपन्यासों में अपने युगबोध का चित्रण संवेदनशील इसका मूल्यांकन यही इस लेख का उद्देश्य रहा हैं।

उपन्यास विधा को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा जाता है। इसका कारण यह है कि इस विधा में महाकाव्य की भाँति संपूर्ण जीवन को समेटने तथा भूत, भविष्य और वर्तमान को एक साथ संबोधित करने की महती संभावनाएँ निहित रहती हैं। यही कारण है कि आधुनिक उपन्यास वह समकालीन जीवन और जगत की सभी स्थूल हलचलों और सूक्ष्म धड़कनों को एक साथ समेटकर अपनी विश्व दृष्टि द्वारा यथार्थ को लोक मंगलकारी स्वरूप भी प्रदान करता है। उपन्यासकार से आज यह अपेक्षा रहती हैं कि संसार को हमारी नजर से देखाए और दूसरों को भी दिखाए, उससे यह भी उम्मीद की जाती है कि वह वैचारिक ही नहीं, वास्तविक धरातल पर सबके साथ सक्रिय दिखाई दें।

21 वीं सदी के हिंदी उपन्यासकार अपनी रचनाओं में महाकाव्यात्मक अपेक्षाओं से भली भाँति परिचित है और इनके प्रति जागरूक भी है। आज का उपन्यास अब काल्पनिक आदर्श के युग से बहुत आगे निकल चुका है। वह इस वास्तविक

* **एसोसियेट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, भाषा संकाय, गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद**

दुनिया की सच्चाइयों को उन लोगों के साथ खड़े होकर भोगता और बखान करता है जो सदियों कथा-रचना के पात्र तो रहे, किन्तु उत्तम पुरुष के रूप में नहीं बल्कि दूसरे पुरुष के रूप में रहें। पिछले कुछ दशकों में उपन्यास रचना का अवलोकन देश-दुनिया के पारंपरिक बातों से हटकर उस हाशिए पर आया है जहाँ वे तमाम लोग व समुदाय विद्यमान हैं, जिन्हें शताब्दियों तक सभ्यता-विकास की आपा-धापी भरे युगों से उपेक्षित रखा गया यूं कहा जाए कि- सतत उपस्थित होते हुए भी अनुपस्थित बने रहने के लिए विवश किया गया। आज बदलते हुए मूल्य, बदलते हुए लोग, मुद्दे और समुदाय अपनी उपस्थिति को बड़ी दृढ़ता से रेखांकित कर रहे हैं, साथ ही अपनी लोकतांत्रिक अस्मिता को पुन: प्रतिष्ठित कर रहे हैं। इससे साहित्य और संस्कृति की पहले से चली आ रही परिभाषाएँ और व्याख्याएँ काफी हद तक निरस्त हुई हैं या बदल गई हैं। इन मूल्यों को भी अब एकवचनीय केंद्र के स्थान पर बहुवचनीय हाशिए के मानवीय दृष्टिकोण से पुनः परिभाषित किया जा रहा है; प्राथमिकताओं में बदलाव दृष्टि गोचर रहा है।

भारत देश के विशिष्ट गुण जैसे परोपकार की भावना, करुणा, दया, सहिष्णुता, साहजिकता, सहनशीलता इत्यादि धर्म निरपेक्षता के प्रेरणा स्रोत एवम् स्वर्ग के रूप में समझा जाता रहा है, वही सबकुछ आज के समय में संकीर्णताओं की बेड़ियां पहनकर आगे को रेंगता दिखाई देता है। चुनावों के समय गुंडागर्दी की घटनाएं अधिकतर दिखाई देती हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि- देश में ईमानदार, सरल, सीधे-सादे, भोले-भाले उम्मीदवार को विजय प्राप्त करना बड़ा कठिन कार्य है। एक पक्ष या नेता ही जिम्मेदार नहीं है। "राजनीति में असामाजिक तत्वों को भी जगह मिली है।"[1] सामाजिक व्यवस्था और नियमन पर कई तरह के खतरे हैं, किन्तु उससे बचने के लिए सामाजिक मूल्यों और सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन आता रहा है। परिवर्तन ही संसार का नियम है। विकास के लिए पुरानी परंपराओं, मान्यताओं, सामाजिक व्यवस्था और नियमन पर परिवर्तन आयेगा तभी सामाजिक मूल्यों का परिणाम देखने को मिलेगा।

हिंदी साहित्य के विभिन्न उपन्यासों में उनका चित्रण मिलता है। जैसे श्री लाल शुक्ल जी का 'बिसरामपुर का संत' ई.स.1998 में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में स्वतंत्रता के आंदोलन में जो घटनाएं घटित हुई उसमें से भूदान आंदोलन घटना का प्रभावशाली चित्रण किया गया है। गांधीवादी मूल्यों और विनोबा भावे के टूटते सिद्धांतो का कलात्मक और यथार्थ स्तर पर वर्णन किया गया है। साथ ही भूमिगत समस्या पर भी यह रचना प्रकाश डालती है। भू-दान आंदोलन पर लिखी गयी यह रचना महत्व पूर्ण है। 'रागदरबारी' उपन्यास के समान इस उपन्यास का प्रारंभ भी राजनीतिक परिवेश से होता है। भू-दान यज्ञ में चारों ओर 'सब भूमि गोपाल की' मंत्र चल पड़ा था लेकिन कुछ लोग हथियारों के बल पर भूमि के लिए अड़े हुए थे। वैसे तो जमीदारों, राजाओं, महाराजाओं ने विनोबा भावे के भूदान यज्ञ से प्रभावित होकर भू-दान तो किया, लेकिन वह व्यावहारिक स्तर पर कितना खोखला साबित हुआ, उसका यथार्थ दृष्टांत यह उपन्यास है। डॉ.मुरली मनोहरा सिंह 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास को- "सही अर्थों में भी नयी कथा भूमि की तलाश का परिणाम मानते हैं।"[2] 'रागदरबारी' यदि स्वातंत्र्योत्तर समाज की भद्देस गाथा थी तो 'बिस्रामपुर का संत' सत्ता के भजन गाथा है।"[3] उनका 'राग-विराग' उपन्यास ई.स.2002 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की विशिष्टता उपन्यासकार की रचना शीलता का परिचय देता है।

प्रस्तुत उपन्यास में श्री लालशुक्ल जी ने शिल्प का आवरण उतारकर नाट्य लेखन शैली का यथार्थ प्रयोग किया है। जैसे- "भावुकता से दूर रहनेवाला, किन्तु भाव प्रवण कलावादी नुस्खों से बहुत दूर, किन्तु कलात्मक 'राग-विराग' उपन्यास प्रसन्नता और अवसाद, लगाव और अलगाव, गाँव-शहर, देश-परदेश, राग-विराग, बुनियादी कल्चर और ओढ़ी हुई कल्चर, दारिद्र्य-अमीरी का फर्क और संघर्ष की कथा है।

अतः संक्षेप में कहा जाये तो उपन्यासकार ने उपन्यास में कुल मिलाकर नव्यतम और विशिष्ट प्रेम कथा के माध्यम से विकसित होती हुई कथा को प्रेम कहानी के आवरण में जीवन जगत के गहरे यथार्थ का वर्णन किया है। जीवन के अनेक आयामों को अपने भीतर समेटते हुए विभिन्न स्तरों पर उद्घाटित किया है। आदिवासी साहित्यकारों में ब्रजनंद सहाय का ई.स.1904 में प्रकाशित 'अरण्य बाला', मैत्रेइ पुष्पा का ई.स. 2000 'अल्मा कबूतरी', रमणिका गुप्ता का ई.स. 2010 'सीता', 'मौसी' इत्यादि। आदिवासी इन संबंधित उपन्यासों में उदारीकरण, बाजारीकरण, वैश्वीकरण,

भूमंडलीकरण अशिक्षा उपभोक्तावाद, भूमिहीन के लिए आजीविका के साधनों का सविस्तार सितार दिया है। आदिवासी समुदाय को सही रास्ते पर लाने का कार्य इन उपन्यास किया गया हैं।

मानवीय जीवन में मूल्यों का महत्व अनन्य है, मूल्यों के आधार पर ही मनुष्य सही-गलत का चुनाव करता है। समाज की आवश्यकता के अनुसार परंपरा से ये मूल्य बनते गए है जो नैतिकता के धरातल पर, आर्थिक एवं सामाजिक सरोकारों के आधार पर तय किये जाते थे। इन नीति मूल्यों को धार्मिकता का संबल था। परंतु समय परिवर्तन के साथ-साथ वैश्वीकरण के दौर तक आते-आते मूल्य घटते जा रहे हैं। सांप्रदायिकता, जातिवाद, हिंसा, असहिष्णुता के कारण मूल्यों के विघटन ही नजर आ रहें है। इस बदलते माहौल का पूरा चित्रण अनेक साहित्यकारों ने किया है। चयनित उपन्यासों में बदलते मानवीय मूल्यों की दृष्टि से उपन्यासों का अध्ययन किया है। 21 वीं सदी के उपन्यासकारों ने भूमंडलीकरण से निर्माण इन परिस्थितियों से जूझते मानव को अपने उपन्यासों द्वारा अभिव्यक्त किया है। उदाहरण के तौर पर शिक्षा के क्षेत्र में रॅगिंग की समस्या, व्यसनाधीनता, बेरोजगारी, युवा संगठन इत्यादि समस्याओं को मनोज सिंह का उपन्यास 'हॉस्टल के पन्नों से', ममता कालिया का 'अंधेरे का ताला', जैसे उपन्यासों में बड़ी सशक्तता के साथ चित्रित किया गया है। उपन्यासकारों ने 21 वीं सदी तक आते-आते भारतीय जीवन मूल्यों की टकराहट से विघटन प्रवृत्ति का चित्रण किया है। जीवन मूल्यों में आयी गिरावट से जीवन की जटिलता बढ़ती गई है। 21 वीं सदी में मूल्य, नैतिकता, परंपरा, सांस्कृतिक संदर्भ, काँच के बर्तन की भाँति टूट रहे हैं। समाज जो रूप धारण कर रहा है उससे भिन्न-भिन्न वर्गों में अनेक प्रवृत्तियों उभर रही है। उसका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं, बल्कि आवश्यकतानुसार उसके निराकरण की प्रवृत्ति उपन्यासकारों ने प्रस्तुत किया हैं। 21 वीं सदी के उपन्यासों में पूँजी और बाजार के संजाल से चकाचौंध ने मनुष्य को मानवीय संवेदनाओं से बे-दखल कर दिया है। चयनित उपन्यासों में इन बदलावों का चित्रण मिलता है। समय के बदलाव का प्रभाव साहित्य और समाज पर भी पड़ता है। रचनाकार इस परिवर्तन को महसूस करता है उसमें जीता है, इसलिए रचनाकार अपने समय का सबसे बड़ा पारखी होता है। 21 वीं सदी में राजनीति, अर्थनीति और सामाजिकता में एक अलगाव स्थापित हुआ। इन तीनों परिस्थितियों की गति एवं दिशा अलग रही, जिसमें फँसा आदमी नीचले स्तर पर गिरता जा रहा है। तेजी से परिवर्तित पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्ते फिर एक बार दाँव पर लगे। वैश्वीकरण और बाजारवादी संस्कृति में हम अपनी संस्कृति भूलते जा रहे हैं। इन उपन्यासों में बडी संवेदना के साथ चित्रण हुआ है। हिंसाचार, आतंक, अकेलेपन की समस्या, वृद्धों की समस्या आदि का चित्रण 21 वीं सदी के उपन्यासों में हुआ है। जिस आतंक से हम त्रस्त है वह सिर्फ जिस्मानी नहीं बल्कि मानसिक स्तर पर भी है। जिस 'धर्म' शब्द से ही हमें शांति प्राप्त होती थी, आज वैश्वीकरण के दौर में वही द्वेष एवं शत्रु का रूप धारण कर रही है। ऐसे समय साहित्यादि कलाएँ, जो हमारे जीवन, संस्कृति जीवन विषयक तत्त्वों से, मूल्यों से जुड़ी रहती है, वही हमारी मानवीयता की धरोहर है। साहित्य यानी संस्कृति, मानवता का परिचायक जो इस सौहार्द भावनाओं, संवेदनाओं को संजोकर रख पाएगा। इस दृष्टि से चयनित उपन्यासों का अध्ययन किया गया है। ई.स.1990 के दशक के बाद वैश्वीकरण के समय से भारतीय परिवेश में पूरी तरह बदलाव दिखाई देता है। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों में बदलाव दिखाई देता है। चयनित उपन्यासों में अपने युगबोध का चित्रण संवेदनशील साहित्यकारों ने कैसे किया है इसका मूल्यांकन किया है।

इस दृष्टि से 21 वीं सदी का 'चलती चाकी' सूर्यनाथ सिंह द्वारा लिखित उपन्यास में ग्राम सुधार के माध्यम से दौलतपुर गाँव के बदलते परिवेश का अंकन कैसे किया है तथा मृणाल पांडे द्वारा लिखित 'सहेला रे' उपन्यास में भारतीय संगीत के माध्यम से मध्यकालीन समय के कलाकारों का संगीत प्रेम कैसा रहा इसे व्यक्त किया है। पौराणिक संदर्भ लेकर आधुनिक विचारों को प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास 'पंचकन्या मनीषा कुलश्रेष्ठ द्वारा लिखा है। इन उपन्यासों में अभिव्यक्त 21 वीं सदी के मूल्य किस तरह मानवीय भावबोध से टकरा रहें है तथा इस तरह के कुछ अन्य उपन्यास का भी उल्लेख किया गया है। साहित्य जीवन का साक्ष्य है। 21 वीं सदी के उपन्यासकारों ने बड़ी सूक्ष्मता से गतिमान जीवन की विसंगति, विडंबनाओं को यथार्थ की भाव भूमि पर उतारा है। नारी विमर्श, दलित विमर्श, उपभोक्ता प्रवृत्ति, आतंक हिंसा आदि विषयों का चित्रण नए तेवर के साथ किया है।

विवाह जो जीवन को स्थायित्व प्रदान करता है परन्तु आज का युवा वर्ग उसको नकारकर सह जीवन में जीना चाहता है। सह जीवन के सम्बन्धों को युवक-युवतियाँ स्वातन्त्र्य और सशक्तीकरण मानकर अपना रहे हैं। सह-जीवन

विमर्श भारत में भी धीमे-धीमे अपनी पैठ बना चुका है। ममता कालिया ने 'दौड़' उपन्यास में सह-जीवन पर युवा पीढ़ी के द्वंद्व को उजागर किया है- "मैंने तो ऐसी कोई लड़की नहीं देखी जो शादी के पहले ही पति के घर में रहने लगे। तुमने देखा क्या है माँ? इलाहाबाद से निकलोगी तो देखोगी न। यहाँ गुजरात सौराष्ट्र में शादी से होने के बाद ऐसी महीने भर ससुराल में रहती है, लड़का लड़की एक दूसरे के तौर तरीके समझ में के बाद ही शादी करते हैं।''[4] मूलतः यह भारतीय समाज में पश्चिमी संस्कृति का ही प्रभाव है। बड़े-बड़े महानगरों में स्त्री-पुरुष एक-दूसरे की रजा मंदी से शारीरिक सुख भोगते हैं फिर अलग हो जाते हैं।

'सहजीवन' की संस्कृति का चलन भारतीय समाज में आम होता जा रहा है। जिसका प्रभाव भारतीय स्त्रियों पर भी पड़ा है। आज की 'स्त्री 'बिना विवाह बंधन में बंधे ही किसी पर पुरुष के साथ रहने में कोई गुरेज नहीं करती। इस तरह की मानसिकता महानगरों की स्त्रियों में ज़्यादा नज़र आती है। जिसका जिक्र रचनाकार अनामिका ने अपने उपन्यास 'दस द्वारे का पिंजरा' में कुछ इस तरह से किया हैं- "मुझे 'सहजीवन' और विवाह में बुनियादी फ़र्क़ नज़र नहीं आता। फ़र्क़ है तो इतना कि विवाह के सिर पर क़ानून की छतरी और धर्म का चंदोवा टंगा है और 'सहजीवन' बिना छतरी और चंदोवे के धूप और बारिश के साथ झेलने और भोगने के रोमांस से नहाया हुआ है। विवाह एक परम ठोस सामाजिक व्यवस्था है.... 'सहजीवन' है खुले द्वार का पिंजड़ा, जब तक मिठास से निभे, रहो, वरना तुम अपने रास्ते, हम अपने"।[5] 21 वीं की नई गतिविधियों और बाज़ार ने जहाँ स्त्रियों को स्पेस दिया, वहीं उसके सामने कई तरह की समस्याएँ भी खड़ी कर दी है।

यह इस युग की नई नैतिकता है जिसे आधुनिक नारी गढ़ रही है। 'समलैंगिकता' और 'सहजीवन' जैसी अवधारणा आज आम बात हो गयी है। यौन इच्छाओं की संतुष्टि के लिए पुरुष की सत्ता को खारिज कर रहीं हैं। यह आधुनिक चेतना सम्पन्न नारी का फलसफ़ा है। रजनी गुप्त के 'एक न एक दिन' की पात्रा 'कृति' विवाह संस्था की आलोचना करते हुये कहती है- "आखिर किसने थमाए एक व्यक्ति के हाथों में इतने अनंत अधिकार क्यों? ये व्यवस्था हमेशा औरत पर ही छींटाकशी के मौके ढूंढती रहती है? महज सात फेरे लेने से क्यूँकर एक पुरुष किसी भी स्त्री का सर्वांग मालिक बन जाएगा।''[8] परंपरागत विवाह संस्था की कमजोरियाँ खुलकर सामने आने लगी हैं, जहाँ स्त्री को सिर्फ़ दासी समझा जाता है और पुरुष हर तरह से उसका शोषण करता है। अब इस तरह के भेद-भाव के प्रति स्त्रियाँ खुद मुखर हो रही हैं। रजनी गुप्त के 'एक न एक दिन' में लड़की से जीवन पर टिप्पणी करते हुए कहती है यही मुंबई में कई घोड़े बिना शादी के बी रहता है खूब मौज मस्ती एण्ड नो कमिटमेण्ट। ऐ ऐसे क्या आप चौड़ी करके दीदे फाड़ रही हो, लिव इन रिलेशनशिप में क्या बुराई है?''[9] अभी तक स्त्री जिन मुद्दों पर बात करने से शर्म महसूस करती थी, अब उन्हीं मुद्दों पर बोल्ड होकर बात करती हुई दिखाई देती हैं। विवाह संस्था, दांपत्य सुख, यौन तुष्टि और सहजीवन पर नई नैतिकता रचती हुई आज की स्त्री को देखा जा सकता है।

अब स्त्रियाँ अपनी निजता पर खुल कर बोल रही हैं, अपनी शारीरिक जरूरतों और यौन इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए विवाह से पहले या विवाहेत्तर संबंध बनाने से भी परहेज नहीं कर रही हैं। जयन्ती रंगनाथन ने अपने उपन्यास 'खानाबदोश ख्वाहिशें' की नायिका निधि एक ऐसी पात्र है जो कई पुरुषों से शारीरिक संबंध बनाती है जिसका उसे कोई अफसोस नहीं है। वह बेधड़क हो कर कुबूल करती है- "मैंने जो किया, कहा और जिया, उसकी पूरी ज़िम्मेदारी उठाती हूँ। मुझमें किसी किस्म का गिल्ट नहीं।... मैं भी कुछ दिनों पहले तक मानती थी कि औरत को पुरुष दिशा देता है। मैं अपनी तलाश में बहुत भटकी। बहुत पुरुषों में सहारा ढूंढा। पर मिला तो अपने ही कंधों पर। हम हर पुरुष में एक आदर्श ढूंढते हैं। सब किताबी बातें हैं। ऐसा कुछ नहीं होता है"।''[10] सहजीवियों को बदलती मानसिकता के कारण अपराध बोध से ग्रसित होना पड़ता है।

शरद सिंह ने 'कस्बाई सीमोन' उपन्यास में कस्बाई नारी को चरितार्थ करते हुए वैश्वीकरण के प्रभाव का उल्लेख किया है। इस उपन्यास के अन्तर्गत सुश्री शरद सिंह ने सुगन्धा व रितिक के माध्यम से सहजीवियों को स्वच्छन्द जीवन जीने के साथ-साथ माता पिता का एक दूसरे पर प्रत्यारोपण, अशोभनीय संवाद, अलगाव, माँ बेटी का जीवन संघर्ष, बचपन की नियति, कुसंस्कारों का प्रतिगामी प्रभाव, अपराध बोध, समाज से तकरार, प्रताड़ना व टकराहट, बदलती मानसिकता की बीमारी, सहजीवन के विश्वास, वायदे, समर्पण, चुनौती, जीवन में देह की भूख व अप्राप्य प्रेम के बीच

उलझन आदि को विस्तार दिया है जो कि सह-जीवन का प्रतिरूप उपस्थित करता है। उपन्यास की पात्रा सुगन्धा के माध्यम से स्व की तलाश हेतु अनेक प्रश्न उपस्थित किये गये हैं- 'उफ् ये विवाह की परिपाटी। गढ़ी तो गई स्त्री के अधिकारों के लिए जिससे उसे उसके बच्चों को सामाजिक मान्यता और आर्थिक सम्बल आदि मिल सके लेकिन समाज ने ही इसे तमाशा बना कर रख दिया। मैं इस तमाशे को नहीं जीना चाहती थी। मैंने सोच रखा था कि कभी विवाह नहीं करूंगी। माँ के अनुभवों की छाप मेरे मन मस्तिष्क पर गहरे तक अंकित थी। उसे चाहकर भी नहीं मिटा सकती थी।''[11] सुश्री शरद सिंह ने विवेच्य उपन्यास में नारीवाद के वैश्विक स्वरूप को स्वीकारते हुए भारतीय नारी के लिए स्व की तलाश का उल्लेख किया है। इस उपन्यास के सह जीवी पात्र रितिक और सुगन्धा के बीच संवाद सह जीवन के विश्वास, वायदे, समर्पण, चुनौती की अवधारणा को स्पष्ट करता है – "ये किसने कहा कि मैं तुमसे शादी करना चाहती हूँ? कि तुम से बच्चे पैदा करना चाहती हूँ? तुम्हें पसन्द करती हूँ बस, इसलिए तुम्हारा साथ चाहती हूँ। मैंने कहा था 'फिर पसन्द'? प्रेम नहीं?

हाँ-हाँ, वही प्रेम, प्रेम करती हूँ तुम से। मेरे साथ रहोगी बिना शादी किये? लिव इन रिलेशन? रितिक ने चुनौती सा देते हुए पूछा था और में रितिक के जाल में फंस गई थी। कारण मैं अपने जीवन को अपने ढंग से जीना चाहती थी और लिव इन रिलेशन वाला फंडा मुझे अपने ढंग जैसा लगा था।''[12] बिना विवाह किये किसी पुरुष के साथ पति पत्नी के रूप में रहने की कल्पना ने मुझे रोमांचित कर दिया। विवेच्य उपन्यास में सुश्री शरद सिंह ने सहजीवियों की समाज से तकरार व टकराहट का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत किया है।'' वस्तुतः 'कस्बाई सिमोन' उपन्यास कस्बे में रहने वाली स्त्री के मन में चल रही कशमकश व पीड़ा का दस्तावेज़ है, सहजीवन रूपी फीचर की कार्यशाला है, अनुभवों का रेखाचित्र है।[13]

केवल स्त्रियाँ ही सह जीवन की और अग्रसर नहीं, पुरुष भी अब अकेले जीवन यापित करना चाहता है। पुरुष समाज के बीच अविवाहित जीवन बिता रहे हैं। अलका सरावगी ने 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में गुरुचरण राय के माध्यम से सह जीवन के सन्दर्भ में पुरुष मानसिकता का वर्णन किया है- "गुरु चरण गाय लक्की मैन का फोन किसी शाम नहीं बजता। वह मोबाइल ही नहीं रखता। इसी झंझट से बचने के लिए तो शादी नहीं की।''[14] अलका सरावगी ने भारतीय सामाजिक परिवेश में सह जीवन संबंधों पर चिंतन मनन किया है- "गुरुचरण गुरुजी की साक्षात मूर्ति महिला का फ्रैंड, फिलासफर, गाइड के साथ-साथ कुछ और भी है, पर जाहिर है कि यह सब बातें कभी चाहे जाहिर नहीं की जाती।''[15] आर्थिक तौर पर स्वतन्त्र मानसिकता वाले लोग जो विवाह की जकड़न से छुटकारा पाना चाहते हैं जिस रिश्ते को दूसरे पक्ष की सहमति के बिना कभी भी समाप्त किया जा सकता है।

महानगरों में सहजीवन की स्वतन्त्र मानसिकता वाले लोग जो विवाह की जकड़न से छुटकारा पाना चाहते हैं, शारीरिक सम्बन्धों से मिलने वाली शान्ति स्थायी सम्बन्धों के लिए बाध्य नहीं करती। प्रभा खेतान के उपन्यास 'पीली आंधी' में सह जीवन को पद्मावती और सुराणा के माध्यम से विश्लेषित किया है। सुराणा पद्मावती के सामने जब विवाह का प्रस्ताव रखते हैं तो पद्मावती इन्कार कर देती है। पद्मावती कहती है मैं बस एक ही चाहती हूँ बिल्कुल गोपनीयता आप प्रतिज्ञा कीजिए। स्त्री और पुरुष के सह जीवन को लेकर अदालत ने फैसले सुनाने प्रारम्भ कर दिए हैं, तब से समाज में भी इसको लेकर काफी चर्चा हो रही है, इसके पक्ष और विपक्ष में अपने-अपने तर्क वितर्क हैं। अदालत यह तय कर रही है इस सह जीवन के दौरान होने वाली संतानों का पूर्वजों की जायदाद पर अधिकार होगा या नहीं। शहरी जीवन शैली में विवाह संस्थाओं पर इसका सर्वाधिक प्रभाव परिलक्षित हो रहा है।

प्रभा खेतान ने 'पीली आंधी' उपन्यास में लिखा है कि - "एक बात गांठ बांध लो सालो, तुम दोनों एक साथ कर ही नहीं सकती। प्रेम करो या विवाह करो और जिसे प्रेम करो उससे ब्याह तो हरगिज़ मत करो।"[16] इस उपन्यास में जीवन के मूलभूत प्रश्नों को बहुत सलीके से करो और जिसे प्रेम करो उससे ब्याह तो हरगिज़ मत करो। "विवाह एक संस्था है, रजिस्टरी के कागज़ों पर सही किया हुआ नाम है। कानून मनुष्य के स्वभाव को देखकर ही बनाया जाता है और क्या यह ज़रूरी है कि कोई किसी को ताउम्र प्यार करता रहे, विकास की यात्रा में जीवन के काल खंड में कभी स्त्री तो कभी पुरुष का स्वभाव, उसका मूल्य बोध, जीवन दृष्टि बदल सकता है और जब कोई बदल जाता है तब बची रहती है जड़ता। मगर सुजीत यह प्रेम तो नहीं।"[17] परम्परा, सामाजिकता और कानून आदि पर अनेक प्रश्न खड़े हो जाते हैं, इन प्रश्नों का जवाब प्रभा खेतान ने विवेच्य उपन्यास में दिया है।

निष्कर्ष

भूमण्डलीकरण और बाज़ारीकरण के इस युग में भारतीय पारिवारिक तथा सामाजिक संरचना में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। पारंपरिक पारिवारिक ढांचे में स्त्री-पुरुष के बीच विद्यमान भेदभाव और पितृसत्तात्मक विवाह संस्था की जटिलताओं ने सह-जीवन जैसी नई अवधारणा को जन्म दिया है। युवा वर्ग के व्यावसायिक दृष्टिकोण और आत्मकेन्द्रित सोच ने इस प्रवृत्ति को और बल प्रदान किया है। विवाह, जो अब तक जीवन की स्थायित्वपूर्ण संस्था मानी जाती रही, आधुनिक युवा पीढ़ी के लिए अब एक बंधन प्रतीत होती है। निजत्व और आत्मसंतोष की खोज में आज का युवा वर्ग सह-जीवन को एक स्वतंत्र और तर्कसंगत विकल्प के रूप में स्वीकार कर रहा है।

पाश्चात्य प्रभाव से प्रभावित महानगरीय परिवेश में स्त्री-पुरुष संबंधों की नई परिभाषाएँ गढ़ी जा रही हैं, जहाँ सह-जीवन को स्वतंत्रता, समानता और सशक्तीकरण के प्रतीक के रूप में देखा जा रहा है। इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में ममता कालिया, अनामिका, रजनी गुप्त, जयन्ती रंगनाथन, शरद सिंह, अलका सरावगी और प्रभा खेतान जैसी महिला उपन्यासकारों ने सह-जीवन को केन्द्र में रखकर स्त्री-पुरुष भेदभाव, विवाह संस्था की सीमाएँ, पारिवारिक दायित्वों से मुक्ति, 'स्व' की तलाश तथा सांस्कृतिक संक्रमण जैसे विविध पहलुओं का सूक्ष्म विश्लेषण किया है।

इन लेखिकाओं ने सह-जीवन को न तो केवल स्वीकार किया है, न ही पूर्णतः नकारा है, बल्कि उसके विविध सामाजिक-मानसिक आयामों को पाठक के चिंतन के लिए खुला छोड़ दिया है। यही इस लेख का उद्देश्य भी है—कि हम सह-जीवन के इन बहुआयामी पक्षों पर विचार करें और उसकी वास्तविकता को समझने का प्रयास करें।

संदर्भ :-

1. चतुर्वेदी, महेन्द्र. *हिंदी उपन्यास : एक सर्वेक्षण*. पृ. 180.
2. *तद्भव*. (1999, मार्च). *तद्भव*, वर्ष 1, अंक 1. पृ. 18.
3. *तद्भव*. (1999, मार्च). *तद्भव*, वर्ष 1, अंक 1. पृ. 40.
4. कालिया, ममता. *दौड़*. पृ. 65.
5. कालिया, ममता. *दौड़*. पृ. 71.
6. कालिया, ममता. *दौड़*. पृ. 76.
7. कालिया, ममता. *दौड़*.
8. गुप्त, रजनी. *एक न एक दिन*. पृ. 98.
9. गुप्त, रजनी. *एक न एक दिन*. पृ. 101.
10. गुप्त, रजनी. *एक न एक दिन*. पृ. 123.
11. सिंह, शरद. (2012). *कस्बाई सिमोन*. नई दिल्ली: सामयिक प्रकाशन. पृ. 231.
12. सिंह, शरद. (2012). *कस्बाई सिमोन*. नई दिल्ली: सामयिक प्रकाशन. पृ. 236.
13. सिंह, शरद. (2012). *कस्बाई सिमोन*. नई दिल्ली: सामयिक प्रकाशन. पृ. 239.
14. सरावगी, अलका. *एक ब्रेक के बाद*. पृ. 156.
15. सरावगी, अलका. *एक ब्रेक के बाद*. पृ. 160.
16. खेतान, प्रभा. (2019). *पीली आंधी*. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 179.
17. खेतान, प्रभा. (2019). *पीली आंधी*. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 183.

सोशल मीडिया और हिंदी

डॉ. आर. सपना*
sapna2624@gmail.com

संचार मनुष्य की प्राथमिक जरूरतों में से एक रहा है। ध्वनियों से अपनी बात कहने वाले मनुष्य ने भाषा और उसे जाहिर करनेवाले चित्रों, चिन्हों, अक्षरों आदि को संचार का साधन बनाया। इस अवस्था में प्रायः अंतर्वैयक्तिक संचार की प्रधानता रही। यह प्रक्रिया आगे बढ़ते हुए समूह संचार तक पहुँची और किसी विशिष्ट समूह से या विभिन्न समूहों से संचार की प्रक्रिया शुरू हुई। संचार की इस प्रक्रिया में जब कई समूह या बड़ी संख्या में जनसमूह शामिल होने लगे तो आरंभिक जनसंचार की शुरुआत हुई। आरंभिक तकनीक के रूप में छापेखाने के विकास ने जनसंचार को गति दी। रेडियो के आगमन और इसके जनमाध्यम बनने के बाद जनसंचार का स्वरूप अधिक लोकतांत्रिक बना और बड़े पैमाने पर जनता को जनसंचार से जुड़ने का अवसर प्राप्त हुआ। धीरे-धीरे साक्षरता के विकास के साथ प्रिंट माध्यम भी जनता के करीब होता गया। आरंभिक प्रिंट मीडिया से लेकर वर्तमान समय की सोशल मीडिया तक, मीडिया के प्रत्येक स्वरूप में इसका सरकार, समाज और जनता के साथ महत्वपूर्ण रिश्ता रहा है। भारतीय प्रिंट माध्यमों की सबसे बड़ी पहचान और उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसका आरंभिक विकास निजी प्रयासों से और प्रतिकूल माहौल में हुआ। राष्ट्र और समाज के प्रति समर्पण का भाव इन प्रयासों में संबल बना दिया। पत्रकारिता के प्रति जनसामान्य में उदासीनता और आर्थिक संसाधनों का अभाव, इन सबके बावजूद प्रिंट माध्यमों का विकास हुआ।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के रूप में भारत में रेडियो का आरंभिक विकास मनोरंजन के साधन के रूप में हुआ। परन्तु आधारभूत साधनों एवं तकनीकी विकास और अन्य वजहों से भी धीरे-धीरे इसका सरकारी नियंत्रण में ही विकास हुआ। अंग्रेजों के जाने के बाद भी सरकारी नियंत्रण और पोषण में विकसित होते हुए रेडियो ने सरकारी नीतियों और योजनाओं को जनता तक पहुँचाने के साथ ही जनसामान्य के बीच अपनी पहचान बनाई और सूचना, समाचार और मनोरंजन के लोकप्रिय साधन के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। सरकारी नियंत्रण और विकास की यही प्रक्रिया दूरदर्शन के संदर्भ में भी लागू होती है। प्रिंट माध्यमों की तरह इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने भी स्वाधीन भारत की सरकार के प्रति सहयोग, समर्थन और जनचेतना के प्रति जिम्मेदार संदेशवाहक की भूमिका निभायी।

स्त्वा (Sturtevant) की परिभाषा इस प्रकार है "Language is a system of arbitrary symbols by means of which members of a social group co-operate and interact."

"भाषा यादृच्छिक प्रतीकों की प्रणाली है जिसके द्वारा एक सामाजिक समूह के सदस्य सहयोग एवं संपर्क करते हैं।"[1]

सोशल मीडिया ने जहाँ युवा वर्ग को उनकी मनोवांछित अभिव्यक्ति का सशक्त मंच उपलब्ध कराया है। सूचनाओं और विचारों को साझा करने के लिए किसी संपादक, प्रकाशक या किसी अन्य संस्था की अनुपस्थिति अगर एक अवसर की तरह है यही सबसे बड़ी चुनौती भी है। तथ्यों की जांच किए बिना सूचनाओं को पोस्ट करना, उनपर टिप्पणी करना, मर्यादित भाषा का इस्तेमाल न करना, विधि व्यवस्था द्वारा स्थापित मानकों का अनजाने उल्लंघन करना, अन्य मनवाधिकारों का हनन, किसी की यश-प्रतिष्ठा को चुनौती जैसे प्रयोग समस्या पैदा कर सकते हैं। सोशल मीडिया की पहुंच और प्रभाव को देखते हुए यहां दी जा रही सूचनाओं के सावधान इस्तेमाल की जरूरत भी महसूस की जाती है। इससे अफवाहें, तनाव और वैमनस्य भी फैल सकतीं है और कानून व्यवस्था की गंभीर चुनौती भी पैदा हो सकती है। जिनसे सावधान रहने की जरूरत है।

* **हिंदी सहायक आचार्य, विजयनगर कॉलेज ऑफ कॉमर्स, हैदराबाद, तेलंगाना**

सोशल साइट्स पर लगातार सामाजिक होने के चक्कर में व्यक्ति लगातार अकेला होता जाता है, जो लंबी अवधि में उसके मनोमस्तिष्क के लिए तथा उसकी शारीरिक सेहत के लिए भी काफी नुकसानदेह साबित हो सकता है। लगातार सोशल मीडिया से संवाद की प्रक्रिया में आभासी दुनिया में रहने का आदी युवा वर्ग वास्तविक जगत में संवाद से कटता जाता है और उसकी सामाजिक गतिविधियों में कमी उनके व्यक्तित्व के विकास में समस्या पैदा कर सकती है।यह अपराध, अकर्मण्यता और आक्रामकता को भी हवा दे रहा हैं। लगातार टच स्क्रीन के संपर्क में आने से आँखों से लेकर हड्डियों और त्वचा तक की अनेक समस्याएं पैदा हो सकती हैं। किसी आवश्यक काम की वजह से भी ऑनलाइन होने में परेशानी होने पर चिड़चिड़ापन होता है। खानपान से लेकर रहन-सहन तक में बदलाव, पारिवारिक संस्कारों और सामूहिकता में रहने, एक-दूसरे के सुख-दुःख में साथ होने की संस्कृति लगातार कमतर होती जा रही है।

सोशल मीडिया इंटरनेट-आधारित अनुप्रयोगों का एक समूह है जो व्यक्तियों और समुदायों को विचारों, राय, जानकारी, और अन्य सामग्री को बनाने और साझा करने की सुविधा प्रदान करता है। यह लोगों को एक दूसरे से जुड़ने, संबंध बनाने, और वास्तविक दुनिया में होने वाली घटनाओं और मुद्दों के बारे में बातचीत करने का एक मंच प्रदान करता है। सोशल मीडिया विज्ञापन के सबसे बड़े माध्यम के रूप में भी विकसित हो रहा है। यह युवाओं को लुभाने का भरसक प्रयास करता है।

विजेंद्र सिंह चौहान ने सोशल मीडिया की संकल्पना को वेब 2.0 कहां है। वे कहते हैं- " वेब 2.0 से पहले तक का इंटरनेट सूचना के वितरण तथा विक्रय का माध्यम था । कहीं और रची गई सूचना को एकत्रित करके प्रयोक्ता तक पहुंचाने पर बल दिया जाता था आसान भाषा में कहें तो इंटरनेट स्वयं सूचना का सृजन नहीं कर रहा था वह महज उसके वितरण का माध्यम था ।"[2]

सोशल मीडिया के माध्यम से अपनी रचनात्मक क्षमता का प्रयोग कर युवा वर्ग न सिर्फ अपने लिए अपितु परिवार, समाज और देश के लिए मिसाल बन सकता है। सोशल मीडिया भी आखिर एक तकनीक है और किसी भी तकनीक का असर उसके प्रयोक्ता और उसके प्रयोग पर निर्भर करता है, तो फिर इसका सकारात्मक उपयोग व्यक्तिगत और सार्वजनिक हितों के लिए अवश्य किया जाना चाहिएकुल मिलाकर सोशल मीडिया का सतर्क और जागरूक परन्तु सीमित प्रयोग युवा वर्ग को विश्व भर के लोगों से जुड़ने, वाद-संवाद करने, नयी जानकारी प्राप्त करने, करियर के विकल्पों की तलाश करने और उन्हें साकार करने, मनोरंजन करने, दोस्तों से संपर्क स्थापित करने तथा उनमे चेतना विकसित करने इत्यादि के रूप में व्यक्तित्व के विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकता है।

वर्तमान समय में देश में इंटरनेट की उपयोगिता ने लोगों को सोशल मीडिया को और तेजी से आकर्षित किया है। भारत में सोशल मीडिया के बढ़ते उपयोगकर्ताओं की संख्या के कारण अब अंतर्राष्ट्रीय मंचों को उपभोक्ताओं तक अपनी पहुंच बनाने के लिए लोगों की अपनी भाषा में संवाद की आवश्यकता महसूस हुई। हिंदी ना सिर्फ हमारी भाषा है बल्कि भारत और भारत से जुड़े कई लोगों की उपयोगिता भी है, यही कारण है आज समूचे बाजार में हिंदी सबसे प्रिय भाषा बन गई है। ग्बोलाइजेशन के इस दौर में अंग्रेजी चाहे जितनी भी ताकतवर हो पर आपका काम हिंदी के बगैर नहीं चल सकता। यही कारण है मोबाइल के एसएमएस से लेकर सोशल साइट की दीवारों तक, रोमन से लेकर देवनागरी तक, एंड्रायड सिस्टम से लेकर आई फोन के आईओएस तक काम हिंदी में ही करना पड़ता है। सोशल मीडिया में हिन्दी के उपयोग और उसके प्रभाव का महसूस किया। व इंटरनेट की इस सर्वसुलभता के कारण ही सोशल साइट्स आज के समय में लोगों की जरूरत बन गई है। लोग ज्यादा से ज्यादा अपना समय वाट्सएप और फेसबुक जैसी सोशल नेटवर्किंग में गुजारना पसंद करते हैं। सोशल मीडिया का प्रभाव सिर्फ इंटरनेट की अधिकारिक भाषा यानि अंग्रेजी तक ही सीमित नहीं रह गया है, बल्कि इसका व्यापक प्रभाव हिंदी पर भी पड़ा है। इंटरनेट के सर्वसुलभ होने के बाद एक नई तरह की क्रांति हुई ब्लॉग ऐसा ही एक माध्यम बनकर सामने आया। भारत में भी अंग्रेजी के अलावा लगभग सभी भारतीय भाषाओं में ब्लॉग लिखे जा रहे हैं जिनमें हिंदी सबसे ऊपर है। हिंदी मे कई हजार से भी ज्यादा ब्लॉगर हैं, जिनमें से हजारो नियमित ब्लॉग लेखक हैं। हिंदी में पहला ब्लॉग 2003 में शुरू हुआ था। यह जाहिर सी बात है कि भले ही हमें कितनी भी भाषाओं का ज्ञान क्यों न हो लेकिन हमारे दिल को सबसे सहज तरीके से वही बात छूती है जो अपनी जबान में कही जाती है। यहां तक कि हिंदी अगर रोमन में लिखी जाए तो भी वह उतनी असरदार नहीं साबित

होती जितनी कि देवनागरी में लिखी हिंदी होती है। सोशल मीडिया में हिंदी के बढ़ते असर को इस बात से महसूस किया जा सकता है कि हिंदी की कई वेब पत्रिकाओं ने पाठक संख्या में मुद्रित पत्र-पत्रिकाओं को पीछे छोड़ दिया है। इस प्रकार सोशल मीडिया एक ऐसी संकल्पना है जिसमें कंपनी केवल एक ढांचा या प्लेटफार्म उपलब्ध कराती है लेकिन वह सारी सूचनाएं जिनके लिए प्रयोक्ता इस मंच पर आता है वे स्वयं उस प्रयोक्ता के द्वारा या उस जैसे अन्य प्रयोक्ताओं द्वारा रची होती हैं।

जेस्पर्सेन ओटो (Jespersen Otto) ने अपनी कृति 'फिलासफी ऑफ ग्रामर' में लिखा है "The essence of Language is human activity activity on the part of an individual to make himself understood by another and activity of the part of that other to understand what was in the mind of the first."

"भाषा का सार-तत्व यह है कि वह एक मानवीय गतिविधि है, मनुष्य मनुष्य के बीच पारस्परिक बोध के लिए एक गतिविधि, ताकि वक्ता के मन की बात को श्रोता समझ सके।"[3]

सोशल मीडिया ने साहित्य-लेखन को चुनिंदा प्रकाशकों व लेखकों के वर्चस्व से मुक्ति दिलाई है, साहित्य-लेखन को आम आदमी से जोड़ा है। लेखक व पाठकों के पारस्परिक-संवाद की रचनात्मक शुरुआत सोशल मीडिया के कारण हिंदी-साहित्य देश के गैर भाषी प्रांतों में अपनी पैठ बना रहा है। देश की सीमाओं को लांघकर हिंदी विश्व के विभिन्न कोनों में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा रही है। अंग्रेजी भाषा के वे शब्द जो बहुत अधिक लोकप्रिय हो चुके हैं उनको देवनागरी लिपि में स्वीकार किया जा सकता है परंतु जिन शब्दों के हिंदी रूप अभी अधिक लोकप्रिय हैं उनके स्थान पर अंग्रेजी के शब्दों का नागरी में लिया है। सोशल मीडिया ने भाषा व साहित्य संबंधी कुछ समस्याओं को भी जन्म दिया है। भाषा के नाम पर जिस खिचड़ी भाषा का प्रयोग किया जा रहा है उसे हिंदी के रूप में स्वीकार करना हिंदी की गरिमा को ठेस पहुंचाना है। नये पन के नाम पर हिंदी का प्रयोग हो रहा है उसका हिंदी साहित्य में प्रयुक्त होना कोई शुभसंकेत नहीं है।

इस डिजिटल संवाद के केंद्र में सिर्फ संप्रेषण है। हिंदी प्रयोग में प्रयोक्ता अंग्रेजी अथवा अन्य भाषाओं तथा अपनी मातृभाषा के शब्दों और रूपों का बेझिझक उपयोग करते देखे जाते हैं। हिंदी भारत में जन जन की भाषा बन गयी। कंप्यूटर और बाद में मोबाइल में हिंदी जोड़ी गई। पहले मंगल और फिर गूगल हिंदी फॉन्ट से हिंदी में संदेश संप्रेषण बेहद आसान हो गया।

आज के दौर में हिंदी दुनिया की तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। हिंदी के इसी विस्तार को देखते हुए सोशल मीडिया नेटवर्किंग साइट्स ने भाषाई बदलाव किए और हिंदी समेत कई क्षेत्रीय भाषाओं को भी इससे जोड़ दिया गया। सोशल मीडिया पर हिंदी के आने से इसने अपने आपको बहुत मजबूत किया है। वर्तमान में सोशल मीडिया पर हिंदी का इस्तेमाल न सिर्फ खुलकर हो रहा है बल्कि गर्व के साथ हो रहा है। वर्तमान समय में सोशल मीडिया पर हिंदी का प्रयोग करने वाले लोग भीड़ से अलग दिखाते हैं। हिंदी में लिखी गई पोस्ट्स और कमेंट्स हिंदी भाषियों को ज्यादा से ज्यादा आकर्षत करते हैं। न केवल फेसबुक बल्कि वॉट्स ऐप या मोबाइल टेक्स्ट मैसेज में हिंदी जबरदस्त छायी हुई है। सोशल साइट्स और वेबसाइट्स को भी हिंदी की महत्ता पता चली है। ट्विटर, ब्लॉग्स के अलावा सभी साइट्स और ऐप में हिंदी का प्रयोग हो रहा है। हिंदी के विस्तार का ये ग्राफ लगातार बढ़ता ही जा रहा है। आज के दौर में सोशल मीडिया पर अंग्रेजी का प्रयोग करने वाले भी हिंदी का प्रयोग करने वालों से आकर्षित हो रहे हैं। 21वीं सदी के पहले दशक में ही गूगल न्यूज, गूगल ट्रांसलेट तथा ऑनलाइन फोनेटिक टाइपिंग जैसे साधनों ने वेब की दुनिया में हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण सहायता की।

संदर्भ :-

1. जय शंकर बाबु, सी. (2022). *भाषा प्रौद्योगिकी का सामान्य परिचय* [ऑनलाइन कोर्स]. कंसोर्टियम फॉर एजुकेशनल कम्युनिकेशन.
2. चौहान, विजेंद्र सिंह. *सोशल मीडिया की संकल्पना*.
3. Jespersen, O. (1924). *The Philosophy of Grammar*. London: George Allen & Unwin.

લોકસાહિત્યમાં સંસ્કૃતિ અને પરંપરાઓ

મકવાણા લાલજી .એમ.*

laljisaniya59@gmail.com

પ્રસ્તાવના:

પ્રાચીન સમયથી સાહિત્ય એક યુગથી બીજા યુગને વારસારૂપે મળતું આવ્યું છે. સાહિત્ય મુદ્રિત અને કંઠોપકર્ણ રીતે પણ અસ્તિત્વમાં હતું. તેમાં સાહિત્યની મુખ્ય બે પરંપરાઓ છે:એક લોક સાહિત્ય અને બીજું શિષ્ટ સાહિત્ય તેમાં લોક સાહિત્ય ધરતીની માટી સાથે સંકળાયેલા લોકો વડે, લોક બોલીઓમાં જનપદ વિસ્તારોમાં,અહેતુ નિર્માણ પામ્યું છે. કંઠોપકર્ણ રીતે અસ્તિત્વ ધરાવતું લોકસાહિત્ય એ ચારે દિશાઓમાં પ્રચલિત થયું છે.અશિક્ષિત અને અક્ષરજ્ઞાન ન જાણનાર બહોળો લોકસમુદાય તેને શ્રવણ વડે સામૂહિકરૂપમાં માણે છે. જ્યારે આજનું શિષ્ટ સાહિત્ય એ સર્જકની કલમે સ્પષ્ટ હેતુ માટે નિર્મિત થયું છે.તે શહેરીકરણના ઝુંપડામાં જન્મ્યું છે.તેમાં લોકસાહિત્યની જેમ પ્રકૃતિ પરંપરા, સંસ્કૃતિ,મર્યાદા ગ્રામ પરિવાર સંસ્કૃતિની ઓળખ ઇતિહાસ અને માણસ જીવનની સંવેદનાઓનો અભાવ જોવા મળે છે. ત્યારે લોકસાહિત્યએ સામાજિક બંધનો અને સાંસ્કૃતિક ઓળખને મજબૂત બનાવોમાં ઉપયોગી નીવડે એવી આપણી ઓળખને નિર્માણ કરે છે.

લોકસાહિત્યનો અર્થ:

લોકસાહિત્ય શબ્દ-અંગ્રેજીના 'ફોક લિટરેચર' શબ્દ પ્રયોગની જેમ પરંપરાપ્રાપ્ત કંઠસ્થ સાહિત્ય માટે સર્વથા યોગ્ય છે, બે પ્રાચીન તત્સમ સંસ્કૃત શબ્દો 'લોક'અને 'સાહિત્ય'ના સંયોજનથી બનેલો આ નવીન શબ્દ તેના સ્વરૂપનું બરાબર સૂચન કરે છે 'લોક' શબ્દ ઘણા અર્થોનો ઘોતક છે: 'લોક'એટલે દુનિયા,જગત, વિશ્વ, સમગ્ર જનતા, ઉપરાંત લોકવર્ણ-સમાજના નીચલા થરના, નાગરી સભ્યતાથી અછૂતા, ઘણેભાગે અશિક્ષિત, એવા ગ્રામીણ લોકો. 'લોકસાહિત્ય'શબ્દમાં 'લોક'નો આ ત્રીજો વિવક્ષિત છે. એટલે કે લોકસાહિત્ય એટલે લોકવરણ દ્વારા સર્જાયેલું, જળવાયેલું, પ્રચાર પામેલું, મૌખિક પરંપરાપ્રાપ્ત, કંઠસ્થ સાહિત્ય.

વ્યાખ્યા:

" લોકસાહિત્ય એટલે લોકો દ્વારા લોકો માટે લોક બોલીઓમાં અનાયાસે રચાયેલું લોક સંસ્કૃતિનું પ્રતિબિંબ ઝીલતું અને લોકજીવન સાથે સીધું સંકળાયેલું પેઢી-દર-પેઢીથી ઉતરી આવેલું લોકોનું સાહિત્ય"

ડૉ.હસુ યાજ્ઞિકના અનુસાર "લોક સાહિત્ય એટલે કોઇપણ પ્રદેશ અને એની ભાષા બોલીમાંની કથાઓ અને ગીતો જેવી પરંપરાથી કહેવાથી ગવાતી રચનાઓ જે લોકમાનસ માંથી ઉદભવેલી લોકમાનસ દ્વારા ઘડાયેલી અને લોકલક્ષી હોય."

પ્રો.કનુભાઇ દેસાઇ ની અનુસાર 'લોકસાહિત્ય'માનું 'સાહિત્ય'નામ જ છેતરામણુ છે એટલે લોકવાંગમય રાખ્યું આ જણસ સંસ્કૃતિની છે, સમાજની છે, કેવળ અને સર્વથા સાહિત્યના લક્ષણ વાળી નથી એટલે એને સાહિત્યને ધોરણે જોખવાનું સાહિત્યને કારણે જ પહોંચવાનું અને સાહિત્યને બારણે બહાર સ્થાપવાનું હું પસંદ કરતો નથી. એને એનું આવું સ્થાન છે આગવું ગૌરવ છે. આ વિદ્યા છે, લોકવિદ્યા છે.

અમેરિકન નીગ્રોના લોકસાહિત્યનો અભ્યાસ કરનાર લોરેન્સ ડબલ્યુ લેવીને જે લક્ષણો તારવ્યા છે તે "ગ્રુપનેચર (સામુહિકતા) પાર્ટિસિપેશન (સહભાગીતા) પર્વેસિવ ફંક્શનાલીટી (સાર્વત્રિક કાર્યરતા) ઈમ્પ્રોવાઇઝેશનલ (શરીર માધ્યમે રજૂઆત) લક્ષમાં લઈએ અને તેવા લક્ષણો જેમાં જણાય છે તેને લોકસાહિત્ય કહીએ, તો એમાં એની ઓળખ મળશે."

લોકસાહિત્યમાં સંસ્કૃતિ અને પરંપરાઓ :

લોકસાહિત્યમાં એક જીવન્ત વારસાની ઝાંખી છે. એ માત્ર મૌખિક પરંપરાથી વહેતું સાહિત્ય નથી એ તો સમાજના હૃદયનો ધબકાર છે. એમાં સંસ્કૃતિના રંગો અને પરંપરાના સૂત્રો એવી રીતે ગૂંથાયેલા છે કે દરેક પંક્તિ, દરેક ગીત, દરેક કહાવત જીવનના તત્વજ્ઞાનને સ્પર્શે છે. સામાન્ય જનજીવનનું પ્રતિબિંબ છે, જેમાં લોકોના દુઃખ-સુખ, શ્રદ્ધા-વિશ્વાસ, ઉત્સવો અને સંસ્કાર છે. એમાં મોર, મેઘ, હંસ

* **પીએચ.ડી શોધછાત્ર, ગુજરાતી વિભાગ, ભક્ત કવિ નરસિંહ મહેતા યુનિવર્સિટી જુનાગઢ**

જેવા પ્રતીકો દ્વારા ભાવનાઓ વ્યક્ત થાય છે, અને ગીતો, દુહા, પહેલીઓ, સંસ્કારગીતો જેવી રચનાઓ દ્વારા સમાજના નૈતિક મૂલ્યો અને આધ્યાત્મિક વિચારધારાઓ જીવંત રહે છે.

પરંપરાઓ એ લોકસાહિત્યની શિરમોર છે.લગ્ન, જન્મ, મૃત્યુ જેવા સંસ્કારો, ઋતુઓના ઉત્સવો, અને દૈનિક જીવનની ઘટનાઓ એમાં જે લય અને સંગીતમયતા છે, તે માત્ર રોચકતા માટે નહીં, પણ યાદગાર અને સંવેદનશીલ સંસ્કૃતિના સંવાહક તરીકે કાર્ય કરે છે.

લોકસાહિત્યમાં લોકગીતો આજે પણ પરંપરાગત રીતે માંગલ્ય કામોમાં ગવાતા આવ્યા છે.જેમકે,આજે પણ સીમંત સમયે સંતાન પ્રાપ્તિ માટે રાંદલના લોટા તેડવામાં આવે છે. જેમાં ઘોડો ખૂંદવામાં આવે છે.આ નૃત્યમાં સ્ત્રીઓ કેડેથી નમી ઘોડો ખૂંદવાનું નૃત્ય ખૂબ સ્ફૂર્તિમાં તાલ બંધ રીતે કરે છે. માં રાંદલની આરાધના કરે છે. સાથે 'ખેલ ખેલ રે ભવાની માં જય જય અંબે મા'ગીતો ગાવામાં આવે છે રાંદલના ગીતોમાં તેને દડવાની દાતાર કહી છે એ માતાનું ગીત:

લીલા ચણાની ચણોઠડીને દડવાની દાતાર!

માન સરોવર ઝીલવા ગ્યાતા દડવાની દાતાર!

આ સાથે રાંદલ માતાજીને ભક્ત રીસ છોડવા વિનવે છે. સંતાન પ્રાપ્તિ માટે માતાજીના ગીત ગાય છે આ ગીતમાં માંગણી હોય છે વિનંતી હોય છે.

ધોળા ધફોયો મારો સાડલો

ખોળાનો ખુંદનાર દેજો રનાદે, વાંજીયા મેણા મારે દોહ્યલા

એક માતા માટે તો પારણું અને હાલરડું ભગવાન માટેના વિશ્વાસને મજબૂત કરે છે. ગામડાની માતા પોતાના બાળકને ઘોડિયામાં સુવડાવી 'રામ કરે તારી રક્ષા'એવા ભાવે મૂકી કામે જતી હતી પરંતુ માતાને બાળક માટે ચિંતા તો હોય જ તેના માટે રક્ષા કવચ સમાન પરંપરાગત હાલરડા આજે પણ ગામડામાં ગવાય છે.

સુઈ જા રે સુઈજા, મારા બાલુડા વીર સુઈ જા!

તારા માથે માધવરાયની રક્ષા

તારા પગે પરમેશ્વરની રક્ષા

તારા હાથે હરિવરની રક્ષા તારા મોઢે મોહનરાયની રક્ષા.

રામ અને કૃષ્ણને ઉદ્દેશતા જન્માષ્ટમી ગવાતા હાલરડા પણ ભારતીય લોકમાનસમાં આજે પણ ગવાય છે.જેમાં ભક્તો ભગવાનને રીઝવવા માટે તેમના ગુણ,રૂપ,સ્વભાવ,દયાભાવનાને વિશિષ્ટ રૂપે હાલરડામાં ગાય છે.

આલિ, સિયાવર કૈસા સલોના?

સાંવલી મુરત,મોહની,બાલા દિઠોના!

કોટી મદન-મૂર્તિ ન્યોછાવર,

કોઇ,સખી! કર દે નહી ટોના.

ગ્રામ્ય જીવનમાં લગ્ન પ્રસંગ હોય ત્યારે સ્ત્રી સમૂહમાં સવારના પહોરમાં ભગવાનનું નામ સ્મરણ કરી વિવિધ ભાવો ઉમેરી ગીતો ગાય છે. તેને પ્રભાતિયા કહેવાય છે જે મધુર ભાવે આજે પણ પરંપરાગત રીતે ગવાય છે. આ પ્રભાતિયા ભગવાન કૃષ્ણને જીવનના તત્વદર્શનને સ્પર્શતા હોય છે આ પ્રભાતિયા કંઈક આ પ્રમાણે:

શ્રી પ્રભાતે શ્રીકૃષ્ણને સમરીએ!

લેજો ચાર દેવના નામ,હર નમો નમો નારાયણ રે!

માધવપુરમાં માધવરાયની સમરીએ રે, દ્વારકામાં રણછોડરાયને રે.

ડાકોરમાં ઠાકોરજીની સમરીએ રે, કાશીમાં વિશ્વેશ્વર દેવ રે.

ક્યારેક રામકથાના આધારે લઈને એમાં લોકજીવનના કુટુંબના કલહનું પણ ઉમેરણ થાય છે

શ્રી પ્રભાતને પોર,કૌશલ્યાએ દાતણ માગિયા

માંગ્યા માંગ્યા એકને બીજલી વાર, સીતાજીએ શબ્દ ન સાંભળ્યો!

શ્રી મેઘાણીએ લગ્નગીતોને જીવનનું મહાકાવ્ય કહ્યું છે. આજે પણ ગણેશ સ્થાપન, મંડપ,સાંતક,પીઠી,ફુલેકુ વગેરે વિધિ સાથેના ગીતો ગવાય છે. લગ્નમાં સૌપ્રથમ ગણેશ ના ગીતો ગાવામાં આવતા જે આ પ્રકારના હતા.

ગણેશ દુંદાળા ને મોટી ફાંદાળા

પ્રથમ ગણેશ બેસાડો રે, મારા ગણેશ હુંદાળા

પાછલી પછી તે માંડ્યા રે ગણેશ રે બેઠા રે ગણેશ રે,

બારસાખ બેઠી પૂતળી રે.

કન્યાવિદાયના લોકગીતો પણ ગવાય છે શંકુતલા વિદાય આ લોક પરંપરાનું પ્રશિષ્ટ અને સિધ્ધરૂપ છે. લોકગીત કહે છે:

દાદાને આંગણ આંબલો,આંબલો બોર ગંભીર જો,

એક તે પાન મેં ચૂંટ્યુ દાદા ગાળ ન દેજો જો.

ભરવાડ સમાજમાં પરંપરાગત રીતે આજે પણ માતા કન્યા વિદાય સમયે સાસરીયા પક્ષને દીકરીને જાળવવાની ભલામણ કરે છે.

'પાંખ વિનાનું મારું પારેવડું'

ઘણી જ્ઞાતિઓમાં આજે પણ ફટાણા અને ઉકરડી ઉઠાવવાની પરંપરા આજે પણ પાળવામાં આવે છે. જેમાં લગ્ન સમયે જાનૈયા પક્ષ અને કન્યા પક્ષ વચ્ચે વિરોધાભાસી ફટાણા ગવાય છે.

ચાર જમઇડા વાદ વદે બે નાળિયેરી;

ચારે ને ગયેડે ચડિયાના કોડ બે નાળિયેરી.

લગ્નમાં મંડપમાં પણ પરંપરાગત રીતે ગીતો ગવાય છે આ મંડપ ગીતોમાં સુક્ષ્મ દ્રષ્ટિકોણથી વર્ણન કરવામાં આવે છે.

મારે માંડવે રે હીરના દોર,ચીરના દોર, ઘુઘરીયાળા ગોદડા.

ગામડામાં આજે પણ કુવારી કન્યાઓ સારા વરની પ્રાપ્તિ માટે વ્રતો રહે છે.જેમાં તેઓ સમૂહમાં ગોરમાના ગીતો ગાય છે.આ વ્રતમાં સારા સાસરીયા માટેનું વર્ણન પણ હોય છે.

ગોરમાનો વર કેસરિયો ને,નદીએ નાવા જાય;

માથે બાંધ્યું ફાળીયું, ને હર હર કરતો જાય.

ગોરમા, ગોરમા રે, સાસરો દેજો સવાદિયો.

ગોરમા, ગોરમા રે, સાયું દેજો ભુખાવળા.

આ ઉપરાંત અમુક જ્ઞાતિઓ માં આજે પણ સ્નેહીજનોના મૃત્યુ બાદ મરસિયા ગાવાની પરંપરા યથાવત છે. જેમાં મરનાર પાછળ પોક મૂકીને રડતા રડતા કરુણ રસમાં મરશિયા ગાવામાં આવે છે. લોકસાહિત્યમાં મરશિયા કંઈક આ પ્રકારે છે:

વાયરે જુવાનડા વાય! વાય રે બાલે સૈયદ વાય!

હાય હાય રે ઇમામ વાવેલા

રોઈ ખલકત તમામ વાવેલા.

આ જ રીતે આરતી,થાળ,ભજન વગેરે પરંપરાગત રીતે સચવાયા છે આજે પણ પ્રતિદિન મંદિરમાં ગવાય છે. ઉપરાંત નવરાત્રીમાં પરંપરા અને સંસ્કૃતિનો સમન્વય કરતો માતાનો ગરબો ગવાય છે આ ગરબા આદ્યશક્તિની ઉપાસના માટે ગવાય છે. આ ગરબા કંઈક આ પ્રકારે છે:

માનો ગરબો રે રમે રાજને દરબાર.

માતા સોળે શરાદ નવી નોતરાં રે

પવિત્ર માસમાં ઘર શાંતિ માટે અને કુટુંબ કલ્યાણ માટે ગ્રામ્ય વિસ્તારની સ્ત્રીઓ આજે પણ ધર્મરાજાનું વ્રત શીતળા માતાના વ્રત તથા દશામાના વ્રતની કથાઓ હાથમાં ચોખા રાખી ભક્તિભાવે સાંભળે છે અને ઉપાસના કરે છે. આ પરંપરા આજે પણ યથાવત રીતે સચવાયેલી છે.

ઉપસંહાર:

આમ,લોકસાહિત્યએ જન્મથી લઈને મૃત્યુ સુધીનું સાહિત્ય છે.જેમાં માનવસંવેદનાઓ,લાગણીઓ છે,જેમાં માનવ સંસ્કૃતિ સાથે પરંપરા છે. માણસને જીવન જીવવાની રીત છે તેમાં ભક્તિભાવ પણ છે અને સંસારીભાવ પણ છે.લોકસાહિત્ય સંસ્કૃતિ અને પરંપરાઓને જીવંત રાખતો શાસ્ત્ર છે. આવનારી પેઢી માટે પરંપરા અને સંસ્કૃતિને સમજવા માટેનું લોકસાહિત્ય મૂલ્યલક્ષી જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાનો ભંડાર છે.

પાદટીપ:

૧.લોકસાહિત્ય-આલોક લેખક -જશવંત શેખડી વાલા પ્રકાશન:પાશ્વ પબ્લિકેશન પ્રથમ આવૃત્તિ ૨૦૦૭ પૃષ્ઠ નં:૭

એજન:૯

૨.લોકવિદ્યા પરિચય લેખક:હસુ યાજ્ઞિક પ્રકાશન :ગુજરાત વિશ્વકોષ ટ્રસ્ટ અહેમદાબાદ પ્રથમ આવૃત્તિ ૨૦૦૫ પૃષ્ઠ નં:૨૨

૩. લોકસાહિત્યની વિભાવના અને પ્રકાર

લેખક:હસુ યાજ્ઞિક પ્રકાશન : શ્રી ગુર્જર ગ્રંથ રત્ન કાર્યાલય અમદાવાદ પ્રથમ આવૃત્તિ ૨૦૦૨

પૃષ્ઠ નં:૧૬

૪. લોકવિદ્યાવિજ્ઞાન લેખક ડૉ.હસુ યાજ્ઞિક

પ્રકાશન: યુનિવર્સિટી ગ્રંથ નિર્માણ બોર્ડ ગુજરાત રાજ્ય પ્રથમ આવૃતિ ૨૦૦૧ પૃષ્ઠ નં:૯૦. એજન:૯૨. એજન: ૯૩. એજન: ૯૭. એજન: ૯૯

૫. ગુજરાતના લોકગીતો સંપાદક:ખોડીદાસ પરમાર પ્રકાશન: સાહિત્ય અકાદમી દ્વિતીય આવૃત્તિ:૨૦૧૮ પૃષ્ઠ નં:૧ એજન:૬૯, એજન: ૧૮૬ એજન: ૧૨૫, એજન: ૧૩૦

સંદર્ભ:

૧.લોકગીત: તત્વ અને તંત્ર,સંપાદક:ડૉ. બળવંત જાની પ્રકાશન: ગુજરાત સાહિત્ય અકાદમી પ્રથમ આવૃતિ ૨૦૦૨

૨. લોકવાર્તા સર્જન અને સંશોધન,લેખક: જયમલ પરમાર પ્રકાશન:પ્રવીણ પ્રકાશન રાજકોટ પ્રથમ આવૃત્તિ :૨૦૧૦.

૩. લોક સાહિત્ય અને સંસ્કૃતિ,લેખક: જયમલ પરમાર,પ્રકાશન:પ્રવીણ પ્રકાશન પ્રથમ આવૃત્તિ ૨૦૧૧

૪. gujarativishwakosh.org

ભક્તિ આંદોલન અને સાંસ્કૃતિક ચેતના

હરગાણી હમીરભાઈ દેવુભાઇ*
gadhavihamir7@gmail.com

સારાંશ

મધ્યકાલીન ભારતના ઇતિહાસમાં ભક્તિ આંદોલનના ઉદભવ, વિકાસ અને તેની બહુપક્ષીય અસરોનું વિશ્લેષણ કરે છે. તે સમયની રાજકીય અસ્થિરતા, સામાજિક કઠોરતા અને ધાર્મિક જડતાના સંદર્ભમાં ભક્તિ આંદોલન કેવી રીતે એક શક્તિશાળી સામાજિક-ધાર્મિક બળ તરીકે ઉભરી આવ્યું તેની ચર્ચા કરવામાં આવી છે. નિબંધમાં નિર્ગુણ અને સગુણ ભક્તિની વિચારધારાઓ, મુખ્ય સંત-કવિઓ જેવા કે કબીર, નાનક, તુલસીદાસ, મીરાંબાઈ, ચૈતન્ય મહાપ્રભુ અને શંકરદેવના યોગદાનની ઊંડાણપૂર્વક તપાસ કરવામાં આવી છે. આ ઉપરાંત, ભક્તિ આંદોલને પ્રાદેશિક ભાષાઓ અને સાહિત્યના વિકાસ, સામાજિક સુધારણા, હિન્દુ-મુસ્લિમ સાંસ્કૃતિક સમન્વય અને કલા-સંગીતના ક્ષેત્રમાં જે ક્રાંતિકારી પરિવર્તનો કર્યા, તે દ્વારા ભારતીય સાંસ્કૃતિક ચેતનાને કેવી રીતે નવપલ્લવિત કરી, તેનું વિસ્તૃત મૂલ્યાંકન કરવામાં આવ્યું છે.

પ્રસ્તાવના

ભારતીય સંસ્કૃતિ અને ઇતિહાસના વિશાળ પટલ પર, મધ્યકાલીન યુગને ભક્તિ આંદોલનના સમયગાળા તરીકે એક વિશિષ્ટ ઓળખ મળી છે. આ માત્ર એક ધાર્મિક આંદોલન નહોતું, પરંતુ એક એવું વ્યાપક સાંસ્કૃતિક પુનર્જાગરણ હતું જેણે ભારતીય સમાજના દરેક પાસાને સ્પર્શ કર્યો. તે સમયગાળામાં જ્યારે સમાજ રાજકીય વિઘટન, સામાજિક ભેદભાવ અને ધાર્મિક કર્મકાંડોની જટિલતામાં ફસાયેલો હતો, ત્યારે ભક્તિ આંદોલને પ્રેમ, સમાનતા અને સીધા ઈશ્વરીય અનુસંધાનનો સરળ માર્ગ બતાવ્યો.

આ આંદોલનના સંતો અને કવિઓએ જ્ઞાન અને તર્કના માધ્યમથી રૂઢિગત માન્યતાઓને પડકારી, અને સાથે જ શ્રદ્ધા અને પ્રેમના પ્રવાહથી સામાન્ય જનતાના શુષ્ક હૃદયને સિંચ્યું. એક તરફ કબીર અને નાનક જેવા નિર્ગુણ સંતોએ મૂર્તિપૂજા અને જાતિવાદ પર પ્રહાર કર્યા, તો બીજી તરફ તુલસીદાસ અને સૂરદાસ જેવા સગુણ ભક્તોએ રામ અને કૃષ્ણના આદર્શો દ્વારા સમાજને નૈતિક દિશા આપી. આ શોધપત્ર ભક્તિ આંદોલનના આ બહુપક્ષીય સ્વરૂપ અને તેના દ્વારા જન્મેલી સાંસ્કૃતિક ચેતનાની ઊંડાણપૂર્વક છણાવટ કરવાનો પ્રયાસ કરે છે.

ભક્તિ આંદોલન અને સાંસ્કૃતિક ચેતના:-

ભારતીય ભક્તિ આંદોલનનો મુખ્ય આધારસ્તંભ રહ્યો છે. ૧૩મી અને ૧૭મી સદી વચ્ચે, સંત કવિઓએ તેમના કાર્યો દ્વારા પ્રેમ, કરુણા અને સમાનતાનો ઉપદેશ આપ્યો. જ્ઞાનને ફક્ત વિદ્વતા સુધી મર્યાદિત રાખવાને બદલે, તેમણે તેને સ્થાનિક ભાષામાં રજૂ કર્યું, જેથી સામાન્ય લોકો પણ તેને સમજી શકે. કબીરદાસે નિર્ગુણ ભક્તિનો પ્રચાર કર્યો અને સામાજિક ભેદભાવ, અંધશ્રદ્ધા અને અંધશ્રદ્ધાની ટીકા કરી. તેમના શબ્દો સીધા, સરળ અને તાર્કિક હતા.

"पोथी पढि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ।।"

*સમાજશાસ્ત્ર વિભાગ, ભક્ત કવિ નરસિંહ મહેતા યુનિવર્સિટી

કબીરદાસજીએ અદ્વૈત ફિલસૂફી અપનાવી હતી અને કહ્યું હતું કે ભગવાન એક છે. તે નિરાકાર અને સર્વવ્યાપી છે. તેમણે બાહ્ય ભવ્યતા અને ધાર્મિક વિધિઓ કરતાં સાચી ભક્તિ પર ભાર મૂક્યો.

"मोको कहां ढूंढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।"

કબીરદાસે સમાજમાં પ્રવર્તતી જાતિ વ્યવસ્થાનો વિરોધ કર્યો અને બધાને સમાન જાહેર કર્યા. તેમણે કહ્યું કે વ્યક્તિની ઓળખ તેના કાર્યો દ્વારા નક્કી થાય છે, તેની જાતિ કે ધર્મ દ્વારા નહીં.

"जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए जान।

मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।"

તેમણે ધર્મના નામે ચાલતા દંભ અને દંભની નિંદા કરી. તેમણે હિન્દુઓ અને મુસ્લિમો બંનેની નિંદા કરી. ની સ્ટીરિયોટાઇપ્સ પર વ્યંગ કર્યો.

"माला फेरत जुग गया, फिरा न मन का फेर।

कर का मन का डारि के, मन का मनका फेर।।"

કબીરદાસજીએ સમજાવ્યું કે સાચું જ્ઞાન ફક્ત સાચા ગુરુની કૃપાથી જ પ્રાપ્ત થાય છે. તેમણે ગુરુને અત્યંત મહત્વ આપ્યું.

"गुरु गोविंद दोनों खड़े. काके लागू पाय।

बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय।।"

તેમણે માનવતાને અહંકાર અને લોભથી દૂર રહેવાની સલાહ આપી, અને કહ્યું કે બંને આધ્યાત્મિક રીતે બિનઅસરકારક છે.

"बड़ा हुआ तो क्या हुआ. जैसे पेड़ खजूर।

पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ।।"

ગુરુ નાનકે જનતાને એકેશ્વરવાદ અને માનવતાનો ઉપદેશ આપ્યો. તેમના ઉપદેશો આધ્યાત્મિકતા અને સામાજિક સમાનતા પર કેન્દ્રિત હતા. તેમણે જાતિ, ધર્મ, લિંગ અને વર્ગના આધારે ભેદભાવને નકારી કાઢ્યો. તેઓ માનતા હતા કે બધા માનવી સમાન છે અને ભેદભાવ સ્થિતિના આધારે ન હોવો જોઈએ. તેમણે લંગર પ્રણાલીની સ્થાપના કરી, જ્યાં બધી જાતિઓ અને ધર્મોના લોકો સાથે ભોજન કરે છે. ગુરુ નાનકે મહિલાઓના અધિકારોની હિમાયત કરી અને સમાજમાં તેમના મહત્વને ઓળખ્યું. તેમણે કહ્યું:

"सो क्यों मंदा आखिए जित जम्मे राजान"

તેમના સંદેશા ફક્ત શીખ ધર્મ પૂરતા મર્યાદિત ન હતા પરંતુ સમગ્ર વિશ્વ માટે હતા.

મીરાબાઈ ભક્તિ ચળવળના એક મહાન સંત-કવિયત્રી હતા, જેમની કૃતિઓ ભારતીય જ્ઞાન પરંપરાને સમૃદ્ધ બનાવવામાં મહત્વપૂર્ણ ભૂમિકા ભજવી છે. તેમની કવિતાઓ ભક્તિ, પ્રેમ, ત્યાગ અને આધ્યાત્મિકતાથી છવાયેલી છે. મીરાબાઈએ ભારતીય સમાજને ભક્તિના માર્ગ પર ચાલવા, જાતિ અને સંપ્રદાયના બંધનોને પાર કરવા અને પ્રેમાળ ભક્તિની શક્તિને સમજવા પ્રેરણા આપી. તેમણે ભક્તિ અને પ્રેમ દ્વારા આત્મસાક્ષાત્કારનો માર્ગ બતાવ્યો. તેમના કાર્યો ભારતીય સમાજમાં મહિલાઓની આધ્યાત્મિક સ્વતંત્રતાનું પ્રતીક છે. મીરાબાઈએ સમાજની પિતૃસત્તાક વ્યવસ્થાને પડકાર ફેંક્યો અને મુક્તપણે ભક્તિનો માર્ગ પસંદ કર્યો. તેમણે સંદેશ આપ્યો કે ભક્તિના માર્ગમાં સ્ત્રી અને પુરુષ વચ્ચે કોઈ ભેદ નથી. તેમના કાર્યો મહિલાઓને સ્વ-નિર્ણયના અધિકાર માટે જાગૃત કરે છે. તેમણે લોકોને દુન્યવી

આસક્તિઓનો ત્યાગ કરીને આધ્યાત્મિકતાના માર્ગને અપનાવવા પ્રેરણા આપી. વૈદિક કાળથી આ દર્શન ભારતીય જ્ઞાન પરંપરાનો એક મહત્વપૂર્ણ ભાગ રહ્યું છે.

"माइ री, मैं का सैंयाँ मिलन की आस।"

તુલસીદાસ - ગોસ્વામી તુલસીદાસ ભારતીય ભક્તિ સાહિત્ય અને જ્ઞાન પરંપરાના એક મહત્વપૂર્ણ સ્તંભ છે. તેમની કવિતા ધર્મ, નીતિશાસ્ત્ર, દર્શન, ભક્તિ અને જાહેર શિક્ષણનું નોંધપાત્ર સંશ્લેષણ આપે છે. તેમના સાહિત્ય દ્વારા, તુલસીદાસે ભારતીય સમાજને નૈતિકતા, ભક્તિ અને ફરજની ભાવનાનો સંદેશ આપ્યો, જે સંદેશ આજે પણ સુસંગત છે. તેમણે રામચરિતમાનસ દ્વારા ભારતીય સમાજને ધાર્મિક અને નૈતિક શિક્ષણ આપ્યું. તેમની કવિતા ભક્તિ અને જ્ઞાનની ગહન ઊંડાણથી છવાયેલી હતી. તુલસીદાસે તેમની કવિતામાં ધર્મ અને નૈતિકતાને જોડ્યા. તેમણે જીવનના દરેક પાસામાં ધર્મ અને ફરજને પ્રાથમિકતા આપી. તેમનું સાહિત્ય આદર્શ શાહી ફરજો, સામાજિક ફરજો, ગૃહસ્થ ફરજો અને આધ્યાત્મિક પ્રથાઓનું વર્ણન કરે છે. - બીજાઓને મદદ કરવા કરતાં મોટો કોઈ ધર્મ નથી. બીજાઓને દુઃખ પહોંચાડવા કરતાં મોટું કોઈ પાપ નથી.

"परहित सरिस धरम नहि भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमा"

સંસ્કૃત ગ્રંથોને સામાન્ય લોકો માટે સુલભ બનાવવા મુશ્કેલ હતા. તેથી, તુલસીદાસે અવધિમાં "રામચરિતમાનસ" લખીને પ્રક્રિયાને સરળ બનાવી. આનાથી ધર્મ અને જ્ઞાન ફક્ત વિદ્વાનો સુધી જ નહીં, પણ સામાન્ય લોકો સુધી પહોંચવાની મંજૂરી મળી.

"मंगल करनि कनिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की "

તેમણે નિયતિવાદનો અસ્વીકાર કર્યો અને સખત મહેનતને મહત્વ આપ્યું.

તેમના મતે, સારા કાર્યો સારા નસીબનું સર્જન કરે છે.

करम प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करहि सो तस फल चाखा ॥"

ગોસ્વામી તુલસીદાસનું સાહિત્ય ભારતીય પરંપરામાં ભક્તિ, નીતિશાસ્ત્ર, ધર્મ અને આધ્યાત્મિકતા પર આધારિત છે.

તેઓ જન કલ્યાણ અને સામાજિક સુધારાનું અનોખું મિશ્રણ છે. તેમની કવિતા દ્વારા તેમણે સમાજને આદર્શ જીવનનો માર્ગ બતાવ્યો, જે આજે પણ સુસંગત છે. તેમના યોગદાન ફક્ત ધાર્મિક દ્રષ્ટિકોણથી જ નહીં પરંતુ સામાજિક અને સાંસ્કૃતિક દ્રષ્ટિકોણથી પણ અજોડ છે.

સંત સેના - સંત સેના 15મી સદીના ભક્તિ આંદોલનના એક અગ્રણી સંત હતા. મહાન સંત રામાનંદના શિષ્ય, તેઓ તેમના સમયના સમાજમાં ભક્તિ પ્રથા અને સામાજિક સુધારા માટે પ્રખ્યાત હતા. તેઓ વાળંદ (ક્ષૌરકર) સમુદાયના હતા અને જાતિ ભેદભાવને તોડવાના ભક્તિ આંદોલનના આદર્શોને સમર્થન આપતા હતા. તેમનું સાહિત્ય ભક્તિ, સામાજિક સુધારણા અને આધ્યાત્મિક જ્ઞાનથી સમૃદ્ધ છે.

ભારતીય લોક પરંપરામાં મહત્વપૂર્ણ યોગદાન આપે છે.

સંત સેનાએ શીખવ્યું કે પ્રેમ અને ભક્તિ દ્વારા ભગવાનને પ્રાપ્ત કરી શકાય છે. તેઓ સગુણ ભક્તિના હિમાયતી હતા.

તેઓ હિન્દુ ધર્મના સમર્થક હતા અને ભગવાન વિષ્ણુ/રામને તેમના આધ્યાત્મિક અભ્યાસનું કેન્દ્ર માનતા હતા.

"जपो रे गोविंद का नाम भवसागर के पार।"

સંત સેનાજીએ તેમના સમયમાં પ્રવર્તતા જાતિવાદ અને ભેદભાવને નાબૂદ કર્યો. સમાજમાં પ્રવર્તતા બ્રાહ્મણવાદી વર્ચસ્વ સામે, તેમણે ક્રિયાને પ્રાથમિકતા આપી. તેમણે ઉદાહરણ આપ્યું કે જાતિ ભક્તિમાં અવરોધ નથી.

सेवा करु हरि जन की, छोडो झूठी आस।

સંત સેના કબીર, રૈદાસ, પીપા અને ધન્ના જેવા સંતોના સમકાલીન હતા અને તેમણે રામાનંદ સંપ્રદાયના પ્રચારમાં મહત્વપૂર્ણ ભૂમિકા ભજવી હતી. તેમણે ભક્તિ ચળવળને સમાજના નીચલા સ્તર સુધી પહોંચાડી અને તેને સુલભ બનાવી.

"मन में बसत राम रघुनाथा।"

સંત સેનાએ ભક્તોને આત્મા અને પરમાત્મા વચ્ચેના સંબંધને સમજાવવા માટે સરળ ભાષામાં કૃતિઓ લખી હતી. તેમણે સમજાવ્યું હતું કે સાચો ભક્ત તે છે જે વિચાર, શબ્દ અને કાર્યમાં ભગવાનને સમર્પિત હોય છે.

"राम नाम जपत रहे. मन हरषत दिन रात।"

સંત સેનાએ તેમની કવિતાઓ અને સ્તોત્રો સરળ ભાષામાં લખ્યા જેથી સામાન્ય લોકો તેમને સરળતાથી સમજી શકે. તેમનું સાહિત્ય ગીતવાદ દ્વારા વર્ગીકૃત થયેલ હતું, જેના કારણે તેમની રચનાઓ લોકગીતો જેટલી લોકપ્રિય બની. "રામને યાદ કર્યા વિના, દુનિયા સ્વપ્ન જેવી છે."

તેમણે બાહ્ય દેખાડાને છોડીને હૃદયમાંથી ભક્તિ પ્રેરિત કરી. તેમના ઉપદેશો સંત કબીર અને ગુરુ દ્વારા પ્રેરિત હતા.આ નાનકના વિચારો સાથે મેળ ખાય છે.

"हरि बिन मुझको चैन नहीं पल-पल जपेउँ नाम।"

ભારતીય જ્ઞાન પરંપરામાં ભક્તિ, સામાજિક સંવાદિતા અને સરળ ભક્તિની ભાવના સ્થાપિત કરવામાં સંત સેનાનું સાહિત્ય મહત્વપૂર્ણ ભૂમિકા ભજવે છે. તેમણે જાતિવાદનો વિરોધ કર્યો, ભક્તિની સરળતાને અપનાવી અને ભગવાન માટે બિનશરતી પ્રેમનો સંદેશ આપ્યો. તેમના ઉપદેશો આજે પણ સુસંગત છે. શક્તિ માર્ગના સાધકોને પ્રેરણા આપે છે.

તેથી, સંત સાહિત્યે ભારતીય સંસ્કૃતિને ભક્તિ, પ્રેમ, સમાનતા અને નૈતિકતા આપી છે. આધ્યાત્મિકતા, સામાજિક સુધારણા, શાંતિ, સંવાદિતા, લોકભાષા, સરળતા, ગુરુ-શિષ્ય પરંપરા, જ્ઞાન, ત્યાગ, સ્ત્રીઓ પ્રત્યે આદર, દયા, અહિંસા, કર્મયોગ, રામ-જામ મહિમા, જન કલ્યાણ અને ધર્મની દિશા આપી છે. કબીર, દાદુ, નામદેવ, નાનક, ધન્ના, પીપ, સેના, રૈદાસ જેવા જ્ઞાનમાર્ગી સંતોએ જ્ઞાન, અદ્વૈતનો ઉપદેશ આપ્યો. ભ્રમનો ત્યાગ, નિઃસ્વાર્થ ક્રિયા, ભેદભાવ વિરોધી, સત્ય, ધ્યાન, આત્મનિરીક્ષણ, ભગવાનનું જ્ઞાન, એકેશ્વરવાદ, અહંકારનો ત્યાગ, આધ્યાત્મિક અભ્યાસ. મોક્ષ, વિવેક, સહજ યોગ, વૈરાગ્ય, લોકમંગલ, નિરાકાર ભક્તિનો સંદેશ આપ્યો.

પૂર્વ-ભારતમાં ભક્તિ આંદોલન:- પૂર્વ ભારતમાં 12મી સદીથી રાધા કૃષ્ણ સંપ્રદાયનો પ્રસાર થયો હતો. જયદેવ, વિદ્યાપતિ તથા ચંડીદાસની સાહિત્યિક રચનાઓમાં તેની સ્પષ્ટ છાપ વરતાતી જોવામાં આવે છે. સોળમી સદી દરમિયાન ચૈતન્ય મહાપ્રભુ(1485-1533)એ કૃષ્ણ ભક્તિનો વ્યાપક પ્રચાર કર્યો. નદિયામાં (હાલના બાંગ્લાદેશમાં) બ્રાહ્મણ પરિવારમાં જન્મેલા ચૈતન્ય બાળપણમાં ખૂબ તોફાની અને સાથે તેજસ્વી વ્યક્તિત્વ ધરાવતા હતા. સંસ્કૃત ભાષા તથા ધર્મશાસ્ત્રોનો તેમણે ઊંડો અભ્યાસ કર્યો. થોડો સમય ગૃહસ્થાશ્રમમાં રહ્યા. પરંતુ 25મા વર્ષે તેનો ત્યાગ કરી સંન્યાસ ગ્રહણ કર્યો અને દેશાટને નીકળી પડ્યા. સ્વામી ઈશ્વરપુરીના પ્રભાવથી તેઓ ભક્તિમાર્ગ તરફ આકર્ષાયા. તેમણે પ્રથમ બંગાળમાં કૃષ્ણભક્તિનો ઉપદેશ આપ્યો, પછી પુરીમાં સ્થિર થયા અને ત્યાં જ નિર્વાણ પામ્યા. પ્રેમ, સમર્પણ, નૃત્ય, કીર્તનગાન અને આર્દ્ર ભાવે કૃષ્ણસ્મરણ દ્વારા મનુષ્ય ઈશ્વરનો સાક્ષાત્કાર કરી શકે છે તેવો ઉપદેશ તેમણે આપ્યો. કર્મકાંડ તથા જ્ઞાતિવ્યવસ્થાનો તેમણે વિરોધ કર્યો હતો. તેમણે ભક્તિમાર્ગમાં ગુરુનું મહત્ત્વ આવશ્યકપણે

સ્વીકાર્યું હતું. બંગાળમાં તેમના અનુયાયીઓનો વિશાળ વર્ગ હતો અને તેમને વિષ્ણુના અવતાર તરીકે પૂજતો હતો. પંદરમી તથા સોળમી સદી દરમિયાન અસમમાં શંકરદેવે વૈષ્ણવભક્તિનો પ્રચાર કર્યો. પૂર્વભારતમાં તેમણે વિશિષ્ટાદ્વૈતના સિદ્ધાંતનો પ્રસાર કર્યો. ઠેર ઠેર ઈશ્વરભક્તિ અને ઉપાસના માટે નામગૃહો (પ્રાર્થનાગૃહો) સ્થાપ્યાં. જ્ઞાતિવાદ તથા કર્મકાંડનો વિરોધ કર્યો. પરમાત્મારૂપે શ્રીકૃષ્ણની શરણાગતિ દ્વારા મોક્ષપ્રાપ્તિની તેમણે હિમાયત કરી. તેમના અવસાન પછી તેમના શિષ્ય માધવદેવે પૂર્વ ભારતમાં ભક્તિપરંપરા ચાલુ રાખી. શંકરદેવ અને માધવદેવે શરૂ કરેલો સંપ્રદાય મહાપુરુષીય સંપ્રદાય તરીકે જાણીતો બન્યો.

- **ભક્તિ આંદોલન માં સાંસ્કૃતિક ચેતના:-**

સાંસ્કૃતિક ચેતના સમાજની તેના મૂળ, પરંપરાઓ અને સાંસ્કૃતિક મૂલ્યો પ્રત્યેની જાગૃતિને પ્રતિબિંબિત કરે છે. કોઈપણ સમાજના વિકાસ અને તેની સાંસ્કૃતિક ઓળખના સંરક્ષણ માટે આ ચેતના મહત્વપૂર્ણ છે. ભક્તિ આંદોલન અને તેની સાંસ્કૃતિક ચેતના, જે તેની વિવિધતા અને ઊંડાણ માટે પ્રખ્યાત છે, તે આ ચેતનાનું જીવંત અને પ્રભાવશાળી માધ્યમ રહ્યું છે. આ ભક્તિ આંદોલન સમાજના વિવિધ તબક્કાઓ અને તેની સાંસ્કૃતિક પરંપરાઓને પ્રતિબિંબિત કરે છે. પ્રાચીન કાળથી આધુનિક યુગ સુધી, ભક્તિ આંદોલન સાંસ્કૃતિક ચેતનાનું જતન અને વિકાસ કર્યો છે.

પ્રાચીન સમયમાં, વેદ અને ઉપનિષદોએ ધર્મ અને ફિલસૂફી દ્વારા આ સાંસ્કૃતિક ચેતના વ્યક્ત કરી હતી. વેદોએ પ્રકૃતિ, માનવ જીવન અને બ્રહ્માંડ વચ્ચેના સંબંધને સમજાવીને સમાજને નૈતિક અને આધ્યાત્મિક દિશા પ્રદાન કરી હતી. ઉપનિષદોએ આત્મા, બ્રહ્મ અને ધ્યાન જેવા ગૂઢ વિષયો પર ચિંતન આપ્યું હતું. ત્યારબાદ, રામાયણ અને મહાભારત જેવા મહાકાવ્યોમાં નૈતિકતા, ફરજ અને સમાજ પ્રત્યેની જવાબદારીની રૂપરેખા આપવામાં આવી હતી. આ મહાકાવ્યોએ ફક્ત વ્યક્તિગત જીવન માટે નૈતિક આદર્શો જ રજૂ કર્યા ન હતા પરંતુ સામાજિક અને રાજકીય જીવન માટે માર્ગદર્શિકા પણ પ્રદાન કરી હતી.

ભક્તિ આંદોલન દરમિયાન સાંસ્કૃતિક ચેતનાએ એક નવું સ્વરૂપ ધારણ કર્યું. ભક્ત કવિઓએ તેમના અનુભવો અને ભગવાન પ્રત્યેની તેમની અતૂટ ભક્તિ દ્વારા આ ચેતના વ્યક્ત કરી. તુલસીદાસ, કબીર અને મીરાબાઈ જેવા સંતોએ ભક્તિ અને સમર્પણ દ્વારા સમાજને એકતા અને આધ્યાત્મિકતાનો સંદેશ આપ્યો. આ સમયગાળા દરમિયાન સાહિત્યે નૈતિકતા, પ્રેમ અને સહિષ્ણુતા દ્વારા સમાજને જાગૃત કર્યો.

રામધારી સિંહ 'દિનકર' એ આ સાંસ્કૃતિક ચેતનાને પોતાના સાહિત્યનું કેન્દ્ર બનાવ્યું. તેમણે ભારતીય સંસ્કૃતિ અને સમાજના વિવિધ પાસાઓ તેમની સમજણમાં ઊંડા ઉતરીને રજૂ કર્યા. તેમનું કાર્ય, "સંસ્કૃતિનું ચુર અધ્યાય", સાંસ્કૃતિક ચેતનાનું ઉત્તમ ઉદાહરણ છે. આ કાર્યમાં, તેમણે ભારતીય સંસ્કૃતિના વિકાસને ચાર તબક્કામાં વિભાજીત કર્યો: આદિમ, વૈદિક, બૌદ્ધ અને આધુનિક. દિનકરે દર્શાવ્યું કે ભારતીય સંસ્કૃતિએ સમય જતાં બાહ્ય પ્રભાવોને શોષી લીધા છે, સાથે સાથે તેની વિશિષ્ટતા જાળવી રાખી છે.

દિનકર માનતા હતા કે ભક્તિ આંદોલનનું સાહિત્યનું કાર્ય ફક્ત મનોરંજન નથી; તે સમાજને તેની સાંસ્કૃતિક ઓળખ પ્રત્યે જાગૃત કરવાનું એક માધ્યમ પણ છે. તેમણે લખ્યું, "ભક્તિ આંદોલન ફક્ત કલ્પના નથી; તે સમાજના અસ્તિત્વ અને તેના સાંસ્કૃતિક વારસાનું આબેહૂબ ચિત્રણ છે" (દિનકર 78). આ દ્રષ્ટિકોણ ભક્તિ આંદોલન સમાજ માટે એક આવશ્યક સાધન બનાવે છે. તેમના લખાણોમાં, દિનકરે સમાજને તેના મૂળ સાથે જોડવામાં અને ભવિષ્યના પડકારો માટે તેને તૈયાર કરવામાં સાહિત્યની મહત્વપૂર્ણ ભૂમિકા પર ભાર મૂક્યો.

સંસ્કૃતિ પરના ચોથા પ્રકરણમાં, દિનકરે એ પણ સમજાવ્યું કે ભારતીય સંસ્કૃતિની સહિષ્ણુતા અને એકીકરણ તેને સમયના પડકારોનો સામનો કરવા સક્ષમ બનાવે છે. તેમણે દર્શાવ્યું કે ભારતીય સંસ્કૃતિ ફક્ત બાહ્ય આક્રમણોનો સામનો કરવા સક્ષમ નહોતી, પરંતુ તેમને આત્મસાત પણ કરી હતી, તેની મૌલિકતાને વધુ સમૃદ્ધ બનાવી હતી. આ પ્રક્રિયા ભારતીય સમાજને તેની સાંસ્કૃતિક ઓળખ અને સ્થિરતા આપે છે.

દિનકરના વિચારો આજે પણ એટલા જ સુસંગત છે જેટલા તેમના સમયમાં હતા. તેમના મતે, આંદોલન એ સમાજને તેના સાંસ્કૃતિક વારસામાં પરત લાવવા અને તેને પુનર્જીવિત કરવાનું એક માધ્યમ છે. તેમણે એ પણ દર્શાવ્યું કે ભક્તિ આંદોલન કેવી રીતે સમાજની નવી દિશાને આકાર આપવામાં અને તેની સાંસ્કૃતિક ચેતનાને મજબૂત બનાવવામાં મદદ કરી શકે છે. તેમના વિચારો આપણને ભૂતકાળને સમજવામાં મદદ કરે છે એટલું જ નહીં પરંતુ સમાજના ભવિષ્ય માટે પણ માર્ગદર્શક બને છે.

ભક્તિ આંદોલન અને સાંસ્કૃતિક ચેતના એ ભારતીય જ્ઞાન પરંપરામાં ભક્તિ, સામાજિક સંવાદિતા અને સરળ ભક્તિની ભાવના સ્થાપિત કરવામાં સંત સેનાનું સાહિત્ય મહત્વપૂર્ણ ભૂમિકા ભજવે છે. તેમણે જાતિવાદનો વિરોધ કર્યો, ભક્તિની સરળતાને અપનાવી અને ભગવાન માટે બિનશરતી પ્રેમનો સંદેશ આપ્યો. તેમના ઉપદેશો આજે પણ સુસંગત છે. શક્તિ માર્ગના સાધકોને પ્રેરણા આપે છે.તેથી, ભક્તિ આંદોલન ભારતીય સંસ્કૃતિને ભક્તિ, પ્રેમ, સમાનતા અને નૈતિકતા આપી છે. આધ્યાત્મિકતા, સામાજિક સુધારણા, શાંતિ, સંવાદિતા, લોકભાષા, સરળતા, ગુરુ-શિષ્ય પરંપરા, જ્ઞાન, ત્યાગ, સ્ત્રીઓ પ્રત્યે આદર, દયા, અહિંસા, કર્મયોગ, રામ-જામ મહિમા, જન કલ્યાણ અને ધર્મની દિશા આપી છે. કબીર, દાદુ, નામદેવ, નાનક, ધન્ના, પીપ, સેના, રૈદાસ જેવા જ્ઞાનમાર્ગી સંતોએ જ્ઞાન, અદ્વૈતનો ઉપદેશ આપ્યો. ભ્રમનો ત્યાગ, નિઃસ્વાર્થ ક્રિયા, ભેદભાવ વિરોધી, સત્ય, ધ્યાન, આત્મનિરીક્ષણ, ભગવાનનું જ્ઞાન, એકેશ્વરવાદ, અહંકારનો ત્યાગ, આધ્યાત્મિક અભ્યાસ. મોક્ષ, વિવેક, સહજ યોગ, વૈરાગ્ય, લોક મંગલ, નિરાકાર ભક્તિનો સંદેશ આપ્યો.

ઉપસંહાર :-

ભક્તિ આંદોલન એ ભારતીય જ્ઞાન પરંપરાનો વિકાસ એક સતત પ્રક્રિયા રહી છે, અને ભક્તિ આંદોલન અને સાંસ્કૃતિક ચેતના આમાં મહત્વપૂર્ણ ભૂમિકા ભજવી છે. સંત કવિઓએ જ્ઞાનને ફક્ત ગ્રંથો સુધી મર્યાદિત રાખ્યું ન હતું, પરંતુ તેને સ્થાનિક ભાષામાં સરળ અને વ્યવહારુ સ્વરૂપમાં રજૂ કર્યું હતું. તેમના વિચારોએ સામાજિક સુધારણા, સમાનતા, પ્રેમ અને ભાઈ ચારાને પ્રોત્સાહન આપ્યું હતું. આધુનિક સમયમાં પણ, સંત સાહિત્યના ઉપદેશો સમાજ માટે પ્રેરણાદાયક રહ્યા છે. તેથી, ભારતીય જ્ઞાન પરંપરાને સમજવામાં અને તેને સામાન્ય લોકો માટે સુલભ બનાવવામાં ભક્તિ આંદોલનનું યોગદાન અજોડ છે.

સંદર્ભ સૂચિ-

1. નામવર સિંહ. *કબીરની ભાષા*. ન્યૂ દિલ્હી: રાજકમલ પબ્લિકેશન્સ.
2. મહાદેવી વર્મા. *મીરા*. ન્યૂ દિલ્હી: સાહિત્ય અકાદમી.
3. તુલસીદાસ. *રામચરિતમાનસ*. ગોરખપુર: ગીતા પ્રેસ.
4. ભગવતીચરણ વર્મા. *ભક્તિ ચળવળનો સામાજિક પ્રભાવ*.
5. ગુજરાતી વિશ્વકોશ. *ભક્તિમાર્ગ અને ભક્તિ આંદોલન*. ગુજરાત: ગુજરાતી વિશ્વકોશ પ્રકાશન.
6. ગુજરાતી વિશ્વકોશ. *ગુજરાતી વિશ્વકોશ*.
7. Google. *Online source*. Retrieved from https://share.google/EavppfsO7hpm4NJfH

દલિત સાહિત્ય અને સામાજિક - સાંસ્કૃતિક સમાનતા

ગોપાલ ધનજીભાઈ ચૌહાણ*
guzarish1206@gmail.com

પ્રસ્તાવના...

ભારતીય સમાજવ્યવસ્થામાં દલિતોની પીડાનો ઇતિહાસ સદીઓ જૂનો છે. માત્ર સામાજિક જ નહિ, આર્થિક - શૈક્ષણિક-ધાર્મિક એમ દરેકે રીતે પછાત ગણાતી દલિત જાતિઓ અસ્પૃશ્યતાનો અમાનવીય વ્યાવહાર સદીઓ સહન કરતી આવી છે. આ અસમાનતા લોકશાહી રાજ્યવ્યવસ્થા પણ દૂર કરી શકી નથી. આ અસમાનતા આ તો ખરેખર એક મનુષ્યનો બીન મનુષ્ય સાથેનો અન્યાય કહેવાય. માનવતાનું અપમાન કહેવાય. દલિત સાહિત્ય એ અપમાન અને અન્યાયની પીડાને વાચા આપે છે." નામરૂપ જૂજવા અંતે તો હેમનું હેમ હોય" એ ન્યાયે વ્યક્તિમાત્રની એક જ ઓળખ હોવી જોઈએ પરંતુ આપણે ઊભી કરેલી વ્યવસ્થા અને ચોકઠાખોમાં વ્યવસાય ગોઠવીને દરેકને અલગ ઓળખ આપવામાં આવી જેમાં બ્રામણ, આ ક્ષત્રિય, આ વૈશ્ય અને આ શૂદ્ર એવા અલગ - અલગ ચોકાઓ ઊભા કરવામાં આવ્યા. એના લીધે ભારતીય સમાજરચનામાં ઘર કરી ગયેલી સામાજિક વિષમતાઓ સમાજ, સાહિત્ય અને સામાન્ય વ્યવહારમાં કોઈ ને કોઈ રીતે જોવા મળે છે.

ભારતને આઝાદી મળ્યા પછી દલિત સમાજ શિક્ષણ અને આરક્ષણના લીધે ઘણી સારી પ્રગતિ કરી રહ્યો છે. શિક્ષણના લીધે સારી નોકરી મેળવી દલિત -વર્ગ સમાજના મધ્યમવર્ગની શ્રુંખલામાં સ્થાન હાંસલ કરી શક્યો છે. શિક્ષણ ના લીધે આવેલી જાગૃતિ પણ એને એક કદમ આગળ લાવવામાં મહત્વનો ભાગ ભજવે છે. એનામાં અનેક પરિવર્તનો આવ્યા છે. એમાં નું એક પરિવર્તન છે સાહિત્ય ક્ષેત્રનું

દલિત સાહિત્યનો ઉદ્ભવ...

ગુજરાતી સાહિત્યમાં દલિત સાહિત્વનો પ્રારંભ ઈ.સ. ૧૯૭૫ આસપાસ થયો છે. આ પ્રવાહ ઇ. સ. ૧૯૮૦ પછી વધુ વિસ્તર્યો છે અને ઇ.સ. ૧૯૮૧ પછી લખાયેલી કવિતાઓ શુદ્ધ દલિત કવિતા બનીને ઉપસી આવી. આ કવિતાનો મુખ્ય સૂર અસ્પૃશ્યતા, શોષણ, અન્યાયો વગેરે સામે આક્રોશ / વિદ્રોહ વ્યક્ત કરવાના સ્વરૂપનો હતો. લલિત કવિતા કરતાં દલિત કવિતા જુદા જ લક્ષણો સાથે સંવેદનને સ્પર્શવા મથતી હતી. ઈ. સ. ૧૯૮૦-૮૫ ના ગાળમાં ગુજરાતી સાહિત્યની રૂખ પલટાવા માંડી, તેમાં દલિત સાહિત્યનો ફાળો નોંધપાત્ર છે.

દલિત સાહિત્યમાં કવિતા, વાર્તા, નવલકથા, રેખાચિત્રો, નાટક, આત્મકથા, સંસ્મરણો વગેરે વિવિધ સાહિત્યસ્વરૂપોમાં સત્વશીલ પ્રદાન થયું છે. હજીયે કેટલાક સુજ્ઞો દલિત સાહિત્યની વ્યાખ્યા બાંધવામાંથી નવરા પડતાં નથી. કેટલાક તો વળી સાહિત્ય દલિત હોતું હશે ! એમ કરીને તેનો છેદ ઉડાડવાની પેરવીમાં છે. તો કેટલાક સંવેદનશીલ સર્જકો દલિત સાહિત્યની અનિવાર્યતાનો સકારણ સ્વીકાર કરે છે. વર્ષોથી જે પ્રજા શોષિત રહી છે. જેમણે અનેક અન્યાયો સાહ્યા છે તેમની વ્યથા - પીડા પાર વિનાની છે. અસ્પૃશ્યતાના નામે માનહાની થતી રહી છે. આવી દલિત સમસ્યાઓ સાહિત્ય દ્વારા વ્યક્ત થાય અને તેને દલિતસંગાથી ઓળખવામાં આવે તો તેની અવગના કરવી જોઈએ નહિ તેવું ઘણા માને છે. જે સાહિત્યકારો દલિત સમાજમાંથી આવે છે તેમને દલિતોના દુ:ખદર્દોનો અહેસાસ થયો હશે તેમને અસ્પૃશ્યતા જેવા હિન્દુધર્મના કલંક સામે આક્રોશ વ્યકત કરવાનું અનિવાર્ય લાગ્યું હશે. એટલે દલિત સાહિત્યના નામે આ સમાજની વેદના પીડાને વ્યકત કારવા માટે એ પ્રતિબદ્ધ થયા.

* સંશોધન વિદ્યાર્થિ, ગુજરાતી વિભાગ, ભક્ત કવિ નરસિંહ મહેતા યુનિવર્સિટી, જુનાગઢ.

દલિત સાહિત્યના મુખ્ય લક્ષણો ...

દલિત સાહિત્યએ પોતાની અલગ સીમા નથી નક્કી કરી પરંતુ તમામ પ્રકારના સાહિત્યકારો, ધર્મ, જાતિને આવકારે છે. દલિત સાહિત્યએ પોતાના નવોન્મેષ આયામો સાથે આગળ વધે છે જેમાં સાહિત્ય કલા, પ્રતિષ્ઠા, અસ્મિતાની ઓળખ, સમાજ જાગૃતિ, સમયને અનુસંધાને ચાલવાની વાતો સાથે સતત આગળ વધતુ રહિયું છે.

(ક) અનુંભવનું સાહિત્ય:

દલિત સાહિત્યનો મૂળ આધાર અનુભવ છે, કલ્પના નહીં. સમાજમાંથી મળેલા અનુભવો જ તેમના સાહિત્યનો આધારસ્તંભ બની રહે છે. ભોગવેલા દુ:ખ, અપમાન, તિરસ્કાર, શોષણ તથા અસ્પૃશ્યતાના અનુભવો તે સાહિત્યના માધ્યમથી તીવ્રતાથી વ્યક્ત કરે છે. જયારે લેખક પાતે જ દલિત જીવન જીવ્યો હોય છે તેથી તેના સાહિત્યના લેખનમાં જીવંત સત્ય પ્રગટી શકે છે.

(ખ) પ્રતિકારનો સ્વર:

સમાજમાં વ્યાપેલી અસમાનતા જન માણસને વિરોધ કરવા પ્રેરે છે. સામાજિક, આરિર્થક અને ધાર્મિક અસમાનતાનો વિરોધ એ દલિત સાહિત્યનો કેન્દ્રીય સ્વર છે. જે શોષણકારી વ્યવસ્થાને ખૂલે આમ પડકારે છે. અને માનવ અધિકારો માટે લડવા પ્રેરણા આપે છે. "એકને ગોળ અને એકને ખોળ " જેવી સમાજવ્યવસ્થાને જડમૂળથી ઉખેડી નાખવા દલિત સાહિત્યકારો સાહિત્યના માધ્યમથી પ્રતિકાર કરી પોતાનો રોષ અભિવ્યક્ત કરે છે.

(ગ) માનવતાનો સંદેશ:

સાહિત્ય એ દાનવને માનવ બનાવાની જડીબુટ્ટી છે. સાહિત્યના માધ્યામ થકી આપણે શીખ્યા છીએ કે " હું માનવી માનવ થાઉ તોય ઘણું સુન્દરમ્ ની આ એક પંક્તિ માવાનો ઉત્તમ શંદેશો આપી જાય છે. સાહિત્યનો અંતિમ હેતું માનવતા જાળવવાનો છે જાતિ, વર્ગ, ધર્મ કે લિંગના ભેદને પાર કરીને માનવીય એકતાનો સંદેશ સાહિત્ય આપે છે. બધાજ લોકો સમાન છે. કોઈ ઉચ્ચ-નીચ નથી - આ વિચારધારા સાહિત્યના રગે રગ માં વહેતી હોવી જોઈએ.

(ઘ) યર્થાથવાદ:

દલિત સાહિત્ય કલ્પનાલોકમાં નથી જતુ, પરંતુ જીવનની કઠોર હકીકતોને આપણી સમક્ષ ચિત્રિત કરે છે. વાસ્તવિકતા સાથે ગાઢ સંબંધ દલિત સાહિત્યને રહેલો છે. જે દુખો, પીડાઓ કે અપમાનો સહ્યા છે. તે અનુમાનિત કે કલ્પિત નથી પરંતુ કારુણ્ય અને વાસ્તવિક રહેલા છે. એટલે જ યથાર્થતાની એરણ પર દલિત સાહિત્ય સાર્થક રહ્યું છે.

સામાજિક - સાંસ્કૃતિક સમાનતા...

ભારતીય સમાજમાં વર્ણવ્યવસ્થા અને જાતિવાદને કારણે દલિતોને શોષણ, અપમાન અને અસ્પૃશ્યતાનો સામનો કરવો પડ્યો. શિક્ષણ,રોજગાર, મંદિરોમાં પ્રવેશ જેવી સામાન્ય હકોમાંથી તેઓ વંચિત રહ્યા. આવા સંજોગોમાં દલિત સાહિત્ય એક ચળવળ રૂપે આગળ આવ્યું. જેનો હેતુ સમાજમાં સમાનતા સ્થાપિત કરવાનો હતો. સમાજ ભિન્ન ભિન્ન વર્ગોમાં વિભાજિત બન્યો હતો. આવી પરિસ્થિતિમાં સામાન્ય જનોને રહેણી- કહેણીથી લઈને સમાજમાં માનભેર જીવવામાં ખૂબ જ મુશ્કેલીઓ ઊભી થઈ હતી. જાતિભેદને કારણે લોકો એકબીજાને જુદા જુદા દ્રષ્ટિકોણથી અવલોકવા લાગ્યા તેમજ તેમની સાથેના વ્યવહારમાં પણ જુદાપણું જોવા મળ્યું. ખરેખર તો દલિત જનોએ કોઈ પણ દ્રષ્ટિએ ઊંચી ગણાતી જ્ઞાતિ કે જાતિથી ઉતરતા ન હતા. વ્યક્તિ પોતાના કુળથી મહાન ક્યારે પણ બની શકે નહીં, વ્યક્તિની મહાનતા તેના કર્મથી છે સમાજમાં દરેક વ્યક્તિને યોગ્ય માન અને સ્થાન પ્રાપ્ત થવું જોઈએ એ જ સાચી નૈતિકતા અને માનવીય ગુણ છે. દરેક વ્યક્તિ અહીં શિક્ષિત બની પોતાનો શૈક્ષણિક વિકાસ સાધી શકે છે તેમજ રોજગારીની બાબતમાં પણ વ્યક્તિને સમાન તક મળવી જોઈએ. માનવતાના દ્રષ્ટિકોણથી જોતા આપણને ખ્યાલ આવે છે કે દરેક માનવ આ વિશાળ ઈશ્વરી દુનિયાનો એક અંશ છે માટે તેની સાથેનું વર્તન અને વ્યવહાર માનવીય બની રહે એ ઉચિત

છે કાનૂની કે રાજકીય રીતે માનવને સમાન અધિકારો મળવા જોઈએ તેમજ ન્યાયની બાબતે પણ નિષ્પક્ષ ચુકાદો આપવો એ માનવતાનું ઉત્તમ પાસું ગણી શકાય.

ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરે સમાજમાં વ્યાપેલા સામાજિક-સાંસ્કૃતિક ભેદભાવોને દૂર કરવાના અથાગ પ્રયત્નો કર્યા છે. સૌપ્રથમ જ તેમણે મહાડના ચવદાર તળાવના પાણીની એક અંજલી ભરીને પીધું અને ત્યારબાદ પ્રચંડ જનસમૂહએ તેનું અનુકરણ કર્યું હતું. આ કાર્ય દ્વારા તેમણે પોતાના માનવીય અધિકાર અને સમાનતા માટેના સત્યાગ્રહને યોગ્ય ઠેરવ્યો હતો. ભારત માટે શતાબ્દીઓ પછી સમાનતા માટેનો આ પરમ મંગળ એવો ભાગ્યશાળી દિવસ હતો.

સમાજમાં લોકો ભિન્ન જાતિ, ધર્મ અને પ્રથાઓ ધરાવતા લોકો સાથે હળી-મળીને રહે તે ખૂબ જરૂરી બાબત છે. ભારતીય સંસ્કૃતિ એ વિશ્વમાં ભાતીગળ સંસ્કૃતિ તરીકે છાપ ધરાવે છે.તેથી અહીં દરેક વ્યક્તિને સાંસ્કૃતિક દરજ્જો પણ સમાનતાને ધોરણે મળે એ આપણી નૈતિક ફરજ છે. આપણા ધાર્મિક તહેવારો, મંદિરો અને મેળાઓમાં આપણે સૌ એકસરખા રંગે રંગાયેલા હોવા જોઈએ કોઈ ઊંચનીચના ભેદભાવ ન હોવા જોઈએ તેમજ માનવજાતનો સર્વાંગી વિકાસ સધાય એ જ આપણે અભિલાષા સેવવી રહી .દરેક વ્યક્તિને સમાન અવસર મળે એટલે સમાજ પ્રગતિશીલ બને.

નિષ્કર્ષ...

સામાજિક-સાંસ્કૃતિક સમાનતા એ આધુનિક સમાજની આધારશીલા છે. અસમાનતા જ્યાં હોય ત્યાં વિકાસ અધુરો રહે છે. તેથી આવશ્યક છે કે આપણે જાતિ,વર્ણ, ધર્મ ,ભાષા ,લિંગ વગેરેના ભેદભાવને ભૂલીને સૌને સમાન અધિકાર અવસર અને સન્માન આપીએ. સમાજ પરિવર્તનશીલ હોય છે અને તે પરિવર્તન સાહિત્યનો ભાગ બને તે પણ અતિ આવશ્યક છે. સાહિત્યના માધ્યમથી સમાજના ભેદભાવ મટીને સામાજિક-સાંસ્કૃતિક દ્રષ્ટિએ એક સૂત્રતા જળવાય જે કોઈપણ રાષ્ટ્ર માટે હિતકારી બાબત ગણી શકાય.

સંદર્ભ :-

1. પરમાર, પથિક. *દલિત કવિતાના ચાર દાયકા.*
2. વાઘેલા, અજયકુમાર એમ. (n.d.). *ત્રણ દલિત સર્જકો: એક અભ્યાસ.*
3. પરમાર, પથિક. (2005). *સાંપ્રત દલિત સાહિત્ય પ્રવાહ.*
4. મકવાણા, કિશોર. *સમતા અને બંધુતા ના પથ દર્શક....*

हिंदी साहित्य में राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता आन्दोलन

डॉ. मधुरा केरकेट्टा*
mk21350@gmail.com

हिंदी साहित्य ने स्वतंत्रता आन्दोलन को अधिक सशक्त और सक्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हिंदी साहित्य ने राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने एवं राजनीतिक चेतना को जन-जन तक पहुँचाने का बहुमूल्य कार्य किया है। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौर में साहित्य केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं रहा बल्कि एक शक्तिशाली हथियार बन गया, जिसने लोगों को एकजुट होने के लिए प्रेरित किया।

आधुनिक हिंदी साहित्य का आरंभ भारतेंदु युग से हुआ, राष्ट्रीयता का स्वर भारतेंदु युग से आरम्भ होकर आज भी विद्यमान है। विशेष रूप से स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान विदेशी शासन के अत्याचारों से मिली यातनाओं तथा लोकतान्त्रिक जनता के मन में उठने वाले क्षोभ और असंतोष का चित्रण कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि में मुखर रूप में दिखाई पड़ता है। साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय गौरव को केंद्र बनाया। भारतेंदु युग में 'भारत दुर्दशा' में अंग्रेजों के शासन और आंतरिक फूट के कारण हुई समस्याओं को दर्शाया गया है। 'अंधेर नगरी' में उन्होंने ब्रिटिश राज की कुव्यवस्था, अन्याय और मनमानी का तीखा मजाक उड़ाया है।

द्विवेदी युग में राष्ट्रीयता की भावना को और अधिक मुखर करते हुए मैथलीशरण गुप्त 'भारत-भारती' शीर्षक कविता में राष्ट्रीय समस्याओं के विविध पहलूओं की व्यापक अभिव्यक्ति की है। वे भारत के प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति का गुणगान करते हैं साथ ही वे पराधीन भारत की गरीबी, गुलामी और आपसी फूट जैसी समस्याओं को उजागर करते हैं। भारतीयों को यह भी सोचने पर मजबूर करते हैं कि कैसे इस देश की दुर्दशा हुई, यह चित्रण लोगों को जगाने, भविष्य के प्रति जागरूक करने और उन्हें अपनी स्थिति बदलने के लिए प्रेरित करने वाला था। अपने संस्कृति के गौरवपूर्ण अतीत का गुणगान और देशवासियों में आत्म-सम्मान की भावना जगाते हुए वे लिखते हैं –

"किस भाँति जीना चाहिए, किस भाँति मरना चाहिए;
सो सब हमें निज पूर्वजों से याद करना चाहिए।
पद-चिह्न उनके यत्नपूर्वक खोज लेना चाहिए,
निज पूर्व-गौरव-दीप को बुझने न देना चाहिए"[1]

मैथलीशरण गुप्त का मानना था कि भारतीय अपने महान अतीत से प्रेरणा लेकर वर्तमान की चुनौतियों का सामना करें तो वे निश्चित रूप से एक स्वतंत्र और समृद्ध भारत का निर्माण कर सकते हैं। इसलिए भारतीय युवाओं से देश का उद्धार करने का बेड़ा कंधों पर उठाने का आह्वान करते हुए लिखते हैं –

"हे नवयुवाओ! देश भर की दृष्टि तुम पर ही लगी,
है मनुज जीवत की तुम्हीं में ज्योति सब से जगमगी।
दोगे न तुम तो कौन देगा योग देशोद्धार में?
देखो कहाँ क्या हो रहा है आज कल संसार में"[2]

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की कविता 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' में विद्रोह, संघर्ष एवं वीरता का स्वर प्रमुख है जिसने युवाओं को आन्दोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित किया।

* **असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, के. बी. कॉलेज बेरमो, बोकारो**
बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद (झारखण्ड)

सुभद्रा कुमारी चौहान हिंदी की कवियत्रियों में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता 'झाँसी की रानी', 'वीरों का कैसा हो बसंत', सेनानी का स्वागत', 'जालियाँवाले बाग में बसंत', 'स्वदेश के प्रति', 'झाँसी की रानी की समाधि पर', 'सभा का खेल' आदि कविताओं में हमारे देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय भावनाएँ गहरे तौर पर निहित हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान गृहस्थी के दायित्व के साथ-साथ कविता कर्म करती रहीं और स्वाधीनता आन्दोलन में भी सक्रिय रहीं।

1857 ई. का प्रथम स्वाधीनता-संग्राम हो या जलियांवाला बाग़ का नरसंहार इससे जुड़े संघर्ष सुभद्रा जी को हमेशा बेचैन करते हैं। उनका जीवन देखा जाए तो वे अपना सम्पूर्ण जीवन को होम कर देती हैं, देश की स्वाधीनता के लिए अपने दुधमुंहे बच्चे को छोड़कर उनका जेल चले जाना, लाठियाँ और गोलियाँ खाना अकल्पनीय है। सुभद्रा जी की कथनी और करनी में कोई भेद न था। उनके जैसे कईयों के बलिदान से देश को पराधीनता से मुक्ति मिली है। वे अपनी कविता के माध्यम से देश के बच्चे, युवक, बूढ़े यहाँ तक कि सामान्य स्त्रियों को भी स्वाधीनता की ओज से पुकारती हैं, कविता में उनका यह स्वर इस प्रकार है –

"लुटे हुए दीनों की आशा, तू दासों की उज्जवल रत्न
भारतीय स्वातन्त्र्य-प्राप्ति की तू चिरजीवी सात्विक यत्न
मरे हुए को अमर बनाने
वाली तू संजीवन मन्त्र
प्रिय स्वराज्य-संचालन का है
एकमात्र तू जीवित यंत्र"[3]

स्वाधीनता आन्दोलन के समय सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता साम्प्रदायिक सद्भावना की एक महत्वपूर्ण छाप छोड़ती हैं। गाँधी जी को वे साम्प्रदायिक सद्भाव का अग्रदूत मानती थी। 1857 ई. का प्रथम स्वाधीनता संग्राम इसी साम्प्रदायिक सद्भाव का उदाहरण मानते हुए वे लिखती हैं –

"इस स्वतन्त्रता महायज्ञ में कई वीरवर आये काम,
नाना धुन्धूपंत, ताँतिया, चतुर अजीमुल्ला सरनाम,
अहमद शाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास-गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम"[4]

स्वाधीनता संग्राम में गाँधीजी, सुभाषचन्द्र बोस आदि के नेतृत्व में न जाने कितने वीर सेनानियों ने निस्वार्थ त्याग और बलिदान किया है, आजादी के लिए अपने प्राण दिये और अनेकों यातनाएँ झेली, वे लिखती भी हैं –

"तिलक, लाजपत, गाँधीजी भी
बन्दी कितनी बार हुए
जेल गये जनता ने पूजा,
संकट में अवतार हुए "[5]

सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं में राणाप्रताप, शिवाजी महाराज, छत्रसाल आदि राष्ट्र नायकों का चित्रण मिलता है जिनके त्याग बलिदान और वीर भावना से हमें प्रेरणा मिल सकती है। वे इतिहास में रानी लक्ष्मीबाई को प्रेरणा स्रोत मानती हैं उनका उदाहरण देकर वे जनसामान्य स्त्रियों को जागरूक करना चाहती थीं। रानी लक्ष्मीबाई का जो स्मारक लोगों के हृदय में है वह अमिट है , उन्हीं की पंक्तियाँ हैं –

"जाओ रानी याद रखेंगे हम कृतज्ञ भारतवासी
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतंत्रता अविनाशी,
होवे छप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी,

तेरा स्मारक तू ही होगी,
तू खुद अमिट निशानी थी"[6]

इनकी प्रेरणादायक गाथाएँ इतिहास में अंकित होने के साथ-साथ इसे भारत के विभिन्न भाषाओं में साहित्यिक विधा के रूप में लिखा गया। जो हमारे देश की गौरवशाली रचनाएँ हैं। स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित इन ढेरों रचनाओं का सिर्फ तत्कालीन महत्व नहीं है बल्कि उन रचनाओं में निहित स्वाधीनता की चेतना के महत्त्व को आज भी भुलाया या बिसराया नहीं जा सकता है। ये रचनाएँ भी स्वतंत्रता के बीज की भांति मनुष्य के मस्तिष्क में स्मृति बनकर रह गई हैं जो आज भी स्वतंत्रता के महत्व को उकेरती हैं।'वीरों का कैसा हो बसन्त' कविता में सुभद्रा जी इतिहास को याद करते हुए लिखती हैं -

"कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके, तुझ में क्यों लगी आग?
ऐ कुरुक्षेत्र! अब जाग, जाग,
बतला अपने अनुभव अनन्त,
वीरों का कैसा हो बसन्त ?"[7]

सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता में लार्ड डलहौजी के छल कपट व धूर्तता चित्रण है कि उन्होंने कैसे एक-एक राज्य हड़पा, अपनी कविता में बड़े सटीक ढंग से कहती हैं -

"अनुनय विनय नहीं सुनता है, विकट फिरंगी की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था जब यह भारत आया,
डलहौजी ने पैर पसारे अब तो पलट गई काया,
राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरों ठुकराया...
छिनी राजधानी देहली की, लिया लखनऊ बातों-बात,
कैद पेशवा था बिठूर में, हुआ नागपुर का भी घात,
उदैपुर, तंजौर, सतारा, करनाटक की कौन बिसात,
जब कि सिन्ध, पंजाब, ब्रह्म पर अभी था वज्र-निपात,
बंगाले, मद्रास आदि की
भी तो यही कहानी थी।"[8]

झंडा आन्दोलन का उल्लेख सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता में मिलता है। स्वयं उन्होंने पं. सुन्दरलाल की प्रेरणा से झंडा आन्दोलन में भाग लिया। राष्ट्रीय झंडा और उसकी महत्ता का चित्रण 'सेनानी का स्वागत' कविता में उन्होंने इस प्रकार किया है-

"रण-भेरी का नाद सदा को
क्या अब रुक जायेगा ?
जिसको ऊँचा किया वही क्या
झंडा झुक जायेगा"[9]

टैगोर, शरतचंद्र, प्रेमचंद जैसे बड़े रचनाकारों की भांति सुभद्रा जी की कविताओं में बच्चों के लिए कविता देखी जा सकती है। कविता के माध्यम से वह बच्चों में तत्कालीन स्वतंत्रता की चेतना पैदा करती है। सुभद्रा जी कविता के द्वारा बच्चों को उत्साहवर्धन, संस्कार तथा शिक्षा की महत्ता भी बतलाना चाहती हैं। साथ ही उनमें बचपन से ही स्वाधीनता की चेतना का बीज बो देना चाहती हैं। इन विशेषताओं का चित्रण 'सभा का खेल' शीर्षक बाल कविता में देखा जा सकता है -

"सभा सभा का खेल आज हम
खेलेंगे जीजी आओ
मैं गांधी जी, छोटे नेहरू
तुम सरोजनी बन जाओ

मेरा तो सब काम लँगोटी
गमछे से चल जायेगा
छोटे भी खद्दर का कुरता
पेटी से ले आयेगा
लेकिन जीजी तुम्हें चाहिए
एक बहुत बढ़िया सारी
वह तुम माँ से ही लेना
आज सभा होगी भारी"[10]

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक नाटकों के माध्यम से जयशंकर प्रसाद ने राष्ट्रीयता का भाव जगाया है, उनके नाटक जैसे स्कंदगुप्त और चन्द्रगुप्त ने भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण अतीत को चित्रित किया लोगों में आत्म सम्मान और राष्ट्रीय गौरव की भावना भरी। उस दौर में कई अन्य नाटक भी लिखे गये जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने जब्त भी किया इन नाटकों में कुली प्रथा, मजदूरों का शोषण और अंग्रेजों के अत्याचारों का वर्णन किया गया था। लोक नाट्य विधाओं ने भी स्वतंत्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी इनके माध्यम से देशभक्ति के संदेशों को गाँव-गाँव तक पहुँचाया गया जिससे आम जनता भी स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ सकी।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों जैसे रंगभूमि, कर्मभूमि और गोदान के माध्यम से ग्रामीण भारत की समस्याओं, किसानों की दुर्दशा और सामाजिक, राजनीतिक शोषण को उजागर किया और उनका साहित्य जन जागरण का माध्यम बना। इन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्वतंत्रता आन्दोलन को वैचारिक आधार प्रदान किया और आम जनता को मानसिक रूप से स्वतंत्रता के लिए तैयार किया।

इस प्रकार हिंदी साहित्य में देशप्रेम, त्याग, बलिदान व आत्मसमर्पण युगानुकूल हैं। हिंदी जगत की ओजस्वी रचनाएँ सर्वदा जन-जन को प्रेरणा और प्रोत्साहन देती रहेगी।

संदर्भ :-

[1] गुप्त, मैथिलीशरण. *उद्बोधन*. हिन्दवी. 5 अक्टूबर, 2024 को प्राप्त किया गया, https://www.hindwi.org/khand-kavya/udbodhan-maithilisharan-gupt-khand-kavya से।

[2] गुप्त, मैथिलीशरण. *उद्बोधन*. हिन्दवी. 5 अक्टूबर, 2024 को प्राप्त किया गया, https://www.hindwi.org/khand-kavya/udbodhan-maithilisharan-gupt-khand-kavya से।

[3] गुप्ता, रूपा (संपा.). (2015). *सुभद्रा कुमारी चौहान ग्रंथावली* (प्रथम संस्करण). नई दिल्ली: स्वराज प्रकाशन. पृ. 103

[4] वही, पृ. 85

[5] वही, पृ. 115

[6] वही, पृ. 87-88

[7] वही, पृ. 129

[8] वही, पृ. 83-84

[9] वही, पृ. 155

[10] वही, पृ. 213

भगवतीचरण वर्मा के हिन्दी उपन्यास और सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ

अनिताबेन खिमजीभाई चांडपा*

anitavanvi1818@gmail.com

सारांश

साहित्य और समाज का संबंध केवल प्रतिबिंब का नहीं, किन्तु सहभागिता का संबंध है। साहित्य के माध्यम से समाज की कमजोरियों पर प्रहार करता है, उसके गुणों को संरक्षित करता है और जीवन-मूल्यों को पोषित करता है। उपन्यासकार साहित्य से समाज की विविधताओं, संघर्षों और सांस्कृतिक चेतना को समाज के सामने रखता है। इसी वजह से हिंदी उपन्यास में आज भी सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को अभिव्यक्त करने वाला जीवंत और प्रभावशाली साहित्यिक माध्यम बना रहा है।

बीजशब्द:-

समाज, साहित्य, उपन्यास, सामाजिक, यथार्थ, भगवतीचरण वर्मा, समस्या, शोषक, शोषित

प्रस्तावना :-

समाज और साहित्य का संबंध अन्योन्यश्रित है। रचनाकार अपने भावों को रचना के रूप में आकर देता है। यही रचना समाज के निर्माण में पथ प्रदर्शक बनने की भूमिका निभाता है। साहित्य समाज का वह माध्यम है जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। अच्छा साहित्यकार साहित्य की जो रचना करता है वह व्यक्ति और चरित्र के निर्माण में सहायक होता है, समाज को दिशा प्रदान करता है और समाज में संस्कृति के साथ-साथ जीवन मूल्य की शिक्षा भी देता है। साथ ही समाज सुधार और सामाजिक गतिशीलता भी उनको मिलती है। साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है, समाज में जो विकृतियों है उसे साहित्य के माध्यम से निवारण करने का प्रयास करता है। मानव व्यक्ति के मन में जो भाव उठते हैं उसको हम लेखन भाषा के माध्यम से प्रकट करते हैं जिसमें भाव के अभिव्यक्ति है वह साहित्य कहा जाता है। साहित्य ज्ञानवर्धक संस्कार समाज उपयोगी मूल्य जीवन दृष्टि सामाजिक संस्कारों का भी परिष्कार करता है। साहित्य के माध्यम से मनुष्य जीवन उपयोगी दृष्टिकोण भी मिलता है।

हिन्दी उपन्यास गद्य साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है। उपन्यास के माध्यम से समाज को मनोरंजन भी प्राप्त होता है और हिंदी उपन्यास साहित्य में समाज जीवन की विविधता का गहन चित्रण हमें दिखाई पड़ता है। प्रेमचंद की उपन्यास संबंधी परिभाषा में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "प्रेमचंद लिखते हैं मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।" 1 अन्य विधाओं की तरह उपन्यास जीवन में साहित्यकार बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार अपने आंखों देखा समाज का यथार्थ चित्रण अपने साहित्य के माध्यम से समाज के सामने रखने का प्रयास करते है। उपन्यासकार पात्रों के माध्यम से पूरी जिंदगी की वास्तविकता को उनके समूची आर्थिक और सामाजिक परिवेश को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। ज्यादातर मध्यम वर्ग की कथा वस्तु को आधार बनाया गया है। मध्यम वर्ग एक अजीब वर्ग है जो अपनी झूठी शान, दिखावे की वजह से

* **भक्त कवि नरसिंह मेहता विश्वविद्यालय, जूनागढ़**

आर्थिक खोखलेपन से कुंठित दिखाई देता है। साहित्यकार उस समय के सांप्रदायिकता, सामाजिक समस्या, आर्थिक समस्या, सांस्कृतिक विभिन्नता, धर्मांडम्बर, समाज की बुराइयां, भ्रष्टाचार, गरीबी, शोषण, अंधविश्वास, परंपराएं, संघर्ष आदि को साहित्य में पात्रों के माध्यम से समाज के सामने दर्शाता है।

हिंदी उपन्यास का उद्भव 19वीं शताब्दी में हुआ और आगे चलकर उसमें सामाजिक परिवर्तन नवजागरण राष्ट्रीय चेतना के माध्यम से हिंदी उपन्यास मोड में केवल व्यक्ति और समाज के संघर्ष से उभरने में मदद की बल्कि उस समय की सामाजिक समस्या, कुरीतियां, स्त्री-पुरुष संबंध, जातिवाद, सामंतवाद, औद्योगीकरण, स्वतंत्रता आदि का जीवन चित्रण किया है। हिंदी उपन्यास केवल मनोरंजन की विधा नहीं है लेकिन समाज के यथार्थ चित्रण है।

हिंदी उपन्यास का आरंभ:-

हम भारतेंदु हरिश्चंद्र से मान सकते हैं उससे पहले 'परीक्षा गुरु' 1882 में हिंदी का पहला उपन्यास माना जाता है जिसमें उसे समय की समाज के तत्कालीन समस्या को उपन्यास के माध्यम से लाल श्रीनिवासीदास ने दिखाया है

प्रेमचंद जी ने हिंदी साहित्य में उसे समय की सामाजिक स्थिति का अपने उपन्यास के माध्यम से यथार्थ चित्रण किया है। जैसे कि हम दे सकते हैं कि उनके उपन्यास 'गोदान' में कृषक जीवन की जो समस्याएं हैं ठीक है उसमें इसके अलावा; सेवा सदन;, 'कर्मभूमि' में किस की स्त्री की दलित जीवन का यथार्थ चित्रण दिखाई देता है।

प्रतिवादी उपन्यास यशपाल का 'दिव्या', 'देशद्रोही', नागार्जुन का 'रतिनाथ की चाची', 'मजदूर', 'किसान' और उसमें उसे समय के समाज की जटिलता को सामने रखा है।

नयी कहानी के दौर में सन 1960 से 70 के दशक में उपन्यासकार संस्कृति मनोवैज्ञानिक का चित्रण किया है जैसे मन्नू भंडारी जी का 'आपका बंटी', राजेंद्र यादव का 'सारा आकाश'

आधुनिक परिपेक्ष में देखें तो समकालीन जो लेखक है उन्होंने जैसे कि अलका सरावजी, निर्मल वर्मा ने वैश्वीकरण और विस्थापन के संस्कृति का संक्रमण और उत्तर आधुनिक संकटों का उपन्यास में चित्रण किया है। इसमें स्त्री विमर्श, दलित विमर्श जैसे कि मन्नू भंडारी का 'महाभोज' सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वास, लाला श्रीनिवास द्वारा रचित 'परीक्षा गुरु' उपन्यास से लेकर प्रेमचंद के उपन्यास ने समाज में हो रहे, पाखंड, दहेज और शिक्षा की समस्या और बाल विवाह को चित्रित किया है इसके अलावा प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यासों में कृषक जीवन की समस्या स्त्री शिक्षा, विधवा जीवन की दैनिक स्थिति का उन्होंने उपन्यास के माध्यम से करारा प्रहार किया है। जैसे कि प्रेमचंद के गोदान उपन्यास में ग्रामीण जीवन, किसानों की समस्या, जमींदारी प्रथा, सामाजिक अन्याय, कृषक जीवन की समस्या को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया। ग्रामीण जीवन में उपन्यासकारों ने जमींदारों द्वारा शोषण गरीबों का चित्रण किया। शोषक शोषित वर्ग का, किसानों के जीवन में जो त्रासदी है उसका उपन्यास के माध्यम से सशक्त चित्रण किया उपन्यास में साहित्यकार समाज के विविध पहलुओं का यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जिससे पाठक वर्ग समाज के वास्तविक स्थिति को और स्वरूप को जान सके। हिंदी उपन्यासकारों ने साहित्य के माध्यम से समाज की वास्तविक स्थिति को उजागर करने किया है। है।

दलित जीवन:-

यशपाल और नागार्जुन के उपन्यासों में शोषित वर्ग के पीड़ित और विद्रोह का स्वर मिला है दलितों के लेखन में महात्मा ने मिश्रण ओमप्रकाश वाल्मीकि इसके अलावा जगदीशचंद्र माथुर का 'धरती धन अपना' उसमें दलित समस्या को उजागर किया है। नगरी जीवन की वजह से पारिवारिक संयुक्त परिवार विभक्ति परिवार में बढ़ रहे हैं। बेरोजगारी अकेलापन आदि संघर्ष को हमारे सामने उठा रहा है 'अंधेरे बंद कमरे' आदि।।

स्वतंत्रता संग्राम प्रेमचंद, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल आदि के उपन्यासों में हमें स्वतंत्रता और स्वाधीनता आंदोलन की गूंज उनके उपन्यास के माध्यम से हमें मिलती है समझ में राष्ट्रीय चेतना उन्होंने उपन्यास के माध्यम से जागने का प्रयास किया है।

हिंदी उपन्यासकारों में सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ उन्होंने भारतीय संस्कृति का भी उपन्यासों के माध्यम से चित्रित किया है जिसमें हमारी परंपरा, रीति रिवाज, आधुनिकता, लोक जीवन, शहरी जीवन, धर्म आस्था, लोक संस्कृति, परंपराएं, मूल्य आदि का चित्रण किया है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यास 'मेला आंचल' में ग्रामीण जीवन और लोक संस्कृति को वास्तविक रूप में देखने को मिलता है। सांस्कृतिक परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व हमारे उपन्यासकारों ने भारतीय संस्कृति की जड़ों तक और वैश्विक धरातल पर उभरने का प्रयास किया है। स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण समाज में राजनीतिक और सामाजिक बदलाव भी हमें दिखाई देता है।

आर्थिक असमानता गरीबी शोषण बेरोजगारी पूंजीवादी व्यवस्था आदि का उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार होने दिखाने का प्रयास किया है इसमें उपन्यासकारों ने किसानों मजदूरों और निम्न वर्ग के शोषण और वास्तविकता को समाज के सामने उठा रहा है।

साहित्य के माध्यम से ही समाज उन्नति और विकास करता है जैसे कि हम देखते हैं अमीर खुसरो से लेकर तुलसी कबीर, रहीम, प्रेमचंद, भारतेंदु, निराला, नागार्जुन, भगवतीचरण वर्मा आदि रचनाकारों ने समाज के निर्माण में साहित्य के माध्यम से अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है। उन्होंने इसका स्वयं अनुभव किया है जैसे कि कबीर, रैदास ने अपने व्यक्तिगत अनुभव को भी समाजीकरण किया है और एक प्रतिनिधि के रूप में समाज में स्थान पाया है। मुंशी प्रेमचंद जी ने भी अपने उपन्यासों के माध्यम से दलित पीड़ित, शोषक और शोषित, जमींदार और किसान आदि का साहित्य के माध्यम से अपना उत्तरदायित्व निभाया है।

अगर आपको किसी भी संस्कृति के बारे जानना हो तो वहाँ का साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। समाज में जाति के उत्थान, पतन, आचार, सभ्यता, संस्कृति आदि। जब साहित्यकार रचना करता है उस समय अपनी विचारधारा के माध्यम से समाज में हो रहे हैं अंधविश्वास को दूर एक नई रोशनी भी दिखता है। सामाजिक यथार्थ से मतलब है कि समाज में जो हो घटना हो रही है उसका चित्रण करना यानी की सच्ची घटनाओं का चित्रण किया जाता है। साहित्यकार स्वयं के अनुभूति को साहित्य के माध्यम से समाज के सामने रखने का प्रयास करता है। जिससे वह खुद का जीवन भी व्यतीत करता है। जैसे कि हम देखते हैं कि पुराने समय में पारिवारिक दमन, नारी की स्थिति आदि का साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज के सामने उजागर करने का प्रयास किया है।

"समाज संस्कृत के दो शब्दों 'सम + अज' से मिलकर बना है। 'सम' का अर्थ 'एक साथ' और 'अज' का अर्थ है 'रहना' और इसलिए समाज का अर्थ होता है एक साथ रहना। "समाज का अर्थ मौखिक तौर व्यक्तियों के समूह के लिए किया जाता है।

हिंदी उपन्यास साहित्य में भगवतीचरण वर्मा जी का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने उपन्यास के माध्यम से समाज के जटिलता नारी जीवन की समस्या नैतिक मूल्य, सांस्कृतिक संघर्ष आदि का चित्र किया है। उपन्यास केवल एक कहानी या कथा ना होकर समाज और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज हम मान सकते हैं। भगवतीचरण वर्मा जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से भारतीय समाज में जो विभिन्न वर्ग के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिए निरंतर संघर्ष करता रहता है।

भगवतीचरण वर्मा जी ने स्वतंत्र भारत और समय के साथ समाज तेजी के साथ बदल रहा है उस समय की पूंजीवादी व्यवस्था, स्वतंत्रता आंदोलन, स्त्री शिक्षा, स्त्री-पुरुष संबंध, चुनाव आदि का सामाजिक संरचना और द्वंद्व को अपने उपन्यासों में उन्होंने सशक्त ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है किया है। वर्माजी ने 'पतन', 'चित्रलेखा', 'तीन वर्ष', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'भूले -बिसरे चित्र', 'आखिरी दाव', 'अपने खिलौने', 'सीधी सच्ची बाते', 'प्रश्न और मरीचिका', 'सबहि नचवात राम गोसाई', 'रेखा' आदि उपन्यासों के माध्यम से समाज और व्यक्ति के अंतर विरोध संस्कृति जीवन मूल्यों की खोज और आधुनिकता का द्वंद्व को समाज के सामने रखने का प्रयास किया है। जैसे उन्होंने 'चित्रलेखा' उपन्यास में चित्रलेखा और बीजगुप्त के माध्यम से प्रेम, वासना और त्याग का द्वंद्व हमेशा में दिखाई देता है।

साथ ही कुमारगिरी के माध्यम से वासना को हमारे सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 'तीन वर्ष' आधुनिक समय में व्यक्ति धन लोलुपता की मनुष्य खोखला बन रहा है, स्त्री -पूरुष के संबंधों में भावनात्मक लगाव की जगह आर्थिक स्थिति को महत्व दिया गया है। वर्माजी ने इसमें हमारे समाज में प्रतिष्ठित नारी की जगह पर वेश्या को श्रेष्ठ बताया।

भगवतीचरण वर्मा जी को 'भूले बिसरे चित्र' पर 1961 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। इस उपन्यास में पूरी कथा राष्ट्रीय धरातल पर चार पीढ़ियों के वर्ग संघर्ष के माध्यम से हमारे सामने उभरती हुई दिखाई देती है। चार पीढ़ियों में क्रमशः प्रतिनिधि मुंशी शिवलाल, ज्वाला प्रसाद, गंगाप्रसाद और नवल है। यहां पर चारों पीढ़ियों 1850 से लेकर 1930 के बीच की चित्रण किया गया है। संयुक्त परिवार क्रमशः टूट जाता है यहां पर आधुनिक काल की प्रमुखता दिखाई देती है। ज्वाला प्रसाद तहसीलदार नियुक्त होता है तो उसके साथ यमुना के साथ जाने की बात शिवलाल के मन में नहीं होती है, लेकिन छिनकी द्वारा जब यह बात ध्यान दी जाती है, तो ज्वाला प्रसाद यमुना को उसके साथ रहना जरूरी समझता है। यहां से संयुक्त परिवार के टूटने का बीज वपन सहज भाव से घटी हुई घटना बड़ा कारण बन जाती है। ज्वाला प्रसाद संयुक्त परिवार का विरोधी नहीं है। लेकिन उनके परिवार में उनके चाचा के परिवार की जो चालाकियाँ है उसकी वजह से असुविधा उत्पन्न होती है। संयुक्त परिवार में नौकरानी छिनकी के साथ शिवलाल के अवैध संबंध है। यहां पर उपन्यास में वर्ण प्रथा और जाति व्यवस्था पर भी वर्मा जी ने गहरा प्रहार किया है छिनकी का शिवलाल के साथ अवैध संबंध है लेकिन वह घर में रसोई नहीं बन सकती है हम देखते हैं कि, "मै समझता हूं कि इसने अगर मेरा खाना बना लिया तो कोई पाप नहीं है और में के हाथ का खाना खा लिया तो मैं भी कोई पाप नहीं किया है।"[2] गंगाप्रसाद के चरित्र की वजह से ज्वाला प्रसाद बेटे के पास जौनपुर नहीं जाते, साथ में चौथी पीढ़ी जिसमें नवलकिशोर और विधा में राष्ट्रीय चेतन दिखाई देती है, वे स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लेते है। यहां पर मुंशी शिवलाल कचहरी में मजमून हैं, इसके अलावा वह घुसपैठ से ज्वाला प्रसाद को उगती हुई नौकरशाही दिखाई देता है वह एक ईमानदार अफसर है फिर भी अंग्रेज बहादुर के शासन का एक नौकर है। जमींदार गजराज सिंह, बरजोर सिंह जैसे सामंतवाद टूट रहा है और पूंजीवाद में प्रभुदयाल के पुत्र लक्ष्मीचंद हमारे सामने दिखाई देते हैं। वर्माजी ने सामाजिक यथार्थ से वैवाहिक समस्या, कामवासना, रिश्वतखोरी, दहेज प्रथा, छुआछूत, परिवार विच्छेद, पारिवारिक कलह, वृद्धों की समस्या, स्वतंत्रता आंदोलन आदि पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

रामधारी सिंह दिनकर जी के शब्दों में कहे तो "संस्कृति जीवन का तरीका है यह तरीका जमा होकर उसे समाज पर छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।"3 साहित्य का उद्देश्य होता है कि जीवन के विविध पहलू को उद्घाटित करना और जीवन मूल्य के विभिन्न आयामों को विश्लेषण संश्लेषण करना। साहित्य ही वह विधा है जो संस्कृति का संरक्षण कर सकती है और सुरक्षित रख सकती है। कोई भी कला हो चित्रकला, मूर्ति कला, स्थापत्य कला, संस्कृति को संजीवनी और साहित्य सम्मान के समक्ष सब एकदम छोटी है। हिंदी उपन्यास में की सभ्यता और संस्कृति सबसे महत्वपूर्ण साहित्य उपलब्ध है। उपन्यास में समग्र जीवन को चित्रित करने की कला दिखाई देती है। आज के समय में उपन्यास साहित्य में युगीन संस्कारों को आत्मा तो नहीं है किंतु संस्कृति से गहरा रिश्ता जोड़कर सांस्कृतिक तत्वों के अभिव्यक्ति दिखाई देती है। भैरव प्रसाद गुप्तजी का बहुचर्चित उपन्यास 'गंगा मैया' में भारतीय संस्कृति में गंगा नदी के विशेष महत्व पूर्ण स्थान को दिखाया गया है। इसमें गंगा नदी का उपन्यास में विस्तार से चित्रण किया गया है। "भगवतीचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' और 'सीधी सच्ची बातें' उपन्यासों में 1850 से लेकर 1948 तक के सांस्कृतिक चेतना अभिव्यक्त हुई है। इसमें पाश्चात्य और प्राचीन संस्कृति का संघर्ष, विश्व बंधुत्व की भावना, नूतन सांस्कृतिक चेतना, मानवतावादी विचारधारा की प्रतिष्ठा का सशक्त आह्वान देता है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में भारत की संपूर्ण संगठित शक्तियों का स्वतंत्रता प्राप्ति के उद्देश्य में ब्रिटिश साम्राज्य के सामने लोहा लेते दिखाई देता है। 'सामर्थ्य और सीमा' और 'सबही नचावत राम गोसाई' में सांस्कृतिक चेतना का विकास के साथ-साथ एक आदर्श और जीवन मूल्यों के द्वारा सांस्कृतिक उपलब्धियां करता है।"4 सांस्कृतिक मूल्य, धार्मिक आस्था के बारे में "चित्रलेखा" उपन्यास में पाप, पुण्य, धार्मिक दृष्टिकोण दिखाई देता है। पाप क्या है और पुण्य क्या है इस उपन्यास में वर्मा जी ने भारतीय संस्कृति की परंपरा को नैतिक सांस्कृतिक विमर्श को साहित्य के रूप में समाज के सामने रखने का प्रयास किया है। "संसार में इसलिए पाप की परिभाषा नहीं हो सकी और ना हो

सकती है हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं हम केवल वह करते हैं, जो हमें करना पड़ता है।"5 रेखा उपन्यास में सामाजिक मान्यता, विवाह संबंधी विसंगतियाँ चित्रण किया है।

निष्कर्ष:-

हिंदी उपन्यासों में सामाजिक सांस्कृतिक विविधता की वजह से अलगाव अत्यधिक संभव है और इसी के वजह से राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक विविधता देखने को मिलते हैं। साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से समाज में घटित होने वाले घटनाओं को अपने आप से दूर नहीं कर सकता लेकिन समाज में जो भावना जागृत होती है, उसका सुंदर और यथार्थ चित्रण करके समाज के विभिन्न पहलुओं को सामाजिक सांस्कृतिक होना आवश्यक है। अपने विचारों को आम जनमानस के हृदय तक पहुंचाकर जन जागृति फैलाता है। साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से सभी पक्षों को उजागर करके अपने कर्तव्य का पालन करते हैं।

संदर्भ :-

1. सिंहल, शशिभूषण. *उपन्यास का स्वरूप*. दिल्ली: आधुनिक प्रकाशन. पृ. 53.
2. वर्मा, भगवतीचरण. (1959). *भूले-बिसरे चित्र*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 150.
3. दिनकर, रामधारी सिंह. (1956). *संस्कृति के चार अध्याय*. पृ. 653.
4. शुक्ल, बैजनाथ प्रसाद. *भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना*. नई दिल्ली: प्रेम प्रकाशन मंदिर. पृ. 274.
5. वर्मा, भगवतीचरण. (1934). *चित्रलेखा*. नई दिल्ली: राजकमल पेपरबैक्स. पृ. 200.

हिन्दी साहित्य में पर्यावरण सम्बन्धी चिंतन

विपुलकुमार बाबुलाल जोषी*

vipulbhaibjoshi@gmail.com

प्रस्तावना:

वैश्विक वाङमय में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कहीं-न-कहीं पर्यावरण का वर्णन चिंतन के साथ मिलता रहा है। प्रकृति या पर्यावरण का संबंध किसी व्यक्ति या समय विशेष से नहीं, बल्कि समग्र जीव सृष्टि के साथ रहा है। प्रकृति और प्राणी के बिना, जीवन और समग्र जीवों की कल्पना नहीं की जा सकती है। हिन्दी साहित्य में पर्यावरणीय चिंतन आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनवरत होता रहा है।

प्रकृति-पर्यावरण की संकल्पना देखे तो -

हमें जो कुछ भी दिखाई देता है, यानी हमारे आसपास जो नदियाँ, झरने, वृक्ष, बेलें, पेड़ और वनस्थली आदि जो भी तत्व हैं, वे सभी पर्यावरण ही हैं। जीव जिसका आश्रय लेकर चलता है और विकसित होता है, उसे पर्यावरण कहते हैं। 'परि+आवरण' का अर्थ है, हम जिन-जिन तत्वों से ढके हुए हैं, वे सभी तत्व पर्यावरण हैं। वर्तमान समय में हिन्दी साहित्य में पर्यावरण चिंतन संबंधी बातों को कई रचनाकारों ने सुलझाने का सफल प्रयास किया है।

वैदिक काल में भी पर्यावरण का चिंतन

वैदिक काल में भी पर्यावरण पर गहन चिंतन होता रहा है। इसका प्रमाण है कि-

'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः'। इस पंक्ति का अर्थ है, "भूमि हमारी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ"। यह भूमि माता के समान सबका पालन-पोषण करती है।

यजुर्वेद से उद्धृत इस पंक्ति को देखें- 'नमोः पशुपतेभ्यः'। अर्थात, वैदिक काल में पशुओं का पालन करने वालों को सम्मान मिलता था।

प्रकृति और मनुष्य का संबंध

साहित्य की सभी विधाओं में प्रकृति और मनुष्य के संबंध का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चिंतन एवं चित्रांकन हुआ है। प्रकृति से भरे साहित्य के माध्यम से साहित्य का उद्देश्य पर्यावरण को महत्व देना रहा है। मनुष्य में पर्यावरण के प्रति स्नेह प्रकट हो, ऐसा उनके साहित्य में देखने को मिलता है। इस प्रकार साहित्य का सीधा संबंध पर्यावरण के साथ है। महर्षि अरविंद का साहित्य प्रकृति के प्रति स्नेह को जगाने की प्रेरणा देता है। वैदिक ऋषियों द्वारा प्रकृति और मानव को एक-दूसरे का पूरक बताया गया है।

प्रकृति मनुष्य के प्रति सदैव कृतज्ञ रही है। मानव ने प्रकृति से अपने संबंधों की आत्मीयता को व्यक्त किया है, प्रकृति से स्नेह किया है। पृथ्वी और जल एवं वृक्ष, वृक्षादि वनस्पति माता समान है, वायु भाई समान है, अन्तरिक्ष पिता तुल्य है तथा नदियाँ बहन समान है, ऐसे संबंधों को ध्यान में रखकर ऋषिओं ने समस्त जवाबदारी का गंभीरता से निर्वाह किया उसी तरह हिन्दी साहित्यकारों ने भी साहित्य सृजन में पर्यावरण प्रेम को समानता के साथ वर्णित किया है। संक्षेप में कहा जाये तो मनुष्य

* **शोध छात्र, हिन्दी विभाग, बोटाद्कर आर्ट्स एन्ड कोमर्स कोलेज, बोटाद**

(महाराजा कृष्णकुमारसिंहजी भावनगर यूनिवर्सिटी)

और प्रकृत्ति का घनिष्ठ संबंध रहा है। प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण व्यवहार एवं प्राकृतिक वातावरण का ज्ञान एवं विवेक पूर्ण उपयोग ही हिन्दी साहित्य की पर्यावरण के परिपेक्ष में प्रस्तुति यथा योग्य है। जो हम निम्नलिखित प्रस्तुत कर सकते है।

हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में पर्यावरणीय चिंतन

हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में पर्यावरण पर चिंतन हुआ है। यह चिंतन विविधता के साथ हुआ है। लिखित और अलिखित साहित्य विधाओं में भी पर्यावरण का चित्रण देखने को मिलता है।

लिखित साहित्य में उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक, कविता आदि का समावेश होता है। और अलिखित साहित्य में चित्रकला, नृत्यकला, नाट्यकला, संगीत कला जैसी कलाओं का सीधा संबंध साहित्य से रहा है।

भक्तिकाल में पर्यावरण चिंतन

भक्तिकाल के संत कवि तुलसीदास ने 'रामचरित' मानस के किष्किन्धा कांड में पर्यावरण एवं मानव शरीर को स्पष्ट करते हुए लिखा है: 'छित जल पावक, गगन समीरा, पंच रचितः यह अधम शरीरा'।

इस प्रकार तुलसीदास ने अपने मार्मिक एवं चिंतनशील साहित्य सृजन में योगदान दिया। इसके बाद कबीर और जायसी जैसे प्रमुख साहित्यकारों ने भी प्रकृति संबंधी चिंतन प्रस्तुत किए।

रीति काल में पर्यावरण चिंतन

रीति काल में बिहारी, घनानंद, केशव आदि कवियों ने अपने साहित्य में पर्यावरण को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वर्णित किया है।

छायावाद में पर्यावरण चिंतन

हिन्दी साहित्य में छायावाद के चार आधारभूत कवियों- सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा ने भी अपनी रचनाओं में पर्यावरण को स्थान देने का सफल प्रयास किया है।

प्रकृति के सुकुमार कवि श्री सुमित्रानंदन पंत ने प्रकृति को मनुष्य का पूरक माना है।

जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में पर्यावरण चिंतन

हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि श्री जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' महाकाव्य कृति का प्रकृति वर्णन चित्त को आकर्षित करता है। जैसे:

'सब डूबे थे मद में। प्रकृति दुर्जन, पालित, हम सब भोले थे, हा! तिरते केवल सब, विलासिता के मद में। सब डूबे-डूबेः उनका विभव, बनगया पारावार उमड़ रहा था देव सुखों पर दुःख जलाधिका नाद अपार'।

मैथिली शरण गुप्त की रचनाओं में पर्यावरण चिंतन

इस प्रकार हिन्दी साहित्य में प्रकृति प्रेम विविध रूपों में व्यक्त होता रहा है। संक्षेप में कहा जाए तो हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में पर्यावरण का निरूपण किया है। सदियों से चली आ रही कविता में प्रकृति का चित्रण विभिन्न रूपों के साथ होता रहा है।

हिन्दी साहित्य के राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त संवेदनशील व्यक्ति की पहचान देने वाले रहे हैं। उनकी कविताओं में आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, चिन्तनशीलता, अद्वैतवादीता, वेदनाभूति एवं अन्य कई विशेषताएँ विद्यमान हैं। संक्षेप में, जड़-चेतन में व्याप्त प्राकृतिक तत्वों के प्रति गुप्तजी का अदम्य आकर्षण रहा है। उनके काव्यों में पर्यावरणीय चिंतन विस्तृत धरातल की अपेक्षा रखता है। फिर भी, निम्नलिखित खंड काव्यों में प्रकृति के प्रति कवि का चिंतनशील विचार वर्णित है:

'पंचवटी' (१९०९) से ली गई निम्नलिखित पंक्तियाँ:
'चारु चंद्र की चंचल किरणें,

खेल रही है जल थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है,
अवनि और अम्बर तल में।

पुलक प्रकट करती है धरती,
हरित तृणों की नोकों से,
मानो झूम रहे है तरु भी,
मंद पवन के झोंकों से'।

यहाँ चंद्रमा की किरणें सभी जगह खेल रही हैं, धरती और आकाश पर चाँदनी बिछी हुई है। हरे तिनकों की नोकों पर धरती की प्रसन्नता प्रकट हो रही है तथा पेड़ धीरे-धीरे हवा के झोंकों से झूम रहे हैं।

गुप्तजी ने अपने खंडकाव्य 'यशोधरा' (१९३२) में भी पर्यावरण संबंधी चिंतनशील वर्णन किया है, निम्नलिखित उक्ति देखे तो कुछ इस प्रकार है:

'सरल तरल निज तुहिन कणों से, हँसती हर्षित होती है। अति आत्मीया भी रोती है, साथ उन्हीं से, अर्थात प्रकृति हमारी अपनी सरल और बहने वाली ओस की बूंदों से हँसकर प्रसन्न होती है, तथा हमारी प्रकृति के द्वारा रोती भी है'।

अर्थात प्रकृति अपनी सरल और बहनेवाली उसकी बूंदों से हँसकर प्रसन्न होती है तथा हमारी सबंधी प्रकृति उन्हीं के द्वारा रोती है। हम बिना जाने हुए भूल करते है, पर्यावरण उनका दण्ड देते है, पर बूढ़े लोगो का यह पर्यावरण प्रकृति दयाभाव से बच्चों के समान पालन भी करती है।

'यशोधरा' की इन पंक्तियों को देखें: 'निशि की अँधेरी यवनिका, चुप चेतना अब सो रही, नेपथ्य में तेरे न जाने कौन सज्जा हो रही ?'

संक्षेप में मानव सापेक्ष स्वरूप ही गुप्जी की सभी रचनाओं में दृष्टि गोचर होता है।

'विष्णुप्रिया' की निम्नलिखित लिखित पंक्तियाँ देखे तो –

"कलियों सी खिलती नवेली दों सहेलियाँ
पूजा हेतु फूल चुटती थी फुलवारी में
प्रात:काल भाल चूमती थी भानु किरणे"

मैथिली शरण - २०१४

उपर्युक्त पंक्तियों में सहेलियों के वर्णन में प्रकृति के बिम्ब उभारे गये है। प्रस्तुत पंक्तियों में सूर्य के किरणों तथा कलियों एवं समग्र फुलवारी की सुन्दरता का चित्र खिंचा गया है। यह नवीन शैली गुप्त जी की उपलब्धि है।

वर्तमान साहित्यकारों का पर्यावरणीय चिंतन

पर्यावरणीय संकट जैसे जल में मिश्रित जहरीले रसायन और प्रति व्यक्ति उपलब्ध पेय जल की मात्रा में निरंतर कमी आज विश्व की भयावह समस्याओं में से एक है। नदियों की दुर्दशा, औद्योगिक क्रांति का भार झेलता पर्यावरण, विलुप्त होती चिड़ियाँ, आदि जैसी कई सारी पर्यावरणीय समस्याओं को सुलझाने का कार्य आधुनिक हिन्दी साहित्यकार सुदर्शन भाटिया ने किया है, जो सभी के लिए प्रेरणादायक है। (सुदर्शन भाटिया २००८)

वर्तमान समय में मनुष्य ने अपनी स्वार्थ वृत्ति को पोसने के लिए पर्यावरण की अवहेलना की है। जो सभी मानव समुदाय के लिए शर्म और चिंतन की बात है। कवि नरेश अग्रवाल ने वृक्षों के अंतिम संस्कार की संज्ञा दी है। (सहस्त्रादि अंक – संपादक सत्यप्रकाश मिश्रा)

"मैं गुजर रहा था
अपने अपने चिर परिचित मैदान से

एकाएक चीख सुनी
जो मेरे प्रिय पेड़ की थी
कुछ लोग खड़े थे
बड़ी-बड़ी कुल्हाड़ियों लिए
वे काट चुके थे इसके हाथ
अब पाव काटने वाले थे !
हम लोग लाश उठा रहे हैं।
अंतिम संस्कार भी करा देंगे
तुम राख ले जाना।"

एक अन्य हिन्दी साहित्यकार लक्ष्मी नारायण 'बुनकर सतसई' ने भी पर्यावरण पर दोहे लिखे हैं: (लक्ष्मी नारायण २०१६-२०१७)

'देती है कुदरत हमें, याने पावके अंत।
रह पाते है हम तभी स्वस्थ सुखी संपन्न'।

अतः इस प्रकार हिन्दी साहित्य सृजन में प्रारंभ से लेकर वर्तमान साहित्य में विविध कालखंडों में पर्यावरण के प्रति प्रेम वर्णित रहा है।

निष्कर्ष:

इस प्रकार आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक साहित्य की सभी विधाओं में पर्यावरण-केंद्रित साहित्य का सृजन होता रहा है। साहित्य में प्रारंभ से लेकर वर्तमान साहित्य तक रचनाकारों ने पर्यावरणीय प्रेम को गद्य और पद्य विधाओं में व्यक्त किया है। प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्यकारों के सृजन के द्वारा पर्यावरणीय चिंतन एवं प्रकृति प्रेम महत्व पूर्ण अंगरूप रहा है। प्रस्तुत अध्ययन में निर्दिष्ट साहित्यकारों की सृजन श्रेणी से प्रस्तुत विवरण करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

मैथिली शरण गुप्त ने भी विविध उपादानों और आयामों के साथ बिम्ब-प्रतिबिम्बों के माध्यम से अपनी साहित्य साधना में पर्यावरण के प्रति उत्कृष्ट भाव व्यक्त किया है। संक्षेप में कहें तो, काल विभाजन के साथ आदिकाल से लेकर आधुनिक काल में लगातार कई सारे रचनाकारों ने पर्यावरणीय चेतना को उजागर करने का सफल प्रयास किया है।

संदर्भ :

1. बंसल, आलोक कुमार. (2007). *पर्यावरण एवं पर्यावरणीय संरक्षण*. जयपुर: जयपुर पब्लिकेशन. पृ. 158
2. वास्तव, अंजलि श्री. *पुराणों में पर्यावरण शिक्षा*. पृ. 10/12
3. प्रसाद, जयशंकर. (1955). *कामायनी* (प्रथम संस्करण). पृ. 2
4. गुप्त, मैथिलीशरण. (1909). *पंचवटी*. आगरा: साहित्य सरोवर. पृ. 7
5. गुप्त, मैथिलीशरण. (1932). *यशोधरा*. आगरा: साहित्य सरोवर. पृ. 43
6. गुप्त, मैथिलीशरण. (1957). *विष्णुप्रिया*. आगरा: साहित्य सरोवर. पृ. 14
7. SatyapalShrivatsa. *SatyapalShrivatsa (वेबसाइट)*. प्राप्त 5 अक्टूबर, 2024, से: https://satyapalshrivatsa.com
8. राजभाषा (Government of India). *Rajbhasha (वेबसाइट)*. प्राप्त 5 अक्टूबर, 2024, से: https://rajbhasha.gov.in
9. भाटिया, सुदर्शन. (2008). *पर्यावरण समस्या एवं समाधान*. बिहार: स्वस्तिक प्रकाशन. पृ. 88/97

સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિ અને પરંપરાઓ

વાળા જયદિપ આર.*
jaydipvala11111@gmail.com

પ્રાચીન સમયમાં સૌરાષ્ટ્ર 'આનર્ત'ના નામે ઓળખાતું હતું. પરંતુ સમય જતા આર્નતમાંથી સુરાષ્ટ્ર અને સુરાષ્ટ્રમાંથી અંતે સૌરાષ્ટ્ર નામ પડ્યું. સૌરાષ્ટ્રમાં હાલાર, સોરઠ, કાઠિયાવાડ, ઝાલાવાડ, ઓખામંડળ, પાંચાળ, વાગડ, બાબરિયાવાડ જેવા પ્રદેશોનો સમાવેશ થાય છે. આ પ્રત્યેક પ્રદેશને પોતાની આગવી વિશિષ્ટતા અને પરંપરા છે. સૌરાષ્ટ્રમાં બહારથી આવીને વસેલી પ્રજાએ અને એમની સાથે આવેલ એમના સંપ્રદાયો, સંસ્કારો, રીતરિવાજો, માન્યતાઓએ એમની સંગીત, નૃત્ય, ચિત્ર અને કલાકારીગરીએ સાથે મળીને સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિને ઘાટ આપ્યો છે. સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિ અને પરંપરાના ઘડતરમાં આ પ્રજાઓનું આગવું યોગદાન રહ્યું છે. અહીં આ અભ્યાસલેખમાં સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિ અને તેમની આગવી પરંપરાઓને તપાસવાનો ઉપક્રમ રહ્યો છે.

લોકતત્વની મૂળભૂત પાયાની સામગ્રી તે જીવન અને જગતને જોવા અને જાણવાની લોકદૃષ્ટિ છે. એમાંથી જ લોકમાન્યતા બંધાય છે. લોકસંસ્કૃતિની વાત કરીએ છીએ ત્યારે પ્રથમ 'લોક'નો અર્થ જાણો આવશ્યક બને છે. "લોક એટલે જેમની જીવનને જોવા જાણવા-માણવાની દ્રષ્ટિ સમાન છે એવો સામાજિક એકમ અને એનો સમૂહ."[1] આમ લોક અને સંસ્કૃતિ સાથે જોડાઈને લોકસંસ્કૃતિ બને છે. ડૉ. હસુતાબેન સેંદાણી તેમના પુસ્તક 'ગુજરાતની લોકસંસ્કૃતિ'માં લોકસંસ્કૃતિની વ્યાખ્યા આ પ્રમાણે આપે છે - "આચારમાં ને વિચારમાં કોઈપણ પ્રજાની જે લાક્ષણિકતાઓ કે જીવનરીતિ પરંપરાગત પેઢી દર પેઢી ઊતરતી રહેતી હોય તે એમની સંસ્કૃતિ."[2] લોકવિદ્યાને બાંધનારું, ઘડનારું, રૂપ-રંગ આપનારું મુખ્ય અંગ લોકસંસ્કૃતિ છે. ગ્રામજીવનમાં વસવાટ કરતી પ્રજાઓની જીવનદ્રષ્ટિ અને પરંપરા સાથે લોકસંસ્કૃતિ સંકળાયેલ છે. આ દ્રષ્ટિએ લોકસંસ્કૃતિ તળપદા જીવનની પદ્ધતિને સ્વીકારનારી અને પરંપરાઓમાં રહીને જ જીવનની વ્યવસ્થા ગોઠવનારી છે. સહજતાનો સ્વીકાર અને કૃત્રિમતાનો અભાવ આ સંસ્કૃતિનું મૂળભૂત અને મુખ્ય લક્ષણ માનવામાં આવે છે. લોકસંસ્કૃતિ ધર્મ, નીતિ અને સમાજનાં ધોરણો અને નિયંત્રણો પાળે છે.

લોકસંસ્કૃતિ એ લોકજીવનની સદીઓની રાસાયણિક ક્રિયાનો પરિપાક છે. સંસ્કૃતિ પ્રજાઓ વચ્ચેના લોકવ્યવહારમાંથી જ વિશેષ ઘડાય છે. ગુજરાતી લોકસાહિત્યના પ્રખર સાહિત્યકાર અને સંશોધક જયમલ્લ પરમાર તેમના પુસ્તક 'આપણી લોકસંસ્કૃતિ'માં લોકસંસ્કૃતિ વિશે કહે છે કે " પથ્થરે પથ્થરે અંકિત થયેલી હિન્દુ-મુસ્લિમ બિરાદરી, ઊંચનીચના ભેદને ટાળી આતમજ્ઞાનની ગંગા વહાવતી સંતવાણી, શીલને ખાતર હસતે મોઢે અફીણ ઘોળી જનારી સ્ત્રી શક્તિ, આતિથ્યધર્મે પેટનાં જણ્યાંના અંધોળ કરનારી દિલાવરી, શીલની સામે જ જીવનના જોખ કરનારી, મસ્તમિજાજી અને એ બધાંને મોકળે મને અને ગહેકતે કંઠે રાસગીતોની રમઝટ બોલાવીને, સુખ-દુઃખનાં ઝેર નિતારીને પરંપરાગત વારસો આપ્યે જતી; જીવનને જાણનારી, માણનારી અને નાણનારી સંસ્કૃતિને આપણે લોકસંસ્કૃતિ કહીએ છીએ."[3]

જ્યારે આપણે સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિ અને પરંપરાની વાત કરીએ છીએ ત્યારે આપણને તેની આગવી સંસ્કૃતિ અને પરંપરાના દર્શન થાય છે. સૌરાષ્ટ્રમાં લોકસંસ્કૃતિનું સ્વરૂપ શૌર્ય, સૌંદર્ય, સંતપરંપરા, સાંપ્રદાયિક એકતા, સાહસિકતા અને વિવિધ જાતિઓના સાંસ્કારિક સમન્વયથી ઘડાયેલું છે. તેનું પ્રતિબિંબ લોકોના આચાર, વ્યવહાર, આદર-આતિથ્ય, ધર્મ, માન્યતાઓ, પશુપ્રેમ, ગૃહકળા, ગૃહરચના, અલંકારો, આભૂષણો, કથા, વાર્તા, રાસ-રાસડા, ગીત-સંગીત, ઉત્સવો, આખ્યાયિકાઓ વગેરેમાં પડેલું જોઈ શકાય છે. સૌરાષ્ટ્રની પ્રજાઓના દેવી-દેવતાઓ, રીતરિવાજો,

* જુનિયર રિસર્ચ ફેલો, શ્રીમતી બી. વી. ધાણક આર્ટ્સ, કોમર્સ, સાયન્સ & મેનેજમેન્ટ કોલેજ - બગસરા જીલ્લો : અમરેલી

રહેણીકરણી, ઉત્સવો, મેળાઓ, કળાકારીગરી, ભાષાઓ-બોલીઓ, વેશભૂષાઓ વગેરેની વિશિષ્ટતાઓએ સૌરાષ્ટ્રના સાંસ્કૃતિક પ્રવાહને વેગવાન અને શક્તિવાન બનાવ્યો છે.

સૌરાષ્ટ્રની પ્રજા દ્વારા લગ્ન પ્રસંગે રાંદલ માતાનું આહ્વાન, નવરાત્રીનાં તહેવારોમાં અંબિકા માતાજીનું સ્થાપન-પૂજન, અષાઢ મહિનામાં જયાપાર્વતીનું વ્રત, વટ સાવિત્રીનું વ્રત, નાગપંચમીએ નાગપૂજા, શ્રાવણની સાતમે શીતળા માતાજીનું વ્રત કરવામાં આવે છે. દરેક શુભકાર્યની શરૂઆતમાં ગણપતિની થતી પૂજા-આરાધના વગેરે વ્રત-પૂજાના સંસ્કારોએ સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિ અને પરંપરાને એક તાંતણે બાંધીને દૃઢ કરી છે. વડ, પીપળો કે બોરડીનાં વૃક્ષની પૂજા કરવી, ગાયને માતા જેવી પૂજનીય માનવી અને તેમાં તેત્રીસ કરોડ દેવતાનો વાસ માનવો, વાનરમાં હનુમાનજીના દર્શન કરવાં, હાથીમાં ગણપતિનું સ્વરૂપ જોવું વગેરે ધાર્મિક આસ્થાઓએ સૌરાષ્ટ્રની સમગ્ર પ્રજાને અને ખાસ કરીને નારીશક્તિને શ્રદ્ધા તેમજ શક્તિ પ્રદાન કર્યા છે. આથી જ રોજની રસોઈમાંથી એકાદ-બે રોટલી ગાયમાતા માટે અલગ કાઢવાનું કે શેરીનાં કૂતરાને પણ બટકું રોટલો ખવડાવવાનું પુણ્યકર્મ સૌરાષ્ટ્રની નારી માટે સ્વાભાવિક અને સહજ નિત્યક્રમ બની ગયો છે.

સૌરાષ્ટ્રના લોકોની આતિથ્ય ભાવના અને જીવદયા ભાવના પણ આગવી છે. દરેક જીવજંતુ કે પશુ-પંખીઓ પ્રત્યે દયા રાખી એમનું પણ જતન કરવાનો ધર્મ સમજાવતી આ સંસ્કૃતિમાં માનવીનો પ્રેમાદર કરવાનું મહાત્મ્ય કેટલું વિશેષ હોય છે ? આશરાનો ઊજળો ધર્મ જોવો હોય તો સૌરાષ્ટ્રની ધરતી પરનો ઈતિહાસ તપાસીએ તો ખ્યાલ આવે. સૌરાષ્ટ્રમાં આયરોનો આશરો તો જગતના ઈતિહાસ ઉપર છપાયેલ છે.આની પાછળ પણ આલિદર ગામના આયર દેવાયત બોદરની કથા સંકળાયેલી છે. સૌરાષ્ટ્રમાં મહેમાનોને તો ભગવાન સમા ગણવામાં આવે છે. આપણે ત્યાં તો 'અતિથિ દેવો ભવ'નો શાસ્ત્રબોધ આપવામાં આવ્યો છે, અને આપણી લોકસંસ્કૃતિમાં એ સંપૂર્ણપણે સાર્થક થયો છે. એના માટેનો એક દુહો સૌરાષ્ટ્રમાં બોલાય છે-

"મહેમાનોને માન, દિલભરી દીધાં નહિ

એ માણસ નહિ, મસાણ, સાચું સોરઠિયો ભણે."

ઉપરોક્ત દુહાનો ભાવાર્થ એ છે કે ઘર આંગણે આવેલ મહેમાનોને જે માન-સન્માન અર્પી યોગ્ય રીતે આવકારે નહીં એ માણસ જીવતો છતાં મરેલો છે. આમ અતિથિ સત્કાર અને માનવપ્રેમનું આવા પ્રકારનું ભારતીય પરંપારાનું અનમોલ દ્રષ્ટાંત સંભવત: સૌથી વિશેષ ગુજરાત અને તેમાંય સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિ અને પરંપરામાં જોવા મળશે.

સૌરાષ્ટ્રની પ્રજામાં દેવી-દેવતાઓ પ્રત્યેની નિષ્ઠા અને આસ્થા જેટલી વ્યાપક છે એટલી જ વ્યાપક અંધશ્રદ્ધા અને લોકમાન્યતાઓ પણ છે. સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિ અને પરંપરાએ અન્ય પરંપરાગત સંસ્કારોની જેમ અંધશ્રદ્ધા, વહેમ, જંતર-મંતર, દોરા-ધાગા કે શુકન-અપશુકન જેવા અવૈજ્ઞાનિક ગણાય એવા સંસ્કારો પણ હજી જાળવી રાખ્યા છે.

સૌરાષ્ટ્રનું લોકજીવન પૂર્ણપણે પ્રકૃતિપરાયણ રહ્યું છે. શહેરની માયાવી સૃષ્ટિથી વેગળું એવું લોકજીવન પ્રકૃતિ વચ્ચે જ પાંગર્યું છે. એનો જીવન આધાર પણ પ્રકૃતિ જ છે. આ પ્રકૃતિએ સૌરાષ્ટ્રની ધરતી ઉપર વિવિધ રૂપો સર્જ્યા છે. પારસ પીપળો, આંબો અને વડલો તો લોકજીવનમાં કુટુંબના વડીલનું સ્થાન પ્રાપ્ત કરી ગયેલા છે. સૌરાષ્ટ્રમાં ગોપસંસ્કૃતિ અને કૃષિસંસ્કૃતિના પણ આપણને દર્શન થાય છે. સૌરાષ્ટ્રના મોટા ભાગના ઉત્સવો પણ આ ગોપસંસ્કૃતિમાંથી જ ઊતરી આવ્યા છે.

સૌરાષ્ટ્રમાં અનેક જાતિઓનાં સંસ્કૃતિ વહેણ ઊતરી આવેલાં છે. એમાં અનેકવિધ વાણી અને વિધવિધ વેશવાળાં કુળો, એમની પરંપરાઓ, એમની ખાસિયતો ઊતરી આવી છે. સૌરાષ્ટ્રની અંદર મેર, આયર, ભરવાડ, કોળી, કાઠી, કણબી, રબારી વગેરે જ્ઞાતિઓના લોકો વસવાટ કરે છે. આ દરેક જ્ઞાતિઓની પણ પોતપોતાની વિશિષ્ટ ખાસિયતો છે. સૌરાષ્ટ્રમાં વસતા કાઠી જ્ઞાતિના કાઠીઓ ઉપરથી જ સૌરાષ્ટ્રને કાઠિયાવાડ તરીકે ઓળખવામાં આવે છે.

સૌરાષ્ટ્રના સંતો અને ભક્તોની પરંપરા નરસિંહ મહેતા અને મીરાંબાઈથી માંડીને આધુનિક સંતો ભક્તો સુધીની રહી છે. નાથ સંપ્રદાયની સૌરાષ્ટ્રના સંતો અને ભક્તો ઉપર ઘેરી અસર પડેલી છે. આ દરેક સંતોની વાણી જ ગ્રામજીવનના નીતિ અને આચારધર્મ માટેનું એક માત્ર આલંબન બની રહી છે. સૌરાષ્ટ્રના સંતોમાં એક બીજો સંસ્કાર પણ દેખાય છે તે આ ધરતીના શૂરાતનનો. તેથી જ સૌરાષ્ટ્રને સમરાંગણની ધરતી કહેવામાં આવી છે.

સૌરાષ્ટ્રને પથ્થરે પથ્થરે ખમીર, ખાનદાની અને અમીરાતના ઈતિહાસ કંડારેલાં છે. ત્યારે આ નાની-મોટી સૌરાષ્ટ્રની નદીઓ તો લોકસંસ્કૃતિની જ જન્મદાત્રી છે. સિંધુ અને સરસ્વતીની જેમ દ્વારિકાની ગોમતીથી જ સૌરાષ્ટ્રનો પૌરાણિક ઉલ્લેખ શરૂ થાય છે. સૌરાષ્ટ્રનું ગીર તો નદીઓનું મહિયર છે. સૌરાષ્ટ્રની નદીઓમાં ભાદર, શત્રુંજયી, ઓઝત, કપિલા, સરસ્વતી, હીરણ્ય, મચ્છુ, નાવલી વગેરેનો સમાવેશ થાય છે. આ એક એક નદી સાથે અનેકાનેક કથાઓ પણ જોડાયેલી છે.

સૌરાષ્ટ્રના પાંચ રત્નોની અંદર નદી, નારી, અશ્વ, સોમનાથનું શિવલિંગ અને દ્વારામતીના હાજરાહજૂર શ્રીકૃષ્ણનો સમાવેશ થાય છે. આ પંચરત્નોમાં નદી સમૃદ્ધિનું, નારી સૌંદર્યનું, અશ્વ શક્તિનું અને સોમનાથ તથા દ્વારિકા એ ભક્તિનું પ્રતીક છે. આમ, શ્રી, સરસ્વતી, સૌંદર્ય, શક્તિ અને ભક્તિનો રૂડો સમન્વય આ ધીંગી ધરા ઉપર જોવા મળે છે.

સૌરાષ્ટ્રમાં જોગમાયાઓના પણ બેસણાઓ છે અને લોકો આ જોગમાયાઓની શ્રદ્ધા અને ભક્તિથી પૂજા આરાધના પણ કરે છે. આ જોગમાયાઓની સંસ્કારવેલની અમર સરવાણીએ ખાનદાની, ખમીર અને અમીરાતના ઈતિહાસ સર્જ્યા છે. સૌરાષ્ટ્રના મોણિયામાં આઈ નાગબાઈ મા, મઢડામાં આઈ સોનલ મા, ગળધરે આઈ ખોડીયાર મા, રામપરા(ગીર)માં આઈ રુપલ મા વગેરે જોગમાયાઓ બિરાજમાન છે. આ ઉપરાંત સૌરાષ્ટ્રનું નારી સૌંદર્ય પણ એવું જ જોરાવર છે. શિર માટે શિયળ પણ આપી દે. તેથી સૌરાષ્ટ્રની નારીનું શૌર્ય, શીલ અને સૌંદર્ય પણ ઉજળું છે.

સૌરાષ્ટ્રની પ્રજાની ઉદારતા, ખમીરાત, જવામર્દી અને શૂરવીરતાની હાંક પોકારતા અને સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિના સાચા આધારસ્તંભો તરીકે ઓળખાતા પાદરના પાળિયાઓના ઉલ્લેખ કર્યા વિના અહીં લોકસંસ્કૃતિની વાત અપૂર્ણ જ લાગે. આજે પણ સૌરાષ્ટ્રનાં દરેક ગામડાઓની ભાગોળે આવા પાળિયાઓ જીર્ણ-શીર્ણ અવસ્થામાં ઊભેલા જોવા મળે છે. આ પાળિયાઓ જો બોલવા માંડે તો એમાંથી સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિનો રસપ્રદ ઈતિહાસ જાણવા મળે. શૂરવીરોના પ્રતીક ગણાતા આ દરેક પાળિયાઓ સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિના સાચા સંદેશાવાહકો છે. આ પાળિયાઓ આપણા પૂર્વજોની વીરતા, બલિદાન, દેશભક્તિ અને ખમીરને પ્રગટ કરે છે.

સૌરાષ્ટ્રના શૂરવીરોના પરાક્રમો જેના વગર અધુરા રહે એવા અણમોલ અશ્વો તો સૌરાષ્ટ્રનું આગવું સાધન છે. સૌરાષ્ટ્રમાં અઠયાવીસ પ્રકારના જાતવંત ઘોડાઓનો ઉછેર કરવામાં આવતો. સૌરાષ્ટ્રમાં ઘોડાને 'કેકાણ' પણ કહેવામાં આવે છે. પહેલાના સમયમાં સૌરાષ્ટ્ર અશ્વવિદ્યામાં પણ પારંગત ગણાતું. આ ઘોડાઓમાં પુરુષોનું ખમીર અને નારીઓના સ્વરૂપ ઊતરેલાં છે. આ જાતવંત ઘોડાની વફાદારી, બહાદુરી અને નિષ્ઠાના લાખ-લેખ પ્રસંગોની કથાઓ તો ગામગામનો હજારો વર્ષ જૂનો સંસ્કાર છે.

સૌરાષ્ટ્રના પ્રત્યેક ઉત્સવોની ઉજવણીમાં લોકોની ઉત્સવપ્રિયતા અને લોકસંસ્કૃતિના વિવિધ મંગળ સ્વરૂપો પ્રગટ થાય છે. દિવાળી, હોળી, ધૂળેટી, રામનવમી, જન્માષ્ટમી ઈત્યાદી સર્વ ઉત્સવો ઉપરાંત ઉત્તરાયણ, અખાત્રીજ, દેવદિવાળી, દિવાસો કે નવરાત્રી જેવા કેટલાક વિશેષ ઉત્સવો-તહેવારો સૌરાષ્ટ્રની અંદર અનોખી રીતે ઊજવાય છે. કેટલાંક તહેવારોમાં ગામેગામ મેળાઓનું પણ આયોજન થાય છે. મેળો એટલે સંસ્કૃતિનું સંગમસ્થાન, સંસ્કારોની મિલન ભોમ. ત્યાં લોકજીવનની કંઈક કળાઓ ઠલવાય છે. ઊર્મિઓની અભિવ્યક્તિનું સહિયારું સ્થાન તે આ સૌરાષ્ટ્રના મેળાઓ છે. સૌરાષ્ટ્રમાં મહાશિવરાત્રી, અષાઢી બીજ, સાતમ-આઠમ, શ્રાવણી પૂનમ, ભાદરવી અમાસ વગેરે તહેવારો નિમિત્તે અલગ અલગ સ્થળોએ મેળાઓનું આયોજન હર્ષભેર કરવામાં આવે છે. આ દરેક મેળાઓ સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિકનું દર્પણ છે.

લોકસંસ્કૃતિને સમજવી હોય તો તેની પ્રાદેશિક ભાષા-બોલીઓનો અભ્યાસ પણ આવશ્યક રહે છે. ગુજરાતની પ્રાદેશિક બોલીઓ જેવી કે સુરતી, ચરોતરી, કાઠિયાવાડી(સૌરાષ્ટ્રી), હાલારી, કચ્છી વગેરેના ઉચ્ચારણ ભેદો અને લહેકાઓ જુદા જુદા છે. આ બોલીઓમાં સૌરાષ્ટ્રની કાઠિયાવાડી(સૌરાષ્ટ્રી) બોલીના લય-લહેકા તેને બીજી બોલીઓથી અલગ પાડે છે. તેમાં પણ તેની વિશિષ્ટતા જોવા મળે છે.

કલાકસબ એ સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિનું સબળ અંગ છે. એણે માનવીના અંગ-ઉપાંગોને, વસ્ત્ર-આભૂષણોને તેમ જ ઘરના ઓરડા-ઓસરી, બારી-બારણાં, બારસાખ અને ઘરવખરીને પણ શણગારીને શોભાયમાન કર્યા છે. સૌરાષ્ટ્રની નારીઓ મહેંદી કે ત્રાજવાથી હાથ-પગને શણગારે છે, આભલા, ભરતગૂંથણથી વસ્ત્રોને સજાવે છે. ઘરના પ્રવેશદ્વારને મોતી ભરેલ તોરણ, ચાકળા, ટાકલિયાથી સુશોભિત કરે છે. બારી-બારણા પર શુભ-લાભ કે ગણપતિનું રેખાંકન કરે છે. ઘરના પેટી-પટારા રંગોથી ઓપાવે છે. તેમ જ ઓરડા-ઓસરીમાં જમીન પર ગાર-ગોરમટીના ઓપ-આકાર આપી એને પણ આકર્ષક બનાવે છે.

સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિનું એક આગવું પાસુ એ તેમના વસ્ત્રાભૂષણોમાં જોવા મળતી વિવિધતા છે. સ્ત્રીઓની આભલા જડીત ઓઢણી, બાંધણી, પાયલ તથા પુરૂષવર્ગના ઘેરદાર કેડિયા, ચોરણી, માથાને શોભાવતી તેમજ તેમનું રક્ષણ કરતી વિવિધ આકારની અને વિવિધ ઢબે પહેરાતી પાઘડીઓ વગેરે સૌરાષ્ટ્રની અનેરી લાક્ષણિકતા પ્રગટ કરે છે. સૌરાષ્ટ્રની પ્રજાના અલંકારોનું વૈવિધ્ય પણ ખૂબ જ ધ્યાનાકર્ષક છે. હાથ-પગમાં પહેરવાના વિવિધ પ્રકારનાં કડલા-કાંબિયાં, ટુંપિયા અને મોટિયા, નાકની નથણી ને કાનના ઠોળિયા સૌરાષ્ટ્ર પ્રદેશની સાંસ્કૃતિક વિવિધતા પ્રગટ કરે છે.

સૌરાષ્ટ્રના લોકનૃત્યો, લોકનાટ્ય અને લોકસંગીતે સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિ અને પરંપરાઓને ધબકતી રાખી છે. ચોરવાડની બહેનોનું ટીપ્પણી નૃત્ય, પઢારોનું નૃત્ય, કોળીઓના રાસનૃત્ય, ભરવાડોના રાસનૃત્ય, આયરો-મેરના રાસનૃત્ય, સૌરાષ્ટ્રના સીદીઓનું ધમાલ નૃત્ય વગેરે લોકોનૃત્યો આ પ્રજાના નર્તન કૌશલ્યને તેમજ એમના જોમ, જુસ્સો અને ઉત્સાહને પણ પ્રગટ કરે છે. આ ઉપરાંત લોકનાટ્યનું સ્વરૂપ ભવાઈ પણ ગામેગામ લોકોની હાજરીમાં ભજવાતી. આ પરંપરાગત ભવાઇએ લોકોને મનોરંજન સાથે ઈતિહાસની કથાઓથી પણ અવગત કરાવ્યાં છે. ભવાઈએ સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિને સુદ્રઢ બનાવી તેમની પરંપરાને પણ જાળવી રાખી છે.

લોકનૃત્ય અને નાટ્યની જેમ સૌરાષ્ટ્રના લોકસંગીતે પણ એની વિશિષ્ટ શક્તિ સાચવી રાખી છે. લોકસંગીતને સૂક્ષ્મ ભેદે જોઈએ તો એ લોકોના જીવનના વ્યવહારમાંથી નીપજેલું છે. અહીંના દુહા-સોરઠાનાં પડછંદ નાદથી ગાજતા અને ઢોલ, પખાજ, શરણાઈ, તંબૂર, રાવણહથ્થો જેવા લોકવાદ્યોના મધુર ધ્વનિથી ગુંજતા સૌરાષ્ટ્રના લોકડાયરાઓ એની લોકસંસ્કૃતિની મોંઘેરી નીપજ છે. વર્તમાન સમયમાં પણ સૌરાષ્ટ્રની અંદર લોક ડાયરાઓ દ્વારા આપણી લોકસંસ્કૃતિ અને પરંપરાને લોકો સુધી પહોંચાડવાનું કાર્ય થઈ રહ્યું છે. આ ઉપરાંત લગ્નગીતો, હાલરડા, મરસિયા, ફટાણા, વધાઈના ગીતો વગેરેએ આજે પણ સંસ્કૃતિને જાળવી રાખી છે.

સૌરાષ્ટ્રમાં સદીઓથી જે રાસ-રાસડા, ગરબા-ગરબી ગવાતા અને નર્તન પામતા આવે છે તે આજેય લોકજીવનમાં ચિરંજીવી રહીને પોતાનું અચળ સ્થાન રાખી લોકજીવનને આનંદ અને પ્રેરણા આપતા રહ્યાં છે. સૌરાષ્ટ્રમાં ગરબા સ્ત્રીઓ ગાય છે અને ગરબી પુરુષો ગાય છે. પરંતુ આજે એવો ભેદ રહ્યો નથી. સૌરાષ્ટ્રમાં નરસિંહ મહેતાથી દાંડિયા લગભગ શાસ્ત્રીય સ્વરૂપ ધારણ કરતા આવ્યા છે. આ દાંડિયારાસ તો સૌરાષ્ટ્રનું સર્વોત્તમ લોકનૃત્ય છે. આમ, દાંડિયારાસ સૌરાષ્ટ્રની પરંપરાને પ્રગટ કરનારું માધ્યમ છે.

સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિની વાત કરીએ છીએ ત્યારે તેના ભરતકામને કેમ ભૂલી શકીએ. સૌરાષ્ટ્રનું ભરતકામ બન્નીના જેવું સફાઈબંધ કે કાશ્મીર જેવું ઉત્કૃષ્ટ નથી. પરંતુ સૌરાષ્ટ્રના ભરતમાં જે સજીવતા અને સ્વાધીનતા છે, એવી બીજા ભરતમાં ભાગ્યે જ જોવા મળે છે. સૌરાષ્ટ્રનું ભરતકામ સાંગોપાંગ લોકસંસ્કાર છે. સૌરાષ્ટ્રનું ભરતકામ જીવનવ્યાપ્ત કલા છે, જેમણે જીવનવ્યવહારનાં તમામ અંગોને કલાવિભૂષિત કર્યા છે. સૌરાષ્ટ્રમાં ભરતકળાએ જીવન

સાથે એકરૂપતા સાધી છે. એ કોઈ વિશિષ્ટ અંગ નથી, પણ સમગ્ર જીવનકલાનું જ એક અંગ છે. સૌરાષ્ટ્રમાં કાઠીભરતની કુમાશ, આયરનું હીરભરત અને કણબીનું આભલા ભરત વિશેષ ભાત પાડનારું છે.

આમ, સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિ અને પરંપરાઓ લોકજીવન સાથે યથાતથ રૂપે સંકળાયેલ છે. સૌરાષ્ટ્રની પ્રજાના રીતરિવાજો, માન્યતાઓ, ઉત્સવો, મેળાઓ, લોકગીતો, લોકનૃત્યો, રાસ-ગરબા, પ્રકૃતિપરાયણ લોકજીવન, આતિથ્ય સત્કાર, સૌરાષ્ટ્રના પાળિયાઓ, વસ્ત્રાભૂષણો, ઈશ્વર પ્રત્યેની અતૂટ શ્રદ્ધા વગેરે પરિબળો દ્વારા આપણને તેમની લોકસંસ્કૃતિના આબેહૂબ દર્શન થાય છે. સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિ એ કોઈ કલ્પનાવિહાર નથી, પરંતુ વાસ્તવભોમ ઉપરનો જીવનનો આવિષ્કાર છે. લોકસમાજનું યથાર્થ અને સમૃદ્ધિવંત ચિત્ર છે. તેથી આપણે કહી શકીએ કે સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિ અને તેની પરંપરાઓ આગવી અને અવિસ્મરણીય છે.

સંદર્ભ :

1.'લોકવિદ્યા પરિચય', લેખક : યાજ્ઞિક,હસુ , પ્રકાશક : ગુજરાત વિશ્વકોશ ટ્રસ્ટ, અમદાવાદ, પ્રથમ આવૃત્તિ : ૨૦૦૫, પૃષ્ઠ સંખ્યા:૧૨૪

2.'ગુજરાતની લોકસંસ્કૃતિ', લેખક : સેંદાણી, ડૉ. હસુતાબેન શશીકાંત, પ્રકાશક : યુનિવર્સિટી ગ્રંથનિર્માણ બોર્ડ, અમદાવાદ, પ્રથમ આવૃત્તિ : ૧૯૯૪, પૃષ્ઠ સંખ્યા : ૧૬૮

3. 'આપણી લોકસંસ્કૃતિ', લેખક : પરમાર,જયમલ્લ, પ્રકાશક : પ્રવીણ પ્રકાશન, રાજકોટ, પ્રથમ આવૃત્તિ : ૧૯૫૭, પૃષ્ઠ સંખ્યા : ૩૬૮

हिन्दी साहित्य में पर्यावरण सम्बन्धी चिन्ता

डॉ. जिज्ञासा रमेशकुमार सीतापरा*

sitapara.jigna89@gmail.com

मानव जीवन एवं पर्यावरण एक दूसरे के पर्याय है। प्रत्येक मनुष्य जीवन पर्यावरण के साथ जुड़ा हुआ है। जन्म के बाद पहली सांस भी पर्यावरण से ही ग्रहण करता है और मृत्यु के बाद पर्यावरण में ही विलीन हो जाता है। मानव के संपूर्ण विकास के लिए पर्यावरण महत्वपूर्ण है। मानव विकास के इस महत्वपूर्ण पहलू की उपेक्षा के कारण ही पर्यावरण की सुरक्षा आज विश्व के लिए चुनौती बन गई है। पर्यावरण के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती, तब पर्यावरण का साहित्य में आना परम आवश्यक हो जाता है। साहित्य समाज का दर्पण और साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी है। अतः कोई सामाजिक प्राणी पर्यावरण के बगैर किसी काम की कल्पना भी नहीं कर सकता। समाज में जितनी भी विसंगतियाँ या चिंतनीय विषय है, वे सब साहित्य में होते है। हमारा पर्यावरण तेजी से प्रदूषित हो रहा है। यदि समय के रहते इसे नहीं रोका गया तो यह इतना विकराल रूप धारण कर लेगा कि जिसके चलते मानव बुरी तरह से प्रभावित होगा।

पर्यावरण के विभिन्न तत्वों को होने वाली क्षति अधिकांश तो मनुष्य के द्वारा ही होती है। किसी निर्दय व्यक्ति द्वारा जब किसी को हानि पहुंचती है तो उसे देखकर दयालु व्यक्ति दुःखी होता है। महाकाव्य रामायण में क्रोंच दंपति की कथा में यह बात सिद्ध होती है। प्रेम में लिन क्रोंच दंपति में से एक की पारधी द्वारा हत्या होने पर क्रोंच को विलाप करते देख वाल्मीकि का हृदय कांप उठाता है और तुरंत ही उसके मुखसे करुणा के शब्द निकल पड़ते हैं -

"मा निशाद प्रतिष्ठतम त्वमगम शाश्वती: समा:।"

उसके हृदय से निकली यह करुणा ही काव्य का आरंभ बन जाती है।

विश्व के सभी साहित्य में पर्यावरण पर कविताएं लिखी गई है। संस्कृत में कालिदास ने, गुजराती में उमाशंकर जोशी ने और बांग्ला में रविंद्रनाथ ठाकुर ने इस विषय पर काफी कुछ लिखा हुआ है। हिन्दी साहित्य में भी आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में प्रकृति चित्रण के अनेक कोणों को प्रस्तुत किया है। पर्यावरण के मुद्दों को हिन्दी साहित्य में विभिन्न विधाओं में प्रस्तुत किया गया है। कविता, कहानी, उपन्यास और नाटक आदि साहित्य की इन विधाओं में प्रकृति के पर्वत, खनिज, पदार्थ, मिट्टी, जल, वायु, भूमि, वनस्पति पशु-पक्षी, कृषि आदि सभी घटक दिखाई देते हैं।

आदिकालीन कविता में प्रकृति का चित्रण मुख्य रूप से वीरता और श्रृंगार रस को उद्दिप्त करने वाले रूप में मिलता है। भक्ति कालीन कवियों की साधना में आध्यात्मिकता व एक निष्ठता का भाव विद्यमान रहा है। रीतिकालीन कवियों में प्रकृति के आलंकारिक रूप का अधिक चित्रण हुआ है और उसके सौंदर्य को अपनाया भी है।

आधुनिक हिंदी कवियों में श्रीधर पाठक, हरिऔध, मैथिली शरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कविताओं में प्रकृति के रूपों का मुग्धकारी चित्रण हुआ है। सुमित्रानंदन पंत को तो वैसे भी प्रकृति के चितेरे कहा जाता है। उन्हें प्रकृति से माता-पिता क्या प्यार प्राप्त हुआ है और वह लिखते हैं-

"मां से बढ़कर रही धात्री तू बचपन में मेरे हित।
धात्री कथा अपक भर तूने किया जनक बन पोषण।
मातृ हीन बालक के सिर पर वरद हस्त धर गोपन।"

मैथिलीशरण गुप्त कृत खंडकाव्य 'पंचवटी' में रात्रि की बेला का मनोहारी वर्णन इस प्रकार है-

* **सहायक अध्यापक, हिन्दी विभाग, गीतांजलि इंस्टिट्यूट ऑफ़ एज्युकेशन, राजकोट**

"चारु चंद्र की चंचल किरणे खेल रही है जल थल में।

स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है अवनी और अंबरतल में।"

पर्यावरणीय जीवों की रक्षा की बात भी पंचवटी में सीता के माध्यम से प्रस्तुत की है। सीता के द्वारा समाज को संदेश देना चाहते हैं कि पशु पक्षी की रक्षा का दायित्व इंसान का है। सीता जिस प्रकार पक्षियों को दान खिलाती है और पौधों को सींचती है, उस प्रकार हमें भी प्रकृति की रक्षा करनी चाहिए। छायावाद के ब्रह्मा स्वरूप जयशंकर प्रसाद ने अपने महाकाव्य 'कामायनी' के आरंभ में जल प्रलय के माध्यम से संकेत किया है कि कभी भी प्रकृति से खिलवाड़ नहीं करना चाहिए। कवि ने लिखा है-

"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की ऊपर छाँह।

एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा है प्रलय प्रवाह।।"

प्रगतिवादी काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि बाबा नागार्जुन 'अकाल और उसके बाद' कविता के माध्यम से पर्यावरणीय असंतुलन की बात कही है। इंसान के कारण पर्यावरण बिगड़ता है और फिर पर्यावरण के कारण इंसान के साथ अन्य जीव भी दाने-दाने को तरस जाते हैं। इसका उत्कृष्ट उदाहरण यह काव्य है -

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास।
कई दिनों तक कानी कुत्तिया सोई उसके पास।
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त।
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।"

राजेश जोशी जी की एक कविता है 'पेड़ क्या करता है?' पेड़ हमें निस्वार्थ भाव से शुद्ध हवा, फल-फूल, लकड़ी, छाँह और दवाई देता है। मनुष्य को भी उसकी तरह परोपकारी बनना चाहिए। पेड़ की ओर भी हमारा कर्तव्य हैं । हमें उसकी रक्षा के लिए कुछ करना चाहिए। यह संदेश कविता से मिलता है। कवि ने लिखा है -

"तो पेड़
क्या करता है दिन-भर?
हम्माल
हम्माली करता हैं
मजूर
मजूरी करता हैं
अफसर
अफसरी करता है
बाबू बाबूगिरी
और
रात को थक कर सोता है
और पेड़
पेड़ क्या करता है दिन-भर?"

पर्यावरण का हम पर बहोत बड़ा उपकार है, जिसे हमें नहीं भूलना चाहिए। वह उपकार करने में रात या दिन कुछ भी नहीं देखता है।

कविताओं के अलावा हिन्दी साहित्य में कुछेक उपन्यास भी ऐसे हैं, जो पर्यावरण व प्रकृति के माध्यम से इंसान के साथ उसका संबंध और परिणाम व्यक्त करता है। कृषक जीवन का महाकाव्य जिसे कहते हैं ऐसा प्रेमचंद कृत 'गोदन' उपन्यास ग्रामीण परिवेश, भूमि का महत्व, मौसम और प्राकृतिक संकट, मानव पर प्रकृति के प्रभाव को वर्णित कर पर्यावरणीय चिंतन

की ओर इशारा कर रहा है। इस उपन्यास में अप्रत्याशित मौसम, खराब फसलें और प्राकृतिक आपदाओं का वर्णन है। जिसके माध्यम से किसानों के जीवन में होने वाले प्रभावों का वर्णन है।

रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में प्रकृति, मनोभाव और मानव समाज के संबंध का गहन विश्लेषण है। जिससे प्रकृति व जीवन के आपसी जुड़ाव और संरक्षण के महत्व का बोध होता है। पेड़, जंगल और मिट्टी के दोहन से जो बाढ़ की स्थिति आती है उस पर पंखुरी सिन्हा की एक कहानी है-'तालाब कहो या पोखर'। इस कहानी से मालूम पड़ता है कि नागचंपा जैसे फूल अब महानगरों से ओझल हो गये है। प्रदूषण का इतना अधिक प्रकोप है कि आजकल अमलतास का फूल पीड़ा हो ही नहीं पाता। इस कहानी में मनुष्य द्वारा बराबर्ता पूर्वक किए जा रहे प्राकृतिक दोहन की विनाश लीला को मार्मिक तरीके से प्रस्तुत किया है- "जैसे कल रात तक शायद पानी घरों से बाहर चला जाय। जिनके घर पानी में बह गये हैं, उन्हें कर्ज लेकर दोबारा बनाया जा सकेगा। बेशक कर्ज सालों तक बना रहेगा। जो चले गये हैं वे वापस नहीं आ सकते। जो तालाब भर दिया गया है, जहां घर बनाए जा चुके हैं, उस जगह को फिर से तालाब नहीं किया जा सकता।"

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा ने 'मेरा परिवार' संस्मरण में जो पशु प्रेम व्यक्त किया है,वह पर्यावरण का ही हिस्सा है। जिसमें उन्होंने अपने पालतू जानवरों जैसे गिल्लू गिलहरी, सोना हिरनी, नीलकंठ मोर और गौरा गाय के प्रति अपना अपार स्नेह और ममता व्यक्त की है। उन्होंने घायल और अनाथ पशु-पक्षियों को आश्रय दिया और उन्हें अपने परिवार का सदस्य माना। यह बात उनके वात्सल्य पूर्ण स्वभाव को दर्शाती है। महादेवी का पशु प्रेम केवल जानवरों को पालता नहीं है, बल्कि उनसे गहरा भावात्मक जुड़ाव बनाना और उन्हें अपने परिवार का हिस्सा मानना था। यानी पर्यावरण के जीवों की रक्षा का दायित्व महादेवी ने बखूबी निभाया और समाज को संदेश दिया कि हमारा भी उनके प्रति दायित्व है। उन जीवों को हमारे अलावा कोई नहीं पाल सकता।

निष्कर्ष :

हिंदी साहित्य अपने समय और समाज से सजग दिखाई देता है। पारिस्थितिक मुद्दा भी उनके प्रमुख विषयों में आ गया है। साहित्यकार बखूबी जानते हैं कि मनुष्य की प्रगति में प्रकृति का ख़ास योगदान है। प्रकृति से हटकर प्रगति की ओर प्रयाण यानी अनार की ओर प्रयाण है। कविता, कहानी, निबंध, उपन्यास और संस्मरण जैसी विधाओं में प्रकृति व पर्यावरण की प्रस्तुति कभी उद्दीपन के रूप में तो कभी कर्तव्य के रूप में हुई है। समाज को सोचने पर बाध्य करते है और कर्तव्य की ओर उन्मुख करना भी चाहते हैं। पर्यावरण के बगैर जीवन संभव नहीं है। तभी तो साहित्यकारों की कलम उस दिशा में वक्त-वक्त पर चलती आ रही है और आगे भी चलती रहेगी।

सन्दर्भ :

1. विकिपीडिया. *Wikipedia (ऑनलाइन विश्वकोश)*. प्राप्त किया गया 5 अक्टूबर, 2024, से: https://www.wikipedia.org
2. कविता कोश. *Kavita Kosh (मोबाइल एप्लिकेशन)*.
3. गुप्त, मैथिलीशरण. (2017). *पंचवटी*. उत्तर प्रदेश: साहित्य सरोवर.
4. प्रसाद, जयशंकर. (2014). *कामायनी*. नई दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्स.
5. श्रीवास्तव, अंजली. (2001). *पर्यावरण संरक्षण*. नई दिल्ली: नमन प्रकाशन.
6. सिन्हा, पंखुरी. (2006). *कोई भी दिन (कहानी संग्रह)* (प्रथम संस्करण). नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ.

हिंदी भाषा : साहित्य से रोजगार तक

डॉ. प्रकाश विट्ठल सोनवणे*
pvsonawane10@gmail.com

प्रस्तावना

भाषा किसी भी समाज की आत्मा होती है। भाषा ही विचारों, अनुभवों और भावनाओं को रूपाकार देती है। हिंदी भाषा भारतीय समाज के बहुलतावादी स्वरूप की प्रतिनिधि है। यह केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना की वाहक है। हिंदी साहित्य ने भारतीय जीवन को दृष्टि, दिशा और गति दी है। भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा से लेकर नागार्जुन, अज्ञेय, निर्मल वर्मा और आधुनिक रचनाकारों तक—सभी ने हिंदी साहित्य को सामाजिक यथार्थ और मानवीय सरोकारों से जोड़ा।

परंतु हिंदी का महत्व केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है। आज का युग रोजगार, प्रतिस्पर्धा और तकनीकी उन्नति का युग है। वैश्वीकरण और सूचना-प्रौद्योगिकी के इस दौर में हिंदी के सामने नई चुनौतियाँ और नए अवसर दोनों उपस्थित हैं। शिक्षा, पत्रकारिता, अनुवाद, विज्ञापन, कॉर्पोरेट जगत, पर्यटन, सूचना-प्रौद्योगिकी तथा डिजिटल मीडिया में हिंदी की उपस्थिति लगातार बढ़ रही है। इस शोध आलेख में हिंदी भाषा की यात्रा को साहित्य से रोजगार तक विश्लेषणात्मक दृष्टि से समझने का प्रयास किया गया है । हिंदी का सांस्कृतिक वैभव किस प्रकार आधुनिक आर्थिक संदर्भों से जुड़ता है और रोजगार की दृष्टि से इसके क्या आयाम बनते हैं।

हिंदी साहित्य का सांस्कृतिक और सामाजिक योगदान

हिंदी भाषा का साहित्यिक संसार अत्यंत समृद्ध और बहुआयामी है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक हिंदी साहित्य ने समाज को न केवल सौंदर्यबोध प्रदान किया है, बल्कि सामाजिक चेतना, राजनीतिक दृष्टि और सांस्कृतिक एकता का आधार भी बनाया है।

1. **भक्ति आंदोलन और हिंदी** – तुलसीदास, सूरदास, कबीर, मीरा आदि कवियों ने हिंदी को जन-जन की भाषा बनाया। उन्होंने सरल, लोकाभिमुख भाषा में अध्यात्म और सामाजिक सुधार का संदेश दिया।

2. **भारतेंदु युग और नवजागरण** – भारतेंदु हरिश्चंद्र ने साहित्य को आधुनिक चेतना से जोड़ा। हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत भी इसी दौर में हुई।

3. **प्रेमचंद और यथार्थवाद** – प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास और कहानी को समाज के गरीब, किसान, स्त्री और श्रमिक वर्ग की पीड़ा से जोड़ा। उनकी रचनाएँ 'गोदान' और 'कफन' आज भी सामाजिक यथार्थ की गवाही देती हैं।

4. **छायावाद और आधुनिक चेतना** – प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा ने हिंदी साहित्य को आत्मान्वेषण और आधुनिकता की ओर मोड़ा।

5. **आधुनिक और समकालीन हिंदी साहित्य** – नागार्जुन, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी जैसे रचनाकारों ने हिंदी साहित्य को वैश्विक साहित्यिक परंपरा से जोड़ा और वर्तमान पीढ़ी के लिए नए विमर्श खोले।

इस प्रकार हिंदी साहित्य केवल कल्पना या मनोरंजन का साधन नहीं रहा, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बना। इस साहित्य ने भारतीय समाज को नैतिक मूल्य, लोकतांत्रिक दृष्टि और सांस्कृतिक बोध प्रदान किया।

* **हिंदी विभाग प्रमुख, श्री. पी.एल. श्रॉफ कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, चिंचनी ता-दहानु, जि-पालघर**

हिंदी और शिक्षा के क्षेत्र में रोजगार

हिंदी भाषा का सबसे सशक्त और पारंपरिक क्षेत्र शिक्षा रहा है। भाषा और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन के बिना किसी समाज की सांस्कृतिक चेतना जीवित नहीं रह सकती। शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी ने एक ओर ज्ञान के प्रसार का कार्य किया है, वहीं दूसरी ओर लाखों युवाओं के लिए रोजगार के अवसर भी निर्मित किए हैं।

1. विद्यालय एवं उच्च शिक्षा में अध्यापन

हिंदी भारत के अधिकांश राज्यों में शिक्षा का प्रमुख माध्यम है। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक हिंदी अध्यापक और प्राध्यापक के रूप में बड़ी संख्या में लोग कार्यरत हैं। सरकारी और निजी विद्यालयों में हिंदी अध्यापक के पद व्यापक हैं। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में हिंदी विभाग न केवल भाषा-साहित्य का अध्यापन करते हैं, बल्कि शोध और आलोचना की दिशा भी प्रदान करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा और भारतीय भाषाओं पर ज़ोर दिए जाने से हिंदी शिक्षकों की मांग और बढ़ने की संभावना है।

2. शोध और आलोचना

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में अनुसंधान और आलोचना की परंपरा समृद्ध रही है। पीएच.डी. और शोध परियोजनाओं से जुड़े शोधार्थियों को शिक्षण-संस्थान, शोध केंद्रों और पुस्तकालयों में रोजगार मिलता है I

आलोचक और समीक्षक साहित्यिक विमर्श को दिशा देते हैं।

3. प्रतियोगी परीक्षाएँ और हिंदी

भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS), राज्य लोकसेवा आयोग, बैंकिंग, रेलवे और अन्य प्रतियोगी परीक्षाओं में हिंदी भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिंदी अनुवादक, हिंदी अधिकारी, हिंदी टाइपिस्ट और राजभाषा अधिकारी जैसी नौकरियों में हिंदी स्नातक और स्नातकोत्तर युवाओं की अच्छी मांग है। संवैधानिक प्रावधानों के तहत केंद्रीय और राज्य सरकारों में राजभाषा हिंदी से संबंधित पद निर्मित किए जाते हैं।

4. प्रशिक्षण और कोचिंग उद्योग

आज का दौर प्रतिस्पर्धा का है। अनेक कोचिंग संस्थान हिंदी माध्यम से प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कराते हैं। यहाँ हिंदी भाषा विशेषज्ञों और शिक्षकों को प्रशिक्षक (ट्रेनर) के रूप में रोजगार मिलता है। ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में तो हिंदी माध्यम की कोचिंग की विशेष मांग रहती है।

5. अंतरराष्ट्रीय शिक्षा और हिंदी

विश्वभर में हिंदी का अध्ययन तेजी से बढ़ रहा है। अमेरिका, रूस, जर्मनी, जापान और मॉरीशस जैसे देशों की विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्यापन का विस्तार हुआ है। विदेशी विश्वविद्यालयों और भारतीय सांस्कृतिक केंद्रों (ICCR) में हिंदी अध्यापकों की नियुक्तियाँ होती हैं। हिंदी सीखने वाले विदेशी विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने से यह भाषा एक वैश्विक अवसर प्रदान कर रही है।

6. शिक्षा में डिजिटल युग की संभावनाएँ

ऑनलाइन शिक्षा प्लेटफॉर्म जैसे Byju's, Unacademy, Textbook, Physicswala आदि पर हिंदी माध्यम से पढ़ाने वाले शिक्षकों की भारी मांग है। यूट्यूब चैनल, ऑनलाइन ट्यूशन और ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म ने हिंदी भाषा विशेषज्ञों को स्वरोजगार का अवसर दिया है। डिजिटल सामग्री निर्माण (Digital Content Development) भी शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी के नए आयाम खोल रहा है।

शिक्षा का क्षेत्र हिंदी भाषा के लिए न केवल पारंपरिक आधार है बल्कि भविष्य की संभावनाओं से भी परिपूर्ण है। वैश्वीकरण के युग में जहाँ अंग्रेज़ी का प्रभुत्व स्वीकार्य है, वहीं हिंदी भी अपनी जनसांख्यिकीय शक्ति और सांस्कृतिक गहराई के कारण शिक्षण और रोजगार का बड़ा आधार बन चुकी है।

मीडिया और पत्रकारिता में हिंदी का विस्तार

मीडिया आधुनिक समाज का चौथा स्तंभ माना जाता है। यह केवल सूचना का साधन नहीं, बल्कि विचार-निर्माण और जनमत निर्माण की प्रक्रिया का हिस्सा भी है। हिंदी भाषा ने मीडिया और पत्रकारिता के क्षेत्र में अद्वितीय सफलता अर्जित की है। आज हिंदी अख़बारों का प्रसार, हिंदी टीवी चैनलों की लोकप्रियता और डिजिटल मीडिया पर हिंदी की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि हिंदी केवल साहित्य तक सीमित नहीं, बल्कि समकालीन समाज की धड़कन भी है।

1. हिंदी पत्रकारिता का इतिहास और वर्तमान

हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत भारतेंदु युग से होती है। उदन्त मार्तण्ड (1826) पहला हिंदी समाचार पत्र था। भारतेंदु हरिश्चंद्र, बाल मुकुंद गुप्त और गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे पत्रकारों ने हिंदी पत्रकारीय परंपरा को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ा। आज के दौर में दैनिक भास्कर, अमर उजाला, हिंदुस्तान, राजस्थान पत्रिका जैसे अख़बार लाखों पाठकों तक पहुँच रहे हैं। हिंदी अख़बारों का प्रसार अंग्रेज़ी अख़बारों की तुलना में कहीं अधिक है, क्योंकि हिंदी पाठक वर्ग ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों तक फैला हुआ है।

2. टेलीविजन और रेडियो में हिंदी

दूरदर्शन और आकाशवाणी ने हिंदी पत्रकारिता और जनसंचार को राष्ट्रीय पहचान दी। निजी टीवी चैनलों जैसे आज तक, ज़ी न्यूज़, इंडिया टीवी, NDTV इंडिया आदि ने हिंदी समाचार प्रसारण को व्यावसायिक सफलता दी। एफ.एम. रेडियो चैनलों ने मनोरंजन और समाचार का हिंदी संस्करण लोकप्रिय बनाया।

3. डिजिटल मीडिया और हिंदी

डिजिटल क्रांति ने मीडिया के परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया है। हिंदी में ऑनलाइन पोर्टल (जैसे – जनसत्ता, नवभारत टाइम्स ऑनलाइन, दैनिक भास्कर डॉट कॉम) लाखों पाठकों तक पहुँचते हैं। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म – फेसबुक, यूट्यूब, इंस्टाग्राम और ट्विटर (X) पर हिंदी कंटेंट की मांग तेजी से बढ़ रही है। ब्लॉगिंग और व्लॉगिंग ने हिंदी में स्वतंत्र पत्रकारिता और स्वरोजगार के नए अवसर प्रदान किए हैं।

4. हिंदी मीडिया में रोजगार के अवसर

पत्रकार : रिपोर्टिंग, एंकरिंग, संपादन और संवाददाता के रूप में अवसर।

कंटेंट राइटिंग और एडिटिंग : डिजिटल प्लेटफॉर्म पर हिंदी कंटेंट लेखक और संपादक की भारी मांग है।

फ्रीलांस पत्रकारिता : ब्लॉग, यूट्यूब चैनल और स्वतंत्र पोर्टल्स पर हिंदी लेखक- पत्रकारों के लिए मंच उपलब्ध हैं। विज्ञापन और जनसंपर्क : हिंदी भाषा विशेषज्ञों को विज्ञापन जगत और पब्लिक रिलेशंस में भी अच्छा स्थान मिलता है।

अनुवाद, पर्यटन और कॉर्पोरेट सेक्टर में हिंदी की भूमिका

हिंदी भाषा का एक बड़ा व्यावहारिक आयाम है—अनुवाद और कॉर्पोरेट जगत में इसकी बढ़ती उपयोगिता। साहित्य ने हिंदी को सांस्कृतिक गौरव प्रदान किया, लेकिन रोजगार के क्षेत्र में इसकी पहचान अनुवाद, पर्यटन, प्रशासन और कॉर्पोरेट सेक्टर से भी गहराई से जुड़ी हुई है।

1. अनुवाद : भाषा से सेतु का निर्माण

अनुवाद आज केवल साहित्यिक गतिविधि नहीं रहा, बल्कि यह रोजगार और व्यवसाय का महत्त्वपूर्ण साधन बन चुका है। सरकारी संस्थानों में अनुवादक : केंद्र और राज्य सरकारों में राजभाषा विभाग के अंतर्गत हिंदी-अंग्रेज़ी अनुवादकों की

नियुक्ति होती है। साहित्यिक अनुवाद : विश्व साहित्य को हिंदी में और हिंदी साहित्य को अन्य भाषाओं में प्रस्तुत करने से साहित्यकारों और प्रकाशकों के लिए रोजगार के अवसर बनते हैं।

तकनीकी और कानूनी अनुवाद : बहुराष्ट्रीय कंपनियों और न्यायालयों में दस्तावेज़ों का अनुवाद आवश्यक होता है। डिजिटल युग में अनुवाद : वेबसाइट, ऐप्स और ई-लर्निंग सामग्री का हिंदी में अनुवाद आज बड़े उद्योग के रूप में विकसित हो रहा है।

2. पर्यटन उद्योग और हिंदी

भारत पर्यटन की दृष्टि से विश्व के अग्रणी देशों में है। यहाँ हिंदी भाषा का महत्त्व विशेष रूप से सामने आता है। टूरिस्ट गाइड : विदेशी पर्यटकों के लिए हिंदी के जानकार गाइड स्थानीय भाषाओं और अंग्रेज़ी के बीच सेतु का काम करते हैं। हॉस्पिटैलिटी सेक्टर : होटल, रेस्टोरेंट और ट्रैवल कंपनियाँ हिंदी जानने वाले कर्मचारियों को प्राथमिकता देती हैं। सांस्कृतिक पर्यटन : हिंदी का प्रयोग कला, संगीत, योग, आध्यात्म और आयुर्वेद संबंधी पर्यटन गतिविधियों में भी रोजगार उपलब्ध कराता है।

3. कॉर्पोरेट सेक्टर और हिंदी

वैश्वीकरण के दौर में हिंदी का महत्व कॉर्पोरेट जगत में तेजी से बढ़ा है। विज्ञापन और विपणन : अधिकांश कंपनियाँ हिंदी स्लोगन और विज्ञापन के माध्यम से अपने उत्पाद बेचती हैं। "हमारा बजाज", "ठंडा मतलब कोका-कोला" जैसी पंक्तियाँ इसकी मिसाल हैं। ग्राहक सेवा (Customer Care) : बीपीओ, कॉल सेंटर और बैंकिंग सेक्टर में हिंदी भाषी कर्मचारियों की मांग अधिक है। आंतरिक संचार : बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत में अपने कर्मचारियों से संवाद के लिए हिंदी का प्रयोग बढ़ा रही हैं। लोकलाइजेशन उद्योग : सॉफ्टवेयर, मोबाइल एप्लीकेशन और वेबसाइट को हिंदी में उपलब्ध कराने के लिए भाषा विशेषज्ञों की भारी आवश्यकता होती है।

4. हिंदी की अंतरराष्ट्रीय भूमिका

हिंदी न केवल भारत में, बल्कि विश्व के कई देशों में भी रोजगार के अवसर खोल रही है। मॉरीशस, त्रिनिदाद, सूरीनाम, फिजी, नेपाल आदि में हिंदी अध्यापन और अनुवाद कार्य व्यापक स्तर पर हो रहा है।

विदेशों में बसे प्रवासी भारतीय समुदाय से हिंदी का सांस्कृतिक और आर्थिक जुड़ाव है। संयुक्त राष्ट्र (UN) में हिंदी को आधिकारिक भाषा का दर्जा दिलाने की मांग भी बढ़ रही है, जिससे इसके अंतरराष्ट्रीय महत्व का प्रमाण मिलता है।

अनुवाद, पर्यटन और कॉर्पोरेट सेक्टर ने हिंदी को नए परिदृश्य में स्थापित किया है। यह भाषा अब केवल कक्षा या साहित्य तक सीमित नहीं, बल्कि उद्योग, सेवा और वैश्विक संपर्क का माध्यम भी बन गई है। रोजगार की दृष्टि से हिंदी में यह आयाम युवाओं के लिए अत्यंत संभावनाशील है।

सूचना-प्रौद्योगिकी और डिजिटल युग में हिंदी के अवसर

इक्कीसवीं सदी का समाज तकनीक और सूचना-प्रौद्योगिकी पर आधारित है। इंटरनेट, स्मार्टफ़ोन और सोशल मीडिया ने भाषा के प्रयोग को नया आयाम दिया है। इस डिजिटल क्रांति में हिंदी की भूमिका निरंतर बढ़ रही है। भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं का बड़ा हिस्सा हिंदीभाषी है, जिसके कारण सूचना-प्रौद्योगिकी और डिजिटल उद्योग में हिंदी के लिए रोजगार के नए द्वार खुले हैं।

1. इंटरनेट और हिंदी की लोकप्रियता : गूगल की एक रिपोर्ट (2017) के अनुसार भारत में इंटरनेट पर हिंदी उपयोगकर्ताओं की संख्या अंग्रेज़ी उपयोगकर्ताओं से कहीं अधिक तेज़ी से बढ़ रही है। यूट्यूब, फेसबुक, इंस्टाग्राम और ट्विटर (X) पर हिंदी कंटेंट निर्माताओं के करोड़ों अनुयायी हैं। हिंदी में ऑनलाइन समाचार पोर्टल और ब्लॉग साइट्स ने डिजिटल पत्रकारिता को नया आयाम दिया है।

2. डिजिटल कंटेंट निर्माण : यूट्यूब चैनल्स : शिक्षा, मनोरंजन, यात्रा, खानपान, स्वास्थ्य और तकनीकी विषयों पर हिंदी चैनलों के लाखों-करोड़ों सब्सक्राइबर हैं। ब्लॉगिंग और व्लॉगिंग : हिंदी ब्लॉगर और व्लॉगर स्वतंत्र रूप से रोजगार अर्जित कर रहे हैं। पॉडकास्ट और ऑडियो बुक्स : ऑडियो प्लेटफ़ॉर्म पर हिंदी कंटेंट की बढ़ती मांग ने नई संभावनाएँ पैदा की हैं।

3. सॉफ्टवेयर और ऐप लोकलाइजेशन

माइक्रोसॉफ़्ट, गूगल, अमेज़न और नेटफ्लिक्स जैसी कंपनियाँ अपने उत्पाद हिंदी में उपलब्ध करा रही हैं।

मोबाइल ऐप्स के लिए हिंदी इंटरफ़ेस की माँग बढ़ रही है। लोकलाइजेशन उद्योग में हिंदी भाषा विशेषज्ञों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

4. आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और हिंदी

मशीन ट्रांसलेशन (Google Translate, ChatGPT आदि) में हिंदी का तेजी से प्रयोग बढ़ रहा है।

वॉयस असिस्टेंट (Google Assistant, Alexa) हिंदी में उपलब्ध हैं।

AI और NLP (Natural Language Processing) के क्षेत्र में हिंदी विशेषज्ञों और भाषाविदों की मांग है।

5. ई-लर्निंग और ऑनलाइन शिक्षा

Byju's, Unacademy, Vedantu, Testbook जैसे प्लेटफ़ॉर्म हिंदी माध्यम से शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में हिंदी भाषा आधारित डिजिटल शिक्षा का प्रसार तेज़ी से हो रहा है। ई-बुक्स और ऑनलाइन पुस्तकालयों ने हिंदी लेखन को वैश्विक स्तर तक पहुँचा दिया है।

6. डिजिटल मार्केटिंग और हिंदी

कंपनियाँ सोशल मीडिया विज्ञापनों और मार्केटिंग अभियानों में हिंदी का प्रयोग कर रही हैं।

हिंदी में सर्च इंजन ऑप्टिमाइज़ेशन (SEO) और कंटेंट राइटिंग डिजिटल मार्केटिंग का बड़ा हिस्सा बन चुके हैं। हिंदी उपभोक्ता बाजार को लक्षित करने वाली कंपनियों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वे अपने विज्ञापन और ब्रांडिंग हिंदी में करें।

सूचना-प्रौद्योगिकी और डिजिटल युग ने हिंदी भाषा को नई पहचान दी है। यह केवल परंपरा और साहित्य की भाषा नहीं, बल्कि आधुनिक तकनीक और वैश्विक संपर्क की भी भाषा बन गई है। डिजिटल स्पेस में हिंदी ने अपने दम पर एक विशाल उपभोक्ता बाजार तैयार किया है। रोजगार और स्वरोजगार की दृष्टि से यह क्षेत्र युवाओं के लिए अत्यंत उपयोगी और संभावनाशील है।

चुनौतियाँ और संभावनाएँ

हिंदी भाषा आज रोजगार और सांस्कृतिक संदर्भ दोनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। हालांकि इसके विस्तार और उपयोग में अनेक संभावनाएँ हैं, इसके साथ ही कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी उपस्थित हैं। इस अध्याय में हम हिंदी भाषा के वर्तमान संदर्भ, उसकी चुनौतियाँ और भविष्य की संभावनाओं का विश्लेषण करेंगे।

1. चुनौतियाँ

(क) अंग्रेज़ी का प्रभुत्व : वैश्वीकरण और तकनीकी क्षेत्रों में अंग्रेज़ी का प्रभुत्व बढ़ा है। नौकरी और वैश्विक संचार के लिए अंग्रेज़ी को प्राथमिक माना जाता है। इससे हिंदी माध्यम छात्रों को प्रतियोगी परीक्षा और कॉर्पोरेट नौकरियों में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

(ख) डिजिटल और तकनीकी संसाधनों की कमी : हिंदी में डिजिटल टूल्स और कंटेंट सीमित हैं। सॉफ्टवेयर, ऐप्स और वेबसाइटों में अंग्रेज़ी का वर्चस्व है। AI और मशीन ट्रांसलेशन के क्षेत्र में हिंदी को पर्याप्त डेटा और संसाधनों की आवश्यकता है।

(ग) मानकीकरण और एकरूपता का अभाव : हिंदी की विविध बोलियाँ और क्षेत्रीय भिन्नताएँ भाषाई मानकीकरण को चुनौती देती हैं। अनुवाद और तकनीकी लेखन में एकरूप भाषा न होने से कार्यक्षमता प्रभावित होती है।

(घ) सामाजिक और आर्थिक अवहेलना : कुछ क्षेत्रों में हिंदी को रोजगार और शिक्षा के लिए कम महत्त्व दिया जाता है। सरकारी और निजी संस्थानों में अंग्रेज़ी आधारित पदों को अधिक मान्यता दी जाती है।

2. संभावनाएँ

(क) शिक्षा और शोध : हिंदी शिक्षण और शोध का क्षेत्र लगातार बढ़ रहा है। विश्वविद्यालयों और ऑनलाइन शिक्षा प्लेटफॉर्म में हिंदी अध्यापन और सामग्री निर्माण के अवसर हैं।

(ख) मीडिया और पत्रकारिता : डिजिटल मीडिया, ब्लॉगिंग, व्लॉगिंग, पॉडकास्ट और हिंदी टीवी चैनलों में रोजगार की अपार संभावनाएँ हैं। हिंदी समाचार पत्र और पत्रिकाएँ ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों तक पहुँच बनाकर रोजगार का विस्तृत क्षेत्र प्रदान कर रही हैं।

(ग) अनुवाद और कॉर्पोरेट क्षेत्र : बहुराष्ट्रीय कंपनियों और सरकारी संस्थानों में हिंदी-अंग्रेज़ी अनुवादक और हिंदी विशेषज्ञ की आवश्यकता बढ़ रही है। पर्यटन उद्योग और हॉस्पिटैलिटी सेक्टर में हिंदी की उपयोगिता रोजगार को स्थिर और दीर्घकालीन बनाती है।

(घ) डिजिटल युग और तकनीकी संभावनाएँ : सोशल मीडिया, डिजिटल कंटेंट निर्माण, लोकलाइजेशन, AI और NLP में हिंदी भाषा की मांग तेजी से बढ़ रही है। हिंदी माध्यम से स्वरोजगार के अवसर भी सीमित नहीं हैं, बल्कि स्वतंत्र उद्यमिता और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म इसे और व्यापक बना रहे हैं।

निष्कर्ष :

हिंदी भाषा का महत्व केवल सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि आर्थिक, रोजगार और तकनीकी दृष्टि से भी बढ़ता जा रहा है। साहित्य से प्रारंभ होकर शिक्षा, मीडिया, अनुवाद, कॉर्पोरेट और डिजिटल क्षेत्र तक हिंदी ने अपनी भूमिका मजबूत की है। चुनौतियों के बावजूद हिंदी युवाओं के लिए रोजगार, स्वरोजगार और वैश्विक संपर्क के अवसर प्रदान करती है। आवश्यक है कि भाषा को सही दिशा में संवर्धन, मानकीकरण और डिजिटल संसाधनों का विकास किया जाए। इस प्रकार हिंदी भाषा साहित्य और रोजगार दोनों क्षेत्रों में सशक्त, प्रासंगिक और बहुआयामी बनकर उभर रही है।

संदर्भ :

1. प्रसार भारती. (न.वि.). *वार्षिक प्रकाशन*.
2. शर्मा, रामविलास. (1975). *हिंदी भाषा और साहित्य का विकास*.
3. सिंह, नामवर. (न.वि.). *हिंदी के भविष्य की भूमिका*. प्राप्त www.bbc.com
4. अज्ञेय. (न.वि.). *साहित्य और समाज*.
5. सहाय, रघुवीर. (न.वि.). *भाषा और सत्ता*.
6. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार. *राजभाषा विभाग की वार्षिक रिपोर्ट*. https://rajbhasha.gov.in/hi/annual-programme-and-reports
7. यूनेस्को. (2003). *World Languages in Cyberspace*.
8. गूगल & केपीएमजी. (2017). *Indian Languages: The Digital Future*.

आधुनिक हिन्दी कविता में स्त्री मुक्ति के स्वर

वेदप्रकाश भारती*
kumarrupak993@gmail.com

शोध सारांश:

आधुनिक हिन्दी कविताओं में स्त्री अपने अस्तित्व, अस्मिता और अधिकारों की माँग करती हुई दिखाई देती है। आधुनिक काल की स्त्री स्वर का यह परिवर्तन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रतिफल है। हिंदी कविता में स्त्री की बात बहुत पहले से हो रही है। मगर उस बात पर गौर करने की जरूरत है कि किस रूप में स्त्री की बात हो रही थी और किन संदर्भों में बातें हो रही थी। एक बात मैथिलीशरण गुप्त भी कह रहे थे। गुप्त जी कहते हैं- "अबला जीवन हाय तुम्हारी कहानी आंचल में है दूध आंखों में पानी" यह कौन स पक्ष है जिसको समझने की जरूरत है। गुप्त जी कविता में जो बात कर रहे हैं वो जिस पक्ष को उजागर करना चाह रहे हैं, क्या ऐसी ही नारी होनी चाहिए? पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने महिलाओं पर भरपूर अत्याचार, जुल्म, शोषण और दमन किया और चाहता है कि स्त्री चुप-चाप इसे सहकर एवं आँसू बहाकर रह जाए, मगर ऐसा नहीं हुआ तथा अंधेरा को छटना था और सुबह होनी थी। वही हिन्दी कविता में भी हुआ। तुलसीदास भी कविता किए थे। तुलसीदास कैसा कविता कर रहे थे उसको देखने की जरूरत है। वो रामचारितमानस में लिखते हैं- "ढोल, गवार, शूद्र, पशु, नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी" आगे जयशंकर प्रसाद लिखते हैं- "नारी तुम केवल श्रद्धा हो" इसको भी समझने की जरूरत है कि नारी को ऐसा क्यों प्रस्तुत कर रहे थे, इसके पीछे की मानसिकता क्या है?

बीज शब्द: *स्त्री, हिन्दी कविता, पितृसत्ता, सोच, विचार, अधिकार, संघर्ष*

भारतीय समाज ब्राहमणवादी और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के द्वारा सदियों से चला आ रहा है और इस व्यवस्था में स्त्रियों की क्या दशा है वह इतिहास लेकर आज तक हम देख सकते हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि महिलाओं की जो आज बदतर स्थिति है उसके लिए ब्राहमणवादी और पितृसत्तात्मक व्यवस्था ही पूरी तरह से जिम्मेदार है। सीमन तो इसी संदर्भ में कही है "स्त्रियां होती नहीं बना दी जाती है।" अनामिका वृहत्तर समाज की गति व विडंबनाओं को एक स्त्री की नजर से देखना और परखना चाहती है। अनामिका कहती हैं-"स्त्री समाज एक ऐसा समाज है, जो वर्ग, नस्ल, राष्ट्र आदि संकुचित सीमाओं के पार जाता है और जहां कहीं दमन है-चाहे जिस वर्ग, जिस नस्ल, जिस आयु, जिस जाति की स्त्री त्रस्त है-उसको अँकवार लेता है। बूढ़े-बच्चे-अपंग-विस्थापित और अल्पसंख्यक भी मुख्यतः स्त्री ही हैं-यह मानता है।"[1]

इस समाज में स्वतंत्रता के बाद तो कुछ स्त्रियों में सुधार हुई है मगर अभी भी अधिकांश स्त्रियां की वही बदतर स्थिति है खासकर वो जो गांव में रहती है, इन महिलाओं की हालत वही है जो सदियों पहले हालत थी। चंद स्त्रियां के हालत बदलने को हम संपूर्ण स्त्री में बदलाव आ गया या नहीं कर सकते है। यदि कोई इसे मानने को तैयार भी है वो यदि हकीकत को नहीं देख पा रहा है तो इसपर अदम गोंडवी कहते हैं- "तुम्हारी फाइलों में गांव का मौसम गुलाबी है, यह आँकड़े झूठे हैं यह दावा किताबी है" और वो आगे कहते हैं- "कोठियों से मुल्क़ के मेआर को मत आँकिए/असली हिंदुस्तान तो फुटपाथ पर आबाद है"[2]

मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद आदि रचनाकार स्त्रियों को अपनी रचना में तो जगह दे रहे थे मगर उस स्त्री को जो समाज के यथार्थ से बिल्कुल अलग है यानि समाज की सच्चाई से कोसों दूर है। यह वह स्त्री है जो कल्पना में थे एवं जो मिथक में थे। इन परंपरावादी कवियों की चिंता समाज की चिंता नहीं है बल्कि परंपरा की रक्षा कैसे हो सके, वो समाज में बरकरार कैसे रह सके ये इन परंपरावादी कवियों की चिंता थी। पुरुष कवियों ने कैसे मिथक और काल्पनिक पात्रों के सहारा लेकर रचनाएं कर रहे थे इसलिए असली महिलाओं का दर्द बयां नहीं पा रहा था या यूं कहें यथार्थ से दूर था। तस्लीमा नसरीन स्त्री अधिकारों की

* **शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा**

जोरदार आवाज़ उठाते हुए कहती हैं- "मर्दों के साथ सामाजिक सम्पर्क भले हो, लेकिन हमारा परिचय मर्दों की माँ, बहन, बेटी या दादी, नानी, जेठी काकी न होकर मेरा पृथक अस्तित्व है। हम औरतें, मर्द या मर्द शासित समाज की सम्पत्ति नहीं हैं, हम इंसान हैं।"[3]

कविता में एक तरफ स्त्रियां अपनी लेखन कर अपने को अभिव्यक्त कर रही थी फिर वहीं दूसरी ओर पुरुष रचनाकार भी स्त्री जीवन को काफी संवेदनशीलता से अपनी कविताओं में उसे चित्रित कर थे। निराला ने तोड़ती पत्थर में मजदूर स्त्री के दर्द और महत्व को कविता में दर्ज किया हैं। हिन्दी कविता में इनसे पहले स्त्रियों का दया ममता त्याग श्रद्धा आदि रूप में जिक्र हुआ करता था। उसके कठीण संघर्ष को कभी अहमियत दिया ही नहीं गया, ना उसको कविताओं में स्थान दिया गया। निराला लिखते हैं-

"कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन प्रिय, कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार :—
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार।"[4]

रमाशंकर यादव विद्रोही अपनी कविता के माध्यम से स्त्री पर हो रहे सदियों से अत्याचार को पहचान करते है और उसको अपनी कविता में दर्ज करते है सबसे तेज और तीखा रूप में। विद्रोही जी ब्राह्मणवादी और पितृसत्ता को खुलकर चुनौती देते है और शास्त्र को भी वो खारिज करते है उसके लिए न्याय की बात करते है। विद्रोही जी कहते है-

"इतिहास में वह पहली औरत कौन थी
जिसे सबसे पहले जलाया गया
मैं नहीं जानता
लेकिन जो भी रही होगी
मेरी माँ रही होगी
लेकिन मेरी चिंता यह है कि
भविष्य में वह आख़िरी औरत कौन होगी
जिसे सबसे अन्त में जलाया जाएगा
मैं नहीं जानता लेकिन जो भी होगी
मेरी बेटी होगी मैं यह नहीं होने दूँगा।"[5]

सुमन राजे स्त्री के प्रश्न को और उनके अनुभव और वास्तविकता की शक्ति का महत्त्व देती है। वो कहती है- "सवाल अनुभव की प्रमाणिकता का नहीं अनुभव की विश्वसनीयता और संप्रेषणीयता का उठाया जाना चाहिए और उसके रचनात्मक उत्तर खोजे जाने चाहिए।" [6]

स्त्री की मुक्ति सिर्फ स्त्री का मुक्ति नहीं है बल्कि संपूर्ण मानवता की मुक्ति है। जिसमें स्त्री के सम्मान पूर्वक जीवन जीने और मानवीय गरिमा का अर्थ प्रस्तुत करना है। इसी विचार को अनामिका व्यक्त करती है वह कहती है- "स्त्री मुक्ति का आशय है मानव मुक्ति। जैसे एक स्त्री को शिक्षित करने का आशय है पूरे परिवार का वैचारिक मानसिक बौद्धिक परिष्कार, स्त्री को मानसिक बौद्धिक आर्थिक सांस्कृतिक विकास के लिए यौन शोषण, आर्थिक दोहन और दैहिक मानसिक प्रताड़नाओं से मुक्त करने में मानव-भाव की मुक्ति के सूत्र हैं। स्त्री मुक्ति ने अपने आंचल का परचम फहराया है जिसके छांव तले दुनिया के सारे निर्धन निर्बल निराश्रय अनादृत अपनी साझा मुक्ति की राह बना सकते हैं।"[7]

भारतीय समाज में महिलाओं की सामाजिक, राजनीति, आर्थिक, संवैधानिक स्थिति कहां है। इस ज्वलंत मुद्दे पर में बात करना होगा। इसके हालत को उजागर करना होगा कि साहित्य में क्या लिखा गया है और यथार्थ में स्त्री की हालत क्या है?

इस पर संपूर्ण समाज, साहित्य, शासन, सत्ता आदि को ध्यान देने की जरुरत है। सिर्फ अभिजात एवं बौद्धिक वर्ग की स्त्रियों की मुक्ति समाज की सम्पूर्ण स्त्री की मुक्ति नहीं हो सकती है। स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के पूरक है एवं दोनों को एक दूसरे की जरूरत है। इसलिए दोनों को समान रुप से देखने की जरूरत है। भारत समाज जिस तरह से ब्राहमणवादी और पितृसत्तात्मक सोच के गोद में विकास हुआ है, इसमें पुरुषों को विशेष ख्याल रखा गया है और इसके हक और अधिकार का भी। ठीक उसी तरह हमें स्त्री के भी हक और अधिकार को ख्याल रखना होगा, उसके अस्मिता का भी सम्मान करना होगा। स्त्री के हक, अधिकार, स्वतंत्रता, अस्मिता का बात करना है स्त्री विमर्श जो पितृसत्ता व्यवस्था पर तीखा प्रहार करती है। मृणाल पांडे लिखती हैं "नारीवाद पुरुषों का नहीं उनकी मानवीय घटाने वाले उस छद्म मुखौटे का प्रतिकार करता रहा है। जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है और उसके पीछे झूठी अहमन्यता और उत्पीड़क प्रवृत्ति के अलावा कुछ नहीं है। स्त्री विमर्श का मूल उद्देश्य, स्त्री की मुक्ति से है। स्त्री, पुरुष से मुक्ति नहीं चाहती है। वह तो केवल उस व्याख्या और मानसिकता से मुक्ति चाहती है, जो उसे प्रताड़ित करती है।"

सिमोन स्पष्ट कहती है कि "औरत को औरत होना सिखाया जाता है और बनी रहने के लिए उसे अनुकूल किया जाता है। तथ्यों के विश्लेषण से समझ में आएगा कि प्रत्येक मादा मानव जीव अनिवार्यता एक औरत नहीं है, यदि वह औरत होना चाहती है, तो उसे और तपने की रहस्यमय वास्तविकता से परिचित होना पड़ेगा।"[8]

भारतीय समाज में स्त्री स्वतंत्रता का विचार शुरुआत करने का श्रेय प्रगतिशील पुरुष को जाता है क्योंकि पुरुषों ने इतिहास में हो रहे स्त्री पर अत्याचार, अन्याय, शोषण आदि के खिलाफ आवाज उठाने का काम किया। जिसमें राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ज्योतिबा फूले, पेरियार, डॉक्टर भीमराव अंबेडकर जैसे पुरुष थे। इनके सहयोग से सती प्रथा, बाल विवाह पर रोक लग पाया और विधवा पुनर्विवाह की शुरुआत हो सकी। आगे ज्योतिबा फूले के ही मदद से स्त्रियों को शिक्षा मिला शुरु हुआ तथा अंबेडकर जी के ही वजह से संविधान में स्त्रियों को के हक और अधिकार का प्रावधान हो पाया।

नारी की स्वाधीनता की चर्चा करते हुए निराला ने लिखा- "महिलाओं की स्वतंत्रता ही उनके जीवन की सब दिशाओं का विकास करेगी। हमें सिर्फ अपनी महिलाओं की स्वतंत्रता का स्वरूप बदलना है और यह भी सत्य है कि पुरुषों के निरादर करने पर भी स्त्री-शक्ति का विकास रूक नहीं सकता, न वह अब तक कहीं रुका है। चूंकि पुरुष निराधार स्त्रियों की उपेक्षा करने में इस देश में अधिक समर्थ है इसलिए हम स्त्री-स्वतंत्रता के कार्य में पुरुषों से मदद करने के लिए कहते हैं क्योंकि नारी ही भावी राष्ट्र की माता है। मूर्ख, पीड़ित और पराधीन माता से तेजस्वी स्वतंत्र और मेधावी बालक-बालिकाएँ नहीं पैदा हो सकती, जिससे राष्ट्र का सर्वाश जर्जर हो जाता है।"[9]

समाज और साहित्य दोनों एक दूसरे को प्रभावित करता है, इसलिए जब तक समाज में स्त्री स्वाधीन नहीं होगी तब तक साहित्य में भी उसके स्वाधीन की बात नहीं आएगी और तब तक साहित्य में स्वाधीन की बात नहीं आएगी तथा स्त्री को स्वाधीन बनाने में कामयाब नहीं हो सकते। यानी स्त्री की स्वाधीनता का एक क्षेत्र साहित्य भी है। स्त्री लेखन अपनी मूल स्थापना का अंतिम लक्ष्य इस ब्राह्मणवादी, पितृसत्तात्मक व्यवस्था की पहचान कर साहित्य और समाजशास्त्र दोनों में वह अपना स्थान बनाता है। यह "पारंपरिक माइंडसेट से लड़ने की कोशिश में परंपरा और माइंडसेट दोनों की ताकत को एक ठोस सामाजिक- मानसिक सच्चाई और चुनौती के रूप में सतह पर लाता है।"[10]

हिंदी कविता में हम देखते हैं स्त्री लेखन का शहर काफी मजबूती से उभरा है। स्त्री रचनाकारों ने अपनी अनुभव, पीड़ा, आकांक्षा और स्वप्न को बखूबी साहित्य में दर्ज किया है। स्त्री लेखन के महत्व पर महादेवी वर्मा लिखती हैं "पुरुष के लिए नई अनुमान है परंतु नारी के लिए अनुभव। अतः अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र हमें दे सकेगी वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरांत भी शायद ही दे सके।"[11]

कविता में स्त्री रचनाकार ने अपने दर्द और अपने पीड़ा को बखूबी और सार्थक रूप में चित्रित किया है। जिसे वो सदियों से पीड़ा को झेल रही है उसके साथ जी रही है। अनामिका लिखती है-

"पढ़ा गया है हमको जिसे पढ़ा जाता है कागज
बच्चों की फटी कोपियों का
चनाजोर गरम के लिफाफे बनने के पहले

सुना गया हमको यों ही उड़ते मन से
जैसे सुने जाते हैं फिल्मी गाने
सस्ते कैसेटों पर ठसाठस ठूसी हुई बस में।"[12]

भारतीय ब्राह्मणवादी समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्थाओं से सवाल करते हुए निर्मला पुतुल तीखे प्रश्न पूछती है –

"क्या हूं मैं तुम्हारे लिए मात्र एक तकिया
थके मांदे आओ और जिस पर सिर टीका दो
एक खूंटी जिस पर ऊब उदासी और
थकान से भारी कमीज टांग दो।
एक चादर जिसे जब चाहे,
जहां चाहे बिछा दिया जाए।"[13]

समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्रियों का हमेशा इस्तेमाल किया है। उसके द्वारा किए गए कार्यों को ना नाम दिया और ना उसका सम्मान दिया। इस व्यवस्था ने स्त्रियों को सिर्फ यौन सुख और घरेलू कार्यों तक ही सीमित रखा। स्त्री की यौन सुख की बात को अगर देखें तो वह चित्रकला के रूप में देखने को मिलता है जैसे अजंता और एलोरा में जो नारी के चित्रण किया गया है एवं जो उसका वासनात्मक रूप में दिखाए गए हैं। उन्हें देखकर पुरुष समाज में वासना के रंग तो घुलता है, मगर उसके लिए सम्मान का भाव पैदा नहीं होता। सुशीला टाकभौरे अपनी कविता के माध्यम से इसका प्रतिरोध करती है। नारी सृष्टि है मां, पुत्री, बहन, पत्नी के रूप में नारी जीवन धन्य है और नारी जीवन पर कवित्री गर्व करती है। वह युग चेतना कविता में लिखती है-

"मैं संशित हूं
पर गर्वित भी
मैं गर्भशीला
भविष्य के एक सत्य की
मां बनना चाहती हूं
मैं बंध्या नहीं
ना ही पत्नी हूं
नपुंसक काल की"[14]

सुशीला टाकभौरे संपूर्ण बदलाव के लिये संघर्ष करती है। वे मानती हैं कि स्त्रियों के दृष्टिकोण से न इतिहास सही है और न साहित्य। इतिहास और साहित्य की रचना तो सदियों से सिर्फ पुरुषों ने ही किया है और ये वो पुरुष है जो परंपरावादी, पितृसत्तात्मक सोच से ग्रसित है। जिसने औरत को सिर्फ गुलाम बनाकर ही रखना चाहा। स्त्रियों की मुक्ति या स्वतंत्रता की नाम सुनते ही पुरुष समाज मे खलबली जैसी मच जाती है और पुरुष भयभीत हो जाते है। अपने भयभीत सूरत को छुपने के लिए षड्यन्त्र रचना शुरू कर दिया। स्त्री की आजादी की बात सुनते ही स्त्रियों के लिए अपमान भरे शब्द का इजात करना शुरू कर दिया और उसे व्यवहार में ले आया। राजनीति में वे धर्म की भूमिका को अस्वीकार करती हैं। 'नया इतिहास' शीर्षक कविता में कवयित्री इसी संघर्ष को रेखांकित करती है–

"किसने की थीं यहां की रचनाएं
धर्म, नीति, समाज की बातें
क्यों रह गया सब एकांगी
यह इतिहास अधूरा है।
परिभाषा धर्म की बदलनी है
राजनीति से धर्मनीति अलग करनी है
बंटवारे समाज के सभी बेढंगे

कथनी-करनी में बहुत अन्तर है।
बात छोटी हो या बड़ी
सब की अपनी बड़ी महत्ता है
निकालना है हर जगह से क्षेपक को
स्वार्थ की विद्रूपता हटाना है।"[15]

यह प्रश्न स्त्री की स्वयं की तलाश और पहिचान का है, जो नारी-मुक्ति का अहम प्रश्न है। स्त्री-जीवन को नीर भरी दुख की बदली कहा जाता है। पर वह दुख की बदली बनकर नहीं रहना चाहती। इससे वो आगे नुकलकर अपनी पहचान के जिन पसंद करती है। यथा–

"सोचती हूं
कौन हूं मैं?
मेरा अस्तित्व है क्या?
मैं कहां से और क्यों आयी हूं
धीरे-धीरे क्या मैं भी खाक हो जाऊंगी
क्या मैं भी चुपचाप
उनके पांवों की धूल हो जाऊंगी?[16]

सविता भार्गव कविता में व्यंग के द्वारा स्त्री जीवन की विवशता को इंगित करती है और वो कहती है -

"माफ कर दो मुझे
थके हारे दफ्तर से लौटे तुम
और मैं नहीं थी चाय नाश्ते के साथ मुस्कुराती हुई
नहीं पहुंच पाई घर तुम्हारे पहुंचने से पहले.....
माफ कर दो मुझे नहीं छुड़ा पाई तुम्हारी कमीज का दाग
रगड़ते रगड़ते फूट गया मेरे अंगूठे का फफोला
गलती मेरी ही थी
हड़बड़ में रोटी की जगह कर लिया था
गरम गरम तवा"[17]

वाजदा खान कहती है कि अपने पंखों का विस्तार पाने के लिए अब हम भूखे-प्यासे रहकर पूरे ब्रहमांड की परिक्रमा करने के लिए भी तैयार हैं। अपनी पहचान के जीना और स्वतंत्रता के रहना पसंद है इसलिए वो कहती है-

"मैं इंतजार कर सकती हूं सदियों तक
अपने शब्द का अर्थ पाने के लिए
मैं भूखी रह सकती हूं अपने सपनों को
कथा सूत्र में पिरोने के लिए
मैं परिक्रमा कर सकती हूं
ब्रहमांड के इस छोड़ तक"[18]

आज स्त्री रचनाकार अपनी कलम से मर्दवादी समाज को पितृसत्तात्मक संस्कारों को गहरी चोट कर रही है और सवाल उठा रही है उसका प्रतिरोध कर रही है। स्त्री अपने जीवन के बंधन को समझा और उसे तोड़ने के संघर्ष कर रही है, जैसे-जैसे बंधन का एहसास होता जा रहा है वैसे वैसे बंधन से मुक्त की आकांक्षा कर रही है। कात्यायनी कहती है-

यह स्त्री सब कुछ जानती है
पिंजरे के बारे में

जाल के बारे में
रहस्य है इस स्त्री की उलटबांसियां
इन्हें समझो/इस स्त्री से डरो"[19]

और

"मैं औरत हूं / नहीं है मेरे पास दो चेहरे
दो मुंह और दो तरह का जीवन
मैं जो हूं- हूं जो नहीं हूं नहीं हूं
मुझे अफसोस नहीं कि मैं
सीता सावित्री की सांचे मैं फिट नहीं बैठती
बस कितना काफी है कि मैं मनुष्य हूं"[20]

निष्कर्ष: स्त्री-जीवन की दर्द, पीड़ा, तनाव, संत्रास, मानसिक शोषण, उत्पीड़न, अन्याय व अत्याचार आदि जो उस पर हो रहे एवं स्त्री के घर और बाहर भी अपनी जिम्मेदारी को बखूबी और प्रभावकारी तरीके से पूरा करती है। स्त्री रचनाकारों की कविताएं में यथार्थ का चित्रण देखने को मिलता हैं। संवेदनशील मनुष्य और कवयित्री होने के कारण सभी अपनी संवेदना एवं चिंता समाज के उपेक्षित, पीड़ित एवं शोषितों के प्रति है। स्त्री और पुरुष के बीच समानता स्थापित करना ही लक्ष्य है। हिन्दी कविता में स्त्री संघर्ष करके समानता, लोकतंत्र एवं सामाजिक न्याय को कायम करने के लिये है। दोनों एक दूसरे के पूरक के रूप में समाज में रहे और समाज एवं देश को प्रगति एवं खुशियों की राहों में लेकर आगे बढ़े।

संदर्भ :

1. अनामिका. *स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 23, 24.
2. गोंडवी, अदम. (सं. ओम निश्चल). (2023). *धरती की सतह पर*. पृ. 44.
3. नसरीन, तसलीमा. *औरत को कोई देश नहीं*. पृ. 44.
4. निराला. (सं. रमेशचंद्र शाह). (2010). *निराला संचयिता*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 107.
5. यादव, रमाशंकर. (विद्रोही). (2018). *नई खेती*. गाजियाबाद: नवारुण प्रकाशन. पृ. 41.
6. राजे, सुमन. *हिंदी साहित्य का आधा इतिहास*. नई दिल्ली: भारती ज्ञानपीठ. पृ. 308.
7. *वर्तमान संदर्भ*. पृ. 59.
8. बोउवार, सीमोन द. (अनु. प्रभा खेतान). (1990). *स्त्री उपेक्षिता*. नई दिल्ली: हिंदी पॉकेट बुक्स. पृ. 21.
9. निराला. *निराला रचनावली भाग 6*. पृ. 361. (प्रकाशक विवरण उपलब्ध नहीं).
10. अग्रवाल, रोहिणी. (2011). *स्त्री लेखन स्वप्न और संकल्प*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 5.
11. वर्मा, महादेवी. (2010). *श्रृंखला की कड़ियां*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 63.
12. अनामिका. (2009). *खुरदुरी हथेलियां*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन. पृ. 13.
13. पुतुल, निर्मला. (अनु. अशोक सिंह). (2004). *अपने घर की तलाश में*. दिल्ली: रमणिका फाउंडेशन. पृ. 4.
14. टाकभौरे, सुशीला. (1995). *मैं सृजनशीला*. पृ. 57.
15. टाकभौरे, सुशीला. (1994). *यह तुम भी जानो*. नागपुर: शरद प्रकाशन. पृ. 47.
16. तिलक, रजनी. (2000). *पदचाप*. दिल्ली: सेन्टर फार अल्टरनेटिव दलित मीडिया (कदम). पृ. 16.
17. भार्गव, स. *किसका है आसमान*. पृ. 21.
18. खान, वाजदा. (2000). *माफ करना दोस्त*. (समकालीन भारतीय साहित्य). पृ. 31.
19. कात्यायनी. *दुर्ग द्वार पर दस्तक*. पृ. 15.
20. जायसवाल, रंजना. (2009). *जब मैं स्त्री हूं*. नई दिल्ली: नयी किताब. पृ. 32.

हिन्दी भाषा तथा भारतीय भाषाओं का NEP (2020) में महत्व

प्रो. (डॉ.) राजमोहिनी सागर*
rajmohini.hrc@gmail.com

सारांश :

भारत बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है जहाँ भाषाएँ केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि संस्कृति, विचार, और परंपरा की वाहक हैं। हिन्दी सहित भारतीय भाषाएँ राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समावेशन, और सांस्कृतिक विविधता की संवाहक हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) में भाषाओं के संरक्षण, संवर्धन और शिक्षण के माध्यम के रूप में मातृभाषा या स्थानीय भाषा के उपयोग पर विशेष बल दिया गया है। इस नीति में त्रिभाषा सूत्र के तहत हिन्दी, अंग्रेजी और क्षेत्रीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर भाषाई संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही डिजिटल शिक्षा, अनुवाद तकनीक, और भारतीय भाषाओं में शिक्षण सामग्री की उपलब्धता पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है। इस नीति का मूल उद्देश्य भारत की भाषाई विविधता को बनाए रखते हुए भारतीय भाषाओं को सशक्त, व्यवहारिक और वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाना है।

मुख्य शब्द :

हिन्दी भाषा, भारतीय भाषाएँ, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, त्रिभाषा सूत्र, मातृभाषा, बहुभाषावाद, शिक्षा का माध्यम, भाषाई विविधता, संस्कृति, भाषा संवर्धन।

भारत एक बहुभाषा भाषी विशाल देश है। इस विशाल राष्ट्र में अनेक भाषाएँ और उपभाषाएँ हैं। ये सभी भाषाएँ और संस्कृतियाँ मिलकर राष्ट्रीय एकता, भावात्मक एकता और देश की अखंडता को बनाए रखने के लिए अनेकता में एकता स्थापित करती हुई एक अद्वितीय राष्ट्र का निर्माण करती हैं।

भारत भाषायी दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। यहाँ हिन्दी, अंग्रेजी और अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ एक साथ बोली जाती हैं। भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं है बल्कि संस्कृति की पहचान, बौद्धिक विकास तथा सामाजिक समावेशन का आयाम भी है।

भारत बहुभाषाई समाज है। यही भाषाएँ लोगों को एकजुट करती है। अपने देश की विभिन्न भाषाओं को सीखना, समझना एवं इनके माध्यम से समृद्ध साहित्य, संस्कृति, ज्ञान एवं विचारों को जानना प्रत्येक नागरिक का कत्र्तव्य हैं

भाषा विचारों, भावों के आदान-प्रदान का माध्यम है। भाषा के माध्यम से ही हम सभी अपने अनुभव को सांझा करते हैं। यहाँ भाषा एक पीढ़ी से दूसरी तक, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक और ज्ञानी से आम जन तक पहुँचने का माध्यम हे। आचार्य विनोबा भावे जी का कहना है - ''यदि मैंने हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं का सहारा न लिया होता तो कश्मीर से कन्याकुमारी तक और आसाम से गुजरात तक गाँव-गाँव जाकर मैं भूदान और ग्रामदान आंदोलन का क्रांतिकारी संदेश जनमानस तक नहीं पहुँचा सकता था।''

भारत विविध संस्कृतियों, परम्पराओं और भाषाओं का देश है। यहाँ अनेक भाषाएँ बोली जाती है। भारत में संविधान द्वारा 22 भाषाओं को अधिकारिक मान्यता दी गई है जिन्हें आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। इन भाषाओं में हिन्दी, अंग्रेजी, बंगाली, तमिल, तेलगु, मराठी, गुजराती, उर्दू, पंजाबी आदि आती हैं। हिन्दी देश की राजभाषा है, क्षेत्रीय भाषा और

* **हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

जीवन की भाषा है, जिनमे संगीत गूंजता है। इनके माध्यम से लोग एक दूसरे से अपनी मातृ भाषा में बातचीत करते हैं, अपने संस्कारों, मूल्यों की धरोहर को पीढ़ी दर पीढ़ी संग्रहित करते हैं। भारतीय संविधान में भाषायी विविधता को स्वीकार करते हुए सभी भाषाओं को सम्मान दिया गया है।

महात्मा गांधी जी कहते हैं - 'राष्ट्रभाषा के बिना देश गूंगा है' तो रवीन्द्रनाथ टैगोर जो लिखते हैं कि, 'भारतीय भाषाएँ नदियाँ है और हिन्दी महानदी।'

भाषाएँ राष्ट्र का प्राणाधार होती हैं। वह उस राष्ट्र को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से प्रतिनिधित्व ही नहीं करती अपितु आपकी वाणी बनकर परस्पर सह-संबंध स्थापित करती है। अतः गतिशील भाषाएँ ही राष्ट्र की जीवतंता का प्रमाण होती है। किन्तु दुर्भाग्य से भारतीय समाज अपनी भाषा और बोलियों के प्रति सचेत नहीं रहा है जिसके कारण सैकड़ों भाषएँ ओर बोलियाँ विलुप्त हो गई हैं ओर सैकड़ों विलुप्ति के कगार पर है अतः भाषाओं के अस्तित्व पर आए इस भयानक संकट से निपटने के लिए किस भी राष्ट्र की भाषाई नीतियों का दूरदर्शी होना अत्यंत आवश्यक है। वर्ष 2020 में आई राष्ट्रीय शिक्षा नीति इसी दूरदर्शी सोच की परिणिति है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) एक ऐतिहासिक घटना है। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति को वर्ष 1992 (एनपीई 1986/92) में संशोधित किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य प्रारंभिक जीवन की देखभाल और शिक्षा का सार्वभौमिकरण के साथ-साथ भारतीय भाषाओं को सीखने पर भी जोर देना था।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का कथन है - "कोस कोस पर बदले वाणी, चार कोस पर पानी', भारत के भाषाई वैविध्य एवं समृद्धता को दर्शाता है। भारत में राज्यों की मुख्य भाषा के साथ-साथ स्थानीय स्तर पर अनेक बोलियाँ प्रचलन में रही है। इनके संवर्धन हेतु सर्वप्रथम कोठारी आयोग ने त्रिस्तरीय भाषा सूत्र का सुझाव दिया था जिसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में स्वीकार करके लागू भी किया गया किन्तु दुर्भाग्यवश इतने वर्षों बाद भी यह न तो पूरी तरह से लागू ही हो पाया और न ही अपने वास्तविक उद्देश्यों को प्राप्त कर पाया है।

भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) में प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षण हेतु इसी त्रि-भाषाई सूत्र को दृढ़ता से पालन करने की अनिवार्यता पर बल दिया गया है। इसमें एक भारतीय भाषा हिन्दी के साथ-साथ विदेशी भाषा अंग्रेजी तथा स्थानीय भाषा या बोली में शिक्षण की व्यवस्था का प्रावधान किया गया है। इस तरह से राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारत की मुख्य भाषा हिन्दी के साथ-साथ अन्य स्थानीय भाषाओं / बोलियों के संवर्धन की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी गई है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) के तहत प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अनिवार्य किया कि सभी भाषाएँ राष्ट्रीय भाषाएं है।' शिक्षा मंत्रालय ने सभी राज्यों को राष्ट्रीय डिजिटल बुनियादी ढांचे, विशेष रूप से राष्ट्रीय डिजिटल शिक्षा वास्तुकला (NDIAR) के एक भाग के रूप में एक छात्र पंजीकरण पोर्टल की स्थापना के प्रयासों का नेतृत्व करने और इसके संस्थाओं को NIRF और NAAC ढांचे के तहत लाने का निर्देश दिया है। भारत का शिक्षा मंत्रालय इसे शिक्षा और उद्यमिता में विश्वगुरु बनाने के लिए हर संभव सहायता कर रहा है।

भारत की भाषाई विविधता की आवश्यकता -

- भारत में बहुभाषावाद को बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा हिन्दी के अतिरिक्त सभी भारतीय भाषाओं और मातृभाषाओं को उनकी गिरती हुई वर्तमान स्थिति के बावजूद बढ़ावा देना।
- चार वर्षीय एकीकृत बी.एड. के माध्यम से कुशल शिक्षकों के विकास की अनुशंसा।
- त्रिभाषा सूत्र की निरंतरता और द्विभाषी और त्रिभाषी प्रारूप में शिक्षण अधिगम।
- ऑलनाइन भाषा पाठ्यक्रम आरंभ करना।

- अनुवाद के लिए आधुनिक तकनीक का उपयोग, बच्चों का सर्वांगीण विकास करना तथा भाषा केन्द्रों की स्थापना का समन्वय

इतना ही नहीं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शैक्षणिक सामग्रियों की तैयारी, शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषाओं को अपनाने, प्रौद्योगिकी के विवेकपूर्ण उपयोग और सभी भाषाओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण के विकास और उनकी उल्लेखनीय एकता के माध्यम से भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने की परिकल्पना करता है।

भविष्य की योजनाएँ

नवम्बर 2021 में शिक्षा मंत्रालय में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आर.एस.एस.) से सम्बन्ध संस्कृत प्रस्तावक और पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित चामुकृष्ण शास्त्री के नेतृत्व में भारतीय भाषाओं के प्रचार के लिए एक उच्चस्तरीय समिति, भारतीय भाषा समिति का गठन हुआ। इस समिति को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत निर्धारित भारतीय भाषाओं के विकास के लिए एक कार्य योजना तैयार करने का काम सौंपा गया जिसके लिए अनिवार्य तौर पर स्कूलों ओर उच्च शिक्षा संस्थानों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना। अनिवार्य स्वीकार किया गया।

केन्द्र सरकार द्वारा किए गए सर्वेक्षण में पाया गया कि रोजगार की दिशा में शिक्षा के माध्यम के रूप में 35 मातृभाषाएं हैं ओर त्रिभाषा के रूप में 160 भाषाओं के साथ साथ मातृभाषाएं भी पढ़ाई जाती है उदाहरण के लिए (हिन्दी एक मातृभाषा और एक भाषा है जबकि गढ़वाली एक मातृभाषा है लेकिन भाषा नहीं)। अतः छम्च् की प्रथम चुनौती कक्षा एक से लेकर स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षा की सभी धाराओं, विज्ञान मानविकी और वाणिज्य की पाठ्य सामग्री को भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराना है।

शिक्षा मंत्रालय द्वारा विश्वविद्यालयों में अनेक कार्यशालाओं और अभिविन्यास कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है। अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (AICTE) ने 12 भाषाओं में प्रथम वर्ष की इंजीनियरिंग पुस्तकें तैयार की हैं और कुल 270 पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं। द्वितीय वर्ष की पुस्तकों का कार्य चल रहा है। इसी प्रकार बार कोउंसिल ऑफ इंडिया ने भारतीय भाषा समिति और यूजीसी के साथ मिलकर भारतीय भाषाओं में पुस्तकं तैयार करने हेतु पूर्व सीजेआई शरद बोबडे की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। हाल ही में तंजावुर में शास्त्र विश्वविद्यालय के द्वारा घोषणा की गई कि वे उच्च शिक्षा में तमिल में 75 विषयों में 75 पुस्तकों का प्रकाशन करेंगे।

पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त शिक्षकों को भी द्विभाषी होने की आवश्यकता महसूस की गई विद्यालयी स्तर पर 1 करोड़ तथा उच्च शिक्षण सुंस्थानों में 2.3 लाख शिक्षक हैं अतः द्विभाषी होने से रोजगार के भी उपयुक्त अवसर प्राप्त होंगे। ऐसा भविष्य में संभावना की जारही है।

किसी भी भाषा के विकास के लिए पाँच आवश्यकताएँ होती है -

1. निर्देश या संचार या मनोरंजन या विज्ञान और प्रौद्योगिकी के माध्यम के रूप में उपयोग कारना।
2. भारतीय भाषाओं के विश्व स्तर पर समकालीन साहित्य का विकास करना।
3. प्रौद्योगिकी के अनुकूल होने के लिए 2000 से 3000 भाषाएं जो प्रिंट तकनीक के अनुकूल ना होने से लुप्त हो गई उन्हें जीवित करना।
4. शिक्षण सामग्री।
5. संरक्षण की आवश्यकता।

और यह सब हमें समष्टि, समाज और सरकारों से ही प्राप्त हो सकता है और हम अपनी भविष्य की योजनाओं को साकार रूप दे सकते हैं। अभी तक जितनी भी शिक्षा नीति गठित हुई उनमें पहली बार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय

भाषाओं में शिक्षा सुनिश्चित करने पर जोर दिया गया है। इसमें भारतीय भाषा शब्द का प्रयोग 30 बार हुआ है, साथ ही त्रि.भाषा फार्मूले के लिए भाषाओं को चुनने के लिए राज्यों को स्वतंत्रता भी दे दी गई है। जिसे एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।

भारतीय भाषाओं के संदर्भ में यह एक युगांतकारी परिवर्तन है कि प्राथमिक और उच्च शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से होनी चाहिए। साथ ही तीन विकल्प भी दिए गए हैं . क्षेत्रीय भाषा, स्थानीय भाषा ओर घरेलू भाषा। तमिल में 12.13 अलग-अलग बोलियाँ हैं लेकिन 2010 में 12वी कक्षा में 75% तमिल माध्यम के छात्र घटकर 2020 में 55% ही रह गए हैं। यह स्थिति अत्यंत गंभीर है। इस पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह हिन्दी को भी बढ़ावा देने की आवश्यकता है। सर्वप्रथम जहाँ शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है वहाँ हिन्दी को भी शिक्षा के माध्यम रूप में स्थापित करने की जरूरत है।

निष्कर्ष :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय भाषाओं के पुनर्जागरण की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम है। इस नीति ने शिक्षा में मातृभाषा को केंद्र में रखकर भाषाई असमानता को कम करने और भारतीय भाषाओं को नई ऊर्जा प्रदान करने का कार्य किया है। इससे न केवल हिन्दी बल्कि सभी भारतीय भाषाओं के शिक्षण, अनुसंधान, और तकनीकी विकास के अवसर बढ़ेंगे। यदि इस नीति को प्रभावी रूप से लागू किया गया, तो भारत पुनः अपनी भाषाई विरासत को सशक्त बनाते हुए विश्वगुरु के रूप में प्रतिष्ठित हो सकेगा।

संदर्भ

1. सिंह, नामवर. (2010). *भाषा और समाज*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

2. देवी, गणेश. (न.वि.). *हिन्दी और भारतीय भाषाएँ*.

3. दिनकर, रामधारी सिंह. (1956). *संस्कृति के चार अध्याय*. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी.

4. चतुर्वेदी, माणिक गोविंद. (न.वि.). *भारत की भाषिक एकता: परम्परा और हिन्दी*.

'गोदान' उपन्यास में नारी की विविध भूमिका और संघर्षों का चित्रण

महेता सुमिता कनैयालाल*

Sumitamaheta5911@gmail.com

शोध सार:

मुंशी प्रेमचंद का उपन्यास गोदान हिंदी साहित्य की एक युगांतकारी कृति है। जिसमें भारतीय ग्रामीण जीवन की वास्तविकता को अत्यंत मार्मिक रूप से चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में नारी पात्रों की भूमिका और संघर्ष बहुत महत्वपूर्ण है। प्रेमचंद ने स्त्रियों को केवल सहायक पात्र के रूप में नहीं बल्कि समाज की जटिलताओं को समझने वाली, उसका प्रतिरोध करने वाली और अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करने वाली स्वतंत्र इकाइयों के रूप में प्रस्तुत किया है। यह शोध पत्र गोदान में उपस्थित नारी पात्रों के माध्यम से उनके संघर्षों, भूमिकाओं और चेतना का विश्लेषण करता है।

बीज शब्द :

नारी और संघर्ष, प्रमुख महिला पात्र, नारी के विविध रूप, यथार्थवाद, नारी अस्मिता।

प्रस्तावना:

यह उपन्यास यथार्थवाद की धरातल पर रचा गया है। इस उपन्यास को पढ़ते ही इस उपन्यास के पात्रों में ऐसे खो जाते हैं मानो वह वास्तविक हो उपन्यास में केंद्रीय भाव कृषक जीवन की समस्याएं है फिर भी उस समयावधि में स्त्री जीवन की स्थिति का यथार्थ चित्रण मिलता है। उपन्यास भले ही कृषक से मजदूर बने होरी पर केंद्रित है लेकिन नायिका के रूप में धनिया का ही चरित्र उभर कर सामने आता है। उनकी हर परिस्थिति में जो प्रतिक्रिया है, वह अद्भुत है। प्रेमचंद ने अपने पात्रों को परिवार के और प्रेम के प्रति पूरी तरह समर्पित दर्शाया है।

गोदान उपन्यास में नारी की विविध भूमिका:

प्रेमचंद जी का उपन्यास'गोदान' भारतीय समाज का व्यापक चित्र प्रस्तुत करता है, जिसमें नारी की विभिन्न भूमिकाओं में पत्नी, माँ, बहू, प्रेमिका और स्वतंत्र स्त्री — का यथार्थवादी चित्रण किया गया है। विशेष रूप से माँ के रूप में नारी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह त्याग, करुणा, सृजन और संघर्ष की साक्षात प्रतिमा बनकर उभरती है।

१. आदर्श पत्नी के रूप में

गोदान'में धनिया, होरी की पत्नी, एक केंद्रीय पात्र है। जो पत्नी रूप में नारी के आदर्श स्वरूप को प्रस्तुत करती है। धनिया अपने पति होरी के साथ जीवन की हर कठिनाई में कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी रहती है। चाहे गरीबी हो, सामाजिक अपमान हो या पारिवारिक संकट – वह कभी भी अपने पति का साथ नहीं छोड़ती। पत्नी रूप में पति के लिए मंगल कामनाएं करती भी नजर आती है, "वह जैसे अपने नारीत्व के संपूर्ण तप और व्रत से पति को वरदान दे रही थी। उसके अंत: करण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह- सा निकलकर होरी को अपने अंदर छिपाए लेता था..।" [१]

वह पति को सही राह पर लाने का प्रयास भी करती है, जिससे उसकी सजगता और बुद्धिमत्ता का पता चलता है। 'झुनिया 'पारंपरिक विवाह संस्था से बाहर होकर भी एक पत्नी की भूमिका निभाती है। यह प्रेमचंद की स्त्री मुक्ति दृष्टि को

* **रिसर्च स्कोलर (हिन्दी विभाग), भक्तकवि नरसिंह महेता विश्वविद्यालय, जूनागढ़**

दर्शाता है। सरजू की पत्नी (रोली) उसका चित्रण संक्षिप्त है, पर वह भी अपने पति और घर के प्रति निष्ठावान है। अपने स्तर पर परिवार को सँभालने वाली स्त्री है, लेकिन उसमें धनिया जैसी मुखरता नहीं दिखती। गौरी : राय साहब की पत्नी है। पर उसका वैवाहिक जीवन एक औपचारिकता भर है। वह अकेलापन झेलती है और प्रेम की तलाश में भटकती है।

२. माँ के रूप में नारी की भूमिका :

धनिया न केवल एक कर्तव्यनिष्ठ पत्नी है, बल्कि एक संवेदनशील, साहसी और सशक्त माँ भी है। गोबर और सोना के पालन-पोषण में वह माँ के रूप में पूरी निष्ठा दिखाती है। जब गोबर घर छोड़कर चला जाता है, तो उसका हृदय तड़प उठता है। यह एक माँ का स्वाभाविक दुःख है। धनिया जो एक ऐसी माँ है जो अपने बच्चों को स्नेह, शिक्षा और नैतिक मूल्य देने में विश्वास रखती है, साथ ही सामाजिक अन्याय के विरुद्ध उनकी ढाल बनती है। न्यायप्रिय माँ के रूप में वह अपने बेटे गोबर की गलती को भी वह आँख मूँदकर नहीं स्वीकारती, बल्कि सही-गलत में फर्क करना सिखाती है। "कायर कहीं का ! जिसकी बांह पकड़ी, उसका निबाह करना चाहिए कि मुंह में कालिख लगाकर भाग जाना चाहिए!अब जो आए, तो घर में पैठने न दूं।"[२]

रायसाहब की पत्नी गौरी उपन्यास में उसका मातृत्व नहीं दिखता। उसकी भावनात्मक रिक्तता उसे माँ बनने से रोकती है। वह अकेलेपन से जूझती है। मालती देवी, डॉक्टर और आधुनिक शिक्षित स्त्री होने के बावजूद, उसका मातृत्व कभी पूर्ण रूप से प्रकट नहीं होता। वह अंत में जब आत्म शुद्धि की ओर बढ़ती है, तो उसमें माँ जैसी करुणा और त्याग के भाव दिखाई देते हैं, विशेषकर गरीबों और असहायों के लिए झुनिया एक ऐसी नारी की भूमिका निभाती है जो प्रेम संबंध से उत्पन्न संतान को वह गर्व से जन्म देती है और उसका पालन-पोषण करती है। सामाजिक तिरस्कार के बावजूद वह अपने मातृत्व को नहीं छोड़ती। कर्तव्यनिष्ठ माँ के रूप में वह खेतों में मेहनत करती है, बच्चों को पालती है और परिवार का हिस्सा बनती है। एक जिम्मेदार माँ की तरह वह अपनी भूमिका निभाती है।

प्रेमचंद ने मातृत्व को समाज, संवेदना और नैतिकता से जोड़कर देखा है। गोदान' में माँ के रूप में नारी की भूमिका त्याग, सहनशीलता, ममता और सामाजिक चेतना से परिपूर्ण है

३. गृहिणी के रूप में नारी

धनिया का चरित्र 'गोदान' में आदर्श भारतीय गृहिणी का उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रेमचंद ने उसके माध्यम से यह दर्शाया है कि एक गृहिणी केवल घर संभालने वाली नहीं होती, बल्कि वह पूरे परिवार की नैतिक, सामाजिक और आर्थिक नींव होती है। धनिया जैसी महिलाएँ ही समाज को स्थायित्व प्रदान करती हैं। धनिया एक सशक्त, विवेकशील और कार्यशील गृहिणी है। परिवार की रीढ़ भी है। उसका चरित्र भारतीय नारी की सहनशीलता, कर्तव्यपरायणता, बुद्धिमत्ता और संघर्ष शीलता का सजीव प्रतीक है। धनिया पूरे घर की ज़िम्मेदारी उठाती है — खेती, राशन, बचत, बच्चों की देखभाल।

धनिया हर परिस्थिति में अपने परिवार का साथ देती है। चाहे घर में कितना भी संकट क्यों न आ जाए, वह कभी भी अपने कर्तव्यों से विमुख नहीं होती। जब होरी अपने भाई हीरा के अन्याय को भी सह लेता है, तब धनिया उसका विरोध करती है लेकिन साथ भी नहीं छोड़ती। धनिया, झुनिया, मालती और सिलिया – ये चारों पात्र प्रेमचंद जी द्वारा रचित ऐसी महिलाएँ हैं, जो यह साबित करती हैं कि नारी अगर ठान ले, तो समाज की दिशा बदल सकती है। धनिया एक ऐसी नारी की भूमिका अदा करती है जो अपने मूल्यों से समझौता नहीं करती, पर समयानुकूल निर्णय लेने में भी सक्षम होती है। सीमित संसाधनों में घर को चलाने की कुशलता उसमें है।

४. सहनशीलता और संघर्ष शीलता:

धनिया के जीवन में दुखों की कोई कमी नहीं – गरीबी, सामाजिक अपमान, पति की मूर्खता, बेटी का गर्भवती हो जाना, पुलिस का अत्याचार – लेकिन वह कभी हार नहीं मानती। वह हर संकट का डटकर सामना करती है। ममतामयी और त्यागमयी माँ के रूप में भी आदर्श है। बेटी रूपा के लिए वह सामाजिक लांछनों का साहसपूर्वक सामना करती है। झुनिया को बहू की तरह अपनाकर समाज को एक नई दिशा देती है। धनिया घर की जिम्मेदारियों को बड़ी समझदारी से निभाती है। वह जानती है कि गरीबी में भी आत्मसम्मान कैसे बनाए रखा जाए। आर्थिक तंगी के बावजूद वह घर की मर्यादा और बच्चों की ज़रूरतों का संतुलन बनाए रखती है।

५. ग्रामीण भारतीय सशक्त नारी

उपन्यास के संदर्भ में ग्रामीण भारतीय नारी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और बहुआयामी है। उपन्यास में स्त्री पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने उस समय की ग्रामीण नारी की स्थिति, संघर्ष, कर्तव्य, प्रेम, त्याग और आत्मबल को दर्शाया है। "गोदान" में प्रेमचंद ने ग्रामीण भारतीय नारी को अबला नहीं, बल्कि संघर्षशील, आत्मनिर्भर और आत्मसम्मानी रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने दिखाया है कि भले ही नारी परंपराओं और सामाजिक बंधनों से बंधी हो, फिर भी वह सामाजिक बदलाव की वाहक बन सकती है। धनिया के चरित्र की विशेषता है कि वह स्पष्ट बोलने वाली व्यावहारिक और समय आने पर पति की गलतियों को टूटती पर है और फिर भी पति के प्रति पूर्ण समर्पित भी है। "जब होरी अपने झूठा आदर्शों के चलते गोदान के लिए चोरी की गाय को छुपाता है तो धनिया साफ कहती है कि, "यह पाप है।" धनिया, झुनिया और सिलिया जैसे पात्रों के माध्यम से यह उपन्यास भारतीय ग्रामीण स्त्री के यथार्थ चित्रण में सफल हुआ है।

६. शिक्षित/शहरी नारी की भूमिका

डॉ. मालती शिक्षित, आत्मनिर्भर और आधुनिक और अवसरवादी नारी लगती है, परन्तु बाद में उसमें संवेदनशीलता और आत्मबोध आता है। रमिला (मिस)पूरी तरह पश्चिमी प्रभाव में ढली हुई दिखाई देती है। सामाजिक संबंधों से अधिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्व देती है। उसका जीवन भोगवादी और आत्मकेन्द्रित लगता है। ये शिक्षित नारियाँ समाज में नए विचार और स्वतंत्रता का प्रतीक हैं, परंतु कभी-कभी वे मूल्य और संवेदना से कटती हुई भी दिखाई देती हैं। प्रेमचंद ने 'गोदान' में ग्रामीण नारी को समाज की आत्मा, सहनशीलता और संघर्ष की प्रतीक के रूप में चित्रित किया है, जबकि शिक्षित नारी को समाज के नए बदलावों की प्रतिनिधि बताया है। दोनों का संघर्ष अलग है —ग्रामीण नारी समाज से लड़ती है, शिक्षित नारी स्वयं से और अपने परिवेश से। दोनों ही प्रकार की नारियाँ प्रेमचंद के साहित्य में समाज परिवर्तन की वाहक के रूप में उभरती हैं। "मालती मध्य वर्गीय समाज में स्त्रियों की नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व है।"[३]

७. समाज को दिशा देने वाली सुधारक के रूप में नारी की भूमिका

नारी केवल घर की चारदीवारी तक सीमित नहीं, बल्कि समाज में सुधार और परिवर्तन की वाहक बनकर उभरती है। इस उपन्यास में नारी पात्रों को लेखक ने केवल संवेदनशील या सहनशील नहीं दिखाया, बल्कि उन्हें समाज को दिशा देने वाली सुधारक की तरह प्रस्तुत की गई है। डॉक्टर मालती, शिक्षित और स्वतंत्र विचारों वाली आधुनिक महिला है, जो समाज सेवा में सक्रिय रहती है। वह स्त्री शिक्षा और आत्मनिर्भरता का उदाहरण है। पहले तो वह समाज से कटकर रहती है, परंतु बाद में समाज सेवा को अपना लक्ष्य बनाती है और महिला सुधार कार्यों में जुट जाती है। प्रेम, विवाह और स्त्री स्वतंत्रता पर उसके विचार समाज को नई दिशा देने वाले हैं। "मिस मालती का कहना था कि स्त्रियों और पुरुषों के अधिकार समान होने चाहिए।"[४]

धनिया कुरीतियों, अंधविश्वासों का खुलकर विरोध करती हैं। वह स्त्री स्वतंत्रता और समानता की पक्षधर है। धनिया निर्णय लेकर गोबर और झुनिया को अपने घर ले आती है, जो उस समय एक साहसिक और सुधारवादी कदम था। मेमन साहब (सरोज़िनी जैसे पात्र) स्त्री सशक्तिकरण के संकेत है। कई गौण पात्र भी ऐसे है जो उस समय के समाज में स्त्री की उन्नति और भूमिका का संकेत देते हैं। इस प्रकार, गोदान की नारी केवल पीड़िता नहीं, बल्कि परिवर्तन की वाहक है।

८. प्रेरणा स्त्रोत के रूप में नारी की भूमिका

उपन्यास में स्त्रियाँ केवल सहायक पात्र नहीं हैं, बल्कि वे कई बार पुरुषों के लिए प्रेरणा स्रोत बनती हैं – संघर्ष में संबल देती हैं, नैतिक बल प्रदान करती हैं और सामाजिक बदलाव के लिए रास्ता दिखाती हैं। धनिया का पात्र सभी नारी एवं पुरुष के लिए प्रेरणा स्त्रोत रही है। वह हमेशा होरी को नैतिक और व्यवहारिक दिशा देती है। उसकी कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी और आत्मबल पुरुष पात्रों (विशेषकर होरी और गोबर) के लिए प्रेरणा का स्रोत बनता है। झुनिया – प्रेम, समर्पण और सहनशीलता की प्रेरणा बन कर प्रस्तुत होती है। उसका त्याग, सहनशीलता और व्यवहारिकता गोबर को जिम्मेदार पुरुष बनने की प्रेरणा देती है। डॉ. मालती की स्वतंत्र सोच और सेवा भाव पुरुष पात्र अमरकांत को समाज सेवा के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार, 'गोदान' की नारी पात्रें जीवन मूल्य, आत्मबल, नैतिकता और सामाजिक चेतना की प्रेरणा स्रोत हैं।

९. उत्कृष्ठ नेतृत्व

गोदान उपन्यास की नारी पुरुषों से अधिक सशक्त नेतृत्व करती दिखाई देती हैं। उन्होंने सामाजिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत स्तर पर निर्णय लेकर यह सिद्ध किया कि नारी केवल अनुयायी नहीं, नेतृत्वकर्ता भी हो सकती है। धनिया ग्रामीण स्त्री के भीतर छिपी नेतृत्व क्षमता की जीवंत मिसाल है। झुनिया सामाजिक विद्रोह का नेतृत्व करती है। मालती शिक्षित, आधुनिक भारत की प्रबुद्ध महिला का प्रतिनिधित्व करती है। 'गोदान' की महिलाएँ न केवल पीड़ित हैं, बल्कि अपने निर्णयों, संघर्षों और साहस से सामाजिक नेतृत्व में अग्रसर हैं। धनिया, झुनिया, मालती और सिलिया- ये चारों पात्र प्रेमचंद द्वारा रचित ऐसी महिलाएँ हैं, जो यह साबित करती हैं कि नारी अगर ठान ले, तो समाज की दिशा बदल सकती है।

नारी के संघर्षों का चित्रण :

मुंशी प्रेमचंद का उपन्यास 'गोदान' भारतीय ग्रामीण समाज का एक सजीव दस्तावेज है, जिसमें स्त्री की स्थिति, उसकी व्यथा, और उसके संघर्षों को अत्यंत यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। गोदान में नारी अपनी विविध भूमिका में विविध संघर्षों से गुजरती है। इन संघर्षों का चित्रण निम्नलिखित हैं।

➢ **सामाजिक संघर्ष:**

उपन्यास में धनिया का संघर्ष पितृसत्तात्मक समाज से है। धनिया का संघर्ष सामाजिक अन्याय, पाखंड और आर्थिक विषमता के खिलाफ है। झुनिया एक निचली जाति की लड़की है, जो गोबर के साथ बिना विवाह के रहने का निर्णय लेती है। वह सामाजिक अपमान, तिरस्कार और बहिष्कार झेलती है। परंतु वह आत्मसम्मान से जीती है और अपने बच्चे की परवरिश खुद करती है। उसका संघर्ष नारी की स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता की राह पर है। मालती एक शिक्षित, संपन्न और आधुनिक महिला है, लेकिन उसे भी अपने व्यक्तिगत निर्णयों और रिश्तों को लेकर समाज के नियमों से जूझना पड़ता है। मालती का संघर्ष आधुनिक समाज में स्वतंत्र पहचान स्थापित करने का है। सिलिया के पात्र के माध्यम से दलित नारी का दोहरा संघर्ष दर्शाया गया है। वह खुलकर अपनी बात कहती है, और दूसरों के अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाती है। सिलिया का संघर्ष जाति और लिंग दोनों स्तरों पर होता है।

"गोदान" में नारी पात्र केवल करुणा की प्रतिमूर्ति नहीं हैं, वे अपने अधिकार, सम्मान और आत्मनिर्भरता के लिए सामाजिक बंधनों से टकराती हैं।

➢ **पारिवारिक संघर्ष**

धनिया, होरी की पत्नी, सबसे मुखर और निर्णायक महिला पात्र है। उसका पारिवारिक संघर्ष बहुआयामी है। धनिया का संघर्ष एक भारतीय गृहिणी का जीवंत चित्र है, जो अपने पति की कमजोरियों को भी सहारा देकर परिवार को बचाती है। झुनिया एक अविवाहित माँ के रूप में पारिवारिक संघर्ष झेलती है। झुनिया का संघर्ष स्वीकृति और सम्मान पाने का संघर्ष है, जहाँ वह परिवार के लिए खुद को उपयोगी सिद्ध करती है। परिवार और समाज मालती से"संपन्न, सुशिक्षित लड़की" के तौर पर आदर्श निर्णयों की अपेक्षा करता है। उसे व्यक्तिगत संबंधों और जीवनसाथी चुनने के अधिकार में भी संघर्ष करना पड़ता है। उसका संघर्ष आधुनिक परिवारों में स्वतंत्रता बनाम सामाजिक दबाव को दर्शाता है। 'गोदान' के नारी पात्रों ने केवल सामाजिक नहीं, बल्कि पारिवारिक स्तर पर भी गहन संघर्ष किए। । धनिया, झुनिया, सिलिया और मालती – ये सब अपने-अपने परिवारों के भीतर सम्मान, स्वीकार्यता, अधिकार और स्थिरता के लिए संघर्ष करती हैं।

➢ **मानसिक /भावनात्मक संघर्ष:**

प्रेमचंद के उपन्यास'गोदान'के नारी पात्रों के भीतर चल रहे मानसिक, भावनात्मक द्वंद्व को उजागर करता है — जहाँ वे सामाजिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत परिस्थितियों से लड़ते हुए अपने मन की पीड़ा, दुविधा, और अंतर्द्वंद्व से जूझती हैं। कर्तव्य निभाते हुए भीतर से टूट जाती है फिर भी सहना और सबको संभालती है। झुनिया का भावात्मक संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं है, वह समाज, जाति, वर्ग, स्त्रीत्व और स्वतंत्रता जैसे बड़े सवालों से भी जुड़ा होता है। झुनिया का एक संघर्ष खुद को

समझने और स्वीकार करने का है। कई बार वह अपने प्रेम या सपनों का त्याग कर देती है ताकि दूसरों को दुख न हो। उसका यह संघर्ष हमें बताता है कि एक स्त्री का मन केवल प्रेम नहीं चाहता, वह सम्मान, स्वायत्तता और अपनी पहचान भी चाहता है।

- **आर्थिक संघर्ष:**

धनिया को मजदूरी करने में संकोच नहीं। वह खेतों में मेहनत करती है और मेहनताना पाने के लिए साहूकारों और जमींदारों से भी टकरा जाती है। परिवार के आर्थिक ताने-बाने को संभालना, होरी की मृत्यु के बाद, धनिया पूरे परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी उठाती है। "जब खलिहान में केवल डेढ़ -दो मन जौ रह गया, तो धनिया ने दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया और बोली -अच्छा अब रहने दो हो चुके बिरादरी की लाज! बच्चों के लिए भी कुछ छोड़ोगे की सब बिरादरी के पहाड़ में झोंक दोगे?"[४] धनिया अपने परिवार के उपार्जन के लिए सबको करारा जवाब दे देती है, "मैं एक दाना न अनाज दूंगी, न कौड़ी डांड जिसमें दम हो चलकर मुझ से ले। ..." [५] झुनिया के द्वारा सामाजिक मर्यादा और आत्मनिर्भरता का द्वंद्व दिखाया गया है। स्वावलंबन की मिसाल के रूप में वह बिना किसी सहारे के अपने जीवन को आगे बढ़ाने का प्रयास करती है। 'गोदान' में नारी की भूमिका आर्थिक संघर्ष में परिवार की रीढ़ है। प्रेमचंद ने इन पात्रों के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि नारी केवल परिवार की मर्यादा नहीं, बल्कि उसकी अर्थव्यवस्था की धुरी भी है। मालती शहरी, शिक्षित, आत्मनिर्भर और सामाजिक रूप से संवेदनशील है। जहाँ ग्रामीण स्त्रियाँ (जैसे धनिया) आर्थिक संघर्ष को श्रम और सहनशीलता से झेलती हैं, वहीं मालती शिक्षा, सेवा, और आत्मनिर्भरता के माध्यम से इस संघर्ष में भाग लेती है। प्रेमचंद ने मालती के माध्यम से यह दिखाया है कि नारी केवल परंपराओं में बंधी हुई नहीं है, बल्कि वह आधुनिकता और प्रगतिशीलता की ओर भी अग्रसर हो सकती है। यह आर्थिक संघर्ष का एक नया, विचारशील और सशक्त रूप है।

निष्कर्ष

प्रेमचंद जी के गोदान उपन्यास में नारी की विविध भूमिका को देखने के बाद हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद के नारी पात्रों, सशक्त, चिंतनशील, परंपरागत, आधुनिक सोच जैसी विशेषताओं को लेकर प्रस्तुत हुए है। प्रेमचंदजी ने समाज में नारी की दयनीय दशा को भी दर्शाया है। नारी के पारिवारिक रूप पर विशेष प्रकाश डाला है। उनके नारी पात्र पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक संघर्षों से जुझते हुवे अपनी अलग छवि को उभारते हुवे पाठक के हृदय को छू लेते हैं। प्रेमचंद जी ने धनिया जैसे अमर नारी पात्रों का इतना बखूबी चित्रण किया है कि, वह चिर काल तक हिंदी साहित्य में अमर हो गए है और प्रत्येक नारी के लिए प्रेरणा स्त्रोत बने रहेंगे।

संदर्भ :

१. प्रेमचंद, मुंशी. (1936). *गोदान*. इलाहाबाद : हंस प्रकाशन. पृ.१३

२. प्रेमचंद, मुंशी. (1936). *गोदान*. इलाहाबाद : हंस प्रकाशन. पृ. १४३

३. सुमन, डॉ. शेख तबारक अली. *गोदान : विषय और शिल्प*. कटक : शबनम पुस्तक महल. पृ. १११

४. प्रेमचंद, मुंशी. (1936). *गोदान*. इलाहाबाद : हंस प्रकाशन. पृ. १४९

५. प्रेमचंद, मुंशी. (1936). *गोदान*. इलाहाबाद : हंस प्रकाशन. पृ. १०

भक्ति आन्दोलन और सांस्कृतिक चेतना

डॉ. उत्तम राजाराम आळतेकर*
druttamrajaram@gmail.com

सारांश

भक्ति आन्दोलन भारतीय समाज में धार्मिक सुधार और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय रहा है। इसने मूर्तिपूजा, जात-पात और पाखंड का विरोध कर मानवता, प्रेम और समानता का संदेश प्रसारित किया। दक्षिण से उत्तर भारत तक विस्तृत इस आन्दोलन ने समाज के विभिन्न वर्गों को एक सूत्र में पिरोया। कबीर, तुलसीदास, मीरा, रविदास, जायसी और सूरदास जैसे संत-कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से लोकसंस्कृति, धार्मिक सहिष्णुता और सामाजिक समरसता का सशक्त चित्रण किया। भक्ति साहित्य में अंतर्निहित सांस्कृतिक चेतना ने भारतीय समाज को मानवतावादी, समन्वयवादी और सर्वधर्म सद्भाव की दिशा में अग्रसर किया। इस प्रकार भक्ति आन्दोलन के संत केवल धार्मिक सुधारक नहीं, अपितु सांस्कृतिक जागरण के प्रवर्तक भी थे।

मुख्य शब्द

भक्ति आन्दोलन; सांस्कृतिक चेतना; समानता; मानवता; सामाजिक समरसता; लोकसंस्कृति; कबीर; तुलसीदास; मीरा; *रविदास; धार्मिक सुधार; हिन्दू-मुस्लिम एकता; समन्वयवाद; भक्ति साहित्य।*

भक्ति आन्दोलन की सबसे बडी उपलब्धि यह है कि, इस आन्दोलन ने भक्ति की पद्धती को अपनाकर धार्मिक सुधार लाने का प्रयास किया। इष्टदेव की आराधना को लेकर उपासकों का प्रेम भाव में तल्लीन हो जाना ही भक्ती की अभिव्यक्ति रही है। भक्ती आन्दोलन की शुरुआत 8 वी शताब्दी में दक्षिण भारत में हुई तो 13 वीं शताब्दी में उत्तर भारत में हुई। भक्ती आन्दोलन के संदर्भ में यह कहा जाता है कि, भक्ति आन्दोलन भारत का एक प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण आन्दोलन है। भक्ति आन्दोलन का ही परिणाम है जिसके कारण धर्म सुधार की एक नई लहर उठी जिससे दक्षिण भारत में भक्ति को अत्याधिक महत्त्व प्राप्त हुआ। दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन का उद्‌भव रामानुज के नेतृत्व में हुआ। तो उत्तर भारत में इस भक्ति आन्दोलन का उद्‌भव रामानंद ने कराया। ऐसे इस भक्ति आन्दोलन के प्रणेता के रूप में अनेक संत रहे जिनमें कबीर, नानक, नामदेव का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है।

भक्ति आन्दोलन की सबसे बडी उपलब्धि अगर कौन सी है ऐसा कहे तो भक्ति आन्दोलन के संतो ने इस्लाम आन्दोलन की तरह एकेश्वरवाद की धारणा पर तो बल दिया गया साथ में मूर्तिपूजा तथा जात-पात का विरोध भी किया। इस आन्दोलन ने धर्मांधता का खण्डन तो किया साथ ही हिन्दू धर्म सुधारकों को इस्लाम के सिद्धान्तों के निकट ले गया। भक्ति आन्दोलन के सम्बन्ध में लिखा गया है कि, "हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के आदान-प्रदान को सौहार्द तथा समन्वय की भावना का सूत्रपत हुआ। इससे हिन्दू-मुस्लिम एकता प्रबल हुई। इस समय इस्लाम में भक्ति भावना का उदय हुआ और उसमें कोमलता आ गई।"[1]

भक्ति आन्दोलन ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को बल मिला तथा हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराइयों को खत्म करने की दिशा में नया जोश भर दिया। भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक संतों ने अपना दृष्टिकोण केवल धर्म तक ही सिमित नही रखा बल्कि तत्कालीन समाज पर भी अपने दृष्टिकोण का दृष्टिपात किया। कई विद्वानों कि यह धारणा रही है कि, भक्ति आन्दोलन मुस्लिम आक्रमणों की देन है। इस आन्दोलन ने मध्यकालिन समाज की रुढीयों, पाखंडो जाति व्यवस्था और धार्मिक भेदभाव का तो

* **प्रा.संभाजीराव कदम कॉलेज, देऊर तहसील- कोरेगांव, जिला- सातारा (महाराष्ट्र) 415524**

जोरदार विरोध किया साथ ही समानता, मानवता और सभी जीवों के प्रति प्रेम का संदेश भी दिया। इसमें कबीर एक ऐसे कवि रहे जिनके काव्य ने सांस्कृतिक आन्दोलन को प्रभावि रूप से चलाया।

भक्तिकाल के कवि कबीर के काव्य में सांस्कृतिक चेतना विभिन्न रूपों में दिखाई देती है। इसमें असमानता, धार्मिक पाखण्ड, अंधविश्वास आदि रुपों पर प्रहार होता दिखाई देती है साथ में हिन्दू-मुस्लिम एकता, मानवता, समानता के साथ ईश्वर की भक्ति आदि का संदेश भी प्राप्त है। कबीर मूर्ति पूजा का विरोध करते हैं। मुसलमान शासकों द्वारा मूर्तियां तोड़ी जाती थी। इस कारण वह मूर्तिपूजा का विरोध करते हैं। वह कहते हैं पत्थर पूजने से अगर भगवान मिलता है तो मैं तो पूरे पहाड को पूजुंगा। कबीर लिखते हैं -

"पाथर पूजे हरि मिलै, तो मैं पूरै पहार।
घर की चाकी कोउन पूजै, जा पीसा खाए संसार।"[२]

भक्तिकाल के कवि मलिक मुहमद जायसी के काव्य में सांस्कृतिक चेतना हिन्दू-मुस्लिम एकता, लोक संस्कृति का समावेश आदि के साथ भारतीय आदर्शो के रूप में चित्रित होती है। जायसी समाजोन्मुखी सांस्कृतिक सचेना को दृढ़ आधार देते हैं। जायसी मानते हैं कि, प्रेम मानवी व्यक्तित्व में सहज स्वाभाविक गुण होता है इसी को आधार मनाकर जायसी उदात्त प्रेम को समाजोन्मुखी संस्कृति का अंक बनाते हैं और उसे प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं -

"जौ लहि आप हेराइ न कोई। तौ लाहे हेरत पाव न सोइ।
प्रेम-पहार कठिन विधि गढ़ा। सो पै चढे सिर सौचढ़ा।
पथ सूरि कै उठा अकूरू। चोर चढैकी चढमसूरू।।"[3]

रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास आपनी सांस्कृतिक चेतना को रेखांकित करते हुए आदर्शो, भक्ति, समन्वयवाद तथा सामाजिक चेतना आदि रूपों को चित्रित करते हैं। तुलसी की भक्ति भावना मनुष्य के व्यक्तित्व के उत्थान का मार्ग जो प्रेम परोपकार और धर्म के सदगुणों से परिष्कृत है, इसमें भौतिक इच्छाओं का परित्याग है। तुलसी का यह मानना ही तुलसीदास को महान बना देता है। तुलसीदास अपनी रचनाओं में लोकमंगल की कामना करते हैं जो समाज और परिवार में आदर्श जीवन मूल्यों की स्थापना करता है। तुलसीदास एक ओर आदर्शो की स्थापना करते हैं तो दूसरी ओर समाज की पतनोन्मुख दशा और उसके कारणों को रेखांकित करते हैं। समाज की भयावहता और दुरावस्था को कवितावली में चित्रित करते हुए तुलसीदास लिखते हैं –

"खेती न किसान को भिकारी को न भीख भलि।

बनिए को बनिज न चाकर को चाकरी।।

जीविका विहिन लोग सीधमान सोच बस।

कहें एक-एकन सौ, कहाँ जाई का करी।।"[4]

भक्ति आन्दोलन के कवि सूरदास ने अपनी कविता में सांस्कृतिक चेतना को प्रचुर रूप में चित्रित किया है। इसमें वह ब्रज की लोक संस्कृति, हिंदू संस्कार, तीज त्यौहार, उत्सव आचार-व्यवहार तथा लोक संस्कृति आदि का चित्रण किया है। सूर-सरावली में राम-सीता विवाह का वर्णन करते हुए सूरदास जी राजन्य संस्कृति का भी सुन्दर चित्रण करते हैं। पुरोहित को भेजकर राजा जनक राजा दशरथ को बुलाते हैं। राजा दशरथ बरात, हाथी, घोडे लेकर विपुल धन के साथ जनकपुर पहुँच जाते हैं। तब शुभ मुहुर्त को निश्चित करने का प्रसंग वशिष्ठ के माध्यम से चित्रित किया है। सूरदास लिखते हैं-

"वेद सास्त्र मथ करी ब्याह विधि सोई कीन्हीं नृपराय।

राम लखन अरू भरत- सत्रुघ्न, चारों दिये बिहाय।"[5]

भक्ति संसार से पलायन नहीं है, यह रचना बचाव की संस्कृति का प्रवेश द्वार माना गया है। साथ ही सांस्कृतिक विस्तार और भाषाई काव्य संसार से भक्ति आन्दोलन का इतिहास विकसित हुआ है। इसमें भक्ति आन्दोलन के कवियों ने

अनेक विषयों पर आपनी लेखनी चलाई इनमें सांस्कृतिक चेतना एक महत्त्वपूर्ण चेतना के रूप में चित्रित हुई है। इस काल के कवियों में भक्तिकाल के निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति शास्त्र के कवियों का योगदान रहा है। भक्ति आन्दोलन सामाजिक समरसता के साध धार्मिक अंतमिश्रण काफी हुआ। सतगुरु रविदास अपनी रुहानी वचनों से सारे संसार के एकता, भाईचारा पर जोर देते हैं। जातिवाद ने समाज के टुकड़े करने का कार्य किया है। नफरत की आग इसी जातिवाद की देन रही है। संत रविदास भारतीय समाज में समरसता पैदा करने के लिए जातिवाद की मानसिकता को खत्म करना चाहते हैं। वह लिखते हैं-

"जाति-जाति में जात है, ज्यों केलन के पात।
रैदास न मानुष जुड़ सके, ज्यों लो जातन जाज॥"[6]

लोकतत्व के पक्ष का प्रतिनिधित्व करती कवयित्री मीरा स्त्री देह को लेकर झंझट मानती है। वह मानती है कि जब वह कृष्ण की भक्ति में डूब गई हैं और तो उसका देल विदेह बन गया है। मीरा अपने काव्य में लोकतत्व को प्रभावशाली मानती और लिखती है -

"झर झर बूँदाँ बरसाँ आली कोयल सबद सुनाज्यो।
गाज्याँ बाज्याँ पवन मधुरयो, अम्बर बदराँ छाज्यो॥"[7]

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम यह स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि भक्ति आन्दोलन ने भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना को गहराई से प्रभावित किया। इस आन्दोलन के कवियों—जैसे संत तुकाराम, नामदेव, गुरु नानक, रहीम, कबीर, मीराबाई आदि—ने अपने अभंगों, पदों और साखियों के माध्यम से समाज को मानवता, समानता, प्रेम और एकता का अमूल्य संदेश दिया।

इन कवियों की वाणी ने न केवल धार्मिक आडंबरों और जातिगत भेदभाव का विरोध किया, बल्कि लोगों को यह भी समझाया कि ईश्वर प्रत्येक हृदय में विद्यमान है, और सच्ची भक्ति का अर्थ बाह्य दिखावे में नहीं, बल्कि आंतरिक निर्मलता और करुणा में निहित है। भक्ति आन्दोलन के कवियों की रचनाएँ समाज के उन वर्गों तक पहुँचीं जो पहले धार्मिक या सामाजिक रूप से उपेक्षित थे। उन्होंने सरल भाषा और जनभाषा का प्रयोग कर यह सिद्ध किया कि आध्यात्मिकता और संस्कृति केवल पंडितों की बपौती नहीं, बल्कि जन-जन की सम्पत्ति है।

इस प्रकार, इन संत कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में सभ्यता, संस्कृति और मानवता के पुनर्जागरण का कार्य किया। उनके विचार आज भी भारतीय समाज को एकता, सहिष्णुता और सद्भाव की ओर प्रेरित करते हैं।

संदर्भ : -

1. मुक्तिबोध, गजानन माधव. (1962). *भारत: इतिहास और संस्कृति*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 143
2. दास, श्यामसुंदर. (1928). *कबीर ग्रंथावली*. काशी: नागरी प्रचारिणी सभा. पृ. 79
3. जायसी, मलिक मोहम्मद. (1940). *जायसी ग्रंथावली: पद्मावत प्रेमखण्ड*. काशी: नागरी प्रचारिणी सभा. पृ. 59
4. मिश्र, शिवकुमार. (2015). *भक्ति आन्दोलन और भक्तिकाव्य*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 209
5. सूरदास. *सुर सारावली: सूरदास पद संग्रह*. पद सं.- 229
6. सिंह, नारायण. *रैदास ग्रंथावली*. पृ. 153
7. चतुर्वेदी, परशुराम. (1948). *मीराबाई की पदावली*. प्रयाग: हिंदी साहित्य सम्मेलन. पद-148 पृ. 139

રામાયણમાં ચિત્રિત ભારતીય સંસ્કૃતિ

પ્રા. ડૉ. વિલાસબેન પી. સોરઠિયા*
vpsorthiya@yahoo.in

સંસ્કૃતિ, માનવ સમાજના ઇતિહાસની આચરણ, ચિંતન, શિક્ષણ, કલા, સાહિત્ય, પ્રશાસન અને સમાજનાં પરિષ્કૃત મૂલ્યોની ગરિમામયી ધરોહર છે. પરંપરાગત સુંદર જીવનપદ્ધતિ અને સત્પ્રવૃત્તિ પ્રેરિત કર્મ જ સંસ્કૃતિના નામથી ઓળખાય છે. આથી સંસ્કાર અથવા સંસ્કૃતિ શરીરનો નહીં પણ આત્માનો ગુણ છે. દેશની પરંપરાગત સંપૂર્ણ માનસિક નિધિ જ સંસ્કૃતિ શબ્દમાં સમાહિત થાય છે.

કોઈપણ દેશની સંસ્કૃતિ તેના વિભિન્ન યુગોના આચાર અને વિચારોની પરંપરાથી ઉત્પન્ન એક ભૂષણયુકત પરિષ્કૃત સ્થિતિની દ્યોત્તક હોય છે. વિશ્વમાં પ્રાચીન અને અર્વાચીન અનેક સંસ્કૃતિઓ છે. પરંતુ તે બધામાં ભારતીય સંસ્કૃતિનું સ્થાન અનુપમ અને સર્વોચ્ચ છે. ભારતીય સંસ્કૃતિના અનૂઠા મહત્વને પાશ્ચાત્ય અને પૌર્વાત્ય બધા મનીષિઓએ એક સ્વરે સ્વીકાર કર્યો છે. ભારતીય સંસ્કૃતિના નિર્વાહક મૂળભૂત આધારગ્રન્થોમાં વાલ્મીકિ રામાયણ એક એવું જવલંત રત્ન છે, જેની પ્રખર માન્યતાઓ અને આદર્શોની વ્યાવહારિક અનુપાલનાઓ આજે પણ પ્રત્યેક ભારતીય હૃદય તથા જીવનને પ્રકાશિત કરી રહી છે.

વાલ્મીકિ રામાયણના સાંસ્કૃતિક અનુશીલનથી આ ચિરપુરાણી પરંતુ નિત્યનૂતન કથાના અનેક નવીન, રુચિકર રૂપો ઉજાગર થયા છે. રામાયણનો સમય જે રહ્યો હોય તે, તેમાં ચિત્રિત ભારતીય સંસ્કૃતિને સ્પષ્ટ કરવાનો આ નમ્ર પ્રયાસ છે.

વર્ણવ્યવસ્થા :

ભારતીય ઋષિએ સમાજનાં વિભિન્ન કાર્યોની દષ્ટિથી ચતુર્વર્ણની જે અદ્ભૂત અવધારણા પ્રસ્તુત કરી છે તે ચાતુર્વણ્ય વ્યવસ્થા વાલ્મીકિ રામાયણના સમય સુધી પૂર્ણતઃ પરિપકવ થઈ ચૂકી હતી. રામાયણ સમયની જે વર્ણવ્યવસ્થા હતી તે પૂર્ણતયા સમાજમાં માન્ય હતી. ત્યારે વર્ણને અનુલક્ષીને નક્કી કરેલા નિયમો જન્મજાત હતા, નહીં કે કર્મથી. માત્ર વિશ્વામિત્રનું જ એક ઉદાહરણ પ્રાપ્ત થાય છે જેઓએ ઉગ્ર તપોબળથી બ્રાહ્મણત્વ પ્રાપ્ત કર્યું જેમ કે:

ब्रह्मर्षिस्त्वं न संदेहः सर्व सम्पत्स्यते तव ।
इत्युक्त्वा देवताश्चापि सर्वा जग्मुः यथागतम् ।।
विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा लब्ध्वा ब्राह्मण्यमुत्तमम् ।
पूजयामास ब्रह्मर्षि वसिष्ठं जपतां वरम् ।।'[૧]

રામાયણમાં એક જ પુરૂષમાં બ્રાહ્મણત્વ - ક્ષત્રિયત્વ બંનેનો ઉલ્લેખ મળે છે. કુબેરપુત્ર નલકુબેરમાં ધર્મથી વિપ્રત્વનો, વીર્યથી ક્ષત્રિયત્વનો સમાવેશ થાય છે.

રામાયણમાં બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય, વૈશ્ય, શૂદ્રો આ રીતે ચાર વર્ણોનો ઉલ્લેખ મળે છે. રાજા દશરથના સુશાસનમાં બ્રાહ્મણ વગેરે ચાર વર્ણો પોતાના કર્મમાં નિરત દેવતા અતિથિઓનું પૂજન કરે છે. અયોધ્યાવાસીઓ ચાર વર્ણોમાં ક્રમશ: ઉચ્ચવર્ણની આજ્ઞાને શિરોધાર્ય ગણી તેની સેવા કરતા. જેમ કે

* સંસ્કૃતાધ્યક્ષા, માતુશ્રી મોંઘીબા મહિલા આર્ટ્સ કૉલેજ, અમરેલી (ગુજરાત) ૩૬૫ ૬૦૧

क्षत्रं ब्रहममुखं चासीद् वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः ।

शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन् वर्णानुषचारिणः ॥२

વર્ણોત્પત્તિ વિષયમાં રામાયણ વેદોકત વર્ણોત્પત્તિવિધિને સ્વીકારે છે. પુરૂષસૂકતની જેમ રામાયણ પણ પુરૂષ-મુખમાંથી બ્રાહ્મણનો, છાતીમાંથી ક્ષત્રિયનો, સાથળમાંથી વૈશ્યનો અને પગમાંથી શૂદ્રની ઉત્પત્તિ માને છે. જેમ કે :

मुखतो ब्राह्मणा जाताः उरसः क्षत्रियास्तथा ।

उरुभ्यां जज्ञिरे वैश्याः पद्भ्यां शूद्रा इति श्रुतिः ॥3

અહીં એક બાબત નોંધનીય છે કે પુરૂષસૂકતમાં ક્ષત્રિયવર્ણની ઉત્પત્તિ પુરૂષના બાજુમાંથી કહી . 'बाहू राजन्य कृतः ।' .પરંતુ રામાયણમાં ક્ષત્રિયો ત્પત્તિ પુરૂષના વક્ષ:સ્થળમાંથી વર્ણવી છે. 'उरसः क्षत्रियास्तथा ।' રાજા દશરથના રાજ્યમાં બધા વર્ણોનો યથોચિત સમાદર હતો. જેમ કે :

सर्वे वर्णा यथा पूजां प्राप्नुवन्ति सुसत्कृताः ।

न चावज्ञा प्रयोकतव्या कामक्रोधवशादपि ॥४

આશ્રમવ્યવસ્થા :

વર્ણવ્યસ્થાની જેમ આ આશ્રમવ્યવસ્થા પણ ભારતીય સમાજમાં સ્વીકૃત હતી. આશ્રમવ્યવસ્થા યોજનાનું લક્ષ્ય હતું-માનવજીવનમાં પુરૂષાર્થચતુષ્ટયની પ્રાપ્તિ. ઋષિઓએ સો વર્ષને ચાર ભાગમાં વિભાજિત કરી બ્રહ્મચર્ય, ગૃહસ્થ, વાનપ્રસ્થ, સંન્યાસ વગેરેની વ્યવસ્થાનું આયોજન કર્યું. સૂત્રકારોએ પ્રત્યેક આશ્રમના વિશેષ આચાર કર્તવ્ય નિર્ધારિત કર્યા છે. પ્રથમ બ્રહ્મચર્યમાં વિદ્યાર્જન, દ્વિતીય ગૃહસ્થમાં ઇન્દ્રિયસુખ, ઉપભોગ, અર્થોપાર્જનમ્, તૃતીય વાનપ્રસ્થમાં પુત્રને ઉત્તરાધિકાર પ્રદાન કરી વનમાં ઈશ્વરની ઉપાસના અને ચતુર્થ સંન્યાસમાં મોક્ષસિદ્ધિ વગેરે કર્તવ્યો નિર્ધારિત કરેલા હતા.

રામાયણકાળમાં આ ચાર આશ્રમો પૂર્ણરૂપે સ્થાપિત હતા, પરંતુ તેમાં ગૃહસ્થાશ્રમનું પ્રાધાન્ય પ્રતીત થાય છે. અન્ય આશ્રમની અપેક્ષાએ રામાયણમાં ગૃહસ્થાશ્રમને શ્રેષ્ઠ ગણ્યો છે. રામને વારંવાર અયોધ્યા લાવવા માટે પ્રયત્નશીલ ભરતને કહે છે :

चतुर्षु आश्रमेषु श्रेष्ठो गृहस्थाश्रमो मन्यते ।

ધર્મજ્ઞ હોવા છતાં તું કેવી રીતે તેને ત્યજવાની ઇચ્છા રાખે છે ? જેમ કે :

चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम् ।

आहुर्धर्मज्ञ धर्मज्ञास्तं कथं त्यक्तुमिच्छसि ? ॥"५

માનવજીવન સંયમિત અને અનુશાસિત રહે, જ્ઞાનસંપન્ત, પવિત્ર તથા કર્તવ્યપરાયણનું પાલન અને અંતે મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે આશ્રમવ્યવસ્થા આવશ્યક સિદ્ધ થાય છે.

સંસ્કાર :

ભારતીય સમાજમાં સંસ્કારનું અત્યધિક મહત્ત્વ છે. સંસ્કારથી માનવનો સર્વાંગીણ વિકાસ થાય છે. સંસ્કારને વરણ કરનાર વ્યકિત વેદાધ્યયન, ગૃહસ્થાશ્રમપ્રવેશ વગેરે કર્મકલાપ યોગ્ય રીતે કરી શકે છે. જીવનના પ્રગતિપથ પર સોપાનભૂત સંસ્કાર જ વિચારોમાં પ્રવૃત્તિમાં શુદ્ધિ પ્રદાન કરી માનવને ઉન્નતિના શિખર પર આરોહણ કરાવે છે.

રામાયણમાં સંસ્કારની સંખ્યા-સ્વરૂપ વિષયનો અનેક સ્થળોએ ઉલ્લેખ પ્રાપ્ત થાય છે. સંસ્કારોમાં વિવાહસંસ્કારનું મહત્ત્વ રામાયણમાં અધિક જોવા મળે છે. ભારતીય સમાજમાં વિવાહને એક ધાર્મિક સંસ્કાર માનવામાં આવે છે.

રામાયણ અનુસાર વિવાહ સંસ્કારના ત્રણ પ્રયોજનો છે - ધર્મપાલન, પુત્રપ્રાપ્તિ અને રતિસુખ એમાં પ્રથમ બે મુખ્ય પ્રયોજન છે. રતિસુખ ગૌણ છે. ધર્મપાલનના ઉદેશ્યની પૂર્તિ માટે જ અશ્વમેધ યજ્ઞમાં સીતાની અનુપસ્થિતિમાં રામ સીતાની સ્વર્ણપ્રતિમાને ધર્મપત્નીને સ્થાને મૂકીને યશ કર્યો. આર્યસંસ્કૃતિમાં ધર્મપત્ની શબ્દપ્રયોગ જ વિવાહસંસ્કારની ધાર્મિકતા સાબિત કરે છે.

વિવાહસંસ્કાર ઉપરાંત ગર્ભાધાન, જાતકર્મ, નામકરણ, યજ્ઞોપવીત, અંત્યેષ્ટિ સંસ્કારોની પણ રામાયણમાં ચર્ચા જોવા મળે છે. જેમ કે :

अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाकरोत् ।૬

तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत् ।૭

ચારેય ભાઈઓના જાતકર્મ વગેરે સંસ્કારો ગુરૂ વસિષ્ઠે કર્યાં. સીતાપુત્ર કુશ-લવના બધા સંસ્કારો મહર્ષિ વાલ્મીકિએ સંપાદિત કર્યાં. ગર્ભાધાન સંસ્કારનો સમય સાયંકાલનો સર્વથા નિષેધ હતો અને છે. કૈકસીએ સાયંકાલે જ ગર્ભાધાન દ્વારા ક્રૂરકર્મી રાવણ કુંભકર્ણ પુત્રોને જન્મ આપ્યો.૮

રામાયણમાં અંત્યેષ્ટિ સંસ્કારના ત્રણ પ્રસંગો ઉપલબ્ધ થાય છે. દશરથનો, વાલિનો અને રાવણનો.

પરિવાર :

પરિવાર એ સામાજિક માનવ વિકાસનો પ્રથમ સોપાન ગણાય છે. રામાયણકાલીન પરિવારમાં પિતાનું પ્રાધાન્ય હતું. પિતા જ પરિવારના સુખ મુખ્ય સંરક્ષક મનાતા. પિતાના આદેશને શિરોમાન્ય ગણી રાજ્યને તણખલાની જેમ ત્યજીને રામ વનમાં ગયા.રામાયણમાં ભ્રાતૃ-સ્નેહના સૌહાર્દનું જે અનુપમ ચિત્રણ છે તે આદર્શનું નિતાન્ત શ્લાઘ્યરૂપ જોવા મળે છે. ભરત અનાયાસે પ્રાપ્ત રાજ્ય અગ્રજભાઈને પ્રેમથી અસ્વીકાર કરી ચૌદ વર્ષ સુધી રામની કાષ્ઠપાદુકાને ન્યાસરૂપથી શાસનભાર ચલાવ્યો. લક્ષ્મણ પણ ભ્રાતૃસ્નેહવશાદ્ રામની સાથે વનમાં જઈ વનવાસનું કષ્ટ સહન કરી લંકાયુદ્ધમાં ખૂબ સહાય કરી રામને વિજયી બનાવ્યા. આથી જ રામ વડે

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः ।

तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥૯

રામાયણ અનુસાર પરિવારમાં પત્નીનું સ્થાન અત્યંત ગૌરવાસ્પદ છે. પત્નીરૂપે સ્ત્રીનું ચરિત્ર ટલું ઉન્નત અને પ્રશસ્ય છે તેનું નિદર્શન સીતાચરિત છે. પરંતુ કૈકેયીનું દુષ્કર્મ નિંદનીય છે. રામાયણમાં બહુપત્નીત્વ પણ પ્રચલિત હતું. આથી જ અંતઃપુરમાં સપત્નીઓમાં ઈર્ષ્યા અને દ્વેષથી કલહ ઉત્પન્ન થાય છે. રામનો અભિષેક સાંભળીને મંથરા કૈકેયીને ભય દર્શાવે છે. જેમ કે :

उपस्थास्यति कौशल्यां दासीवत् त्वं कृताञ्जलिः ।

पुत्रश्च तव रामस्य प्रेष्यत्वं हि गमिष्यति ॥૧૦

પરિવારમાં પુત્રનું મહત્ત્વપૂર્ણ સ્થાન હતું - ' अपुत्रस्य' गतिर्नास्ति ।'એ કથન અનુસાર સગર દશરથ - કુશનાભ વગેરે રાજાએ તપ, યજ્ઞ કર્યાં.

ઉપર્યુકત ઉદાહરણો વડે સ્પષ્ટ થાય છે કે, ઉત્તમચરિત્રો, પ્રશસ્ત ગુણોનો પ્રેમ, સૌહાર્દ સંબંધનો આરંભ પરિવારથી જ શકય બને છે.

શિક્ષા :

રામાયણકાલીન સમાજમાં શિક્ષાનો પ્રચાર-પ્રસાર વ્યાપક હતો. આ તથ્યની સૂચના દશરથશાસિત અયોધ્યા નગરીના વૈભવવર્ણનથી પ્રાપ્ત થાય છે. અયોધ્યામાં ત્યારે કોઈ અલ્પશ્રુત અથવા વિદ્યાહીન જન ન હતા, જેમ કે :

न कश्चिदबहुश्रुतः । नाविद्वान् विधते क्वचित् ।"११

બાળકની સાથે કન્યાને પણ ઉત્તમ શિક્ષાપ્રબંધ હતો. કન્યાને માટે સંગીત અને ઔષધિની શિક્ષાવ્યવસ્થા હતી. દેવાસુર સંગ્રામમાં શમ્બરથી પ્રહારિત દશરથની કૈકેયીએ પરિચર્યા કરી હતી. તત્કાલીન સમાજમાં શિક્ષાની બાબતમાં ગુરુ અથવા શિક્ષક પ્રત્યે અત્યાદર થતો. વ્યક્તિના સર્વાંગીણ વિકાસમાં શિક્ષા ખૂબ મહત્ત્વપૂર્ણ હતી.

નારીઓની સ્થિતિ :

કોઈપણ સમાજની ઉન્નત અવનત દશાનું આકલન તત્કાલીન નારીની સ્થિતિથી આંકવું શકય છે. રામાયણમાં સ્ત્રીઓની સ્થિતિવિષયમાં સ્વતંત્રતામાં શિથિલતા, સંકુચિતતા, પિતા, પતિ, પુત્રમાં જ નારીનું અસ્તિત્વ હતું. રામવનગમન બાદ શોકાકુળ કૌશલ્યા દશરથને આમ કહે છે :

गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीयागतिरात्मजः ।

तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विर्धते ।।१२

સ્ત્રીઓનો સર્વોત્તમ પ્રશંસનીય ગુણ પાતિવ્રત્ય ધર્મ હતો. પાતિવ્રત્યવિષયમાં અનસૂયા દ્વારા સીતાને કહેવામાં આવે છે કે :

दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः ।

स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः ।।१3

કુળવાન નારી માટે વૈધવ્યથી મોટું કોઈ દુઃખ ન હતું. જેમ કે :

भयानामपि सर्वेषां वैधव्यं व्यसनं महत्।१४

રામાયણમાં દિવંગત દશરથ, વાલિ, રાવણ વગેરેની પત્નીઓનો કરૂણવિલાપ, પતિ સાથે પરલોકગમનેચ્છા, વૈધવ્યની દારૂણતાને પ્રકટ કરે છે. સુગ્રીવપત્ની રૂમા અને રામપત્ની સીતાના હરણથી વાલિ-રાવણનું મૃત્યુનું કારણ બને છે. ત્યારે નારી પ્રત્યે આદરભાવ, શિષ્ટાચાર મુખ્ય ગણાતો. પરિવારના, સમાજના, રાષ્ટ્રના ઉત્થાનમાં નારીઓનું ખૂબ યોગદાન હતું.

સાંસ્કૃતિક સ્થિતિ :

સંસ્કૃતિ માનવસમાજને માટે આચરણ, ચિંતન, શિક્ષા, કલાઓ પરિષ્કૃત મૂલ્યોની નિધિ છે. જે મનુષ્યને માનસિક, બૌદ્ધિક, આધ્યાત્મિક વિશિષ્ટતા પ્રદાન કરે છે. સમગ્ર દેશ, સમાજ અને પરંપરાથી પ્રાપ્ત અંતઃચેતના જ સંસ્કૃતિમાં સમાવિષ્ટ છે. વિશ્વની અનેક પ્રાચીન, અર્વાચીન સંસ્કૃતિમાં ભારતીય સંસ્કૃતિનું સ્થાન ઉચ્ચતમ છે. સંસ્કૃતિ નિર્વાહક આધારગ્રન્થોમાં રામાયણનું સ્થાન મુખ્ય છે. સદ્ગુણ પ્રત્યે આકર્ષણ હૃદયસ્થિત પરમાત્મત્વનું પ્રમાણ છે. વાલ્મીકિ રામાયણમાં આ પ્રકારની ઉદાત્ત આદર્શોની વ્યવહારિકી સ્થાપના ઉપલબ્ધ થાય છે. કૈકેયી પ્રત્યે રામની સૌમ્યભાવનાની અભિવ્યકિત સુપુત્રની સાંસ્કૃતિક ચેતનાનું જ ઉદાહરણ છે.

આમ, આદિકવિ વાલ્મીકિકૃત 'રામાયણ' મહાકાવ્ય જન-માનસની ધાર્મિક, સાહિત્યિક અને કલાત્મક ચેતનાનું પ્રેરક રહ્યું છે. આ મહાકાવ્યોમાં ભારતીય સંસ્કૃતિના પ્રાચીન સ્વરૂપનું જે વૈભવશાળી ચિત્રણ આપણને દષ્ટિગોચર થાય છે તે કોઈ પણ અન્ય રચનામાં ઉપલબ્ધ નથી થતું. આમાં વર્ણિત સંસ્કૃતિ મૂલતઃ વૈદિકોત્તરકાળના ઋષિ-મુનિઓની જ દેન છે, જેનો ભારતીય જન-જીવન પર આજે પણ પ્રભાવ પરિલક્ષિત થાય છે.

રામાયણમાં દિવંગત દશરથ, વાલિ, રાવણ વગેરેની પત્નીઓનો કરૂણવિલાપ, પતિ સાથે પરલોકગમનેચ્છા, વૈધવ્યની દારૂણતાને પ્રકટ કરે છે. સુગ્રીવપત્ની રૂમા અને રામપત્ની સીતાના હરણથી વાલિ-રાવણનું મૃત્યુનું કારણ બને છે. ત્યારે નારી પ્રત્યે આદરભાવ, શિષ્ટાચાર મુખ્ય ગણાતો. પરિવારના, સમાજના, રાષ્ટ્રના ઉત્થાનમાં નારીઓનું ખૂબ યોગદાન હતું.

સંદર્ભ :-

(૧) વા.રા. - ૧/૬૫/૨૬-૨૭

(૨) ૧૮.૨૮. - ૧/૮/૧૮

(૩) વા.રા. - ૩/૧૪/૩૦

(૪) વા.રા. - ૧/૧૩/૧૪

(૫) વા.રા. - ૨/૧૦૬/૨૨

(૬) વા.રા. - ૧/૧૮/૨૧

(૭) વા.રા. - ૧/૧૮/૨૪

(૮) વા.રા. - ૭/૮/૨૨-૨૪

(૯) વા. રા.૬/૧૦૧/૧૬

(૧૦) વા.રા. - ૨/૮/૧૦-૧૧

(૧૧) વા.રા. - ૧/૬/૧૪

(૧૨) વા.રા. - ૨/૬/૨૪

(૧૩) વા.રા. - ૨/૧૧૭/૨૪

(૧૪) વા.રા. - ૭/૨૫/૪૩

यज्ञकर्म : रामायण के परिप्रेक्ष्य में

प्रा. डॉ. एम. जे. पटोलिया*

यज्ञ शब्द की निष्पत्ति यज् धातु से होती है। इसका अर्थ है देवपूजा संगतिकरण और दान । देवोपम जयेष्ठ - श्रेष्ठजनों का सम्मान यज्ञ है। समान वय, शील,गुण और स्वाभाववालों के साथ संगति और छोटों को स्नेहपूर्वक कुछ देना भी यज्ञ है। किसी प्रकार का महान कर्म ही यज्ञ है जिसे शतपथब्राह्मण ने 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' कहा है।

कर्मयज्ञ, ज्ञानयज्ञ और उपासना यज्ञ सामान्यतः यज्ञों के ये तीन प्रकार हैं। "षोडश संस्कार, शिक्षा, आहार, वस्त्र, गृह, समाज, राज्य, कृषि, पशुपालन, संगीत, गणित, भूगोल, ज्योतिष, वैद्यक, रसायन, ईमारत, यन्त्र, शस्त्र, वाहन और युद्धविद्या आदि पदार्थ और विद्याएँ 'कर्मयज्ञ' से सम्बन्ध रखती हैं। ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म, कर्मफल, सृष्टि, प्रलय, वर्ण, आश्रम और स्वाध्याय आदि 'ज्ञानयज्ञ' से सम्बन्ध रखते हैं और सदाचार, दया, प्रेम, दर्शन, भक्ति, वैराग्य, योग और समाधि आदि क्रियाएँ 'उपासना यज्ञ' से सम्बन्ध रखती हैं।१

"यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे" अर्थात् जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है। इस प्रकार यज्ञकर्म बहुत व्यापक और निरन्तर सक्रिय रहते हैं।

यज्ञप्रकार :

रामायण में अश्वमेध यज्ञ का अनेकबार उल्लेख हुआ है।२ अश्वमेध के अतिरिक्त दर्श पौर्णमास, राजसूय, पौण्डरीक और वाजपेय :

दर्शश्च पौणमासश्च यज्ञाश्चैवाप्तदक्षिणाः ।३

इनमें अश्वमेध का विशद वर्णन किया गया है। कल्पसूत्र और ब्राह्मणग्रन्थों को इंगित करते हुए अश्वमेध के क्रमशः तीन दिनों में सम्पादित प्रथमदिन के सवन के अतिरात्र बताकर उसके शास्त्रीय विधान से निष्पन्न करने का कथन किया गया है। विहिता शास्त्रदर्शनात् ।४ कवि ने अश्वमेध के उत्तरकाल में किए जानेवाले जिन यज्ञों के नाम लिए है वे है ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, अभिजित्, विश्वजित, आप्तोयाम, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध और वैष्णव यज्ञ ।५

यज्ञविधि, स्थान और काल :

वाल्मीकि ने यज्ञ सम्पादन में विधि - विधान की निर्दोषिता पर बहुत बल दिया है - 'यदहं यष्टुमिच्छामि शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।' (रामा. १/८/९), 'यज्ञाकल्पं यथाविधि ।' (रामा. १/८/१६), 'ऋत्विग्भिरुप-सन्दिष्टो यथावत् क्रतुराप्यताम् ।' (रामा. १/८/२२ तथा १/१२/१६), 'यज्ञनिर्वतयामास यथाकल्पं यथाविधि i' (रामा. १/४१/२६), 'यज्ञभूमौ च विधिवत् पावक जुहुवेन्द्रजित् ।' (रामा.६/८०/५) आदि इसके साक्ष्य है। महाकवि ने इस धारणा को स्पष्ट किया है कि, 'विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्ता विनश्यति।'६

प्रमुखरूप से ऋतुओं में यज्ञ करने की व्यवस्था है। ऋतुओं में ही यज्ञ करने से यज्ञकर्ता की संज्ञा ऋत्विज् होती है। ऋतुओं में भी वसन्त का समय विशेष महत्त्व का होता है। वाल्मीकि ने अश्वमेध यज्ञ के लिए भी वसन्त समय की चर्चा की है। 'वसन्ते समनुप्राप्ते राज्ञो यष्टुं मनोऽभवत्।' ७ 'वसन्त आने पर संवत्सर पूरा हो जाता है, अतः उस समय यज्ञ अपेक्षाकृत अधिक पुष्यप्रद होता है -

पुनः प्राप्ते वसन्ते तु पूर्णः संवत्सरोऽभवत् ।

* **संस्कृत विभाग, मातुश्री मोंधीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, चितल रोड, अमरेली 365601 (गुजरात)**

प्रसवार्थं गतो यष्टुं ह्यमेधेन वीर्यवान् ॥८

महाराज दशरथ ने अपने यज्ञ के लिए सरयू के उत्तरी किनारे पर यज्ञभूमि तैयार करने के निर्देश दिये 'सरच्चाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ।'९ इस प्रकार समुचित स्थान और मुहूर्त का यज्ञ में विशेष महत्त्व है।

यज्ञसज्जा :

यज्ञ के अंगभूत अश्व संचरण आदि निर्विघ्न सम्पन्न हो, इसके लिए स्थान, समय और विधान के साथ शास्त्रीय दृष्टि से सज्जा पर विशेष बल दिया गया है।

नरेश्वर दशरथ द्वारा यज्ञ का प्रस्ताव करने पर मुनिपुंगव वसिष्ठने यज्ञविषयक, शिल्पकर्म में निष्णात, परम धार्मिक वृद्ध ब्राह्मणों,यज्ञकर्म समाप्त होने तक उसमें सेवाकरनेवाले सेवकों, शिल्पकारों, बढईयों, भूमि खोदनेवालों, ज्योतिषियों, कारीगरों, नटों, नर्तकों, विशुद्ध शास्त्रवेत्ताओं और पुरुषों को यज्ञ कर्म के लिए आवश्यक प्रबन्ध करने का निर्देश दियाI१०

अतिथियों और आमंत्रितजनों के ठहरने के लिए भवन, तदुपरांत ऐसे अवसर पर अश्वशालाएँ, गजशालाएँ और विदेशी सैनिकों के लिए छावनियाँ बनाई जाती थीं I ११

दशरथ का अश्वमेध यज्ञ :

राजा दशरथ को राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का कर्ता कहा गया है। 'राजसूयाश्वमेधानामाहर्ता धर्मनिश्चितः I१२ राजा का प्रधान याज्ञिक कर्म ही राजसूय है। 'राजा वै राजसूयेन इष्ट्वा भाति ।' (शतपथ ब्रा. १२/२/२/१)

रामायण के अनुसार जब यज्ञाश्व भूमण्डल में भ्रमण करके एक वर्ष बाद लौट आया तब सरयू के उत्तर तट पर यज्ञारम्भ हुआ। वाल्मीकि का मत है कि अश्वमेध यज्ञ के लिए बहेडे के वृक्ष का एक यूप और दोनों बाहें फैलाने भर की दूरी पर दो देवदारु निर्मित यूपों की स्थापना का विधान होता है।१३

पुत्रेष्टि यज्ञ :

सन्तान के लिए अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख वाल्मीकि ने अनेक स्थलों पर किया है ।१४ तथापि रामायण में अश्वमेध के उपरान्त पुत्रेष्टि यज्ञ का विधान किया गया है। इस सन्दर्भ में ऋष्यश्रृंग ने दशरथ से कहा- 'इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयाँ पुत्रकारणात् ।' १५

रामायण के अनुसार पुत्रेष्टि यज्ञ का निष्पादन अथर्ववेद के मन्त्रों से किया जाता है। 'अथर्वशिरसि प्रोक्तैमन्त्रैः सिद्धां विधानतः I'१६ इतना स्पष्ट है कि इस यज्ञ का प्रत्यक्षतः पुत्र कामना से सम्बन्ध है। 'अयजत् पुत्रियामिष्टिं पुत्रेप्सुररिसूदनः।'१७

यज्ञग्नि :

वेद में अग्नि को देवताओं का पुरोहित कहकर उसकी प्रशंसा व स्तुति की गई है। 'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्.....।'

अग्नि का आदिकविने भूरि-भूरि वर्णन किया है 'सुहुत इव मखेऽग्निराज्यसिक्तः समभवदुज्जवलितो महर्षिवहिन I' (रामा. १/२०/२८), 'प्रज्जवाल ततो वेदिः ।' (रामा. १/३०/८), 'वेद्यामग्नि शिखा-मिव ।' (रामा. २-९-५३), 'तर्पयित्वा हुताशनम् I' (रामा. (६ / १९/१३), 'वेद्यामिव हुताशनः ।' (रामा. ६/१९/४१), 'अग्नेराज्यहुतस्येव ।' (रामा.६/७६/८०), 'अग्निभ्यामिव दीप्ताभ्यां सत्रे कुशमयश्च यः ।' (रामा. ६/८८/७०) यज्ञ के सन्दर्भ में रामायण में तीनों अग्नियों का कथन किया गया है। (रामा. २/१०३/३२)

यज्ञाचार्य :

रामायण में चाहे यज्वा, या यजक हो, होता, उद्गाता, ऋत्विक् अथवा ब्रह्मा सभी वेदपारंग और विद्वान है। इसी प्रकार 'पुरोहित या पुरोधा, उपाध्याय और आचार्य विद्वान और तेजस्वी है।'१८ ऋत्विजों का मुख्यकर्म स्वाध्याय कहा है। (रामा. १/१४/४७)

यज्ञसामग्री :

अश्वमेध यज्ञ के प्रसंग में यज्ञसामग्री का उल्लेख हुआ है। पात्र द्वारा हवि लेकर यजन का चित्रण किया गया है -

प्रगृह्य शिरसा पात्रीं हविषो विधिवत् ततः ।

महते दैवतायाज्यं जुहभव ज्वालितेऽनले ॥२९

एक स्थल पर कहा गया है - हविष्य, धृत, पुरोडाश, कुश और खादिर के यूप एक यज्ञ के उपयोग में आ जाने पर "यातयोम" हो जाते है। इसलिए विद्वान् इनका फिर दूसरें यज्ञ में उपयोग नहीं करते हैं। 'नैतान् यातयामानि कुर्वन्ति पुनरध्वरे ।' २०

अरण्यकाण्ड में तापसाश्रम के वर्णन में अग्निशालाओं,स्रुवा आदि यज्ञपात्रों, मृगचर्म, कुश, समिधा, जलपूर्णकलश और फलमूल की चर्चा की गई है। २१

यज्ञफल :

तृप्त और सन्तुष्ट होकर देवशक्तियाँ पृथ्वी को उर्वर और समृद्ध बनाकर मानव का प्रत्युपकार करती है। अश्वमेध यज्ञ से श्री समृद्धि और कीर्ति मिलती है, तो पुत्रेष्टि यज्ञ सन्तानोत्पत्ति हेतु किया जाता है।

'यज्ञार्थवरयामास सन्तानार्थ कुलस्य च।' (रामा. १/१२/२), 'तद्धियज्ञफलं तेनमैथिलेनोत्तमं धनुः याचितः ।' (रामा. १/३१/१२), 'इष्ट्वा यज्ञं वरोलब्धो लोके परम दुर्लभः ।' (रामा. ६/७/२०) आदि रामायणीय उद्धरणों से सिद्ध होता है कि सुखोपभोग वर और समृद्धियाँ यज्ञ का फल है। सर्वविध उपद्रवों की शान्ति और आरोग्यलाभ भी यज्ञ का प्रयोजन होता है।

उपाध्यायः स विधिना हुत्वा शान्तिमनामयम् ।

हुतहव्यावशेषेण वाह्य यं बलिमकल्पयत् ॥२२

दान-दक्षिणा :

दान और दक्षिणा में मणियाँ, अन्य रत्न, सुवर्ण, गो, पृथ्वी और स्वर्णमुद्राएँ राजा दशरथ ने वितरण की थी। 'यज्ञाश्चैवाप्तदक्षिणाः ।' (रामा. १/५३/२४), 'यज्ञस्यान्तेऽयदं राम दक्षिणां पुण्यकर्मणे ।' (रामा. १/७५/२६), 'अग्निहोत्रादिभिर्यज्ञै रिष्ट्वानाप्तदक्षिणैः ।' (रामा. ६/३२/२४) आदि इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि यज्ञों का उपसंहारकाल दक्षिणा होता है

यज्ञमण्डप के लिए आदिकवि ने यज्ञायतन, यज्ञवाट (१/५०/१), यज्ञोपसदन ((१/५०/१), अग्न्यागार (२/३२/२), यज्ञ-निवेशन, अग्निशरण ((३/३/४) और यज्ञभूमि (६/८०/ ५) आदि शब्दों का व्यवहार किया है।

यज्ञ में नारी पुरुष की सहधर्मिनी के रूप में न केवल हवन करती है अपितु उसका स्वतन्त्र याज्ञिक रूप सात्त्विकता से मंडित और प्रणम्य हैं I २३

निष्कर्ष :

यज्ञ के पक्षधर वाल्मीकि का प्रतिनिधि स्वर वैदिक ही है। आदिकवि वाल्मीकि ने आदिकाव्य रामायण में जो यज्ञभावना व्यक्त की है उसमें वेद और उपनिषद् की प्रतिछाया ज्यादातर प्रसंगो में प्रतिबिंबित होती है। यज्ञकर्म, यज्ञप्रकार, यज्ञविधि, स्थान और काल, यज्ञ सज्जा, अश्वमेध यज्ञ, पुत्रेष्टि यज्ञ, यज्ञग्नि, यज्ञाचार्य, यज्ञफल, दान-दक्षिणा आदि सब के द्वारा कवि ऋषि, मुनि और राजादि उत्कर्ष, स्वर्ग, सुख, शान्ति और सन्तान आदि की प्राप्ति के लिए यज्ञ करते थे। इस तरह वाल्मीकि ने यज्ञ के विविध भावों का चित्रण किया है। कवि की यज्ञनिष्ठा उसको वेद के उस महत्त्वपूर्ण तथ्य से जोडती है जिसमें यज्ञ को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को बाँधनेवाला नाभिस्थान कहा गया है।

यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।(अथर्ववेद : (९ /१०/१४)

पादटीप :-

1. वैदिक सम्पत्ति पं. रघुनन्दन शर्मा, पृ. 350
2. वाल्मीकि रामायण:1/1/94, 1/8/2, 1/14/2, 2/100/8
3. वाल्मीकि रामायण: 1/53/24, 6/128/94
4. वाल्मीकि रामायण: 1/14/41
5. वाल्मीकि रामायण: 1/14/42, 7/25/8
6. वाल्मीकि रामायण: 1/8/18
7. वाल्मीकि रामायण: 1/12/1
8. वाल्मीकि रामायण: 1/13/
9. वाल्मीकि रामायण: 1/12/16
10. वाल्मीकि रामायण: 1/13/6, 7, 8
11. वाल्मीकि रामायण: 1/13/10, 12, 15, 16
12. वाल्मीकि रामायण: 2/100/8
13. वाल्मीकि रामायण: 1/14/23
14. वाल्मीकि रामायण: 1/8/24 तथा 1/8/2
15. वाल्मीकि रामायण: 1/15/2
16. वाल्मीकि रामायण: 1/15/3
17. वाल्मीकि रामायण: 1/16/9
18. वाल्मीकि रामायण: 1/25/5, 1/14/3, 1/14/24,
    1/15/3, 1/38/24, 1/50/9
19. वाल्मीकि रामायण: 2/6/2
20. वाल्मीकि रामायण: 2/61/17
21. वाल्मीकि रामायण: 3/1/4 तथा 3/1/5
22. वाल्मीकि रामायण: 2/25/29
23. वाल्मीकि रामायण: 2/20/15, 16

वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी: एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. संतोष कुमार दुबे*
santoshdubey656@gmail.com

"हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में सभासीन हो सकती है", मैथिलीशरण गुप्त का यह कथन धीरे-धीरे साकार रूप ले रहा है। वर्तमान समय में हिंदी भारत ही नहीं बल्कि दुनिया के अनेक देशों में प्रयोग की जाती है। बहुभाषी भारत में हिंदी-भाषी राज्यों की आबादी 46 करोड़ से अधिक है। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार 41.03 प्रतिशत लोगों से अधिक लोगों की मातृभाषा हिंदी है। विश्व के लगभग 80 करोड़ लोग हिंदी बोलते या समझते हैं। हिंदी बोलने वाले लोग पड़ोसी देशों के अतिरिक्त अमेरिका, कनाडा, मॉरीशस, दक्षिण अफ्रीका, यमन, युगांडा, सिंगापुर, नेपाल, न्यूजीलैंड, जर्मनी, कनाडा, इंग्लैंड, आदि देशों में भारी संख्या में हैं। यूनेस्को की सात भाषाओं में हिंदी भी है जबकि संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा के लिए भारत सरकार की ओर से पुरजोर प्रयास किया जा रहा है। 'हिंदी चेयर' विश्व के लगभग 91 विश्वविद्यालयों में है और 150 विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में हिंदी शामिल है (अलका, 2018)। विदेशों में 25 से अधिक पत्र-पत्रिकाएं हिंदी में प्रकाशित हो रही हैं। यूनिकोड के माध्यम से इन्टरनेट पर पिछले कुछ वर्षों में हिंदी की सामग्री तेजी से बढ़ी है। यदि अठारहवीं सदी में ऑस्ट्रिया और हंगरी, उन्नीसवीं सदी में ब्रिटेन और जर्मनी, बीसवीं सदी में अमेरिका और रूस का वर्चस्व रहा है तो दबी आवाज में ही सही दुनिया यह मानने लगी है कि इक्कीसवीं सदी भारत के प्रभाव या वर्चस्व की है जो हिंदी के लिए वरदान है। हाल ही में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा चिकित्सा और प्रौद्योगिकी की शिक्षा हिंदी माध्यम में देने की पहल स्वागत योग्य है। म०प्र० सरकार की यह क्रांतिकारी पहल उन विद्यार्थियों के लिए वरदान साबित होगी जो प्रतिभावान होते हुए भी अंग्रेजी की कमजोर समझ की वजह से चिकित्सा और प्रौद्योगिकी के ज्ञान से वंचित हो जाते थे। यह निर्णय हिंदी भाषा के महत्व के साथ-साथ बौद्धिक उत्पादन में भी कारगर सिद्ध होने वाली है और सामान्य जन मानस में भी निश्चित रूप से ज्ञान का संचरण होगा।

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय द्वारा एम० बी० ए० और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रौद्योगिकी की शिक्षा हिंदी में भी प्रदान की जा रही है। वर्तमान में 'इकोनॉमिक टाइम्स', बिज़नेस स्टैण्डर्ड' समाचार पत्र हिंदी में छपकर और 'स्टार न्यूज', 'स्टार स्पोर्ट्स' व 'ई. एस. पी. एन.' जैसे चैनल हिंदी में प्रसारण कर रहे हैं जिससे यह स्पष्ट है कि हिंदी भाषा का भविष्य तमाम संभावनावों का है जिसमें रोजगार का एक बड़ा बाज़ार निहित है (उपाध्याय , 2018)। हिंदी भाषा रचना की मौलिकता और तथ्य को अन्य भाषा की अपेक्षा अधिक सफलतापूर्वक व्यक्त करती है। माइकल मधुसूदन दत्त (बांग्ला कवि) प्रतिभा के धनी थे उन्होंने अंग्रेजी भाषा में कविता रचने में खूब मेहनत की थी लेकिन जब वे इंग्लैंड यात्रा पर थे तो उन्हें यह ज्ञात हुआ कि अंग्रेजी में बहुत अच्छा लिखाकर भी वे दोयम दर्जे के कवि से अधिक नहीं थे जबकि अपनी निज भाषा में लिखकर वे उत्कृष्ट श्रेणी प्राप्त कर सकते थे (एडमिन, 2021)। इस समय हम आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं जिसमें हिन्दी भाषा की उत्कृष्टता व वैज्ञानिकता पर बल देने की आवश्यकता है। प्रधानमंत्री मोदी जी के स्वावलंबी और आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना में हिंदी भाषा की भूमिका को समझना होगा। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र महासभा में हिंदी में भाषण देकर भाषा के प्रति अपनी परिकल्पना को भी व्यक्त किया था। पूर्व उप-राष्ट्रपति वेंकैया नायडू ने भी हिंदी की उत्कृष्टता पर बल दिया है। सितंबर 14, 2017 को दिल्ली के विज्ञान भवन में पूर्व राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने कहा था कि हिंदी अनुवाद की नहीं बल्कि संवाद की भाषा है। किसी भी भाषा की तरह हिंदी मौलिक सोच की भाषा है। वे एक कार्य से बहुत प्रसन्न हुए थे क्योंकि उस समय राजभाषा विभाग के सौजन्य से 'लीला मोबाइल ऐप' का निर्माण किया गया था जो लोगों को ऑनलाइन हिंदी सीखने की सुविधा देता है। गुरुदेव रविन्द्र नाथ टैगोर ने हिंदी के विषय में कहा था कि सभी भारतीय भाषाएं नदियां है जबकि हिंदी महानदी है।

* **सहायक आचार्य (शिक्षा संकाय), ग्राम व पोस्ट-बेलहरा, जनपद-मीरजापुर (यू.पी.)—२३१३०९**

भाषा की निरंतरता उसके प्रयोग पर निर्भर करती है; इसलिए हिंदी को सामान्य बोलचाल, व्यवहार और संवाद में प्रयोग करना चाहिए परंतु यह बिडम्बना ही है कि दुनिया में सम्मान पा रही हिंदी अपने ही देश में उपेक्षा की शिकार है जबकि इस भाषा के सन्दर्भ में गांधी जी की अंतर्वेदना को समझने की जरूरत है। कुछ लोगों का यह मानना है कि अंग्रेजी ही सफलता का मानक है जबकि यह उनकी गलतफहमी और तथ्य से परे की बात है। लोगों को या समझने की जरूरत है कि उनकी भाषा में भी अर्जित ज्ञान सर्वोत्कृष्ट सफलता प्रदान करता है। समकालीन परिदृश्य में वैश्विक कम्पनियाँ भी हिंदी को महत्व दे रही हैं क्योंकि हिंदी आज विश्व के पर्याप्त लोगों की भाषा बन गई है। मोबाइल, सोशल मीडिया आदि क्षेत्रों में हिंदी का बहुतायत प्रयोग किया जा रहा है। अतिरेक शोध में यह पाया गया है कि प्रतिकूल स्थिति में भी हिंदी के प्रचलन में वृद्धि हुई है। उपग्रह चैनलों के माध्यमों से विश्व के तमाम देशों में हिंदी कार्यक्रम प्रसारित हो रहे हैं और बड़ी संख्या में दर्शक भी हैं। दुनिया में हिंदी शिक्षण के विविध आयाम प्रयुक्त किये जा रहे हैं। हिंदी के विकास को केन्द्रीय उद्देश्य मानते हुए अखिल भारतीय हिंदी समिति, हिंदी न्यास और अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति द्वारा सराहनीय कार्य किये जा रहे हैं। मॉरीशस में साहित्य अकादमी की स्थापना और उसकी पत्रिकाएं 'बसंत' और 'रिमझिम' हिंदी के गौरव को प्रकाशित कर रही हैं। हिंदी के प्रभाव और महत्व को देखते हुए ही मॉरीशस को 'छोटा भारत' कहा जाने लगा है। यथार्थ में वैश्वीकरण एक आर्थिक अवधारण है जो निश्चित रूप से भाषाई प्रकरण से भी जुड़ा है; हिंदी भाषा ने वैश्वीकरण के आर्थिक ताने-बाने में अपनी पहचान स्थापित किया है। वैश्विक पटल पर वर्ष 1952 तक हिंदी पांचवें स्थान पर थी जबकि वर्ष 1980 तक यह तीसरे और अब हिंदी ने लगभग सभी भाषाओं को पीछे कर दिया है (पांडेय & पांडेय , 2013)। वैश्विक बाजारवाद ने दुनिया के व्यापारियों को भारत की ओर आकर्षित किया है एवं हिंदी भाषा के ज्ञान के लिए मजबूर और हिंदी भाषा को ऊँचाई प्रदान किया है। भारतीय साहित्य की वैज्ञानिकता और व्यवहारिकता ने वैश्विक स्तर पर चेतना का संचार किया है। हिंदी भाषा का अतीत संस्कृत जैसी वैज्ञानिक भाषा से जुड़ा है अर्थात हिंदी भाषा व साहित्य का समृद्धशाली इतिहास है और वर्तमान में यह जनभाषा बन गयी है। प्रवासी भारतीयों का लेखन कार्य भी हिंदी को वैश्विक मंच पर स्थापित करने में उल्लेखनीय है। इन प्रवासियों को टी० वी०, रेडियो, मीडिया, संगोष्ठी आदि में स्थान प्रदान करना चाहिए ताकि हिंदी के लिए उनके योगदान को उजागर करके आम लोगों में हिंदी के प्रति व्याप्त कुंठा का इलाज किया जा सके।

ध्यातव्य है कि विश्वभाषा के स्तर पर हिंदी की स्थिति अंग्रेजी से बेहतर एवं गौरवशाली है। जहाँ अंग्रेजों के उपनिवेश और छद्मनीति के आधार पर अंग्रेजी का विशाल महल खड़ा किया गया, जो सर्वविदित है, वहीं अपनी शिष्टता, सहजता, मूल्यों और आवश्यकताओं के आधार पर हिंदी भाषा की गंगा का विस्तार हुआ है। वैश्विक भाषा की जब चर्चा की जाती है तो हिंदी भाषा का विदेशों में प्रसार व प्रयोग से संबंध होता है। भारत का वैश्विक स्तर पर प्रभाव स्थापित करने में हिंदी साहित्य, दर्शन, ज्ञान, संस्कृति और समाज आदि का महत्वपूर्ण योगदान है। भारतीय दार्शनिकों ने विदेशों में यहाँ की हिंदी विरासत को जागृत किया है। वैश्विक स्तर पर हिंदी को सम्मानित स्थान दिलाने के लिए वैयक्तिक स्तर पर प्रयास करने की आवश्यकता है। हमें अपनी भाषा पर गर्व करते हुए वैश्विक मंच पर इसका प्रयोग करना चाहिए। चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, तकनीकी आदि विषयों का हिंदी में अनुवाद व्यापक स्तर पर होना चाहिए ताकि सामान्य जन तक ज्ञान की उपलब्धता सहज हो सके। शासन, प्रशासन, न्यायपालिका आदि क्षेत्रों की भाषा हिंदी होनी चाहिए। ध्यातव्य है कि जिस देश की अधिकांश जनता न्याय की भाषा से ही परिचित नहीं है उस देश में यह कहना गलत नहीं है कि जो अपने ही घर में अनाथ है उसे विश्वनाथ बनाना रेत से दीवार खड़ी करने की कपोल कल्पना से अधिक कुछ नहीं है। प्रसिद्ध साहित्यकार अशोक वाजपेयी का मानना है कि कोई भी भाषा अपनी जमीन और लोगों से विस्थापित या स्थापित होती है, लेकिन जब अपने ही लोग हिंदी का आदर नहीं करेंगे तो दूसरा कौन करेगा? इसलिए देश को हिंदी की पहचान तय करने का समय आ चुका है। विश्व का कोई भी देश दूसरी भाषा में शिक्षा पाकर महाशक्ति नहीं बन सकता है, चीनी सबसे क्लिष्ट भाषाओं में से है लेकिन चीन ने विश्व को सिखा दिया है कि अपनी भाषा में प्राप्त ज्ञान निश्चित रूप से श्रेष्ठ होता है।

हिंदी पत्रकारिता का उदय 30 मई, 1826 ई० को 'उदंत मार्तंड' के रूप में हुआ है। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में ही हिंदी पत्रकारिता के तत्वावधान में स्वतंत्रता संग्राम का बीजारोपण कर दिया गया था जिसने देश में महान आन्दोलनकर्ता और स्वतंत्रता प्रदान की है। वर्तमान पत्रकारिता का वैश्विक परिदृश्य बदल चुका है, निःसंदेह पत्रकारिता अनेक भाषाओं में संचालित हो रही है तथापि हिंदी पत्रकारिता की व्यापकता किसी भी भाषा से कमतर नहीं है। हिन्दी पत्रकारिता ने वैश्विक पटल पर

सोशल मीडिया, दूरदर्शन, इन्टरनेट आदि के माध्यम से खुद को स्थापित किया है। इंटरनेट पर तमाम वेबसाइट के माध्यम से हिंदी समाचार पत्र और पत्रिकाएं पढ़ी जा रही हैं। विविध हिंदी चैनलों की ओर से दुनियाँ के कोने-कोने में समाचार संकलन करने हेतु हिंदीभाषी लोगों को रोजगार प्रदान किया जा रहा है। ध्यातव्य है कि हिंदी भाषा अनेक क्षेत्रों में रोजगार के विकल्प उपलब्ध करा रही है। जैसे- शिक्षा, मीडिया, पत्रकारिता, प्रशासनिक सेवा, अनुवाद सेवा, संपादन, प्रकाशन, लेखन, विज्ञापन आदि क्षेत्रों में हिंदी का ज्ञान उपयोगी है। यह बिडम्बना है कि अंग्रेजीयत ने लोगों को निज भाषा हिंदी से इतना दूर कर दिया है कि अंग्रेजी के प्रति छद्म अनुराग ने उनकी भाषा, संस्कृति और जिंदगी को बनावटी कर दिया है। यह प्रायः देखा जा रहा है कि अंग्रेजी में लिखना और बोलना ज्ञान और सम्मान का विषय समझना जबकि अपनी मौलिक भाषा का उपयोग कमतर करना एक फैसन हो गया है, यह बहुत शर्मनाक है। अंग्रेजी माध्यम से संचालित कुछ विद्यालयों में हिंदी बोलने पर अर्थ दंड का नियम पाया गया, ऐसे विद्यालयों का उद्देश्य समझ से परे है। आज के प्रगतिशील वैश्विक परिवेश में इस प्रकार के कार्यों को बढ़ावा नहीं देना चाहिए क्योंकि इससे विद्यार्थी में बौद्धिक ठहराव और चिंतन की उर्वरा बाधित होती है।

भाषा अपनी सृजनात्मकता से ही कालजयी होती है और हिंदी में यह छमता निहित है क्योंकि हिंदी के पास अपनी महान विरासत है जो संवादधर्मी और समानता की जीवंत आत्मा है। वैश्विक मंच पर भारतीय संस्कृति के संचरण में हिंदी भाषा संवाहिका की भूमिका निभा रही है। यह सर्वविदित है कि भारतीय फिल्मों ने विश्व मंच पर अपनी सार्थकता और सृजनशक्ति का लोहा मनवाया है। भूमंडलीकरण के कारण भारतीय फिल्म उद्योग में निवेश और तकनीकी का आगमन हुआ। परिणामतः हिंदी फिल्मों की लोकप्रियता भाषाई क्षेत्रवाद का उन्मूलन करते हुए वैश्विक भाषा की ओर अग्रसर हुआ है। आज हिंदी फिल्म उद्योग में पूरी दुनिया से निवेशकों और कलाकारों का आगमन हो रहा है और हिंदी भाषा के विराट संसार ने सभी को स्थान दिया और स्थापित किया है। हिंदी फिल्मों को विश्व के कोने-कोने में स्वीकार किये जाने की लहर के पीछे हिंदी भाषा के मजबूत आधार और बोधगम्यता को कभी भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है। हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में भी फ़िल्में निर्मित हो रही हैं लेकिन वैश्विक मंच पर हिंदी की लोकप्रियता अतुलनीय है। आज-कल हिंदी फिल्मी गानों के शौक़ीन पूरे विश्व में मिलते हैं 1955 की हिंदी फिल्म 'श्री 420' का मशहूर गीत 'मेरा जूता है जापानी, पतलून इन्गिलश्तानी, सिर पर लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी' आज भी रूसी और अन्य विदेशी बड़े शौक से गाते हैं। हिंदी भाषा की विशालता और सहनशीलता के कारण इसने दुनिया की किसी भी अन्य भाषा का तिरस्कार नहीं किया है बल्कि अपनी मौलिकता के साथ अन्य भाषाओं के अपभ्रंश को भी इसने आत्मसात कर लिया है। हिंदी के लिए यह अतिरेक नहीं है कि वैश्विक बाज़ार में यह सशक्त भाषा बन गयी है। हिंदी देश के बहुसंख्यक समाज की भाषा है, यह पठन-पाठन तथा बोध की दृष्टि से सरल व सुगम है। हिंदी भाषा विज्ञान, तकनीकी, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, आदि विषयों को प्रस्तुत करने में सफलतम भाषा है। हिंदी देशवासियों को लोकतंत्र से सीधे जोड़ती है क्योंकि किसान, मजदूर, गरीब, दलित तथा अनेकों समुदाय हिंदी भाषा का प्रयोग करते है और इसी के माध्यम से वे अपने विचारों और आवश्यकताओं को व्यक्त करते है। भारत के सन्दर्भ में एक प्रचलित कहावत है कि यहाँ पर जल के समान कुछ मील पर भाषा भी बदल जाती है तथापि इस भिन्नता के साथ हिंदी भारत को एक सूत्र में जोड़ती है क्योंकि यह भाषा देश के कोने-कोने में बोली और समझी जाती है। हिंदी की सर्वत्रता के कारण ही गांधी जी ने इसे अपने आन्दोलन की भाषा बनाया था। गांधी जी कहते थे कि राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को स्वीकार करना देश की एकता और विकास के लिए आवश्यक है क्योंकि राष्ट्रभाषा के अभाव में राष्ट्र गूंगा है।

नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु हरिश्चंद्र ने स्वभाषा के महत्व का उल्लेख किया है, उनके अनुसार **'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति के मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटे न हिय के सूल।।**, अर्थात अपनी भाषा केवल पूर्णता ही नहीं बल्कि जीवन का तत्वज्ञान देकर मनुष्य के मौलिक उद्देश्य को पूर्ण करती है। वे आगे लिखते हैं कि- **'और एक अति लाभ यह, या में प्रकट लखात, निज भाषा में कीजिये, जो विद्या की बात'** अर्थात अपनी भाषा के माध्यम से प्राप्त ज्ञान और अध्ययन सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत को स्थापित करने में सक्षम होता है। कमजोर अंग्रेजी के कारण युवाओं का प्रतिभावान होने के बाद भी प्रबंधन, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी शिक्षा में मानसिक पीड़ा, अवसाद और आत्महत्या जैसे कदम नीति नियंताओं को विचार करने के लिए विवश कर रहा है। निश्चित रूप से सरकारी स्तर पर ऐसी समस्याओं का ठोस उपाय करना चाहिए जो हिंदी माध्यम को शिक्षा में अनिवार्य रूप से लागू करके ही संभव है। बहुत से प्रतिभावान युवाओं (जो अंग्रेजी माध्यम के स्कूल से असफल हुए थे) से बात करने पर ज्ञात हुआ कि यदि उनकी अंग्रेजी अच्छी होती या वे हिंदी माध्यम से

पढ़े होते तो सफल होते। ध्यातव्य है कि बहुत से अभिभावक भ्रमित होते हैं कि गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा एकमात्र कॉन्वेंट या पब्लिक विद्यालय में होती है जबकि यह मानसिक दासता है जिसका तथ्य से कोई सार्थक संबंध नहीं होता है। हिंदी सभी क्षेत्रों में अग्रसर तो है लेकिन मजबूत स्थिति में नहीं है। बैंक सन्देश, न्यायपालिका के आदेश, शेयर चर्चा, निजी अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में बच्चों को दाखिला दिलाने की महत्वाकांक्षा निश्चित रूप से हिंदी की मजबूती में बाधक है। कोई भी भाषा सीखना गलत तो नहीं है लेकिन दासता कभी श्रेष्ठ नहीं होती है। यह दुर्भाग्य का विषय है कि भारत की सबसे बड़ी अखिल भारतीय सेवा की परीक्षा में हिंदी माध्यम के प्रतियोगी अंग्रेजी माध्यम के प्रतियोगी की तुलना में काफी कम होते हैं।

हिंदी की वैज्ञानिकता को इसकी लिपि और ध्वन्यात्मकता (उच्चारण) से समझा जा सकता है। इस भाषा में एक अक्षर या बिंदु से निश्चित ध्वनि का उच्चारण होता है जबकि अन्य भाषाओं में यह वैज्ञानिकता नहीं है। वैश्विक स्तर पर अंग्रेजी भाषा में उच्चारण संबंधी अनियमित व्यवस्था इसके उच्चारण की वैज्ञानिकता पर संदेह उत्पन्न करते हैं। जैसे Put को पुट, But को बट और Pure को प्योर कहते हैं, यहाँ अंग्रेजी के तीन शब्दों में एक ही स्वर के उच्चारण में भेद है। ध्यातव्य है की अंग्रेजी की तुलना में हिंदी भाषा में वैज्ञानिकता और स्थिरता व्याप्त होने के बाद भी कॉलेज स्तर पर विद्यार्थियों से हिंदी में मात्रा संबंधी त्रुटि पायी जाती है। वैश्विक स्तर पर हिंदी के अस्तित्व को स्थायी करने के लिए सर्वप्रथम इसके विरोधी और देशज कारणों का समाधान करना होगा। सर्वप्रथम हिंदी को राष्ट्रभाषा की मान्यता प्रदान करनी होगी। राजनीतिक तुष्टीकरण के लिए हिंदी बोलियों को यथा मैथिली, भोजपुरी, राजस्थानी आदि को भिन्न नहीं समझना चाहिए। न्यायालयों तथा विधान मंडलों में हिंदी को स्थापित करना होगा, विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा में प्रत्येक पाठ्यक्रम को हिंदी माध्यम से भी संचालित करना चाहिए। हिंदी अनुवादकों की भारी कमी को समाप्त करना चाहिए। यह बिडम्बना है कि जिस देश में राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान, राष्ट्रीय प्रतीक, राष्ट्रीय पशु और पक्षी तो हैं; परंतु राष्ट्र भाषा नहीं है जबकि हिंदी को भारतीय राष्ट्रभाषा की मान्यता देकर भारत का विश्वस्तरीय सम्मान स्थापित करना चाहिए। यह समीचीन है कि भारत का सूर्य सम्पूर्ण जगत को तभी प्रकाशित करेगा जब इसके अन्त: स्थल में हिंदी का ताप शीर्ष पर होगा।

सन्दर्भ

अलका. (13 सितंबर 2018). दुनियां में हिंदी: 80 करोड़ से ज्यादा देशों में है पहचान. *हिंदुस्तान*. https://www.livehindustan.com/national/story-more-than-80-crore-people-speak-hindi-in-more-than-20-countries-of-the-world-1449849.html से पुनर्प्राप्त

एडमिन. (20 5 2021). भाषा का महत्व पर निबंध. https://hihindi.com/essay-on-the-importance-of-language-%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B7%E0%A4%BE/ से पुनर्प्राप्त

करुणा शंकर उपाध्याय . (11 4 2018). विश्व में हिंदी का स्थान. *साहित्य संवाद*. https://www.sahityasamvad.com/articles/vishwa-hindi-199.html से पुनर्प्राप्त

भारत सरकार गृह मंत्रालय राजभाषा विभाग . (अप्रैल-जून 2018). विश्वभाषा की ओर हिंदी. *राजभाषा भारती*. https://rajbhasha.gov.in/sites/default/files/rb155.pdf से पुनर्प्राप्त

राम किंकर पांडेय , & विनीता पांडेय . (11 2013). वैशिक परिदृश्य में हिंदी का स्वरुप. *iInternational Journal of Creative research Thoughts, 1*(11), 5. https://ijcrt.org/papers/IJCRT0000048.pdf से पुनर्प्राप्त

हिंदी और गुजराती भाषा में अंतर्संबंध

डॉ. निरूपा जी. टांक*
tank.nirupa@gmail.com

हिंदी और गुजराती भाषा के बीच में जो अंतर्संबंध है उस पर चर्चा करने का उपक्रम है। तो सबसे पहले मुझे बताते हुए खुशी होती है कि दोनों भाषाएं भारत की समृद्ध भाषाई विरासत का हिस्सा है। और अपने आप में दोनों भाषा एक अनोखी विशेषताएं रखती है। हिंदी भाषा को राजभाषा का दर्जा मिला है, जबकि गुजराती भाषा को गुजरात की मातृभाषा का दर्जा मिला है।

दोनों भाषा की व्युत्पत्ति, व्याकरण, शब्दावली, साहित्य, साहित्य स्वरूप, साहित्य सर्जन, युगविभाजन, आधुनिकता आदि कई ऐसे मुद्दे है, जिनमें से गुजरने के बाद हमें पता चलता है कि दोनों भाषा में कई सारी समानताएं है। मैंने जिन मुद्दों का अभी निर्देश किया है उनको ही केंद्रित करके मैं अपने विषय पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगी।

सबसे पहले हम दोनों भाषाओं के उद्भव एवं युग विभाजन की बात करें, तो हिंदी भाषा का उद्भव संस्कृत भाषा से 8 वी शताब्दी में हुआ है। और हिंदी भाषा भारतीय आर्य भाषा है, जो इंडो यूरोपीय भाषा परिवार से संबंधित है। और वह देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। इस तरह गुजराती भाषा की जड़े प्राचीन भारत की संस्कृत भाषा तक जाती है और उसका उद्भव 10 वी – 11 वी शताब्दी में हुआ है। हिंदी भाषा की तरह गुजराती भाषा भी भारतीय आर्य भाषा है और इंडो यूरोपीय भाषा परिवार से संबंधित है। गुजराती भाषा की अपनी अलग लिपि है, और शब्द उच्चारण भी थोड़े अलग है।

काल विभाजन देखें तो, हिंदी भाषा के साहित्य को अभ्यास की सरलता हेतु विद्वानों ने चार कालखंड में विभाजित किया है; आदिकाल, पूर्व मध्यकाल या भक्ति काल, उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल और चौथा है आधुनिक काल।

आदिकाल में चंद्रबरदाई, विद्यापति, अमीर खुसरो, अब्दुल रहमान, स्वयंभू आदि ने भक्तिकाल में कबीर दास, मलिक मुहम्मद जायसी, गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास आदिने हिंदी साहित्य को ज्ञान, भक्ति, नीति, प्रेम, वात्सल्य और सबसे बढ़कर सामाजिक चेतना से जुड़ा है। जबकि रीतिकाल में साहित्य की भाषा अलंकारिक और श्रृंगार प्रधान रही है। आधुनिककाल की बात करें तो भारतेंदु, प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, हरिशंकर परसाई आदि रचनाकारोंने हिंदी को राष्ट्रीय आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन का औजार बनाया है। वर्तमान समय में हिंदी कविताएं, कहानी, नाटक, आत्मकथा, जीवनी, रेखाचित्र, संस्मरण, आलोचना, पत्रकारिता और सिनेमा में नई दृष्टि और नएप्रयोग के साथ व्यापक वैविध्य दिखाई पड़ता है।

इसी तरह गुजराती भाषा की बात करें तो गुजराती भाषा के साहित्य और सर्जकों को मूलतः दो कालखंडों में विभक्त किया गया है। मध्यकाल ओर अर्वाचीन काल। मध्यकाल दो युगों में विभक्त है, जैन युग और जैनेतर युग। जब की अर्वाचीन काल छ कालखण्डों में विभक्त है। जैसे की सुधारकयुग, पंडितयुग, गांधीयुग, अनुगांधीयुग, आधुनिकयुग और अनुआधुनिक युग। जैनयुग और जैनेतरयुग में जैन सर्जक एवं नरसिंह , मीरां, प्रेमानंद, शामल, दयाराम आदि कवियोंने भक्ति, ज्ञान, बोध और संयम की बात की है। जबकि अर्वाचीन काल में विभिन्न कालखंड के अनुसार नर्मद, दलपतराम, गोवर्धनराम, कान्त, कलापी, गांधीजी, उमाशंकर, सुंदरम, धूमकेतु, मेघाणी, प्रहलाद पारेख, सुरेश जोशी, चंद्रकांत बक्षी, रघुवीर चौधरी, ध्रुव भट्ट, धीरूबहन पटेल, पन्ना त्रिवेदी आदिने समाज सुधारना, आदर्शवाद, राष्ट्रप्रेम, देशप्रेम, दिनजनवात्सल्य भाव, वास्तविकता, ग्रामीणचेतना, नारीवाद, दलितवाद, पर्यावरण केंद्रीय विचारना आदि विषयो को लेकर अपने-अपने समय के अनुरूप साहित्य में योगदान किया है। और भाषा एवं साहित्य दोनों को समृद्ध बनाया है। साथी में साहित्य के माध्यम से अपने विचार एवं भावसंवेदन को प्रस्तुत किया है।

* **अध्यापक सहायक, मातुश्री मोंघीबा महिला आर्ट्स कॉलेज, अमरेली**

जिस तरह से हिंदी साहित्य में आधुनिक काल है, उसी प्रकार गुजराती भाषा साहित्य में भी आधुनिक और अति आधुनिक काल है। दोनों ही भाषा के साहित्य में भक्ति आंदोलन हमें समान रूप से देखने को मिलते हैं। मीरां की भक्ति पर कई सवाल उठे हैं, फिर भी उनकी भक्ति निरंतर शुरू रही है। उसी प्रकार नरसिंह मेहता की भक्ति की भी कई परीक्षाएं हुई फिर भी उन्होंने उन सबका सामना किया है, और अपनी कृष्ण भक्ति को ही सर्वस्व मानकर निस्वार्थ भाव से भक्ति करते रहे हैं। इस प्रकार अन्य कहीं बातें हैं जो दोनों भाषा के साहित्य में मिलती हैं जैसे की सुधारावादी विचारना, राष्ट्रवादी अभीगम, दलितवादी अभिगम, नारीवादी अभिगम, पर्यावरण केंद्री अभिगम यह सारे मुद्दे दोनों ही भाषा के साहित्य में मिलते हैं।

सबसे पहले हम भक्ति आंदोलन और भक्तिकालीन साहित्य की बात करें तो हिंदी भाषा में तुलसीदास, कबीर, मीराबाई, सूरदास आदि और गुजराती भाषा में नरसिंह, मीरां आदि महत्त्वपूर्ण साहित्यकार हो गए हैं। और उनकी कही ऐसी प्रमुख रचनाएं मिलती है, जो आज भी प्रासंगिक है। मीराबाई भक्ति भाव से कृष्ण की आराधना करते हुए अपने पदों में लिखती है–

हरि तुम हरो जन की भीर।
द्रोपदी की लाज राखी, तुम बढायो चीर॥
भक्त कारण रूप नरहरि, धरयो आप शरीर।
हिरणकश्यपु मार दीन्हों, धरयो नाहिंन धीर॥
बूडते गजराज राखे, कियो बाहर नीर।
दासि 'मीरा लाल गिरिधर, दु:ख जहाँ तहँ पीर॥

तो दूसरी और गुजराती साहित्य के मध्यकाल में जिनको आदिकवि की उपाधि मिली है, ऐसे नरसिंह कृष्ण की भक्ति करते हुए अपनी रचनामे कहते हैं –

એવા રે અમો એવા રે તમે કહો છો વળી તેવા રે.
ભક્તિ કરતા જો ભ્રષ્ટ કહેશો તો કરશું દામોદરની સેવા રે.
સઘળા સાથમાં હું એક ભૂંડો, ભૂંડાથી વળી ભૂંડો રે.
તમારે મન માને તે કહેજો સ્નેહ લાગ્યો છે મને ઊંડો રે...
હળવા કર્મનો હું નરશૈયો મુજને તો વૈષ્ણવ વહાલા રે
હરીજનથી જે અંતર ગણશે તેના ફોગટ ફેરા ઠાલા રે.

इस प्रकार भक्ति आंदोलन के दौरान भगवान की भक्ति और प्रेम का वर्णन किया गया है। भक्त और उनकी भक्ति मूलक रचनाएं भारतीय साहित्य की धरोहर है और आज भी इतनी ही प्रासंगिक है।

सन 1900 से लेकर 1940 तक का जो समय था वह गांधीयुग के नाम से जाना गया है और इसी वजह से हिंदी और गुजराती साहित्य में राष्ट्रप्रेम, देशप्रेम, दीनजन वात्सल्यभाव वास्तविकता, जनपद साहित्य, राष्ट्रीय चेतना आदि जैसे कई सारे विषयों को केंद्रित करती हुई रचनाएं इस समय में मिलती है। हिंदी साहित्य के रामधारी सिंह 'दिनकर', मैथिली शरण गुप्त आदि कवियोंने राष्ट्रप्रेम को अपनी कविता में गया है। जैसे की रामधारी सिंह 'दिनकर' अपनी **'जवानिका झंडा'** कविता की शुरुआत में लिखते हैं –

घटा फाड़कर जगमगाता हुआ
आ गया देख, ज्वाला का बान;
खड़ा हो, जवानी का झंडा उड़ा,
ओ मेरे देश के नौजवान!

इसी तरह गुजराती साहित्य में भी उमाशंकर जोशी, सुंदरम, मेघानीजी, कृष्णलाल श्रीधरानी आदि कवि की कविता में हमें राष्ट्रप्रेम और देशप्रेम की भावना प्रस्तुत हुई देखने को मिलती है। जैसे की मेघाणीजी कहते हैं–

ઘટમાં ઘોડાં થનગને, આતમ વીંઝે પાંખ;

અણદીઠેલી ભોમ પર યૌવન માંડે આંખઃ
આજ અણદીઠ ભૂમિ તણે કાંઠડે
વિશ્વભરના યુવાનોની આંખો અડે;
પંથ જાણ્યા વિના પ્રાણ ઘોડે ચડે,
ગરુડ-શી પાંખ આતમ વિષે ઊઘડે.

इस तरह से राष्ट्रीय चेतना के प्रति नवयुवकों को जागृत करने की बात दोनों ही भाषा के कवियों के साहित्य में सामान रूप से प्रस्तुत हुई दिखाई देती हैं।

1900 से 1940 का समय गांधी युगीन होने के कारण सभी सर्जक गांधी विचारधारा से प्रभावित थे, उसी के साथ गांधीजी के व्यक्तित्व से भी उतने ही प्रभावित थे। इसी कारण कई ऐसे सर्जक है जिन्होंने गांधीजी के व्यक्तित्व पर ही अपनी रचनाएं प्रस्तुत की है। मैथिली शरण गुप्त अपनी एक रचना में लिखते हैं–

संत, महात्मा हो तुम जग के, बापू हो हम दीनों के
दलितों के अभीष्ट वर-दाता, आश्रय हो गतिहीनों के
आर्य अजातशत्रुता की उस परंपरा के स्वतः प्रमाण
सदय बंधु तुम विरोधियों के, निर्दय स्वजन अधीनों के!

गुजराती साहित्य में कृष्णलाल श्रीधरानी गांधीजी के बारे में लिखते हैं–

દાહભરી આંખો માતાની,
તેનું તું આંસુ ટપક્યું;
બળી રહ્યું અંતરમાં કિન્તુ,
સૌ પાસે મીઠું મલક્યું.
મૈયાના ઓ ગાંધી વીર!
અર્પું છું હૈયાનાં હીર!

हम देख सकते हैं कि दोनों भाषाओ के साहित्यकार अपने अपने समय में गांधीजी और उनके विचारों से प्रभावित थे। सिर्फ भाषा का फर्क है लेकिन दोनों भाषा के साहित्यकारो की भावसंवेदना एवं विचार आदि में युग के अनुरूप साम्यता देखने को मिलती हैं।

अगर हम नारीवादी दृष्टिकोण यानी की स्त्री विमर्श की बात को समझने ओर जानने हेतु दोनों भाषाओं के एक-एक उदाहरण देखते हैं। हिंदी साहित्य में महादेवी वर्मा की एक बहुत प्रचलित काव्य रचना है **'में नीर भरी दुख की बदली'** इसमें लेखिका ने लिखा है कि–

स्पंदन में चिर निस्पंद बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हंसा,
नयनों में दीपक से जलते,
पलकों में निर्झरिणी मचली!
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !
मैं नीर भरी दुख की बदली।

तो इसी प्रकार गुजराती साहित्य में भी वर्षा प्रजापति नामक लेखिका लिखती है कि–

બીજ મહીથી વૃક્ષ થવાનું, ઉગવાનું ને ખરવાનું?
ખરીયા પછી પોકળ પીડા પૂછે 'પાછું ઉગવાનું?'
બે રસ્તા છે આંખો સામે, અટકી જા કાં આગળ વધ,
સંશયની તોડીને સાંકળ, બોલ હવે શું જંપવાનું?

और लेखिका स्वरूप ध्रुव अपनी कविता में लिखती हैं –

સિન્ડ્રેલા!
આ શું? અટકી કેમ ગઈ?
આ જો,
તારો એક પગ તો હજી ઉંબરની અંદર જ છે!
બહાર આવતાં કેટલી વાર?

ભલેને, આ બંને કાંટા બાર પર એકઠા થાય,

ભલેને, તું બહાર જ રહી જાય

ને બંધ થઈ જાય આ જડ ને જડબેસલાક બારણાં.

ગુમાવવાં પડશે તો આ તારી સોનેરી મોજડી

અને ખોટુકલા વેશ-વાધા જ ને?

સો વોટ?

આ લટિયાં ઝટિયાં ને

આ લબડતાં ચિંથરાં જ તો છે તારી વાસ્તવિકતા.

આ ઉઘાડા પગ અને ઊંડી ઊતરી ગયેલી આંખો જ તો છે.

તારો વર્તમાન.

और अंत में लेखिका लिखती है।

જો....સંભળાય છે?
એક, બે, ત્રણ, ચાર, પાંચ, છ, સાત, આઠ, નવ, દસ, અગિયાર અને
ખેંચી જ લે હવે તો
બીજો પગ પણ ઉંબર બહાર....

तो दूसरी ओर चंद्राबहन श्रीमाली नामक लेखिका पूराकल्पन का आधार लेकर जानकी को केंद्रस्त करते हुए काव्य मेंलिखती है–

ઓ જાનકી! જરી જો, જાનકી!
હજીએ દંડાય નારી તારા થકી....
કાશ! તે કર્યો હોત બળવો
તો કદીય ન લખાત
આવો અવળો ફતવો....

इस प्रकार से हिंदी और गुजराती दोनों भाषाओं में नारीवादी अभीगम को केंद्र में रखकर उनकी भावसंवेदना को साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। यहां हम देख सकते हैं कि महादेवी वर्मा के काव्य में बदली के माध्यम से स्त्री का इस संसार में अपना कोई स्वतंत्र घर नहीं है उस बात को प्रस्तुत की है। और जबकि गुजराती साहित्य की तीनों लेखिकाओंने

स्त्री की भिन्न भिन्न संवेदनाओ को प्रस्तुत किया है। जैसे कि सिंड्रेला को केंद्र में रखकर लेखिका जो स्त्री घर की चार दिवारी के बाहर निकलना चाहती है उसकी व्यथा को प्रस्तुत किया है। तो जानकी के माध्यम से जो स्त्री कष्ट सह रही है और चुप चाप अपने अन्तर भावको दबाएं जी रही हैं उनकी बात को पुराकल्पन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

साहित्य स्वरूप की दृष्टि से अगर हम बात करें तो दोनों ही भाषा के साहित्य की शुरुआत पद्य से हुई है यानी कि दोनों भाषा के साहित्य की नींव ही पद्य साहित्य है, और आरंभिक साहित्य अपभ्रंश में मिलता है। जबकि गद्य की शुरुआत तो बाद में हुए हैं। हिंदी में तीन प्रकार का साहित्य मिलता है; पद्य, गद्य और चंपू। गुजराती में दो प्रकार के साहित्य है, पद्य और गद्य । जब की अब कहीं कवि और सर्जक है जो चंपू प्रकार का साहित्य लिख रहे हैं। आधुनिक काल में सुरेश जोशी, रावजी पटेल, मणिलाल द्विवेदी जैसे कहीं साहित्यकार है की जिनके पास से हमें ऐसा चंपू प्रकार का साहित्य मिल रहा है। हिंदी साहित्य के मध्यकाल में रासो, प्रबंध, आख्यान, पद जेसे कई सारे स्वरूप लिखे गए मिलते हैं। जिसमें पृथ्वीराज रासो, विजयपाल रासो, हम्मीररासो आदि रचनाएं बहुत ही प्रचलित हुई हैं। इसी तरह गुजराती भाषा के साहित्य में भी रास, फागू, प्रबंध, पद, आख्यान, पद्यवार्ता जेसे भिन्न भिन्न स्वरूप पर साहित्य सर्जन मिलता है। और गुजराती भाषा के साहित्य की प्रथम रचना **'भरतेश्वर बाहुबलिरास'** को माना गया है। इसी तरह अर्वाचीन काल में तो अधिकांश साहित्य स्वरूप समान देखे जाते हैं, जैसे कि कविता, खंडकाव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, आत्मकथा, जीवनी, रेखाचित्र, संस्मरण, निबंध आदि। इस तरह हिंदी और गुजराती साहित्य दोनों में अपन-अपने विशिष्ट साहित्य स्वरूप और शैलियां है।

हमें दोनों भाषा के बीच में कई तरह से अंतर्संबंध देखने को मिलता है। अभी तो कुछ गिने-चुने बातें ही की है, इसके अलावा भी दोनों भाषा के व्याकरण, शब्दावली, साहित्य और संस्कृति, लोक साहित्य, संत साहित्य, आदि कई विषयों पर भी चर्चा की जा सकती है। यहाँ जितनी भी बातें रखी है उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि भले ही दोनों भाषाएं बहुत अलग है; लेकिन शुरुआत से लेकर वर्तमान समय पर दृष्टिपात करेंगे तो हमें पता चलता है, की भाषा अलग है लेकिन साहित्य की विचारधारा एवं साहित्यकारों के विचार, भाव– संवेदन, संस्कृति, समाज, भक्तिकाल, राष्ट्रप्रेम, स्त्रीविमर्श, विषय निरूपण आदि में हमें साम्यता देखने को मिलती है।

दोनों भाषा में संस्कृत से मिली विरासत स्पष्ट दिखाई देती है, चाहे वो शब्द हो, व्याकरण हो या साहित्यिक परंपरा। हिंदी और गुजराती भाषाएं एक ही भाषिक परिवार की सदस्य होने के कारण आपस में गहराई से जुड़ी हुई हैं। अंत में मैं इतना ही कहूंगी कि हिंदी और गुजराती भाषा के बीच के अंतर्संबंध को समझने से हमें भारतीय भाषा की विविधता एवम् समृद्धि का अनुभव होता है, और दोनों भाषा के साहित्य को जानने से भारतीय साहित्यिक परंपरा की समृद्धि का भी अनुभव होता है। दोनों भाषा एक ही कूल की होने के कारण कहीं तरह के अंतर्संबंध मिलते हैं। पर दोनों भाषा की अपनी अपनी अनोखी विशेषताएं और महत्त्व है। हमें इनके संरक्षण और प्रचार के लिए प्रयास करते रहना चाहिए।

संदर्भ :-

1. ત્રિવેદી, રમેશ. (2022). *ગુજરાતી સાહિત્યનો ઇતિહાસ*. अहमदाबाद: Adarsh Prakashan..
2. शर्मा, डॉ. शिवदत्त. (अज्ञात वर्ष). *हिंदी काव्य में राष्ट्रीयता की भावना*.
3. *Wikipedia (हिन्दी)*. प्राप्त: https://hi.wikipedia.org
4. Hindwi. (2025 September). *Hindwi — हिन्दी साहित्य*। प्राप्त: https://www.hindwi.org

हिन्दी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति-भावना

शिवम् के दवे*

shivamdave191993@gmail.com

हिन्दी साहित्य का इतिहास भारतीय सांस्कृतिक चेतना के विविध रूपों का दर्पण है। मध्यकालीन भारत में जब राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक विघटन और धार्मिक जड़ता व्याप्त थी, तब भक्ति आंदोलन ने जनमानस को एक नई दिशा प्रदान की। यह आंदोलन केवल साहित्यिक धारा न होकर सांस्कृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक क्रांति का भी प्रतीक था। भक्ति ने धर्म के नाम पर फैले भेदभाव, पाखण्ड और जातिगत असमानताओं को चुनौती दी और लोक भाषाओं में सुलभ साहित्य की रचना कर जन-जन में समानता, प्रेम और करुणा का संदेश फैलाया।

भक्ति आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

भक्ति आंदोलन का उद्गम प्राचीन वैदिक और उपनिषद धर्म दर्शन से जोड़ा जा सकता है। गीता में श्रीकृष्ण ने 'भक्तियोग' को श्रेष्ठ मार्ग बताया। दक्षिण भारत में आलवार और नयनार संतों की परंपरा ने ७ वीं से १० वीं शताब्दी तक भक्ति का प्रचार किया।[1] इन्हीं से प्रेरणा पाकर उत्तरी भारत में १४ वीं १७ वीं शताब्दी के बीच व्यापक भक्ति आंदोलन खड़ा हुआ। इस समय भारत में मुस्लिम शासकों का प्रभुत्व था। जाति-पाँति, मूर्तिपूजा, अंधविश्वास, मंदिर-पुरोहितवाद ने समाज को खंडित कर रखा था। ऐसे समय में कबीर, सूरदास, तुलसी, मीरां, नानक, दादू, रैदास जैसे संतों ने भक्ति को आधार बनाकर सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना का प्रसार किया।

भक्ति आंदोलन के प्रमुख स्वरूप :

मुख्य रूप से यह भक्ति आंदोलन दो धाराओं में बंटा है-(१) निर्गुण भक्ति धारा- कबीर, दादू, गुरु नानक, रैदास। इनकी वाणी में निर्गुण ईश्वर और सामाजिक सुधार की चेतना है यही उसका ध्येय बना है। (२) सगुण भक्ति धारा – तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई। इसमें रामभक्ति और कृष्णभक्ति का व्यापक स्वरूप मिलता है।[2]

भक्ति आंदोलन और सांस्कृतिक चेतना :

भाषा और साहित्य : भक्ति कवियों ने संस्कृत की बजाय अवधी, ब्रज, पंजाबी, मराठी, गुजराती जैसी भाषाओं का प्रयोग किया। इससे भारतीय भाषाओं का विकास हुआ।

संगीत और कला : सूरदास और मीरा की रचनाओं ने संगीत परंपरा को जन-जन तक पहुँचाया। कीर्तन, भजन, संकीर्तन और रासलीला इसी काल में लोकप्रिय हुए।

सामाजिक समरसता : कबीर और रैदास ने जातिगत ऊँच-नीच का विरोध किया। गुरु नानक ने 'एक ओंकार' का संदेश दिया।

स्त्री चेतना : मीराबाई ने स्त्रियों के लिए स्वतंत्र भक्ति और आत्म-अभिव्यक्ति की राह बनाई।

सांस्कृतिक एकता : भक्ति आंदोलन ने हिन्दू-मुस्लिम, शैव-वैष्णव, स्त्री-पुरुष सभी में आध्यात्मिक एकता की चेतना जगाई।[3]

हिन्दी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति-भावना :

तुलसीदास रामभक्ति शाखा के सर्वोच्च कवि हैं। उन्होंने भगवान् राम को अपना इष्टदेव माना है। तुलसी का भक्तिमार्ग वेद शास्त्र पर आधारित है। कवि के रूप में उन्होंने अपने साहित्य में श्रवण, कीर्तन स्मरण, अर्चन और आत्मनिवेदन

* **पीएच. डी. शोध छात्र, सौराष्ट्र विश्व-विद्यालय, राजकोट**

इस सभी पक्षों का प्रतिपादन बड़े ही कुशलतापूर्वक किया है। वस्तुतः तुलसीदास जी एक उच्चकोटि के कवि और भक्त थे तथा उनका हृदय भक्ति के पवित्रतम भावों से परिपूर्ण था। वे राम के अनन्य भक्त हैं। उन्हें केवल राम पर ही विश्वास है। उन्होंने चातक को अपनी भक्ति का परम आदर्श माना है। उनका विचार है कि वाक्य ज्ञान की अपेक्षा तत्त्व ज्ञान से भक्ति की प्राप्ति संभव है। चातक तुल्य दृष्टि द्वारा उन्होंने अपने भक्ति रूप को व्यक्त किया है।

'जन कहाय नाम लेत हाँ किए पन चातक ज्यो प्यास प्रेम पन की'

तुलसी की भक्ति दास्य भाव की है। उन्होंने स्वयं को 'श्रीराम' का दास माना है। उन्होंने श्रीराम के समक्ष स्वयं को दीन, लघु, अधम, विनम्र और महापतित माना है।

गोस्वामी तुलसीदास जी के आधार पर भक्ति के प्रकार :

भक्ति हृदय का पवित्र भाव है। यह भक्तिभाव सर्वप्रथम श्रद्धा के रूप में अंकुरित होता है। यह श्रद्धा तीन प्रकार की होती है- सात्विक, राजसिक और तामसि। श्रद्धा के इन तीन रूपों के आधार पर भक्ति की भी तीन कोटियाँ होती है-

(१) सात्विक भक्ति (२) राजसी भक्ति (३) तामसी भक्ति

` विनयपत्रिका और श्रीरामचरितमानस इन दोनों में तुलसीदास जी ने भक्ति रूपों की विषद चर्चा की है। रावण राजसी और तामसी भक्ति का उपासक था, जबकि गोस्वामी तुलसीदास जी को सात्विक भक्ति प्रिय थी। सात्विक भक्ति मिल जाएँ यही उनकी कामना है।

नवधा भक्ति :

नवधा भक्ति का निरूपण तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस और विनय पत्रिका दोनों ही ग्रन्थों में किया है। 'श्रीरामचरितमानस' के शबरी प्रसंग से नवधा भक्ति का निरूपण इस प्रकार से हुआ हैं।

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरी रति मम कथा प्रसंगा।।[4]

विनयपत्रिका में भी नवधा भक्ति का यही रूप बताया है। गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीराम के अन्य आराध्य है, परन्तु कहीं भी उन्होंने किसी अन्य देवी-देवता की निन्दा नहीं की है। राम को ही सर्वोपरि मानकर उन्हीं के श्रीचरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित किए हैं। तुलसीदास जी की भक्ति की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना निम्न अनुसार की जा सकती है-

सेवक-सेव्य भाव की भक्ति : तुलसी के इष्टदेव मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं। उन्होंने अपने आराध्य के प्रति भक्ति भावना के प्रसून अर्पित करते समय उन्हें अपना स्वामी और स्वयं को सेवक माना है। उनका विश्वास है कि बिना इसके संसार सागर से उद्धार नहीं हो सकता है।

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारी'

अतः स्पष्ट है कि तुलसी की भक्ति और सेवा भाव की अर्थात् उतिष्ठ भाव की है।

भक्ति की अनन्यता : तुलसी राम जी के अनन्य भक्त हैं। तुलसी की भक्ति में श्रद्धा तथा विश्वास का अद्भुत समन्वय है। तुलसी ने अपने इष्टदेव के स्वरूप का वर्णन करते हुए उन्हें निर्गुण एवं सगुण निराकार एवं साकार दोनों स्वरूपों से स्वीकार किया है। तुलसी ने राम जी को 'विश्वरूप रघुवंशमनि' कहकर विराट रूप धारी बताया है। वस्तुतः राम जी के अनंत गुण हैं।

सत्संग की महत्वता का प्रतिपादन : तुलसी ने भक्ति प्राप्ति के लिए सत्संग को सर्वश्रेष्ठ बताया है। इसके अतिरिक्त ज्ञान और वैराग्य को भी भक्ति का साधन बताया है। तुलसी ने तब संयम श्रद्धा विश्वास प्रेम ईश्वर कृपा प्रभु की शरणागति को भी भक्ति का प्रमुख साधन सिद्ध किया है।

आराध्य के चरणों में संपूर्ण समर्पण : कभी भक्त दुष्कृतियों से भरा अपने गतजीवन पर दृष्टिपात करता है, तो अनुताप से भर जाता है। उसका यह अनुताप विनयपत्रिका विस्तार से दृष्टतव्य है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने को सर्वस्वरूपेण अपने इष्टदेव श्रीराम के चरणों में अर्पित कर दिया है। भक्त का विश्वास है कि इष्टदेव मुझे चाहे जिस रूप में अपनावे में मेरा तो सर्वभावेन हित ही है।

भक्ति के सरल एवं व्यावहारिक रूप का प्रतिपादन :

तुलसी ने भक्ति को सरल और व्यावहारिक रूप में अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। 'केशव कहीं न जाए का कहिए' इस पद में कवि ने दार्शनिक बातों के संबंध में जिज्ञासा प्रकट की है। अंत में सभी मतों को मन को भ्रमित करने वाला निरूपण किया गया है। उन्होंने विनयपत्रिका के ७८वे पद में श्रीरामजी की दयालुता का वर्णन किया है-

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ। जाहि दीनता कहौं कहौं हौं देखौं दीन सोउ।।[5]

वे कहते हैं- हे श्रीरामजी ! दीनों पर दया करनेवाला और उन्हें परमसुख देनेवाला और कोई नहीं है। मैं जिसको अपनी दीनता सुनाता हूँ, उसी को दीन पाता हूँ। जो स्वयं दीन है वह दूसरे को क्या दे सकता है ! इसके अतिरिक्त भी अनेक पद इस रचना में प्राप्त होते हैं।

निष्काम भावना : सच्ची भक्ति की प्रमुख विशेषता है निष्कामता। निष्काम भाव से जो भक्ति की जाती है, वही सर्वश्रेष्ठ है। तुलसी की भक्ति इसी प्रकार की थी। वे राम को इसीलिए मानते थे कि राम उन्हें प्रिय है। उनकी भक्ति का कारण भी यही है।

तुलसीदास की भक्ति भावना :

हिन्दी साहित्य का इतिहास भक्ति की निर्मल धारा को व्यापक परिमाण में आलेखित करता है। भक्ति-आन्दोलन ने भारतीय संस्कृति और समाज को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। इस धारा के प्रमुख कवियों में गोस्वामी तुलसीदास का नाम सर्वोपरि है। तुलसीदास ने अपने काव्य में श्रीराम को सर्वोच्च आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित किया और जन-जन तक रामभक्ति का सन्देश पहुँचाया। उनकी भक्ति भावना केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति ही नहीं है, बल्कि दर्शन, आस्था और संस्कृति का जीवित स्वरूप है। तुलसीदास की भक्ति भावना को यदि गहराई से देखा जाए तो तीन प्रमुख आधार स्पष्ट रूप से सामने आते हैं-

1. राम को ईश्वर और आदर्श के रूप में स्वीकार करना
2. भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण
3. भक्ति को ही जीवन-मुक्ति का सर्वोत्तम साधन मानना

इन्हीं तीन बिन्दुओं के माध्यम से तुलसीदास की भक्ति का स्वरूप समझा जा सकता है।

(१) राम : ईश्वर और आदर्श के रूप में :

तुलसीदास की भक्ति का प्रथम और प्रधान आधार है- राम को ईश्वर मानना। उनके लिए राम केवल अयोध्या के राजा या मर्यादा पुरुषोत्तम नायक नहीं हैं, बल्कि वे साक्षात् परमेश्वर हैं। तुलसीदास ने कहा है कि ब्रह्म, परमात्मा और सगुण-निर्गुण की समस्त अवधारणाएँ राम के रूप में साकार हो जाती हैं। इसीलिए उन्होंने लिखा- "राम वही ब्रह्म हैं, जो निराकार भी हैं और साकार भी। वे भक्तों के लिए सहज सुगम और कृपालु हैं।" तुलसीदास के राम केवल दैवी शक्ति से सम्पन्न देवता ही नहीं, बल्कि मानव जीवन के लिए आदर्श पुरुष भी हैं। वे पुत्र के रूप में मर्यादित, भ्राता के रूप में स्नेहमयी, पति के रूप में निष्ठावान और राजा के रूप में न्यायप्रिय हैं। तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से राम को ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया है, जिसे साधारण जन अपने जीवन में अपनाकर धर्म और आचार की दिशा पा सकते हैं। इस प्रकार उनकी भक्ति केवल अलौकिक ईश्वर की ओर नहीं है, बल्कि एक ऐसे आदर्श की ओर है जो सांसारिक जीवन में भी मार्गदर्शक बन सके।

(२) भक्त का आत्मसमर्पण और दीनता :

तुलसीदास की भक्ति भावना का दूसरा महत्त्वपूर्ण आधार है- भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण। उनके अनुसार मनुष्य अपने बल या बुद्धि से ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता। प्रभु की कृपा पाने का एकमात्र मार्ग है- पूर्ण दीनता और शरणागति। तुलसीदास ने स्वयं को सदा दीन, दास और त्रुटिपूर्ण प्राणी मानकर राम के चरणों में निवेदन किया है। उनकी विनय पत्रिका इसी भाव का चरम उदाहरण है, जहाँ वे बार-बार कहते हैं- "हे प्रभु ! मैंने अनगिनत पाप किए हैं, अब आपकी शरण के अतिरिक्त मेरा कोई भी सहारा नहीं है।" यह आत्मसमर्पण ही उनकी भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता है। तुलसीदास का विश्वास था कि जब मनुष्य अपने अहंकार को त्याग देता है, तभी प्रभु की कृपा उस पर बरसती है।

उनके काव्य में बार-बार यह भाव आता है कि ईश्वर कृपालु और दीनबन्धु हैं। वे भक्त की पुकार को कभी अस्वीकार नहीं करते। तुलसीदास का यह विश्वास जन-जन को यह सन्देश देता है कि प्रभु की शरण में जाने वाला कोई भी प्राणी निराश नहीं होता। इस प्रकार उनका आत्मसमर्पण का भाव केवल उनकी व्यक्तिगत साधना नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज के लिए आस्था का आधार बन गया।

(३) भक्ति : जीवन और मुक्ति का साधन

तुलसीदास जी की भक्ति का तीसरा और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आधार है-भक्ति को ही जीवन-मुक्ति का सर्वोत्तम साधन मानना। उनके अनुसार ज्ञान, योग और कर्म सब मार्ग कठिन और दुर्लभ हैं। सामान्य मनुष्य के लिए सहज और सुगम मार्ग है-भक्ति। भक्ति में न तो विद्या की आवश्यकता है, न विशेष तप-त्याग की। केवल प्रेम, श्रद्धा और विश्वास ही पर्याप्त हैं। तुलसीदास ने अपने काव्य में स्पष्ट कहा है कि जो मनुष्य प्रभु का नाम स्मरण करता है, वही कल्याण पाता है। रामनाम उनके लिए जीवन की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। रामचरितमानस में उन्होंने अनेक स्थलों पर कहा कि नाम-स्मरण ही कलियुग का सबसे बड़ा धर्म है। नाम के माध्यम से ही जीव का उद्धार सम्भव है। उनकी दृष्टि में भक्ति केवल ईश्वर-प्राप्ति का साधन ही नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला भी है। भक्ति से मनुष्य के भीतर करुणा, प्रेम, दया और सहिष्णुता का विकास होता है। यही गुण समाज को सुचारु और मानव जीवन को अर्थपूर्ण बनाते हैं। इस प्रकार तुलसीदास की भक्ति लोकमंगल की भावना से भी जुड़ी हुई है।

तुलसीदास की भक्ति भावना को यदि इन तीन बिन्दुओं के आलोक में देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है कि उनकी भक्ति केवल व्यक्तिगत साधना तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज, संस्कृति और धर्म का जीवन्त मार्गदर्शन भी है। राम को ईश्वर और आदर्श मानकर उन्होंने भक्ति को साकार रूप दिया। आत्मसमर्पण और दीनता के माध्यम से उन्होंने यह सिखाया कि मनुष्य का अहंकार प्रभु की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा है। और भक्ति को जीवन और मुक्ति का साधन मानकर उन्होंने जन-जन को एक सहज और सुगम मार्ग प्रदान किया। उनकी भक्ति भावना आज भी मानवता को यह सन्देश देती है कि ईश्वर केवल श्रद्धा, प्रेम और आत्मसमर्पण से ही प्राप्त होते हैं।

तुलसीदास जी का सम्पूर्ण जीवन राम के चरणों में समर्पित रहा। उनके लिए ज्ञान, योग, वैराग्य सब निरर्थक हैं; यदि उसमें भक्ति का रस नहीं है। तुलसीदास जी मानते हैं कि संसार के सभी साधन नश्वर हैं, केवल रामभक्ति ही शाश्वत और मोक्षदायिनी है। तुलसीदास जी की भक्ति का स्वरूप बहुत ही सहज और भावपूर्ण है। वे भगवान राम को केवल ईश्वर रूप में नहीं, बल्कि लोकनायक और मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके लिए भक्ति केवल पूजा-पाठ या कर्मकाण्ड का विषय नहीं है, बल्कि यह हृदय की सच्ची तल्लीनता और आत्मिक समर्पण है। उन्होंने अपनी दीनता और शरणागत भाव को बार-बार प्रकट किया है। रामचरितमानस में वे विनय करते हैं-

सिया राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

तुलसीदास जी के लिए सम्पूर्ण जगत राममय है और वे सबको प्रभु का ही स्वरूप मानकर नमस्कार करते हैं। उनकी भक्ति का दूसरा महत्त्वपूर्ण आयाम है- रामनाम की महिमा। वे बार-बार कहते हैं कि यदि मनुष्य के पास कोई साधन नहीं है तो भी केवल रामनाम के जप से वह दुःख-सागर से पार हो सकता है। उन्होंने लिखा-

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुं जौं चाहसि उजियार ॥

यहाँ तुलसीदास जी रामनाम को दीपक मानते हैं, जो जीवन के भीतर और बाहर दोनों ओर प्रकाश फैलाता है। उनकी भक्ति में केवल व्यक्तिगत मोक्ष की आकांक्षा नहीं, बल्कि लोकमंगल की भावना भी निहित है। वे मानते हैं कि जब व्यक्ति रामभक्ति में लीन होता है, तब समाज में धर्म, नैतिकता और मर्यादा का पुनः स्थापन होता है। तुलसीदास जी के अनुसार रामकथा और रामभक्ति जन-जन को जीवन का सच्चा आदर्श देती है। उनकी भक्ति का सबसे बड़ा गुण उसकी सरलता है। उसमें कोई दार्शनिक जटिलता नहीं, केवल सहज प्रेम और शरणागति है। वे प्रभु को बार-बार दयालु, करुणा-निधान, भक्तवत्सल कहकर पुकारते हैं और अपनी हीनता स्वीकार करते हुए उनसे कृपा की याचना करते हैं। इस दीनता और विनय ने उनकी भक्ति को और भी मार्मिक बना दिया है। इस मानस-पीयूष में तुलसीदास जी की भक्ति भावना पूर्ण समर्पण, शरणागति,

प्रेम और लोकमंगल से ओत-प्रोत है। उन्होंने राम को परम सत्य और रामनाम को जीवन का सार मानकर भक्ति को सर्वोच्च मार्ग स्थापित किया।

'जानकीमंगल' में तुलसीदास की भक्ति :

गोस्वामी तुलसीदास की लघु काव्य-कृतियों में 'जानकीमंगल' एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें उन्होंने सीता-राम विवाह की मंगलमयी कथा का काव्यात्मक वर्णन किया है। यह कृति न केवल रामकथा का एक सुंदर प्रसंग है, बल्कि तुलसीदास जी की गहन भक्ति-भावना का भी सजीव प्रमाण है। तुलसीदास जी की भक्ति का मूल स्वर रामनाम, रामकथा और रामचरित्र में गहराई से डूबा हुआ है। 'जानकीमंगल' में जब वे राम-सीता विवाह का वर्णन करते हैं, तो केवल बाहरी उत्सव का चित्रण नहीं करते, बल्कि इसे भक्ति और धर्म का मंगलोत्सव मानते हैं। विवाह का प्रत्येक दृश्य तुलसी के लिए रामभक्ति का आलोक फैलाने वाला अवसर है। कवि ने विवाह के माध्यम से लोक और परलोक दोनों के मंगल की भावना व्यक्त की है। राम-सीता का मिलन उनके लिए आदर्श दाम्पत्य का प्रतीक भी है और भक्त के लिए ईश्वर-भक्ति का मार्ग भी। इसी कारण 'जानकीमंगल' केवल काव्य न रहकर भक्ति का गान बन जाता है। तुलसीदास जी इस मंगलमय अवसर को ईश्वर की कृपा और भक्तों के सौभाग्य के रूप में देखते हैं। उनके शब्दों में प्रभु राम केवल अयोध्या के राजकुमार नहीं हैं, बल्कि वे जगतपालक, करुणासागर और भक्तवत्सल हैं। जब उनका विवाह होता है, तो तुलसीदास जी उसे समस्त लोकों का मंगल मानते हैं।[6]

यहाँ तुलसीदास जी राम को मंगल का घर और अमंगल को हरने वाला मानकर भक्तिपूर्ण वाणी में पुकारते हैं। 'जानकीमंगल' में तुलसीदास जी ने भक्ति को केवल व्यक्तिगत साधना तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे लोकमंगल से जोड़ा। उनके लिए राम-सीता विवाह का प्रसंग समाज के लिए धर्म, मर्यादा और आदर्श जीवन का संदेश है। यह वही दृष्टि है जिसने तुलसी की भक्ति को जन-जन के हृदय तक पहुँचाया। 'जानकीमंगल' तुलसीदास जी की भक्ति-भावना का अनुपम उदाहरण है। इसमें विवाह का वर्णन केवल एक सांस्कृतिक घटना नहीं है, बल्कि इसे उन्होंने भक्तिपरक रूप में प्रस्तुत किया है। तुलसीदास जी की भक्ति यहाँ पूर्ण समर्पण, मंगलकामना और लोककल्याण के रूप में प्रकट होती है। उनके लिए राम-सीता का विवाह केवल मिथिला और अयोध्या का नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व का मंगल है।

'जानकीमंगल' में तुलसीदास जी ने विवाह प्रसंग को अत्यंत मंगलमय पदों में बाँधा है। 'मंगल भवन अमंगल हारी' के अतिरिक्त इसके कुछ और पद यहाँ प्रस्तुत हैं-

सिय वर राम रमानि सुखारी। भवन समेत भए सुख भारी ॥
बाजि मृदंग अनहद धुनि बाजे। गावत नाचत सब नर-नारि साजे ॥
सकल मंगल भवन तें बाढे। जनक पुर सब दुख बिसराढे ॥

जब सीता का विवाह राम के साथ हुआ तो संपूर्ण भवन में असीम सुख छा गया। विवाह अवसर पर मृदंग और बाजों की अनहद ध्वनि गूँज उठी, सब नर-नारी सजकर नाचने-गाने लगे। विवाह से सारे मंगल बढ़ गए और जनकपुर के सब दुःख दूर हो गए। इन पदों से स्पष्ट है कि तुलसीदास जी ने 'जानकीमंगल' में केवल सीता-राम विवाह की कथा नहीं कही, बल्कि उसे भक्ति, आनंद और लोकमंगल का पर्व बना दिया है।

बरवै रामायण में तुलसीदास की भक्ति भावना :

गोस्वामी तुलसीदास के विविध काव्य-ग्रंथों में 'बरवै रामायण' जिसे कहीं-कहीं इसे बैरागी रामायण भी कहा गया है अपेक्षाकृत कम चर्चित है। किंतु इसमें तुलसीदास जी की रामभक्ति भावना उसी प्रकार प्रकट होती है जैसे उनकी अन्य प्रसिद्ध कृतियों में। 'बरवै रामायण' में तुलसीदास जी ने राम के स्वरूप, रामनाम और रामभक्ति की महिमा का गान किया है। इसमें तुलसीदास जी की भक्ति की मुख्य विशेषता समर्पण और शरणागति है। वे बार-बार कहते हैं कि मनुष्य को इस संसार-सागर से पार कराने वाला एकमात्र साधन राम का नाम और राम की कृपा है। तुलसीदास जी यहाँ भक्ति को ज्ञान, योग और वैराग्य से श्रेष्ठ मानते हैं। कवि ने लिखा है कि यदि मनुष्य हृदय से निष्कपट होकर केवल रामनाम का स्मरण करे तो उसके सारे दुःख मिट जाते हैं। वे मानते हैं कि भक्ति का मूल आधार है-राम के चरणों में प्रेमपूर्वक समर्पण।

तुलसीदास जी की भक्ति व्यक्तिगत मोक्ष तक सीमित नहीं है। 'बरवै रामायण' में भी वे रामकथा को लोकमंगल का साधन मानते हैं। राम की कथा सुनने और गाने से समाज में धर्म, मर्यादा और सदाचार का प्रचार होता है। तुलसीदास जी स्वयं को दीन, हीन और अज्ञान मानते हुए ईश्वर की कृपा की याचना करते हैं। उनकी यह विनम्रता ही उनकी भक्ति को अधिक मार्मिक और सहज बनाती है। 'बरवै रामायण' में तुलसीदास जी कहते हैं:

रामहि केवल प्रेम पिआरा। जानि लेहु जो जाननहारा ॥ "

राम को केवल प्रेम ही प्यारा है, जो जानने वाला है, वह इस सत्य को भली-भाँति जान ले। यह पद स्पष्ट करता है कि तुलसीदास जी की भक्ति का सार प्रेममय भक्ति है। 'बरवै रामायण' में तुलसीदास जी की भक्ति भावना उसी शुद्धता, सहजता और प्रेममयी शैली में प्रकट होती है, जैसी उनके अन्य काव्य-ग्रंथों में। यहाँ भी उनकी दृष्टि में भक्ति ही जीवन का परम साधन है और रामनाम ही जीवन का आधार।[7]

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि तुलसी का भक्ति भाव में विनय, प्रेम, आसक्ति की प्रबलता होकर भी दैन्य की अधिकता है। ईश्वर की कृपा को तुलसी ने सर्वोपरि माना है। तुलसी की भक्ति सात्विक भक्ति है। तुलसी की इस भक्ति में यश, ख्याति, ऐश्वर्य प्राप्ति की आकांक्षा नहीं है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि तुलसी भक्तिकाल की राम भक्ति शाखा के सर्वोच्च कवि हैं। उनकी भक्ति केवल व्यक्तिगत साधना तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज, संस्कृति और धर्म का जीवन्त मार्गदर्शन भी है। राम को ईश्वर और आदर्श मानकर उन्होंने भक्ति को साकार रूप दिया। आत्मसमर्पण और दीनता के माध्यम से उन्होंने यह सिखाया कि मनुष्य का अहंकार प्रभु की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा है और भक्ति को जीवन और मुक्ति का साधन मानकर उन्होंने जन-जन को एक सहज और सुगम मार्ग प्रदान किया।

तुलसीदास की भक्ति भावना केवल किसी एक काल या समुदाय तक सीमित नहीं रही। आज भी उनके पद और दोहे जनमानस को उतनी ही श्रद्धा और भक्ति से भर देते हैं, जितनी उनके जीवनकाल में। यही कारण है कि तुलसीदास को हिन्दी साहित्य का सूर्य और रामभक्ति का अमर गायक कहा जाता है। उनकी भक्ति भावना आज भी मानवता को यह सन्देश देती है कि ईश्वर केवल श्रद्धा, प्रेम और आत्मसमर्पण से ही प्राप्त होते हैं। भक्ति आंदोलन ने हिन्दी साहित्य को अद्वितीय धारा प्रदान की। इसने न केवल साहित्य को जन-भाषाओं में प्रतिष्ठित किया, बल्कि सांस्कृतिक चेतना को भी नई दिशा दी। भक्तिकालीन कवियों की वाणी आज भी समाज को नैतिकता, समानता और प्रेम की शिक्षा देती है।

संदर्भ :

1. श्रीवास्तव, अनुपमा. (2018). *भक्ति आन्दोलन का इतिहास–तत्त्व और विमर्श*. दिल्ली: विश्वविद्यालय प्रकाशन. पृ. 45.
2. अवस्थी, राधा किशोर. (2015). *तुलसीदास और रामचरितमानस की सांस्कृतिक भूमिका*. देहरादून: गार्हवाल साहित्य अकादमी. पृ. 22.
3. वर्मा, मीरा. (2017). *मीरांबाई की भाषा और भक्ति*. जयपुर: भारतीय लोकजीवन प्रकाशन. पृ. 50.
4. तुलसीदास, गोस्वामी. (2078). *श्रीरामचरितमानस (अरण्यकाण्ड – शबरी प्रसंग)*. टीकाकार: हनुमानप्रसाद पोद्दार. गोरखपुर: गीताप्रेस. पृ. 667.
5. तुलसीदास, गोस्वामी. (वि.सं. 2074). *विनय पत्रिका* (78वाँ पुनःमुद्रण). गोरखपुर: गीताप्रेस. पद सं. 78, पृ. 112.
6. त्रिपाठी, नन्दकिशोर. (2016). *भक्ति काव्य और तुलसीदास* (दूसरी आवृत्ति). नई दिल्ली: राजपाल एण्ड संस. पृ. 92.
7. तुलसीदास, गोस्वामी. (2017). *बरवै रामायण* (15वीं आवृत्ति). गोरखपुर: गीताप्रेस. पृ. 52.

गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में स्त्री स्वर एवं संस्कृति विमर्श

डॉ. बिन्दु अनंतराय महेता* **डॉ. शैलेश के. मेहता†**

mahetabinu@gmil.com **मार्गदर्शक**

सारांश

विश्व में बेजोड़ भारतीय संस्कृति जो अपने आप में गौरवान्वित है। भारतीय संस्कृति से जुड़ी हुई हर बात, परंपरा, घटना बेमिसाल है। लेकिन बदलते समय एवं भारत ने जेले हुए कई विदेशी आक्रमणों के बाद भारतीय संस्कृति पर अंधकार छा गया हो ऐसा लगता है। और इस अंधकार को दूर करने के लिए साहित्य से उमदा और कुछ भी नहीं है। साहित्य वही है जो देश, काल, वातावरण के साथ व्यक्ति के मानस पटको हमारे सामने रखता है। तत्कालीन समाज की सही तस्वीर साहित्य ही प्रस्तुत कर सकता है। साहित्य में सामाजिक परिवर्तन और समाज में हुए परिवर्तन साहित्य में बेशक दिखाई देते हैं। आज आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री स्वर उभर कर आ रहा है। नारी की वेदना, बेबसी, महत्वाकांक्षाएँ, दकियानूसी ख्यालों से बाहर आने की छटपटाहट आधुनिक हिंदी साहित्य में दिखे बिना नहीं रहती है।

प्रस्तुत शोध में गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में उभरे हुए स्त्री स्वर एवं संस्कृति विमर्श का विश्लेषण किया गया है। गीतांजलि श्री के 'माई', 'हमारा शहर उस बरस', 'तिरोहित', 'खाली जगह', 'रेत समाधि' और कहानी संग्रह में चित्रित स्त्री के स्वर को भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया गया है। आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री लेखिकाओं में मृदुला गर्ग, अनुराधा चौहान, कृष्णा सोबती, मैत्री पुष्पा जैसी दिग्गज महिला लेखिकाएं हैं वहीं पर गीतांजलि श्री ने अपने 'रेत समाधि' उपन्यास के माध्यम से बुकर प्राइज प्राप्त करके स्त्री के स्वर को पूरे विश्व के धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श बखूबी दर्शाया गया है। साथ ही भारतीय संस्कृति को भी नजर-अंदाज नहीं किया गया है। हां लेकिन हमारी संस्कृति में जो बदलाव की अपेक्षा है उसे जरूर दर्शाया गया है।

प्रस्तुत शोध में गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में उभरे हुए स्त्री स्वर के साथ संस्कृति विमर्श का भी विश्लेषण किया गया है। आधुनिक युग में हमारी संस्कृति के साथ जुड़े रहते हुए भी स्त्री अपनी स्वतंत्रता, इच्छाएं, खुली उड़ान को प्राप्त करना चाहती है और इसी के कारण आज जरूरी हो चुका है कि, संस्कृति के ऊपरी दिखावे के आधार पर स्त्रियों को भावनात्मक रूप से बंदी बनाने की जगह संस्कृति के मूल की ओर देखा जाएं और स्त्रियों के लिए हमारी संस्कृति में जो संवेदना है, जो गौरवशील विचारधारा है उसको अपनाकर नव विचार के धरातल पर स्त्रियों को नया सम्मान दिया जाए और यह कार्य साहित्य के अलावा और कौन कर सकता है?

कूटशब्द :

गीतांजलि श्री, *स्त्री स्वर, संस्कृति विमर्श, हिंदी साहित्य, परिवार, परंपरा*

***शोधार्थी, हिंदी विभागाध्यक्ष, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट**

† हिंदी विभागाध्यक्ष, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य भारतीय समाज के चेतना का दर्पण है। बदलते समय और सामाजिक परिस्थितियों ने साहित्य को नए विमर्श दिए, जीन में स्त्री स्वर और संस्कृति विमर्श विशेष महत्त्व रखते हैं। स्त्री स्वर ने नारी की आत्माभिव्यक्ति, उनके संघर्ष और स्वतंत्र अस्तित्व को साहित्य में स्थान दिया, वहीं संस्कृति विमर्श ने भारतीय संस्कृति, परंपरा और आधुनिकता के अंतर संबंधों को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया।

'नारी स्वर एवं संस्कृति' से तात्पर्य है भारतीय संस्कृति में महिलाओं की आवाज और सांस्कृतिक भूमिका से है जिसमें उन्हें शक्ति, प्रेरणा और समाज का आधार माना गया था। इतिहास में नारियों को मां दुर्गा के समान शक्ति स्वरूपा के रूप में जाना जाता था। उन्हें 'वसुधैव कुटुंबकम' के सिद्धांत का पालन करते हुए समाज की प्रगति में योगदान देने की प्रेरणा दी गई है। लेकिन परिवर्तित समय के साथ लोगों एवं समाज की सोच में भी काफी बदलाव आ चुका था। लेकिन यह बदलाव बहुत ही आधम था। कई कारणवश स्त्रियों को और उसके अस्तित्व को कुचल दिया गया। स्त्रीओं की इच्छा, भावनाएँ, उनके अधिकार, अस्तित्व मिटने पर था। इन हालातों में कई स्त्रियों ने आवाज उठाई। शुरू-शुरू में उसे कुचली गई लेकिन धीरे-धीरे यह आवाज हर घर, हर गांव, हर शहर, हर एक कान में गूंज उठी। स्त्रियों ने अपने लिए अपनी आवाज उठाई। और उनकी मदद में साहित्य बहुत ही अग्रिम रहा। यहां पर हम भारतीय संस्कृति में स्त्री का स्थान, गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में स्त्री स्वर एवं स्त्री और संस्कृति के बारे में चर्चा करेंगे।

संस्कृति विमर्श :

'संस्कृति विमर्श' का आशय है, संस्कृति, सभ्यता, परंपरा और आधुनिकता से जुड़े प्रश्नों की पड़ताल। हिंदी साहित्य में यह विमर्श भारतीय जीवन मूल्य, लोक संस्कृति, कला और सामाजिक परिवर्तनों की अभिव्यक्ति है। कबीर, तुलसी और सूर ने भक्ति साहित्य में सांस्कृतिक धारा को जीवंत बनाया।

भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान :

भारतीय संस्कृति में नारी को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। संस्कृति की प्राचीन धरोहर की ओर देखे तो स्त्री को सहधर्म चारिणी, सहधर्मिणी,सहोगामिनी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। जहां स्त्री गृहस्थी भी संभालती है और वेद एवं शास्त्रों में तंदुरुस्त चर्चा भी करती है। जहां अपने बच्चों का पालन पोषण भी करती हैं और जरूरत पड़ने पर अपने पति की रक्षा के लिए रण मैदान में भी उतरती है।

शक्ति का प्रतीक:

भारतीय संस्कृति में नारी को शक्ति का रूप माना जाता है और उसे नारायणी के नाम से भी जाना जाता है। जो मां दुर्गा की तरह अष्टभुजा स्वरूप होती है। घर, परिवार और समग्र जगत को संचारित एवं संकलित करने का गौरवयुक्त कार्यभार संभालती है।

घर और समाज का आधार:

स्त्री समाज का मूल आधार है और ईश्वर द्वारा दिया गया एक खूबसूरत उपहार है। वह परिवार में मां, पत्नी, बहन और बेटी जैसे विभिन्न रिश्तो को निभाती हैं। वह कभी भी अपनी जिम्मेदारियों को बोझ नहीं समझती है । लेकिन उन ज़िम्मेदारियों को अपना गहना समझ कर उसे बखूबी संवारती रहती है, संभालती रहती है और पोषण देती है। लेकिन आज कई लोग स्त्रियों की इस उमदा भावना को ना समझते हुए स्त्री के गले में जिम्मेदारियों का कठिन फंदा डाल देते हैं।

प्रेरणा का स्रोत :

अनादि काल से ही महिलाएं मानवता की प्रेरणा का स्रोत रही है। कितनी भी कठिन परिस्थितियां हो लेकिन उन सभी से बाहर निकालने की प्रेरणा स्त्री ही देती है।

धार्मिक महत्त्व :

मनुस्मृति के अनुसार जहां नारियों की पूजा होती है वही देवता प्रसन्न होते हैं। और क्यों ना हो नारी है तो घर है। नारी के बिना घर श्मशान भूमि जैसा है। स्त्री अपने परिवार के लिए अपना समग्र अस्तित्व निचोड़ देती है उसके इस त्याग के कारण ही ईश्वर उन पर कृपालु है और दया बरसाते हैं इसीलिए ही कहा गया है की, "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमंते देवता" ।

नारी का योगदान एवं संघर्ष :

सामाजिक परिवर्तन में देखा जाए तो ऐतिहासिक, साहित्यिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं ने अपेक्षित परिवर्तन के लिए लगातार कार्य किया है। समाज के हर क्षेत्र में नारी का संपूर्ण योगदान रहा है। फिर वह घर परिवार हो, सामाजिक क्षेत्र हो, राजनीतिक क्षेत्र हो, उद्योग - वाहन व्यवहार आज कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं जिसमें नारी का योगदान ना हो। हर एक क्षेत्र में नारी सर्वोच्च स्थान पर है लेकिन, हमारे पुरुष प्रधान समाज में एक स्त्री कैसे आगे बढ़ सकती है!? उसे घर परिवार और व्यवसाय की ज़िम्मेदारियों के साथ-साथ कई संघर्षों को झेलना पड़ता है। उसे कई तरह के शोषण का भोग बनाया जाता है आज भी नारी को शोषण और उपेक्षा की स्थिति का सामना करना पड़ता है।

स्त्री स्वर :

अनेक यातनाएँ सहने के बाद स्त्री ने अपनी आवाज उठाई। कई संगठन आगे आए। स्त्री खुद अपने अधिकार एवं खुशी के लिए पुरानी बेड़ियाँ तोड़कर स्वतंत्रता की राह पर निकल पड़ी। और इस राह में साहित्य मददगार साबित हुआ। शुरुआती दौर में कई लेखकों ने नारी की वेदना को अपने साहित्य में स्थान दिया । साथ ही एक ऐसा दौर शुरू हुआ जहां महिला लेखिकाएँ भी आगे आई और अपने साहित्य को स्त्रियों के लिए समर्पित किया। मुन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, रामेश्वरी नीलकंठ, नासिरा शर्मा, अर्चना वर्मा, अनामिका और इन सब में भी सबसे अग्रणीय कोई हो तो वह महादेवी वर्मा। आधुनिक समय में तो महिला लेखिकाओं ने अपनी कलम का उद्देश्य ही नारी संवेदना बना लिया हो ऐसा लगता है। आधुनिक समय की महिला लेखिकाओं में आज सबसे अधिक किसी पर हम गर्व कर सकते हैं तो वह है गीतांजलि श्री। जिन्होंने 'रेत समाधि' उपन्यास के लिए बुकर प्राइज प्राप्त किया और पूरे विश्व के धरातल पर स्त्री स्वर को प्रस्तुत किया। गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में नारी के मनोभाव, व्यथा, इच्छाएं, महत्वाकांक्षाओं को बखूबी प्रकट किया है। उनके उपन्यास हो या कहानी दोनों में चित्रित स्त्री स्वर को हम महसूस किए बिना नहीं रह सकते। यहां पर हम गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में वर्णित स्त्री स्वर के बारे में चर्चा करेंगे।

गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में स्त्री स्वर :

गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में अनेक परिस्थितियों मैं जुजति हुई स्त्री को दर्शाया गया है। कोई एक स्थिति या क्षेत्र हो तो समझ सकते हैं लेकिन कई सारी ऐसी परिस्थितियाँ और क्षेत्र है जहां पर नारी को पल-पल अपमानित होना पड़ता है, सहनशीलता की मूर्ति बनकर खड़ा रहना पड़ता है और संस्कृति की बेड़ियाँ पहनकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

स्त्री का दांपत्य जीवन :

हमारे प्राचीन ग्रंथों में और भारतीय समाज में एक विवाहित स्त्री के लिए कई नियम बंधन और अधिकारों की चर्चा देखने को मिलती है लेकिन उनकी असहायता, मजबूरी अथवा आशा आकांक्षाओं का स्वप्नभंग, उनकी भीतरी छटपटाहट का विस्तृत वर्णन कहीं भी नहीं मिलता है। लेकिन साहित्य में नारी की वास्तविक परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है। गीतांजलि श्री का कथा साहित्य स्त्री केंद्रित है। जिसमें 'माई', 'तिरोहित' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। माई के रूप में भारतीय संस्कारों में पोषित स्त्री का यथार्थ अंकन गीतांजलि श्री ने प्रस्तुत उपन्यास में किया है, तो 'तिरोहित' उपन्यास की प्रमुख पात्र चच्चों को यथार्थ सामाजिक संदर्भ में डालकर सामने लाया गया है। जो 'स्व' का न रहकर सामाजिक विद्रूपता को उजागर करता है। गीतांजलि श्री नारी की स्थिति, उसकी बदली हुई सोच तथा अपने ऊपर के अन्याय के अस्वीकार की भावना को सशक्तता के साथ उजागर किया है।

नारी की पारिवारिक स्थिति:

गीतांजलि श्री के उपन्यासों में नारी के पारिवारिक स्थिति के भी विविध संदर्भ प्राप्त होते हैं। जहां लेखिका नारी व्यथा के साथ-साथ नारी की इनमें से बाहर निकालने की तिलमिलाहट को भी स्थान देती है। नारी जीवन की पारिवारिक स्थिति को भारतीय परिवेश में गीतांजलि श्री ने अपने उपन्यासों में स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया है। 'माई' उपन्यास में सुनैना माई की स्थिति के बारे में सोचती है कि, "माई कब उठती थी, क्या खाती थी, कैसे रहती थी, शुरू में तो हमने सोचा ही नहीं और बाद में जब सोचने लगे तो हम उसको चाहते हैं और उस पर दया करते हैं।" माई दिन रात परिवार के बारे में ही सोचती और उनकी

इच्छा पूर्ति में ही लगी रहती है। ना तो वह उनका विरोध करती है और ना ही उनके किसी बात की अवहेलना करती है। गीतांजलि श्री ने केवल नारी की इस दारूण पारिवारिक स्थिति का चित्रण ही नहीं किया लेकिन सुनैना के माध्यम से बाहर निकलने की छटपटाहट को भी व्यक्त किया है।

चार दीवार में बंदी नारी:

'तिरोहित' की चच्चों घर की चार दीवार से राहत पाने के लिए छत का सहारा लेती है। वह कुछ पल अकेले में व्यतीत करना चाहती है। लेकिन पति का आतंक उनकी बंदी से उसे खुले आसमान का अनुभव भी करने नहीं देता। तो दूसरी ओर माई सास-ससुर और परिवार की इच्छा पूर्तियों में लगी रहती है और घर की चार दीवार में ही अपने जीवन का सार मान लेती है।

रुढ़िग्रस्त सोच में फंसी नारी:

जन्म के पूर्व से ही भेदभाव को सहती हुई नारी को पुत्र की माता होना उसके लिए सम्मानजनक समझा जाता है, इससे बड़ी संकुचित सोच क्या हो सकती है ! 'माई' उपन्यास में दादी के माध्यम से तत्कालीन समय में लड़का और लड़की के भेद को बड़े ही वास्तविक रूप से दर्शाया गया है। 'हमारा शहर उसे बरस' भी नारी के प्रति रूढ़ीग्रस्तता को उजागर करता है बचपन से ही लड़कियों पर पाबंदियां लगती जाती है। लड़कों समान उन्हें मुक्तता नहीं दी जाती। उनके बोलने, हंसने तक पर नियंत्रण रखा जाता है। गीतांजलि श्री नारी के प्रति समाज की रूढ़िवादीता को नकारती है और अपने पात्रों द्वारा मुक्तता का संकेत देती है।

देह की सिकुड़न में नारी :

गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में नारी की दैहिकता से जुड़े विभिन्न संदर्भ आए हैं। जिसमें पुरुष की दृष्टि से नारी केवल देह में ही सिमटी हुई दिखाई देती है। किसी भी समाज में ऐसी दृष्टि को स्वीकारा नहीं जा सकता। लेखिका ने अपने साहित्य द्वारा स्त्री विमर्श से जुड़े इस पहलू को विस्तार से वर्णित किया है। फिर वह 'तिरोहित' हो, 'माई' हो या 'हमारा शहर उसे बरस हो'। गीतांजलि श्री के साहित्य में नारी की इस दुविधा को दर्शाया गया है। आज नारी शरीर को घूरती आंखें प्राय हर ओर दिखाई देती है, लेकिन नारी इस घिनौनी नजरों को अपने शरीर पर चुभता हुआ अनुभव कर रही है। उसके लिए यह चुभन उसके पूरे नारीत्व और समूचे अस्तित्व को झकझोरती है। नारी की इस विडंबना, पीड़ा को लेखिका ने बहुत ही तीखे शब्दों में गंभीरता से वर्णित किया है।

आर्थिक रूप से पराधीन नारी:

आर्थिक पराधीनता ही व्यक्ति संघर्ष का मूल कारण बनती है। लेखिका ने आर्थिक पराधीनता उसके व्यक्तित्व के विकास को न केवल अवरुद्ध माना है बल्कि वह हर स्वयं नारी के लिए असुरक्षा की भावना के रूप में दर्शाया है। गीतांजलि श्री ने केवल आर्थिक पराधीनता को झेलती नारी का चित्रण नहीं किया है अपितु उनके द्वारा चित्रित नारी आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए घर में ही व्यवसाय की तलाश करती हैं। आज की आर्थिक पराधीन परिस्थितियों में छटपटाती नारी की वास्तविकता को उजागर करती है। स्त्री अपनी गरीबी को दूर करने के लिए आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता प्राप्त कर रही है।

गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में स्त्री जगत के उन पहलुओं पर गौर किया गया है, जो ऊपर से तो बड़े सामान्य दिखाई देते हैं पर वास्तव में वही छोटे-छोटे पल और घटनाएं नारी जीवन को दु:खद और पीड़ा के संसार में धकेलने के लिए उतने ही कारगर सिद्ध होते हैं जितने उस पर किए जाने वाले दैहिक अत्याचार। नारी जीवन की इस निरिहता के विभिन्न संदर्भो का लेखिका ने यथास्थिति वास्तविक चित्रण किया है। वास्तविक स्थिति में भी लेखिका ने हमारी संस्कृति को छोड़ा नहीं है लेकिन हमें हमारी संस्कृति के मूल को नए तरीके से सोचनें की जरूरत को दर्शाया है।

हमारी संस्कृति, स्त्री स्वर एवं एक नई सोच :

भारतीय संस्कृति मूलत: बहुत ही प्राचीन संस्कृति है। साथ ही वास्तविक युग में भी वह इतनी ही नई है जितनी वह पुरानी है। बस जरूरत है उसके वास्तविक रूप को समझा जाए, सोचा जाए। हम भारतीय संस्कृति की आड़ में हमारे विकृत एवं

संकुचित विचारों को थोपते हैं लेकिन हमारी संस्कृति का दृष्टिकोण बहुत ही विशाल है। हमें भारतीय संस्कृति के उस विशाल दृष्टिकोण के आधार पर स्त्रियों को जीने के लिए प्रेरित करना चाहिए। संध्या, मैत्री, आपला, सत्यभामा, गार्गी, अनसूया, तारामती जैसी अनेक विदुषी सन्नारियाँ भारतीय धरातल पर जन्म ले चुकी है और हमें प्रेरित करती रही है। वहां हम कैसे कह सकते हैं कि, हमारी संस्कृति में स्त्रियों का कोई स्थान नहीं है!!? स्त्रियों का स्थान तो हमेशा सर्वोच्च ही रहा है, लेकिन हम उसे अनदेखा कर रहे हैं। इसके कई विपरीत परिणाम हमें भुगत ने पड़ रहे हैं। आज कई स्त्रियां बेबसी, लाचारी, दुष्ट सोच की अंधेरी खाई में डूबती जा रही है। तो इससे विपरीत आज स्वतंत्रता के नाम पर कई स्त्रियाँ उन्नति की जगह अवनति की गहरी खाई में उतरती जा रही है। हमें साहित्य के माध्यम से सभी स्त्रियों को भारतीय संस्कृति के अनुसार स्त्री की गरिमा, स्त्री के महत्त्व, स्त्री की सही पहचान तक पहुंचाना जरूरी है। साथ ही गांव, समाज, शहर, देश और पूरे विश्व को बताना है कि संस्कृती में स्त्री का कैसा महत्वपूर्ण स्थान है। स्त्री का हर एक रूप पूजनीय एवं वंदनीय है। स्त्री को ना ही किसी को हटाकर अपना अधिकार चाहिए, ना ही उसका यह हठाग्रह है। लेकिन जरूरत है स्त्री के बारे में संपूर्ण रूप से गौरवपूर्ण सोचने की, उसकी इच्छाओं को, आकांक्षाओं को, महत्वाकांक्षाओं को, भावनाओं को समझने की।

स्त्री की भी एक अलग पहचान है, उसका अपना अस्तित्व और व्यक्तित्व है। स्त्री पिता, पति, बेटे के साथ ही रहना चाहती है लेकिन इसके साथ अपनी अलग पहचान भी बनाना चाहती है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि, उसका भी अपना एक वजूद है। परिवार, समाज, शहर, देश के लिए काम करती हर एक स्त्री जगदंबा स्वरूप है। यही स्त्री अगर अपनी मर्यादा को लांधेगी तो विनाश निश्चित है। यदि स्त्री के त्याग, संवेदनाओं, भावनाओं को सम्मान पूर्वक देखा जाए तो धरती पर स्वर्ग ही स्वर्ग है।

इस प्रकार देखा जाए तो गीतांजलि श्री के साहित्य में भारतीय संस्कृति के साथ स्त्री स्वर को उठाया गया है। आशा है कि, हम भी संस्कृति और स्त्री स्वर को समझें, उनके समूचे व्यक्तित्व को सम्मान देकर आदर्श के धरातल पर प्रस्थापित करें तभी सही मायने में नारी नारायणी बनेगी।

संदर्भ

1. गंगुली, उ. (सं.). *स्त्री लेखन के विविध आयाम*.
2. खाड़े, वि. *गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श*.
3. महेता, ब. अ. (सं.). (2024). *भारतीय विदुषी सन्नारियाँ*.
4. वर्मा, म. (2009). *अतीत के चलचित्र*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
5. शर्मा, र. (न.वि.). *समकालीन महिला लेखन और समाज*.
6. श्री, गीतांजलि. (1996). *माई*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
7. श्री, गीतांजलि. (1998). *हमारा शहर उस बरस*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
8. श्री, गीतांजलि. (2001). *तिरोहित*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
9. श्री, गीतांजलि. (2018). *रेत समाधि*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
10. सक्सेना, र. *हिन्दी में स्त्री विमर्श*.

हिन्दी भाषा का NEP (2020) में महत्त्व

डॉ. समीना कुरैशी*
quraishisameena25@gmail.com

सारांश

नई शिक्षा नीति 2020 (NEP) ने हिंदी भाषा को शिक्षा की प्रणाली में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। यह नीति मातृभाषा और स्थानीय भाषा में अध्ययन को प्राथमिकता देती है, जिससे बच्चों की सीखने की प्रक्रिया सरल और प्रभावी होती है। NEP में हिंदी भाषा को न केवल प्राथमिक शिक्षा के लिए, बल्कि उच्च शिक्षा, तकनीकी और प्रशासनिक क्षेत्रों में भी व्यापक रूप से अपनाने की दिशा में प्रावधान किए गए हैं। नीति के तहत त्रिभाषा सूत्र लागू किया गया है, जिसमें हिंदी, अंग्रेजी और एक अन्य भारतीय भाषा को शिक्षा प्रणाली में शामिल किया गया है। इसके साथ ही, हिंदी की सांस्कृतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय पहचान के सशक्तिकरण के लिए जागरूकता और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाएंगे। हिंदी भाषा के इस संवर्धन से भारत की भाषाई विविधता समृद्ध होगी और शिक्षा प्रणाली अधिक समावेशी बनेगी। नई शिक्षा नीति 2020 के द्वारा हिंदी भाषा के प्रति सम्मान और उसके विकास को सुनिश्चित किया गया है, जो देश के विकास और सामाजिक एकता के लिए अत्यंत आवश्यक है।

परिचय

नई शिक्षा नीति 2020 (NEP) में हिंदी भाषा का विशेष महत्व है क्योंकि यह भारत की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा होने के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक पहचान का भी केन्द्र है। नीति मातृभाषा या स्थानीय भाषा में शिक्षा को प्राथमिकता देती है, जिससे छात्रों की समझ बेहतर होती है और शैक्षणिक परिणाम सुदृढ़ होते हैं। NEP में त्रिभाषा सूत्र को अपनाया गया है, जिसमें हिंदी, अंग्रेज़ी और एक अन्य भारतीय भाषा की शिक्षा पर बल दिया गया है, जिससे बहुभाषिकता को बढ़ावा मिलता है। नीति के अंतर्गत हिंदी को न केवल प्राथमिक शिक्षा की भाषा माना गया है, बल्कि उच्च शिक्षा, तकनीकी और प्रशासनिक क्षेत्र में भी इसका विस्तार करने की योजना है। इसके साथ ही हिंदी भाषा को डिजिटल संसाधन, तकनीकी साहित्य और वैज्ञानिक सामग्री में शामिल करने की सिफारिश की गई है। हिंदी भाषा के इस व्यापक संवर्धन से न केवल भारत की सांस्कृतिक धरोहर मजबूत होगी, बल्कि यह समावेशी और सशक्त शिक्षा प्रणाली के निर्माण में भी सहायक सिद्ध होगी। NEP 2020 में हिंदी के इस महत्व को राष्ट्रीय शिक्षा के विकास और सामाजिक सामंजस्य के लिए आधार माना गया है।

साहित्य समीक्षा

1. पूर्व में अंग्रेजी माध्यम और क्षेत्रीय भाषाओं के बीच अंतर, हिंदी शिक्षा की चुनौतियाँ और समाधान।
2. मातृभाषा में शिक्षा के लाभ, वैज्ञानिक रिसर्च, और सामाजिक समावेशिता को लेकर पूर्व साहित्यिक निष्कर्ष।

शोध उद्देश्य

1. हिंदी के शैक्षिक, सामाजिक और राष्ट्रीय योगदान का अध्ययन करना।
2. बहुभाषिकता और मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा के फायदों की पड़ताल करना।
3. हिंदी भाषी क्षेत्रों में नीति के प्रभाव और चुनौतियों को उजागर करना।

विधि

1. विषय-वस्तु विश्लेषण, नीति दस्तावेजों एवं शैक्षणिक शोध का मूल्यांकन।
2. साहित्यिक समीक्षा के साथ-साथ रिपोर्ट, दस्तावेज और ऑनलाइन स्रोतों का संकलन।

* **सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, जे.ई.एस. कॉलेज, फरहदा, बिलासपुर, (छत्तीसगढ़), भारत।**

विश्लेषण

1. प्राथमिक शिक्षा हेतु मातृभाषा (हिंदी) का प्रोन्नयन।
2. त्रिभाषा सूत्र लागू — हिंदी, अंग्रेजी, अन्य भारतीय भाषाv
3. उच्च शिक्षा में हिंदी सामग्री की उपलब्धता और आवश्यकता।
4. प्रशासन, तकनीकी, और वैज्ञानिक क्षेत्रों में हिंदी के उपयोग का प्रोत्साहन।
5. सामाजिक समावेशिता, सांस्कृतिक पहचान और राष्ट्रीय एकता में हिंदी की भूमिका।
6. गैर-हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और जागरूकता।

निष्कर्ष

नई शिक्षा नीति 2020 (NEP) ने हिंदी भाषा को शिक्षा की प्रणाली में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। यह नीति मातृभाषा और स्थानीय भाषा में अध्ययन को प्राथमिकता देती है, जिससे बच्चों की सीखने की प्रक्रिया सरल और प्रभावी होती है। NEP में हिंदी भाषा को न केवल प्राथमिक शिक्षा के लिए, बल्कि उच्च शिक्षा, तकनीकी और प्रशासनिक क्षेत्रों में भी व्यापक रूप से अपनाने की दिशा में प्रावधान किए गए हैं। नीति के तहत त्रिभाषा सूत्र लागू किया गया है, जिसमें हिंदी, अंग्रेजी और एक अन्य भारतीय भाषा को शिक्षा प्रणाली में शामिल किया गया है। इसके साथ ही, हिंदी की सांस्कृतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय पहचान के सशक्तिकरण के लिए जागरूकता और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाएंगे। हिंदी भाषा के इस संवर्धन से भारत की भाषाई विविधता समृद्ध होगी और शिक्षा प्रणाली अधिक समावेशी बनेगी। नई शिक्षा नीति 2020 के द्वारा हिंदी भाषा के प्रति सम्मान और उसके विकास को सुनिश्चित किया गया है, जो देश के विकास और सामाजिक एकता के लिए अत्यंत आवश्यक है।

अनुशंसा

1. हिंदी शिक्षकों का प्रशिक्षण सशक्त किया जाए।
2. तकनीकी व डिजिटल शिक्षण सामग्री हिंदी में विकसित हो।
3. प्रशासन और समीक्षात्मक संवाद में हिंदी को प्राथमिकता दी जाए।
4. छात्रों में मातृभाषा के प्रति गर्व एवं स्वाभिमान के भाव का विकास किया जाए।

संदर्भ सूची

1. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय प्रकाशन. पृ. 12–20.
2. पांडेय, एस. (2021). *नई शिक्षा नीति और भारतीय भाषाओं का संवर्द्धन*. वाराणसी: ज्ञान भारती प्रकाशन. पृ. 55–72.
3. मिश्रा, आर. (2022). *उच्च शिक्षा में हिंदी का भविष्य: नई शिक्षा नीति के संदर्भ में*. लखनऊ: शोध भारती प्रकाशन. खंड 3, अध्याय 2, पृ. 101–118.
4. सिंह, एम. (2021). नई शिक्षा नीति 2020 और मातृभाषा का महत्व. *भारतीय शिक्षा समीक्षा*, 15(2), 44–59.
5. शर्मा, आर., एवं वर्मा, के. (2020). "हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का स्थान: शिक्षा नीति 2020 का विश्लेषण." *भाषा एवं शिक्षा जर्नल*, 10(1), 23–38. खंड 10, अध्याय 1, पृ. 23–38.
6. गुप्ता, ए. (2022). *नई शिक्षा नीति और भाषाई समावेशन: हिंदी की भूमिका*. भोपाल: साहित्य अकादमी. पृ. 88–104.
7. चौबे, एस. (2023). *हिंदी और नई शिक्षा नीति: अवसर एवं चुनौतियाँ*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 145–163.
8. त्रिपाठी, पी. (2021). "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और हिंदी माध्यम शिक्षा की प्रासंगिकता." *शिक्षा संवाद पत्रिका*, 9(1), 61–74.
9. शुक्ला, डी. (2022). *भाषा नीति और शिक्षा: हिंदी का परिप्रेक्ष्य*. पटना: बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी. पृ. 119–137.
10. वाजपेयी, एन. (2021). *नई शिक्षा नीति और भारतीय भाषाओं की स्थिति*. दिल्ली: हिंदी पुस्तक केंद्र. पृ. 77–92.

दलित साहित्य में सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श

डॉ. पारुल आर. खांट*

dr.parulkhant@gmail.com

प्रस्तावना:

दलित साहित्य भारतीय हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण धारा है, जो समाज के दलित वर्गों के जीवन अनुभवों, संघर्षों और उनकी सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त करता है । दलित साहित्य भारतीय समाज में व्याप्त जाति के भेदभाव के खिलाफ एक सशक्त आवाज के रूप में उभरा है। इस साहित्य में पारंपरिक साहित्यिक मूल्यों के विपरीत जीवन के कटु यथार्थ, शोषण, अन्याय और असमानता के विरुद्ध आवाज उठाई गई है। दलित साहित्य सिर्फ एक साहित्यिक आंदोलन नहीं,बल्कि सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया का हिस्सा है। दलित साहित्य दलित समाज की व्यथा कथा या फिर दलित सर्जक के बदलाव के ख्यालातों का निष्कर्ष है। कई सालों से जन समुदाय के द्वारा पिछड़ी हुई जातियों की अवहेलना होती रही है। दलित साहित्य मुख्य रूप से दलितों के सामाजिक शोषण, जातिवाद, सांस्कृतिक वर्चस्व और संघर्ष को केंद्र में रखकर विकसित हुआ है। यह विमर्श ब्राहमणवादी संरचना की आलोचना करता है और दलित पहचान को मजबूत करने का माध्यम बनाता है।

हिन्दी दलित साहित्य का विकास मुख्यतः 20वीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ। दलित साहित्य सामाजिक और संस्कृत विमर्श को प्रकट करने के लिए एक सशक्त माध्यम है। आज हिंदी का दलित साहित्य विभिन्न स्वरूपों में हमारे सामने है – आत्मकथा, उपन्यास, कविता, संस्मरण, नाटक, कहानी आदि प्रमुख साहित्यिक विधाओं में दलित साहित्य प्रस्तुत किया जा रहा है।

मुख्य शब्द :

दलित साहित्य, समाज, संस्कृती, विमर्श,

दलित साहित्य में सामाजिक विमर्श:

दलित साहित्य सामाजिक विमर्श का सशक्त माध्यम है। दलित साहित्य ने उच्च- नीच की व्यवस्था, अस्पृश्यता और सामाजिक भेदभाव को उजागर किया। यह साहित्य भारतीय समाज में गहराई से जड़ जमाये जातिवाद की आलोचना करता है और उसके विरुद्ध आवाज उठाता है। यह साहित्य सिर्फ वर्ण व्यवस्था की निंदा नहीं करता,बल्कि इसमें हर व्यक्ति को समान अधिकार और अवसर मिलने की माँग की जाती है।

दलित साहित्य सामाजिक समानता, न्याय और मानवीय गरिमा की सतत खोज करता रहता है। इसमें केवल अधिकारों की माँग नहीं है, बल्कि सम्मान पूर्ण जीवन की आकांक्षा है। दलित साहित्य समाज के अन्याय पूर्ण ढांचों को चुनौती देता है और दमन के विरुद्ध सामूहिक प्रतिरोध का संदेश देता है। यह साहित्य सवर्ण समाज द्वारा दलितों पर किए गए अत्याचारों, अपमान और शोषण को बिना किसी दिखावे के सीधे ही प्रस्तुत करता है। कैसे दलितों को सार्वजनिक कुओं, मंदिरों और पाठशालाओं से दूर रखा जाता था। 'जूठन' आत्मकथा में ओम प्रकाश वाल्मीकि ने इस सामाजिक भेदभाव की कठोर सच्चाई को दर्शाया है। यह साहित्य अस्पृश्यता को सिर्फ एक सामाजिक प्रथा के रूप में नहीं, बल्कि मानवता विरोधी अपराध के रूप में चित्रित करता है।

दलित साहित्य शिक्षा,धर्म और सत्ता जैसे संस्थानों पर भी आलोचनात्मक दृष्टि डालता है। शिक्षा को जहाँ सामाजिक विकास का साधन माना गया है,वहाँ पर यह भी बताया गया है कि किस प्रकार दलित जाति अक्सर जातीय

* **हिन्दी विभाग, बी. आर. एस. कॉलेज, डुमियाणी**

पूर्वाग्रहों से ग्रस्त रही है। धर्म का उपयोग विशेष कर ब्राह्मणों ने दलितों को शोषित बनाए रखने के लिए किया। इसी तरह राजनीतिक सत्ता हो या सामाजिक - हमेशा दलित समुदाय को हाशिए पर धकेलने में सक्रिय रही।

यह साहित्य दलित के भीतर जगी आत्म - सम्मान की भावना एवं अपनी पहचान स्थापित करने के लिए संघर्ष को भी दिखाता है। यह साहित्य समाज द्वारा थोपी गई निम्न जाति की पहचान को अस्वीकार करता है,साथ ही इंसान के रूप में सम्मान की मांग करता है। इस साहित्य के पात्र अपने अस्तित्व के लिए लड़ते हैं और समाज की पुरानी सोच को चुनौती देते हैं। दलित भी समाज का एक अभिन्न अंग है और उनकी भी अपनी एक अनूठी संस्कृति और संवेदनशीलता है। दलित साहित्य सिर्फ दुख का वर्णन नहीं करता बल्कि समाज में बदलाव लाने के लिए एक विद्रोह भी है।

दलित साहित्य में स्त्रियों की स्थिति यह एक महत्वपूर्ण पहलू है। दलित महिलाओं को दोहरे शोषण का सामना करना पड़ता है – जातीय और लैंगिक ये दोनों स्तर पर शोषण का सामना करना पड़ता है। दलित महिलाएँ जाति व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर खड़ी है। वे सवर्ण समाज द्वारा किए गए जातिगत अत्याचारों और भेदभाव का शिकार होती है, एवं पुरुष प्रधान समाज में एक स्त्री होने के नाते उन्हें घर और समाज दोनों में लैंगिक भेदभाव और शोषण का सामना करना पड़ता है। बाबुराव बागुल, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कौशल पंवार जैसे लेखकों और सुजाता जैसी लेखिकाओं ने इन अनुभवों को अत्यंत संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया है। दलित स्त्री का अनुभव दलित समाज की स्थिति को अधिक स्पष्ट करता है।

इस प्रकार दलित साहित्य में सामाजिक विमर्श केवल विरोध का स्वर नहीं है, बल्कि यह पुनः निर्माण का प्रयत्न भी है। एक ऐसे समाज की कल्पना और माँग जहाँ मनुष्य को उसकी जाति, धर्म, लिंग या वर्ग से नहीं बल्कि उसकी मानवता से पहचाना जाए।

दलित साहित्य में सांस्कृतिक विमर्श :

दलित साहित्य सांस्कृतिक स्तर पर भी गहरा विमर्श प्रस्तुत करता है। दलित साहित्य न केवल सामाजिक असमानताओं का ही विरोध करता है,बल्कि भारतीय संस्कृति के उन पहलुओं पर भी सवाल उठाता है,जो जातिवाद को बढ़ावा देता है। दलित साहित्य सिर्फ सामाजिक संरचनाओं का प्रतिवाद भर नहीं है, बल्कि वह उन सांस्कृतिक मूल्यों, प्रतीकों और जीवन दृष्टियों की भी पुनर्रचना भी है, जो सदियों से दलित समुदाय को नकारते रहे हैं। यह साहित्य दलित जीवन की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को स्वर देता है - एक ऐसी अभिव्यक्ति जो मुख्य धारा की संस्कृति में लंबे समय तक अनदेखी और उपेक्षित रही। दलित रचनाकार अपनी रचनाओं में अपने समाज की लोक परंपराओं, जीवन शैली,गीत, उत्सव, श्रम और संघर्ष को केंद्र में रखते हैं, जिससे एक अलग सांस्कृतिक चेतना का निर्माण होता है।

यह साहित्य उन परंपराओं और मान्यताओं को चुनौती देता है,जिनके माध्यम से सदियों से दलितों को हीन और शोषित बनाए रखा गया है। ब्राह्मणवादी सांस्कृतिक परंपरा का विरोध करता है एवं जातिवाद एवं अंधविश्वास और उच्च - नीच की सांस्कृतिक संरचनाओं पर सवाल उठाता है।

दलित साहित्य एक ऐसी संस्कृति की कल्पना करता है, जो समानता, न्याय और मानवता पर आधारित हो। दलित साहित्य में परंपरा और परिवर्तन के बीच एक निरंतर द्वन्द्व दिखाई देता है। एक परंपरा वह है, जो शोषण, जातीय श्रेष्ठता और सामाजिक असमानता को धार्मिक और सांस्कृतिक आधारों पर स्थायित्व प्रदान करती हैं,तो दूसरी परंपरा वह है, जो परिवर्तन की आकांक्षा है, जो समानता, स्वतंत्रता और सम्मान की दिशा में आगे बढ़ना चाहती हैं। दलित लेखक उन परंपराओं को अस्वीकार करते हैं,जो उन्हें हीन मानती है एवं ऐसी नई परंपराओं की खोज करते हैं, जो मानवीय गरिमा और न्याय को स्थापित करें। यह साहित्य परंपरा के विरुद्ध विद्रोह का नहीं,बल्कि उसके आलोचनात्मक परीक्षण का कार्य करता है। डॉ. भीमराव आंबेडकर की शिक्षाओं से प्रभावित दलित साहित्य बौद्ध धर्म के करुणा, मैत्री और समानता जैसे मूल्यों को सांस्कृतिक विकल्प के रूप में प्रस्तुत करता है। यह संस्कृति को मुक्ति और आत्मसम्मान से जोड़ता है।

दलित साहित्य की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उसमें लोक संस्कृति,प्रतीकों और मिथकों की पुनःव्याख्या की गई है। जिस सांस्कृतिक ढांचे ने राम,कृष्ण, अर्जुन और ब्राह्मणवादी मूल्यों को नायकत्व प्रदान किया, दलित साहित्य ने उसी ढांचे में बहुजन चरित्रों- एकलव्य, शंबूक, रावण, नाग भील्ल, मातंग आदि को सम्मान और नायकत्व प्रदान किया है। यह

पुन:व्याख्या केवल प्रतीकों की अदला-बदली नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक विमर्श में हिस्सेदारी का दावा भी है,जिसमें बहिष्कृत कथाएँ केंद्र में आती है। लोकगीत, कहावतें और लोक कथाएँ भी दलित दृष्टिकोण से पुनः प्रस्तुत की जाती है,जिससे सांस्कृतिक चेतना निखर उठती है।

दलित साहित्य भाषा और अभिव्यक्ति का नया सौंदर्य शास्त्र है। भाषा और शैली के स्तर पर दलित साहित्य मुख्य धारा से भिन्न मार्ग अपनाता हैं। दलित साहित्य पारंपरिक साहित्यिक सौंदर्य शास्त्र को चुनौती देकर सीधे आक्रोश पूर्ण और सच्चाई पूर्ण भाषा का इस्तेमाल करता है। इसकी भाषा संक्षिप्त, स्पष्ट और प्रभावशाली होती है। यह भाषा अलंकरण और सौंदर्य शास्त्र से अधिक यथार्थ और अनुभव की गहराई पर टिकी होती है। शैली में आत्मकथात्मकता, संस्मरण, प्रत्यक्ष कथन और संवाद की अधिकता मिलती है। यह शैली दलित जीवन की सीधी सच्चाई को बिना किसी सजावट के सामने रखती है।

दलित साहित्य में सांस्कृतिक विमर्श केवल दमनकारी परंपराओं का खंडन नहीं है, बल्कि नई मानवीय और न्यायपूर्ण संस्कृति की रचना है। यह संस्कृति सबके लिए है, जिसमें जाति, वर्ग और लिंग आधारित भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं है।

निष्कर्ष :

संक्षेप में, दलित साहित्य का सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श का निष्कर्ष यह है कि यह केवल एक साहित्यिक आंदोलन नहीं है, बल्कि सामाजिक न्याय और समानता के लिए एक शक्तिशाली राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलन भी है। यह साहित्य जाति-व्यवस्था के दमनकारी चरित्र को उजागर करता है और एक ऐसे समाज की कल्पना करता है, जहाँ सभी को समान अधिकार और सम्मान मिले। यह भारतीय समाज और संस्कृति की पुनर्व्याख्या करता है, जिसमें हाशिए पर रहने वाले लोगों के अनुभवों को केंद्र में रखा गया है।

संदर्भ :-

1. कर्दम, जयप्रकाश. (2010). *दलित विमर्श : साहित्य के आईने में*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
2. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. (2001). *दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
3. भारती, कँवल. (2008). *दलित विमर्श की भूमिका*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
4. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. (1998). *जूठन*. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन.

भक्ति आंदोलन और सांस्कृतिक चेतना

डॉ. सतीश दत्तात्रय पाटील*
padmajsp319@gmail.com

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति की आधारभूमि अध्यात्म, मानवता और सहअस्तित्व रही है। मध्यकालीन भारतीय समाज में जब सामंती विघटन, विदेशी आक्रमण, धार्मिक कट्टरता और सामाजिक विषमता चरम पर थी, तब भक्ति आंदोलन ने एक नवीन सांस्कृतिक चेतना का संचार किया। यह आंदोलन केवल धार्मिक आंदोलन नहीं था, बल्कि सामाजिक सुधार और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का भी माध्यम बना।

भक्ति आंदोलन ने जाति-पाँति, ऊँच-नीच, पाखंड और रूढ़िवादिता का विरोध कर मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इसके कवियों और संतों ने भक्ति को सामाजिक न्याय, समानता और प्रेम का आधार बनाया। इस प्रकार यह आंदोलन भारतीय संस्कृति में लोकतांत्रिक और लोकमंगलकारी चेतना का प्रतीक बना।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भक्ति आंदोलन का उदय लगभग 7वीं–8वीं शताब्दी में दक्षिण भारत के आलवार और नयनार संतों से माना जाता है। उत्तर भारत में इसका प्रसार 13वीं शताब्दी से हुआ और 17वीं शताब्दी तक यह चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया।

इस काल की परिस्थितियाँ –

1. राजनीतिक अस्थिरता: तुर्क, अफगान और मुग़ल आक्रमणों से समाज में असुरक्षा फैली।

2. सामाजिक विषमता: जाति-प्रथा कठोर हो चुकी थी; अस्पृश्यता और ऊँच-नीच व्याप्त था।

3. धार्मिक पाखंड: यज्ञ, अनुष्ठान और बाह्याचार पर अत्यधिक बल दिया जाता था।

4. सांस्कृतिक टकराव: इस्लामी और हिंदू परंपराओं के मिलन से नई चेतना जन्म ले रही थी।

इन परिस्थितियों ने एक ऐसे आंदोलन की आवश्यकता उत्पन्न की जो सरल भाषा में जनता को आध्यात्मिक और सामाजिक मुक्ति का मार्ग दिखा सके।

भक्ति आंदोलन की मुख्य धाराएँ

भक्ति आंदोलन की दो प्रमुख धाराएँ मानी जाती हैं –

1. निर्गुण भक्ति धारा

इस धारा के कवियों ने ईश्वर को निराकार, अजन्मा और असीम माना। जाति-भेद, मूर्ति-पूजा और धार्मिक अनुष्ठानों का विरोध किया। प्रतिनिधि संत: कबीर, दादू, रैदास, गुरुनानक थे।

2. सगुण भक्ति धारा

इस धारा ने ईश्वर को साकार रूप में पूजा। राम और कृष्ण भक्ति इसकी मुख्य शाखाएँ रहीं। प्रतिनिधि संत: रामानंद, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, नाभादास थे।

संत कवियों का योगदान

* **सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग, धनाजी नाना महाविद्यालय, फैजपुर**

1. कबीर :- कबीर ने निर्गुण भक्ति धारा को लोकचेतना से जोड़ा। उनकी वाणी ने जातिगत भेदभाव, पाखंड और मूर्तिपूजा का विरोध किया। संदेश: "जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।"

उन्होंने हिंदू-मुसलमान दोनों के अंधविश्वासों पर प्रहार किया और मानवीय एकता का संदेश दिया।

2. रैदास :- चर्मकार समुदाय से आने वाले संत रैदास ने सामाजिक समता और प्रेम का संदेश दिया। उन्होंने एक ऐसे समाज की कल्पना की जहाँ सभी समान हों – "बेगमपुरा"।

उनकी भक्ति में करुणा और सामाजिक न्याय का स्वर है।

3. तुलसीदास :- सगुण भक्ति धारा के महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से रामकथा को लोकजीवन से जोड़ा। उनकी रचनाएँ न केवल धार्मिक आस्था, बल्कि सांस्कृतिक एकता का आधार बनीं। उन्होंने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रस्तुत कर आदर्श जीवन का मार्ग दिखाया।

4. सूरदास :- सूरदास ने कृष्ण की बाललीलाओं और भक्त-गोपियों के प्रेम का अनुपम चित्रण किया। उनकी भक्ति भावुकता, कोमलता और सौंदर्य-बोध से परिपूर्ण है। लोकसाहित्य और संगीत में उनका योगदान अतुलनीय है।

5. मीरा :- मीरा ने कृष्ण-भक्ति को प्रेम और समर्पण की पराकाष्ठा तक पहुँचाया। उन्होंने पितृसत्तात्मक समाज की परंपरागत बेड़ियों को तोड़कर अपनी भक्ति व्यक्त की। उनकी पदावलियाँ आज भी लोकगीतों के रूप में गाई जाती हैं।

6. गुरु नानक :- सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक ने समानता, भाईचारे और सत्य की शिक्षा दी। उनकी वाणी गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित है। उन्होंने कर्म, सेवा और नाम-स्मरण को जीवन का आदर्श माना। भक्ति आंदोलन और सामाजिक चेतना। भक्ति आंदोलन ने सामाजिक स्तर पर गहरा प्रभाव डाला –

1. जाति-पाँति का विरोध: कबीर, रैदास, दादू जैसे संतों ने सामाजिक समता का उद्घोष किया।
2. स्त्री चेतना: मीरा और अन्य महिला संत कवियों ने पितृसत्ता को चुनौती दी।
3. लोकभाषा का प्रसार: संस्कृत की जगह हिंदी, अवधी, ब्रज, पंजाबी आदि बोलियों में रचनाएँ हुईं, जिससे जनता सीधा जुड़ सकी।
4. सामाजिक समरसता: हिंदू-मुस्लिम सांझी परंपरा (गंगा-जमुनी तहज़ीब) को बल मिला।
5. समानाधिकार की भावना: निम्नवर्गीय समाज को सांस्कृतिक पहचान और सम्मान प्राप्त हुआ।

भक्ति आंदोलन और सांस्कृतिक चेतना

भक्ति आंदोलन केवल धार्मिक भावनाओं तक सीमित नहीं रहा; इसने व्यापक सांस्कृतिक चेतना को जन्म दिया।

1. भाषा और साहित्य: हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग भक्ति काल को माना जाता है। लोकभाषाओं में कविता, पद, भजन और दोहों की समृद्ध परंपरा विकसित हुई।

2. संगीत और कला: भक्ति आंदोलन से लोकसंगीत, भजन, कीर्तन और कव्वाली का विकास हुआ। सूर और मीरा की पदावलियाँ आज भी शास्त्रीय संगीत का अंग हैं।

3. धार्मिक सहिष्णुता: संतों ने मज़हबी दीवारों को तोड़ा। गंगा-जमुनी संस्कृति का विकास हुआ।

4. मानववाद और लोकतांत्रिक चेतना: समाज में समानता, भाईचारे और प्रेम की भावना प्रबल हुई। शोषित वर्गों को आत्मसम्मान और अधिकार की अनुभूति हुई।

आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता

आज के समय में जब समाज जातिवाद, सांप्रदायिकता, हिंसा और असहिष्णुता जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, भक्ति आंदोलन की शिक्षाएँ और भी प्रासंगिक हो जाती हैं। यह हमें समता, प्रेम और भाईचारे का मार्ग दिखाता है। भक्ति

कवियों की वाणी हमें स्मरण कराती है कि संस्कृति का आधार मानवता है, न कि संकीर्णता। उनकी लोकभाषा और लोकसंगीत आज भी समाज को जोड़ने वाली कड़ी हैं।

निष्कर्ष

भक्ति आंदोलन भारतीय संस्कृति में मानवीय और लोकतांत्रिक चेतना का जनक है। इसने न केवल धार्मिक मार्ग प्रदान किया, बल्कि समाज को नई दिशा दी। संत कवियों ने भक्ति के माध्यम से प्रेम, समता, करुणा और मानवता का संदेश दिया। उन्होंने सामाजिक विभाजन को मिटाकर लोककल्याणकारी संस्कृति का निर्माण किया।

आज जब दुनिया वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद और असहिष्णुता की ओर बढ़ रही है, तब भक्ति आंदोलन की शिक्षाएँ हमें संतुलन, सह-अस्तित्व और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का मार्ग दिखाती हैं।

संदर्भ :-

1. द्विवेदी, हज़ारीप्रसाद. (2008). *कबीर*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
2. मिश्र, नामवर. (2012). *भारतीय साहित्य की भूमिका*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
3. शुक्ल, रामचंद्र. (2015). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।
4. शुक्ल, जगन्नाथ प्रसाद. (2010). *भक्ति आंदोलन और हिंदी साहित्य*. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन।
5. वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी. (2009). *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*. आगरा: साहित्य भवन।
6. पांडेय, शिवबहादुर सिंह. (2011). *भक्ति आंदोलन और संत साहित्य*. दिल्ली: नई पुस्तक प्रकाशन।
7. सिंह, धर्मवीर भारती. (2014). *साहित्य और समाज*. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
8. शर्मा, रामचंद्र. (2007). *मीरा का काव्य और व्यक्तित्व*. प्रयागराज: लोकभारती।
9. ओमप्रकाश. (2020). *सिख धर्म और गुरु नानक की शिक्षाएँ*. दिल्ली: प्रकाशन संस्थान।
10. McGregor, R. S. (1984). *Hindi Literature from its Beginnings to the Nineteenth Century*. Wiesbaden: Harrassowitz Verlag.
11. Lorenzen, D. N. (1995). *Bhakti Religion in North India: Community Identity and Political Action*. Albany: SUNY Press.
12. Sharma, A. (2008). *The Philosophy of Religion and Advaita Vedanta*. University Park, PA: Penn State Press.
13. Prasad, R. (2000). *Indian Philosophy*. Delhi: Motilal Banarsidass.
14. De, S. K. (1942). *Early History of the Vaisnava Faith and Movement in Bengal*. Calcutta: Firma K. L. Mukhopadhyay.

21 वीं सदी की हिन्दी बालकहानियों में व्यक्त सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

माधवी पडिया*

madhavi.padiya1987@gmail.com

पूर्वभूमिका

आज विश्व जिन नये सिद्धांतों और विचारो को लेकर आगे बढ़ रहा है, विश्व जिस गति से नये-नये आयाम सर कर रहा है उसे देखते हुए यह कह सकते हैं कि साहित्य भी उससे अछूता नहीं रहा। साहित्य में भी नये सिद्धांत और नये विचारों की दिशा खुल गई है। यदि साहित्य की बात करें तो उसमें बाल साहित्य भी कैसे अछूता रह सकता है। बाल साहित्य अर्थात जिसमें बच्चा केंद्रबिंदु है और ये बच्चे ही देश का और विश्व का भविष्य निर्धारित करते हैं। ऐसे में यह आवश्यक है कि आज का बच्चा क्या सोचता है, उसके विचार कैसे है, उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि किस आधार पर टिकी हुई है, उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि कैसी है। यदि समाज, परिवार और राष्ट्र के सन्दर्भ में बच्चों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि जाननी है तो साहित्य हमारी मदद कर सकता है। साहित्य समाज का दर्पण होने से बच्चों की यह दृष्टि हम बाल कहानियों, बाल उपन्यासों, बाल नाटकों, बाल कविताओं आदि से जान सकते हैं।

बाल कहानी के इतिहास पर दृष्टि की जाये तो यह पता चलता है कि यह इतिहास तकरीबन सौ सवा सौ साल पुराना ही है। पर समय के इस अन्तराल में बालकहानियों में अनेक उतार-चढाव आये, अनेक चुनौतियों का बाल साहित्य ने सामना किया। बाल कथाएँ पंचतंत्र, हितोपदेश, कथासरित्सागर से होती हुई अकबर-बीरबल के चुटकुले, तेनालीरामन की कथाएँ, अलिफ लैला, हातिमताई के किस्से, परीकथाएँ से होती हुई लोककथाओं के नये-नये रूपरंग के साथ बच्चों और बड़ों का मनोरंजन करती आई है। आज यह कहानियाँ विज्ञान, पर्यावरण, अंतरिक्ष, समंदर की सैर, अवकाशी सफर आदि विषयों को लेकर चल रही है। आधुनिक समय तक आते-आते बाल कहानियों में अनेक वैचारिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, साहसिक विषयों ने स्थान बनाया। बच्चों की मानसिकता को समझते यह आवश्यक बन गया है कि आज की बालकहानियों के विषय उसी के अनुरूप हो। इस सन्दर्भ में डॉ. हरिकृष्ण देवसरे लिखते हैं, **"बाल साहित्य की रचना के मूलाधार वे ही तथ्य मनोवैज्ञानिक नियम है, जो बच्चों को स्वस्थ मानसिक विचारधारा वाला व्यक्ति बनाने के लिए आवश्यक है।"**[1] बाल साहित्य में संस्कृति के मूल्य को समझने के लिए पहले जरूरी है कि उसकी कुछ परिभाषा को समझा जाये जो कुछ विद्वानों ने कुछ इस प्रकार दी है। इन परिभाषा के माध्यम से विद्वानों ने प्रायः यह समझाने का प्रयास किया है कि बाल साहित्य में मुख्य केंद्र बिन्दु बच्चा होता है, उसकी काल्पनिक दुनिया में कुछ भी संभव हो सकता है। मूक प्राणी बोल सकते हैं, अंतरिक्ष में जीवन और अन्य जीव भी रहते हो सकते हैं। बच्चों की दुनिया एक जादू की दुनिया होती है।

संस्कृति की परिभाषा

अंग्रेजी भाषा के शब्द 'कल्चर' का अर्थ संस्कृति से माना जाता है। संस्कृति और संस्कृत का उद्भव संस्कार शब्द से हुआ है। संस्कार यानि जहाँ समग्र मानव जीवन पनपता और आकार लेता है। वही से उसके जीवन की शुरुआत होती है। इस रूप में यह भी कह सकते हैं कि संस्कृति अर्थात् जो समग्र जीवन की सूचक हो, जिसमें मानव जीवन विभिन्न संस्कार प्राप्त कर सुसंस्कृत बनता है। संस्कृति की अनेक विद्वानों ने परिभाषाएँ दी है। जैसे की बाबू गुलाबराय ने लिखा है, **"संस्कृति शब्द का संबंध संस्कार से है, जिसका अर्थ है – संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना। संस्कृत का भी यही अर्थ है।**[2]

* **शोधार्थी, महाराजा कृष्णकुमारसिंहजी भावनगर युनिवर्सिटी, भावनगर**

जबकि डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र कुछ इस प्रकार संस्कृति की परिभाषा देते हैं – **"संस्कृति है – मानव जीवन के विचार, आचार का शुद्धिकरण अथवा परिमार्जन।"**[3] जबकि डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्ण ने संस्कृति को कुछ इन शब्दों में समझाया है – **"संस्कृति मनुष्य जीवन में विप्लव ला देती है। उसकी मनोवृति ही बदल देती है। यह संपूर्ण मन तथा शरीर में विचार व्यक्त हो जाने का नाम है।"**[4]

संस्कृति को पाश्चात्य साहित्य में भी व्याख्यायित किया गया है। वहाँ भी यह माना गया है कि प्रत्येक देश की अपनी संस्कृति होती है, अपनी पहचान होती है। यह पहचान ही हर देश को दूसरे देश से अलग करती है। यानि कि संस्कृति जाति सूचक होती है। संस्कृति आचार, विचार, भावों एवं क्रियाओं को मनुष्य में आरोपित कर उसे मनुष्य जीवन जीने योग्य बनाती है। अब बात आती है कि साहित्य में जब सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को व्यक्त किया जाता है तब वह साहित्य मनुष्य का पथप्रदर्शक बनता है। परंतु जब बाल साहित्य में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि व्यक्त हो तब वह बच्चों में संस्कार सिंचन का काम करती है।

21 सदी के बाल साहित्य में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

21 सदी के बाल साहित्य की ओर दृष्टि करें तो अब बाल साहित्य मनोरंजन और ज्ञानवर्धन के साथ उसमें सांस्कृतिक चेतना, मूल्य, परंपरा तथा आधुनिकता में संतुलन बना रहे यह आवश्यक है। बाल साहित्य में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को व्यक्त करने से बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण के साथ ही भारतीय संस्कृति से उन्हें जोड़ने तथा परिचित कराने में मदद मिलती है। बाल साहित्य की अनेक विधाएँ जैसे कि बाल कहानी, बाल उपन्यास, बाल नाटक, बाल कविता, बाल आलोचना, बाल निबंध में अक्सर संस्कृति की झलक देखने मिल ही जाती है। बाल साहित्य में व्यक्त सांस्कृतिक मूल्य या जीवन दृष्टि को थोड़े पहलुओं से जानने का प्रयास करते हैं।

21 सदी के कुछ बाल साहित्यकारों ने उन विषयों को साहित्य में स्थान दिया है। जिनके प्रभाव तले हर बच्चा आधुनिकता, टेक्नोलॉजी से जुड़ रहा है। समय के इस परिवर्तन के साथ समाज बदला और समाज बदला इसलिए उसका प्रभाव साहित्य पर पड़ा। जबकि बच्चा भी उसी समाज का हिस्सा है, इसलिए स्वाभाविक है कि बाल साहित्य के विषय भी बदलेंगे। प्रायः इन बाल साहित्यकारों के विषय विज्ञान, तकनीक, पर्यावरण, सामाजिक सरोकार, साहस, जिज्ञासा जैसे विषयों में बाल साहित्य रचा जाने लगा। कुछ प्रमुख बाल साहित्यकारों में डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, डॉ. मधुरेश गुप्त, डॉ. शिवकुमार मिश्र, डॉ. मिथिलेश मिश्र, डॉ, माणिक वर्मा, डॉ. उर्मिला शिरीष, डॉ. सुधा ओम ढींगरा डॉ. सुरेश चन्द्र शर्मा, डॉ. राजेन्द्र वर्मा, डॉ. कैलाश चौधरी आदि ने बाल साहित्य में नये विषय के साथ प्रवेश किया। इन साहित्यकारों की रचनाएँ क्रमशः खेल-खेल में, उड़ता घर, कंप्यूटर की बातें, परियों की सपने, हँसते-खेलते गीत, पेड़-पौधों की बातें, सपनों का गाँव, कछुआ और खरगोश की नई कहानी, बड़ो से छोटे सीखे, नन्हे हीरो की कहानियाँ आदि ने बाल साहित्य को समृद्ध किया है।

सांस्कृतिक विभिन्नता का परिचय

यदि बाल साहित्य में संस्कृति को व्यक्त किया जाता है तो विभिन्न प्रदेशों के आचार, विचार, संस्कार, दृष्टि से बच्चे परिचित होते हैं। इन बाल कहानियों में अक्सर लोककथाएँ, लोक परंपरा, लोगो के रीति-रिवाज आदि किसी न किसी रूप में छलकते हैं। जिससे बच्चे अपने बड़ों से उनका ज्ञान प्राप्त करते हैं। जैसे कि यदि बाल कहानी में कोई मुहावरे का प्रयोग किया गया है, **'जिसकी लाठी उसकी भैंस'** इस सन्दर्भ में कोई कहानी लिखी जाती है तब बच्चे आसानी से अपनी संस्कृति, अनुभव और परंपरा से परिचित हो जाते हैं। इसी प्रकार हर संस्कृति में अनुभवों का खजाना छिपा हुआ है। अब तो यह खजाना आज के डिजिटल युग में देश-विदेश में फ़ैल रहा है। आज भी पंचतंत्र और जातक कथाओं का आधुनिकीकरण करके बच्चों को पढ़ाया जा रहा है, जिससे भारतीय बाल साहित्य में सांस्कृतिक मूल्य अपनी प्रतिभा बनाये हुए है।

नैतिकता और सांस्कृतिक मूल्य की झलक

बच्चों को नीति, रीति और धर्म की शिक्षा देना पहले भी जरूरी था और आज भी उतना ही जरूरी है। पर आवश्यक यह है कि यह बातें उपदेश प्रधान न होकर उसे रोचकता, सरलता और मनोरंजन के साथ व्यक्त किया जाये। हिन्दी में यदि बात करें तो अनेक बड़े साहित्यकारों ने बाल मनोविज्ञान के अनुरूप कहानियाँ दी है। जिसमें उनकी भावनाओं, विचारो और भावों को स्थान मिला है। प्रेमचंद अपनी कहानियों में जैसे कि **'ईदगाह', 'बड़े भाईसाहब'** जैसी कहानियाँ बाल सहज भावों को निर्मम भाव से व्यक्त करते हैं। आज टीवी, मोबाइल में भी **रामायण, महाभारत, वीर हनुमान** आदि के चरित्र को लेकर कार्टून दिखाए जा रहे हैं। उसमें प्रमुख उद्देश्य यही रहा है कि आज के बच्चे अपनी संस्कृति और नैतिकता को भूल न जाये। कॉमिक्स की दुनिया में भी लोक जीवन और सामान्य जन की भाषा, रहन-सहन देखने मिलता है साथ ही हास्य के साथ उपदेश भी मिल जाता है।

आधुनिकता और परंपरा का समावेश

आज का बच्चा एक ऐसे युग में जी रहा है जहाँ आधुनिकता और परंपरा का साथ चलना बहुत आवश्यक है। क्योंकि परंपरा का मूल्य बच्चों को समझाना जरूरी है साथ ही आधुनिकता से जुड़े रहना भी जरूरी है। बाल कहानी में इन दोनों का समन्वय बच्चे का सांस्कृतिक धरातल पर विकास करने में सहायक है। आज जहाँ आधुनिक समय में विज्ञान परक कहानियाँ बच्चों को शोध के क्षेत्र में आगे बढ़ा रही है वही उसमें संस्कृति की हलकी सी झलक उन्हें अपने मूल अस्तित्व से भी जोड़े रखती है। जैसे कि **डॉ. हरिकृष्ण देवसरेजी ने 'शनिलोक की सैर'** कहानी में शनिलोक में विद्यमान एक संस्कृति की कल्पना कर बच्चों की वैज्ञानिक दृष्टि को विकसित कर यह सोचने पर मजबूर करते हैं कि पृथ्वी के बहार भी एक दुनिया हो सकती है। इसके अलावा आज छोटे बच्चों के साहस की कथाएँ, बहादुरी की कथाएँ, जासूसी की कथाएँ भी आधुनिकता और परंपरा को बच्चों के सामने रखती है। आधुनिक दृष्टिबिंदु और परंपरा बच्चों के जीवन के ऐसे आधार है जो उनमें संस्कार सिंचन का काम करते हैं। भारतीय परंपरा को जीवित बनाये रखने के लिए बाल कहानियाँ अधिक प्रभावशील साबित होती है।

जनजीवन की प्रस्तुति

सामान्य जन की दिनचर्या, उनके आचार, विचार, भावनाएँ आदि का चित्रण बच्चों को अपना सा लगता है। जिससे कि मानो ऐसा लगता है कि बच्चे की संवेदना और प्रेमभावना सहज ही उभरकर सामने आ जाती है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी रचनाओं में जैसे कि **'बालक' और 'डाकघर'** में जिस संवेदना और करुणा को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है वह अद्भुत कही जा सकती है। वह सहज और वास्तविक लगता है। बाल कहानी में आते गाँव के दृश्य, शहर के दृश्य, वहाँ का जनजीवन, मुश्केलियाँ, उलझने आदि का चित्रण बच्चों को जनजीवन से परिचित कराता है। वही अन्य लेखकों में देवेन्द्र सत्यार्थी और हरिशंकर परसाई ने भी मानवीय मूल्यों और जनजीवन को लेकर कहानियाँ लिखी है।

वैश्विक संस्कृति की भावना

जिस समग्र विश्व की कल्पना करना भी पहले असंभव था, वही आज के समय में एक संस्कृति का दूसरे देश-प्रदेश में जाना सरल हो गया है। क्योंकि अब एक प्रदेश की संस्कृति दूसरे प्रदेश तक जाने की सफर ही लोगों को एक दूसरे को जानने पहचानने की भावना ने विश्व को नजदीक ला दिया है। आज विदेश का बाल साहित्य और वहाँ की लोककथाएँ भी दूसरे देशों तक पहुँच रही है। जैसे कि **सुपरमेन की कल्पना, हैरी पॉटर की कथा, आर्यनमेन की बातें, एलियन की कल्पना** आदि किसी एक देश तक सीमित न होकर समग्र विश्व में उनकी कथा और चर्चा हो रही है।

डिजिटल युग और बाल कहानियाँ

आजकल इंटरनेट, सोशियल मीडिया, ई-बुक्स और ऑडियो-वीडियो के माध्यम से प्रस्तुत होने वाली कहानियाँ बच्चों को एक नये ही लोक में प्रवेश करा देती है। इन सुविधाओं के कारण आज बाल साहित्य अधिक रूप-रंग के द्वारा प्रस्तुत हो रहा है। एवं इन सभी का माध्यम आधुनिक होने से बच्चे तुरंत उन कथाओं, घटनाओं और पात्रों को याद रख लेते हैं। इन माध्यमों ने प्रस्तुत होने वाली कहानियों को देखने से मानो ऐसा लगता है कि कोई पौराणिक घटना, इतिहास की कोई घटना, कोई महान व्यक्ति का चरित्र जीवंत हो जाता है। हिन्दी बाल कहानियों में अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक और वास्तविक घटनाएँ बच्चों में सहज ही वीरता, आचार, विचार, नैतिकता, धर्मपरायणता जैसे गुणों का विकास करते हैं। डिजिटल युग में प्रस्तुत होने वाली कहानियाँ सांस्कृतिक बदलाव को भी असर कारक रूप से व्यक्त करती है। आजकल ऑनलाइन पत्र पत्रिकाओं में भी अनेक रंगबिरंगी चित्रों से भरी कहानियाँ प्रकाशित हो रही है जो बच्चों को सरलता से अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। **श्रीकृष्ण की बाल लीलाएँ, वीर हनुमान के पराक्रम की कहानी, छोटे भीम की वीरता, चाणक्य की नीति की कहानियाँ, तेनालीरामा की हास्यसभर बातें, अकबर-बीरबल के चुटकुले** आदि में मनोरंजन के साथ हलकी-सी सीख भी मिल जाती है। जिससे बच्चे कहानियों का आनंद भी बड़े मजे से ले सकते हैं। यहाँ एक बात स्पष्ट है कि बच्चे वे पुस्तकें ही पढ़ने को आतुर होते हैं जिससे उन्हें सहज भाव से सुख-दुःख, न्याय-अन्याय में भेद करने का ज्ञान देती हो। इस सन्दर्भ में डॉ. हरिकृष्ण देवसरेजी कुछ इस प्रकार लिखते हैं – **"ऐसी पुस्तकें बच्चों की जिज्ञासा शांत करने के साथ उनकी कल्पनाशक्ति को उर्वरा बनाकर नई जिज्ञासा को जन्म देंगी और इस तरह बच्चे अन्य पुस्तकें पढ़ने की ओर प्रेरित होंगे।"**[5] पुस्तकें बच्चों को ज्ञान के उस महासागर में ले जाती है जहाँ वे डुबकियाँ लगाने का आनंद अविरत रूप से ले सकते हैं।

उपसंहार

समग्र रूप से देखे तो आज 21 सदी का बाल साहित्य अपने में भारतीय सांस्कृतिक मूल्य, लोककथाओं, लोक परंपराओं, विश्वासों को समेटे हुए वैश्विक धरातल पर छाया हुआ है। जिसमें पंचतंत्र से लेकर मध्य-युग की कथाएँ, स्वतंत्रता की कथाएँ, वीरों की गाथाएँ, मंदिरों की कहानियाँ, ऐतिहासिक घटनाएँ, महान व्यक्तियों के चरित्रों कथाएँ और आज के आधुनिक विषय में विज्ञान कथाएँ, साहस कथाएँ, अंतरिक्ष कथाएँ, समुद्र की कथाएँ, पर्यावरणीय कथाएँ, टेक्नोलॉजी की कहानियाँ, विभिन्न शोधो की दास्तान आदि से बच्चे परिचित हो रहे हैं। जिससे वैश्विक संस्कृति एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचती है। अतः आज की हिन्दी बाल कहानी सांस्कृतिक दृष्टि समृद्ध है एवं बहु आयामी बनकर नये-नये शिखर सर कर रही है।

संदर्भ :-

1. देवसरे, हरिकृष्ण. (2002). *बाल साहित्य: मेरा चिंतन* (द्वितीय संस्करण). नई दिल्ली: मेधा बुक्स. पृ. 20.
2. गुलाबराय, बाबू. *भारतीय संस्कृति की रूपरेखा*. पृ. 1.
3. मिश्र, बलदेव प्रसाद. *भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास की देन*. पृ. 9.
4. राधाकृष्णन, सर्वोपल्ली. *स्वतंत्रता और संस्कृति*. पृ. 32.
5. देवसरे, हरिकृष्ण. (2002). *बाल साहित्य: मेरा चिंतन* (द्वितीय संस्करण). नई दिल्ली: मेधा बुक्स. पृ. 36.

સાહિત્ય અને સંસ્કૃતિ વચ્ચેનો સંબંધ

ડૉ.પ્રા. ઊર્મિલા એન.પટેલ*
urmila.patel40@gmail.com

પ્રસ્તાવના :

સાહિત્ય અને સંસ્કૃતિ એ એકબીજા સાથે ગાઢ રીતે જોડાયેલા છે. તેઓ એકબીજાના અરીસા સમાન છે. સાહિત્ય એ સંસ્કૃતિને પ્રતિબિંબિત કરે છે. અને સંસ્કૃતિને આકાર આપવામાં પણ મદદ કરે છે. સાહિત્ય એ માનવીય અનુભવો, વિચારો, ભાવનાઓ અને કલ્પનાની અભિવ્યક્તિ છે. સંસ્કૃતિ એ વ્યક્તિગત અને સામૂહિક જીવનશૈલી છે. જેમાં માનવ સમુદાય પોતાનું જીવન જીવે છે. તેમાં ભાષા, રીત-રિવાજો, માન્યતાઓ, પર્વો અને કલાઓનો સમાવેશ થાય છે.

સંસ્કૃતિ સમાજ સાપેક્ષ છે.

'સંસ્કૃતિ' નો સમાજ વ્યાપી અર્થ ઘટાવતાં સાહિત્ય સંસ્કૃતિનો ભાગ બની રહી છે. કોઈપણ સમાજની પ્રવૃત્તિઓ, વિચારવાની વિવિધતાઓ, વ્યાવહારિક અભિગમો, સાધનો, સબંધો અને પરંપરાઓનો સરવાળો એટલે સંસ્કૃતિ. સંસ્કૃતિ સમાજ સાપેક્ષ છે. વ્યક્તિગત સંસ્કૃતિ જેવો શબ્દપ્રયોગ કરી તો શકાય પણ ત્યાં સંસ્કૃતિનો સંસ્કાર એવો મર્યાદિત અર્થ સ્વીકારાયેલો હોય છે. અહીં સંસ્કૃતિનો સમાજ સાપેક્ષ વ્યાપક અર્થ જ ઉદ્દષ્ટિ છે. પ્રસિધ્ધ નૃવંશશાસ્ત્રી મેલિનો-વસ્કીના મત પ્રમાણે સંસ્કૃતિએ સાધનો અને વિચારો ની ટકરામણની પરિણિત છે. સાધન વિચાર પ્રેરે છે, અને વિચાર સાધનને વિકસાવે છે, જે ફરી પાછું વિચાર કરવા પ્રેરે છે. આમ, જીવનની હરેક પ્રવૃત્તિમાં બનતું રહે છે. આ ચક્ર ચાલતું રહે છે. એટલે સંસ્કૃતિ જે પ્રવૃત્તિઓ, સાધનો અને મૂલ્યોનો સરવાળો છે તે પણ વિકસતી રહે છે. સંસ્કૃતિના વિવિધ સ્તરે સમાજ વ્યવહાર તો હોય છે.

સાહિત્ય એ ભાષાની કલા છે :

સમાજ સાથે પ્રસંગ પાડતાં-પાડતાં, સાધનો પ્રયોજતાં, વિચારો, બહેલાવતાં ભાષા નામનું સાધન મળ્યા પછી માણસે પોતાની દરેક પ્રવૃત્તિ સાથે ભાષાને સાંકળી લીધી છે. પોતાની લાગણીઓ અને વિચારોને મૂર્ત કરવાને માટે પણ એણે ભાષાનો ઉપયોગ કર્યો છે. એણે ભાષાને એટલે કે અર્થ સૂચવતા અવાજને વિવિધ રીતે ઉપયોગમાં લીધો છે. એટલે ભાષા નામનું સાધન વિવિધ પ્રકારે વિકસ્યું છે. ભાષા ન હોતી ત્યારે પણ સંસ્કૃતિની કોઈને કોઈ અવસ્થા તો મોજૂદ હતી. મનુષ્યનો મનુષ્ય સાથેનો સંબંધ સમાજની રચના કરે છે. અને સમાજની જે-તે સમયની સંસ્કૃતિ છે. ભાષા નામનું સાધન પ્રાપ્ત થયા પછી પોતાની લાગણીઓ, વિચારો અને અનુભવોને સંધરવાનું અનુપમ સાધન મનુષ્યને પ્રાપ્ત થયું. જેણે તેનામાં અધિક સભાનતા અવતારી મનુષ્યની વિચાર શક્તિને પણ વિકસાવી અવાજ અને તેમાં અનુસ્યૂત અર્થ મનુષ્યે વિકસાવી. એને કાળે કરીને નામ અપાયું કાવ્ય અથવા સાહિત્ય. સાહિત્ય એ ભાષાની કલા છે. અર્થપૂર્ણ અવાજની કલા છે. કલા નિરપેક્ષ ભાષા વ્યવહાર જીવનમાં ચાલતો હોય છે. સાહિત્યનું અવતરણ આખા ભાષા સમાજને અનુલક્ષે છે. અને ભાષાસમાજના પ્રતિભાવો સાહિત્યને પણ વિકસાવે છે. આ પ્રક્રિયા સાહિત્ય અને સંસ્કૃતિના સંબંધને નિરમે છે. સંસ્કૃતિ સમાજગત સમગ્રતા છે. અને ભાષા સમાજવ્યાપી સાધન છે. એ સાધનનું આનંદલક્ષી પ્રવર્તન પણ સંસ્કૃતિનો ભાગ બની રહે છે.

* શ્રી.એચ.એન.દોશી આર્ટ્સ, એન્ડ કોમર્સ કોલેજ, વાંકાનેર. તા. વાંકાનેર, જિ.મોરબી.

સાહિત્યનો આલેખ્ય વિષય માનવજીવન :

સાહિત્યનો આલેખ્ય વિષય માનવજીવન છે. માનવ સંસ્કૃતિની વિકાસયાત્રાનું સર્વોતમ શિખર છે. ત્યારે સ્વાભાવિક જ સંસ્કૃતિ સાહિત્યનો આલેખ્ય વિષય પણ બને છે. માનવીના સંસ્કાર વારસાની કથા સંસ્કૃતિ દ્વારા જીવતી પડી છે. તો સાહિત્ય એ સંસ્કારવારસાની કથા છે. શરીર પરની ચામડીને પણ ઉતરડી નાંખતા જે બચે તે સંસ્કૃતિ છે. सम्+कृ – સારી રીતે કરવું – વિકાસ સાધના તે સંસ્કૃતિ છે. પ્રકૃતિસદત્ત માનવ લાગણીઓથી સંસ્કૃતિ કંઈક વિશિષ્ટ છે. શિલ્પ-સ્થાપત્યના પથ્થરોમાં કોતરાયેલાં કાવ્યો, એટલી મર્યાદિત જ સંસ્કૃતિની વાત રહેલી નથી. માનવીના ઉત્તમ સંસ્કારો એ પણ સંસ્કૃતિ છે. સાહિત્ય આ માનવીય સંસ્કારોને આલેખે છે. ત્યારે એ માનવીય સંસ્કૃતિની જ પ્રતિષ્ઠા કરે છે.

સાહિત્યએ સંસ્કૃતિનું પ્રતિબિંબ છે.

સાહિત્ય સમાજની માન્યતાઓ, મૂલ્યો, પરંપરાઓ અને જીવનશૈલીને દર્શાવે છે. તે સમાજના રીત-રિવાજો, તહેવારો, સામાજિક સંબંધો અને ઐતિહાસિક ઘટનાઓનું વર્ણન કરે છે. ઉદા. તરીકે જો આપણે ગુજરાતી સાહિત્યની વાત કરીએ તો ઝવેરચંદ મેઘાણીની રચનાઓમાં સૌરાષ્ટ્રની લોકસંસ્કૃતિ, વીરતા અને જીવનની ઝલક જોવા મળે છે. તેવીજ રીતે નર્મદ અને ગોવર્ધનરામ ત્રિપાઠીના સાહિત્યમાં તે સમયનાં સમાજ સુધારા અને આધુનિક વિચારોનું પ્રતિબિંબ પડેલું જોવા મળે છે.

સંસ્કૃતિ સાહિત્યને આકાર આપે છે.

સંસ્કૃતિ લેખકોને પ્રેરણા આપે છે. લેખકો તેમની આસપાસના વાર્તાવરણ, લોકો અને ઘટનાઓથી પ્રભાવિત થઈને સાહિત્યનું સર્જન કરે છે. ભાષા, લોકકથા, પૌરાણિક કથાઓ અને ધાર્મિકગ્રંથો એ સંસ્કૃતિનો અભિન્ન ભાગ છે. જે સાહિત્યને સમૃધ્ધ બનાવે છે. રામાયણ અને મહાભારત જેવા મહાકાવ્યો ભારતીય સંસ્કૃતિના જ્ઞાનકોશ છે. જેમાંથી અનેક સાહિત્યિક કૃતિઓનું સર્જન થયું છે.

મહાભારતના ભીષ્મનો મનોસંઘર્ષ, યુધિષ્ઠિરની વેદના, ધર્મનો જય, અધર્મનો પરાજય, રામની સંસ્કારિતા, ગીતાના કૃષ્ણનું ધર્મયુધ્ધ, પ્લેટો-એરિસ્ટોટલની વિભાવનામાં કાવ્યદર્શનની વાત, ગાંધીયુગના સાહિત્યમાં માનવીય ફરજો, આદર્શો અને સ્વાતંત્ર્યો ઉત્થાન માટે મથતી પ્રજાના આલેખનો, ગોવર્ધનરામનો સંસ્કૃતિ આલેખ, આ બધાંને તપાસતાં એ વાત સહજ રીતે સ્પષ્ટ થઈ જશે કે સાહિત્યકાર માનવ સંસ્કૃતિની વિકાસયાત્રાને આગળ ધપાવવામાં અસરકારક યોગદાન કરતો રહ્યો છે.

સાહિત્ય અને સંસ્કૃતિનું પરસ્પર જોડાણ :

સાહિત્ય ઈતિહાસને જીવંત રાખે છે, જૂના કાવ્યો, વાર્તાઓ અને લોકગીતો દ્વારા આપણે ભૂતકાળની સંસ્કૃતિ અને જીવનશૈલીને સમજી શકીએ છીએ. સાહિત્ય એક પેઢીમાંથી બીજી પેઢીમાં સાંસ્કૃતિક મૂલ્યો અને નૈતિકતાનું સંક્રમણ કરે છે. તે સાચા-ખોટાનો ભેદ સમજાવે છે. અને સમાજને એક દિશા આપે છે. મુનશી પ્રેમચંદની વાર્તાઓ સમાજની વાસ્તવિકતા દર્શાવીને સામાજિક સુધારણા માટે પ્રેરણાપૂરી પાડે છે.

સાહિત્ય સંસ્કૃતિને કેવી રીતે પ્રતિબિંબિત કરે છે :

સાહિત્યની કૃતિઓ જેવી કે, નવલકથાઓ, વાર્તાઓ, કવિતાઓ અને નાટકો સમાજની જીવનશૈલી, તેમના પહેરવેશ, ખાન-પાન, ઉત્સવો અને રીત-રિવાજોનું વર્ણન કરે છે. ઉદા. કોઈ લોકગીતમાં લગ્ન વિધિ કે તહેવારનું સુંદર ચિત્રણ જોવા મળે છે. તેમજ સાહિત્ય સમાજનાં નૈતિક મૂલ્યો, ધાર્મિક માન્યતાઓ અને સામાજિક ધોરણોને ઉજાગર કરે છે.

રામાયણ અને મહાભારત જેવા મહાકાવ્યો, ધર્મ, નીતિ અને કર્તવ્ય જેવા મૂલ્યો પર ભાર મૂકે છે. સાહિત્ય કૃતિઓ ઘણીવાર ઐતિહાસિક ઘટનાઓ અને તે સમયના સમાજની પરિસ્થિતિનું વર્ણન કરે છે. સંસ્કૃતિ સાહિત્યકારો માટે પ્રેરણાનો સ્ત્રોત બની રહે છે.

સર્જક સંસ્કૃતિનો સાચો ઉપાસક છે :

ન્હાનાલાલે 'શતદલ પદ્મમાં પોઢેલો પરિમલ' એમ કહ્યું છે ત્યાં પણ તેમણે માનવપુષ્પની સંસ્કૃતિ પાંખડીઓનો અણસારો આપ્યો છે. સંસ્કૃતિની વાડના આધારે સાહિત્યના વેલાને પાંગરવા આધાર મળે છે. સાહિત્યકારો સંસ્કાર સ્વામીઓ કહેવાયા છે તે આ સંદર્ભમાં સાચું છે. પ્રજાજીવનની લાગણીઓ, ભાવનાઓ, મૂલ્યો, આદર્શો, મથામણો અને સિધ્ધિઓ એ બધાંનું પ્રત્યક્ષ કે પ્રરોક્ષ રીતે આલેખન કરતો સર્જક સંસ્કૃતિનો ઉપાસક રહ્યો છે. ભાષાના માધ્યમ દ્વારા માનવીએ પોતાની વાત એકબીજાને પહોંચાડી, એ જ ભાષાના માધ્યમ દ્વારા સર્જકે સંસ્કૃતિની ગાથા માનવસમાજ ને કહી. ભાષા એ રીતે સંસ્કૃતિના વહન માટેનું મોટું બળ બની રહી.

ઉપસંહાર :

આમ, સાહિત્ય અને સંસ્કૃતિ એકબીજા સાથે જોડાયેલા છે. સાહિત્ય એ સંસ્કૃતિનું જીવંત સ્વરૂપ છે, જે તેને સાચવે છે, વિકસાવે છે. અને ભાવિ પેઢીઓ સુધી પહોંચાડે છે. સંસ્કૃતિ એ પ્રજાના મહાન પુરૂષોમાંથી પ્રગટેલું આગવું પોત છે. એ સાહિત્યકારના હાથે નિર્માણ પામે છે. ત્યારે મહાપુરૂષાર્થોનું એ આલેખન મહાન પ્રજાની વિકાસગાથા બની જાય છે. સાહિત્ય અને સંસ્કૃતિ બંને મળીને સમાજના ઐતિહાસિક અને સાંસ્કૃતિક વારસાને આગળ વધારવાનું કામ કરે છે.

સંદર્ભ સૂચિ

૧. પારેખ, નગીનદાસ. (અનુ.). *સાહિત્ય વિવેચનના સિદ્ધાંતો*. અમદાવાદ: પ્રકાશક અસ્પષ્ટ।
૨. *સાહિત્યની અવધારણા*. અમદાવાદ: આદર્શ પ્રકાશન।
૩. *ગુજરાતી સાહિત્યકોશ*. અમદાવાદ: ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ।

हिंदी उपन्यास और सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ

शियाल जयदीपकुमार धीरुभाई*

jdshiyal817@gmail.com

प्रस्तावना:

हिंदी साहित्य के विकास में उपन्यास विधा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसने भारतीय समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ को गहराई और व्यापकता के साथ चित्रित किया है। यथार्थवाद, जैसा कि साहित्य में परिभाषित किया गया है, भौतिकवादी और वैज्ञानिक चिंतन के आधार पर सामाजिक जीवन के वास्तविक स्वरूप का सच्चा और निष्पक्ष चित्रण है। यह प्रवृत्ति हिंदी उपन्यास साहित्य पर यूरोपीय साहित्य के सीधे प्रभाव के परिणामस्वरूप विकसित हुई, जिसका आरंभ सबसे पहले बांग्ला भाषा में हुआ था।

प्रेमचंद के आगमन से पूर्व, हिंदी कहानी और उपन्यास का क्षेत्र कल्पना और आदर्शवाद से भरा था। इस काल की रचनाओं में समाज से अधिक उच्च नैतिक आदर्शों की स्थापना पर जोर दिया जाता था, जिससे साहित्य मानव जीवन के निकट नहीं आ पाता था। प्रेमचंद ने इस परिपाटी को बदला और हिंदी साहित्य को पहली बार मानव जीवन के निकट लाकर उसे यथार्थ की भूमि पर स्थापित किया। उन्होंने साहित्य को समाज के साथ जोड़ने का कार्य किया, जो उनके लेखन की एक मौलिक विशेषता है।

प्रेमचंद ने यथार्थवाद को एक अनूठी शैली दी, जिसे 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कहा जाता है। इस शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि प्रेमचंद अपने पात्रों का यथार्थवादी चित्रण करने के बावजूद उन्हें आदर्श के मार्ग पर अग्रसर करते थे। यह केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं थी, बल्कि तत्कालीन भारतीय समाज की एक गहरी सामाजिक और ऐतिहासिक आवश्यकता का परिणाम था। उस समय का समाज, जो अपनी परंपराओं, नैतिक मूल्यों और धार्मिक आस्थाओं से गहराई से जुड़ा था, कठोर और निराशावादी यथार्थवाद को स्वीकार करने के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं था। प्रेमचंद ने यथार्थ की कटु सच्चाइयों—जैसे गरीबी, शोषण, और जातिवाद—को बिना किसी लाग-लपेट के प्रस्तुत किया, लेकिन साथ ही एक आदर्शवादी अंत या समाधान प्रस्तुत करके पाठकों को निराशा के भंवर में डूबने से बचाया। उनका यह दृष्टिकोण पूर्ववर्ती कल्पना-प्रधान साहित्य और बाद के शुद्ध आलोचनात्मक यथार्थवाद के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करता है, जिसने साहित्य को समाज सुधार का एक प्रभावी माध्यम बना दिया।

इसके अतिरिक्त, हिंदी उपन्यास में यथार्थवाद का विकास केवल साहित्यिक चेतना का परिणाम नहीं था, बल्कि यह नवविकसित पूँजीवादी व्यवस्था के उदय से भी गहरा संबंध रखता है। उपन्यास विधा का उदय ही महाकाव्यों की सामुदायिक चेतना के विपरीत, व्यक्ति और समाज के बीच के संघर्ष को चित्रित करने के लिए हुआ था। पूँजीवाद ने पारंपरिक सामंती व्यवस्था को चुनौती दी, जिससे सामाजिक संबंधों में जटिलताएँ आईं और व्यक्तिवादी चेतना मुखर हुई। प्रेमचंद के उपन्यासों में भी इस संक्रमण के संकेत मिलते हैं, जहाँ वे जमींदारी प्रथा की आलोचना के साथ-साथ पूँजीवाद के दोषों को भी उजागर करते हैं। इस प्रकार, हिंदी उपन्यास में यथार्थवाद का विकास एक व्यापक सामाजिक-आर्थिक संक्रमण का प्रतिबिंब है।

* **शोधार्थी, महाराजा कृष्णकुमारसिंहजी भावनगर विश्वविद्यालय, भावनगर**

प्रेमचंद: सामाजिक यथार्थ के अग्रणी चित्रकार

मुंशी प्रेमचंद को हिंदी साहित्य में यथार्थवाद का जनक माना जाता है। उनके उपन्यासों ने भारतीय जीवन के विभिन्न पहलुओं को जिस गहराई से छुआ है, वह अभूतपूर्व है।

कृषक जीवन का महाकाव्य: 'गोदान'

प्रेमचंद का 'गोदान' भारतीय कृषक जीवन का एक महाकाव्यात्मक और मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास का नायक होरी केवल एक व्यक्ति नहीं है, बल्कि वह पूरे भारतीय किसान वर्ग का एक सामूहिक प्रतिनिधि बन जाता है। उपन्यास में किसानों की दयनीय दशा, जमींदारों और साहूकारों द्वारा उनका शोषण, ऋण की अंतहीन समस्या और गरीबी का सजीव चित्रण किया गया है। प्रेमचंद ने इसमें जमींदारी प्रथा, छुआछूत, सामाजिक असमानता, और दहेज प्रथा जैसी समस्याओं को भी प्रमुखता से उजागर किया है।

'गोदान' में सांस्कृतिक जीवन का चित्रण एक आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य से भी किया गया है। एक ओर, यह उपन्यास भारतीय किसान जीवन के समस्त संस्कारों और मूल्यों को दर्शाता है , लेकिन एक विश्लेषण यह भी प्रस्तुत करता है कि प्रेमचंद ने इसमें सांस्कृतिक विशेषताओं को उतना महत्व नहीं दिया, जितनी एक श्रेष्ठ उपन्यासकार से अपेक्षा की जा सकती थी। यह विरोधाभास इस तथ्य को उजागर करता है कि प्रेमचंद ने संस्कृति को केवल उत्सव के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण के एक उपकरण के रूप में प्रयोग किया। उदाहरण के लिए, होली जैसे त्योहार का चित्रण भी वर्ग-संबंधों और सामाजिक असमानता को उजागर करने के लिए किया गया है, जहाँ धनी किसानों के यहाँ ही उत्सव का बड़ा आयोजन होता था। यह दृष्टिकोण दर्शाता है कि प्रेमचंद का यथार्थवाद सतही विवरण से परे एक गहन सामाजिक-आर्थिक चेतना का परिणाम था।

शहरी मध्यवर्ग और सामाजिक कुरीतियाँ: 'गबन' और 'निर्मला'

प्रेमचंद ने अपने लेखन को केवल ग्रामीण यथार्थ तक सीमित नहीं रखा। उनके उपन्यास 'गबन' में शहरी मध्यवर्ग की मानसिकता का अत्यंत सूक्ष्म और यथार्थवादी चित्रण मिलता है। इस उपन्यास में दिखावा, प्रदर्शनप्रियता, कर्ज की प्रवृत्ति और पुलिस की दमनकारी नीति जैसी समस्याओं को केंद्र में रखा गया है। इसी तरह, 'निर्मला' उपन्यास वृद्ध विवाह और दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों पर एक कटु प्रहार है, जिसमें इन समस्याओं से उत्पन्न मानवीय त्रासदी को गहराई से दर्शाया गया है।

गांधीवाद, औद्योगीकरण और जन-संघर्ष: 'रंगभूमि'

'रंगभूमि' प्रेमचंद का एक और महत्वपूर्ण उपन्यास है, जो पूंजीवादी व्यवस्था के दोषों को उजागर करता है, जिसे वे जमींदारी प्रथा से भी अधिक खतरनाक मानते थे। इस उपन्यास में एक सिगरेट कारखाना लगाने के विरोध में एक अंधे भिखारी सूरदास का संघर्ष दिखाया गया है। सूरदास का चरित्र गांधीवादी मूल्यों और जन-संघर्ष का प्रतीक बन जाता है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास के माध्यम से यह संकेत दे दिया था कि भविष्य उद्योगों का है और औद्योगिक सभ्यता गाँवों के सरल और नैतिक जीवन को नष्ट कर देगी। इस प्रकार, प्रेमचंद का साहित्य एक तरफ ग्रामीण भारत की आत्मा को प्रस्तुत करता है, वहीं दूसरी तरफ शहरी जीवन की जटिलताओं और पूंजीवाद के बढ़ते प्रभाव को भी दर्शाता है। उनके उपन्यास भारत के एक कृषि-प्रधान समाज से एक औद्योगिक-शहरी समाज में बदलते हुए संक्रमण का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज हैं।

प्रेमचंद के प्रमुख उपन्यास: सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ के आयाम

उपन्यास का नाम	लेखक	कालखंड	यथार्थ का प्रकार	प्रमुख चित्रित यथार्थ
गोदान	मुंशी प्रेमचंद	पूर्व-स्वतंत्रता	आदर्शोन्मुख यथार्थवाद	कृषक शोषण, जमींदारी प्रथा, गरीबी, ग्रामीण जीवन की दयनीयता
गबन	मुंशी प्रेमचंद	पूर्व-स्वतंत्रता	आदर्शोन्मुख यथार्थवाद	मध्यवर्गीय दिखावा, कर्ज की प्रवृत्ति, प्रदर्शनप्रियता
निर्मला	मुंशी प्रेमचंद	पूर्व-स्वतंत्रता	आदर्शोन्मुख यथार्थवाद	दहेज प्रथा, वृद्ध विवाह, सामाजिक कुरीतियों की आलोचना
रंगभूमि	मुंशी प्रेमचंद	पूर्व-स्वतंत्रता	आदर्शोन्मुख यथार्थवाद	पूंजीवाद का विरोध, औद्योगीकरण, जन-संघर्ष, गांधीवादी विचार

भारतीय ग्रामीण परिवेश का महाकाव्य: आंचलिक यथार्थवाद

प्रेमचंद के बाद, हिंदी उपन्यास ने यथार्थवाद के एक नए आयाम—'आंचलिकता'—को विकसित किया। आंचलिक उपन्यास किसी विशेष क्षेत्र (अंचल) के जीवन, रहन-सहन, भाषा, वेशभूषा, खान-पान और परंपराओं का सच्चा और विस्तृत चित्रण प्रस्तुत करते हैं। ये रचनाएँ प्रकृतिवादी जीवनदर्शन पर आधारित होती हैं और एक पूरे अंचल को ही नायक के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' का 'मैला आँचल' आंचलिकता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसे हिंदी साहित्य में 'गोदान' के बाद दूसरा महाकाव्यात्मक उपन्यास माना जाता है। यह मेरीगंज जैसे पिछड़े ग्रामीण क्षेत्र की एक बहुआयामी तस्वीर प्रस्तुत करता है। उपन्यास में गरीबी, रोग, भुखमरी, अज्ञानता और जमींदारों द्वारा किए गए शोषण का मार्मिक चित्रण है। रेणु ने स्पष्ट किया कि उनके उपन्यास में "फूल भी है, शूल भी है, धूल भी है, गुलाब भी है और कीचड़ भी है"। यह कथन इस बात को पुष्ट करता है कि आंचलिक यथार्थवाद केवल लोक-संस्कृति का एक रोमांटिक उत्सव नहीं है, बल्कि उसकी जड़ों में व्याप्त समस्याओं और विसंगतियों का एक आलोचनात्मक चित्रण भी है। 'मैला आँचल' में जातिगत संघर्ष (कायस्थ, राजपूत, यादव) और सांप्रदायिक तनाव को दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त, यह ग्रामीण जीवन में व्याप्त अनैतिकता, अंधविश्वास और मठों तथा धार्मिक स्थलों के पाखंड को भी उजागर करता है। इस प्रकार, आंचलिक उपन्यास ग्रामीण समाज की 'बीमार सामाजिक स्थिति' का एक नैदानिक दस्तावेज़ बन जाते हैं।

जातिगत असमानता और दलित जीवन का यथार्थ

हिंदी उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ के चित्रण की यात्रा में जातिगत असमानता एक केंद्रीय विषय रहा है। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में ग्रामीण समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था, छुआछूत और शोषण को बड़ी बारीकी से दर्शाया है। उनकी कहानियों जैसे 'कफ़न' और 'ठाकुर का कुआँ' में दलित पात्रों की पीड़ा और संघर्ष का मार्मिक चित्रण मिलता है। उनके लेखन

में पंडित द्वारा दुखी को अपमानित करना और उसकी मृत्यु के बाद उसके शव को रस्सी से खींचकर फेंकना, वर्णवाद की पराकाष्ठा को दर्शाने वाले उदाहरण हैं।

हालांकि प्रेमचंद ने दलितों की दुर्दशा का चित्रण सहानुभूतिपूर्वक किया, स्वाधीनता के बाद दलित साहित्य एक स्वतंत्र आंदोलन के रूप में उभरा। यह साहित्य सदियों की सामाजिक असमानता, आर्थिक शोषण, उत्पीड़न और संत्रास से मुक्ति की पुकार है। इस साहित्य का वैचारिक आधार डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर का दर्शन है, जो समता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व के सिद्धांतों पर आधारित है।

समकालीन दलित उपन्यासों में दलित लेखकों ने अपने अनुभवों को विद्रोह और आक्रोश के साथ व्यक्त करने के लिए उपन्यास विधा का उपयोग किया है। यह चित्रण सहानुभूति से अस्मिता की ओर एक महत्वपूर्ण बदलाव को दर्शाता है। जहाँ प्रेमचंद का दृष्टिकोण बाहरी था, जो पाठक में करुणा उत्पन्न करता था, वहीं समकालीन दलित साहित्य एक भीतरी दृष्टिकोण से स्वयं अपने दर्द और संघर्ष को मुखर करता है। आज के साहित्य में दलितों द्वारा शिक्षा, संगठन और संघर्ष के माध्यम से आत्म-सम्मान और अधिकारों के लिए की जा रही लड़ाई को दर्शाया गया है। यह बदलाव इस बात का प्रमाण है कि दलित यथार्थ का चित्रण केवल एक साहित्यिक विषय नहीं रहा, बल्कि एक सशक्त वैचारिक आंदोलन बन गया है। दिल्ली जैसे बड़े शहरों में भी जातिगत भेदभाव और किराए पर घर न मिलने जैसी समस्याओं का चित्रण इस बात की पुष्टि करता है कि जातिगत असमानता का मुद्दा आज भी समाज में जीवंत है।

स्त्री-विमर्श और नारी-जीवन का यथार्थ

हिंदी उपन्यासों ने नारी जीवन के यथार्थ को भी विभिन्न चरणों में चित्रित किया है। प्रेमचंद के समय में, नारी का चित्रण मुख्य रूप से एक पीड़ित और शोषित पात्र के रूप में किया गया, जो दहेज, अनमेल विवाह, विधवापन और वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक कुरीतियों का शिकार होती थी। परिवार के भीतर, नारी की स्थिति को एंगेल्स के सिद्धांत के अनुसार मजदूर की तरह माना गया, जहाँ पुरुष 'बुर्जुआ' (पूंजीपति) और पत्नी 'सर्वहारा' (मजदूर) होती है। पुरुष-प्रधान समाज ने उसे मान-मर्यादा या देवी कहकर चारदीवारी में कैद रखा।

स्वातंत्र्योत्तर काल में, 'स्त्री-विमर्श' एक नई संकल्पना के रूप में उभरा, जो स्त्री को अपनी स्थिति के बारे में सोचने और शोषण के खिलाफ निर्णय लेने का अधिकार देता है। साठ के दशक के बाद के उपन्यासों में, नारी अब सिर्फ शोषण की शिकार नहीं रही, बल्कि व्यवस्था का बहिष्कार करके 'स्वच्छंदात्मक जीवन' जीने की आतुर दिखाई पड़ती है। भीष्म साहनी के उपन्यासों में स्त्री-पात्र सांप्रदायिकता और पितृसत्ता दोनों के खिलाफ संघर्ष करती हैं। समकालीन साहित्य में यह दिखाया गया है कि आज की नारी आर्थिक रूप से स्वावलंबी बन रही है, लेकिन इसके बावजूद वह लैंगिक शोषण और अत्याचार का शिकार हो रही है। इस प्रकार, हिंदी उपन्यास में नारी यथार्थ का चित्रण 'पीड़ित' से 'विद्रोही' तक की एक लंबी और सार्थक यात्रा को दर्शाता है, जो भारतीय समाज में महिलाओं की बढ़ती आर्थिक और सामाजिक चेतना का प्रत्यक्ष परिणाम है।

राजनीतिक, आर्थिक और सांप्रदायिक यथार्थ का चित्रण

हिंदी उपन्यासों ने समय के साथ बदलते हुए राजनीतिक, आर्थिक और सांप्रदायिक यथार्थ को भी अपना विषय बनाया है। भारत के विभाजन की त्रासदी और उसके परिणामों का चित्रण भीष्म साहनी के 'तमस' और राही मासूम रज़ा के 'आधा गाँव' जैसे उपन्यासों में प्रमुखता से मिलता है। 'तमस' विभाजन की भयावहता और हिंदू-मुस्लिम मानसिकता में गहरे बैठे अविश्वास को दर्शाता है, जहाँ धर्म, राजनीति और पितृसत्ता का बर्बर रूप सामने आता है। इन उपन्यासों ने यह भी दिखाया

है कि कैसे निहित स्वार्थ (राजनीतिक दल) सांप्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं और फिर शांति अभियानों में शामिल होते हैं। ये उपन्यास केवल ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण नहीं करते, बल्कि अतीत की त्रासदी के माध्यम से वर्तमान की राजनीतिक विसंगतियों और समाज को विभाजित करने वाली प्रवृत्तियों की आलोचना भी करते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय राजनीति का चरित्र भी उपन्यासों का महत्वपूर्ण विषय बना। इस दौर में राजनीति देश सेवा का साधन न रहकर 'व्यवसाय' बन गई, जहाँ राजनेता भ्रष्टाचार, सत्ता-लोलुपता और स्वार्थ सिद्धि में लिप्त हो गए। आर्थिक और तकनीकी प्रसार के कारण शहरी जीवन अधिक जटिल हो गया है, जिससे पारिवारिक संबंधों में ढीलापन और विश्वास का स्थान अविश्वास ने ले लिया है। समकालीन साहित्य में उपभोक्तावाद, पलायन, और बढ़ती औद्योगिक व्यवस्था जैसी समस्याएं भी केंद्र में हैं, जहाँ सरकार की प्राथमिकता गाँवों से शहरों की ओर और कृषि से उद्योगों की ओर स्थानांतरित हो गई है।

निष्कर्ष:

हिंदी उपन्यास का विकास कल्पना और आदर्शवाद से शुरू होकर प्रेमचंद के 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' तक, और फिर 'आंचलिकता', 'दलित विमर्श' तथा 'स्त्री विमर्श' के माध्यम से विशिष्ट पहचानो के संघर्षों को वाणी देने तक की एक लंबी यात्रा है। यह केवल एक साहित्यिक विधा नहीं रही, बल्कि भारतीय समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक बदलावों का सबसे विश्वसनीय और संवेदनशील दर्पण बन गई है।

आज का यथार्थ चित्रण भौतिक और सामाजिक होने के साथ-साथ अधिक मनोवैज्ञानिक भी हो गया है। निर्मल वर्मा जैसे उपन्यासकारों ने अकेलापन, संबंधों की अर्थहीनता और आधुनिक अस्तित्ववादी मुद्दों को केंद्र में रखा है। हिंदी उपन्यास ने यह साबित कर दिया है कि वह केवल एक कथात्मक ग्रंथ नहीं है, बल्कि वह मानव जीवन का गद्य है, जिसमें गुप्त जीवन को प्रत्यक्ष करने की शक्ति है।

वर्तमान में, जहाँ सामाजिक विखंडन बढ़ रहा है, उपन्यास के समक्ष यह चुनौती है कि वह व्यक्ति और समाज के बीच के नए संतुलन को कैसे खोजे। हालांकि, हिंदी उपन्यास ने हर युग में अपने यथार्थ के चित्रण की परिभाषा को पुनर्परिभाषित किया है, जिससे यह उम्मीद की जा सकती है कि वह भविष्य में भी भारतीय समाज की जटिलताओं को प्रभावी ढंग से प्रतिबिंबित करता रहेगा। यह रिपोर्ट यह प्रमाणित करती है कि हिंदी उपन्यास भारतीय समाज के क्रमिक विकास और उसकी आंतरिक सच्चाइयों का एक व्यापक और गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

संदर्भ :-

1. मिश्र, नामवर. (1994). *आधुनिक हिंदी उपन्यास और समाज*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
2. द्विवेदी, हज़ारीप्रसाद. (1980). *हिंदी साहित्य और संस्कृति*. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा.
3. शुक्ल, रामचंद्र. (1955). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा.
4. तिवारी, नंदकिशोर. (2005). *हिंदी उपन्यास में समाज और संस्कृति का प्रतिफलन*. दिल्ली: साहित्य अकादमी.
5. वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी. (1998). *हिंदी उपन्यास का विकास और सामाजिक यथार्थ*. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन.

लोक साहित्य में संस्कृति और परंपराएँ : केरल के संदर्भ में

डॉ. कला ए*

kala.athmanandan@gmail.com

आमुख

लोक का तात्पर्य वह साधारण जनता है जो गाँवों से लेकर नगरों तक निवास करती है। लोक साहित्य को लेकर आशय संबंधी भ्रम विद्वानों में रहे हैं। लोक संस्कृति शब्द के लिए अंग्रेज़ी में फोकलोर कहते हैं और लोक साहित्य के लिए फोक लिटेरेचर भी। लोक साहित्य लोक संस्कृति के अंतर्गत आता है। लोक संस्कृति की व्याप्ति लोक साहित्य से अधिक और बहुरूपी है। लोक साहित्य लोक संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है जो मौखिक परंपराएँ, लोकगीत, लोक कथाएं, स्थानीय जनश्रुतियाँ, मिथकों, कहावतें, मुहावरों आदि का परिचय देता है। लोक साहित्य में किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति, रूढ़ियाँ एवं परंपराएं, रीति- रिवाज़, धर्म, लोकजीवन, प्रथाओं, लोकविश्वास, व्रत व त्योहारों, पर्वें और उत्सवों का सूक्ष्म अवलोकन होता है। लोक साहित्य लोक संस्कृति को बनाए रखने और प्रसारित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लोक साहित्य का अध्ययन लोक संस्कृति को समझने में मदद करता है। लोक साहित्य में जनमानस की सीधी और सरल अभिव्यक्ति होती है जो परंपराओं को संरक्षित करने का काम करता है। लोक साहित्य के द्वारा सामाजिक और सास्कृतिक चेतना का जागरण होता है। यह केवल मौखिक परंपरा का रूप नहीं बल्कि संस्कृति और परंपरा का धरोहर है। वर्तमान समय में इसके अध्ययन और संरक्षण का महत्व बढ़ जाता है। यह मानव जीवन की सहज अभिव्यक्ति है औ हमें अपने जड़ों से जोड़े जाते हैं।

बीज शब्द – संस्कृति, परंपरा, पाट्टु (गीत), लोक कला, विरासत

लोक संस्कृति किसी समुदाय की जीवन शैली का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें व्यक्तिगत पहचान नहीं सामूहिक पहचान होती है। लोक संस्कृति समाज के मूल्यों, विश्वासों और व्यवहारों को निर्धारित करते हैं। लोक संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती है और एक समुदाय की पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा है। लेखक काका कालेलकर ने लोक साहित्य के सास्कृति पक्ष को इन शब्दों में व्यक्त किया है कि लोक साहित्य के अध्ययन से उसके उद्धार से हम कृत्रिमता का कवच तोड़ सकेंगे और स्वाभाविकता की शुद्ध हवा में फिरने -डोलने की शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। यह कह सकते हैं कि लोक साहित्य जन संस्कृति का दर्पण है।

केरल के लोक साहित्य का इतिहास प्राचीन तमिलकम यानि तमिलनाडु से जुडा हुआ है। केरल के पहले चेर साम्राज्य का विवरण संगम साहित्य में है। केरल के लोक साहित्य की विभिन्न धाराएं होती हैं। 'पाचा मलयालम' धारा में स्वदेशी लोक गीत के साथ प्राचीन लोकगीत भी शामिल हैं। यहाँ 'पाचा' शब्द का अर्थ शुद्ध या स्वाभाविक रूप होता है। 'तेयटुपाट्टु'. 'भद्रकालीपत्तु', 'सर्पमपाट्टु' जैसे धार्मिक गीत इस धारा के अंतर्गत विकसित हुआ है।'ओणप्पाट्टु', 'कृषिप्पाटु', 'तिरुवातिरप्पाट्टु' जैसे गीत सामाजिक और सांस्कृतिक क्रियाकलापों से संबंधित हैं।

केरल का लोकसाहित्य अपने स्वरूप एवं अभिव्यक्ति में अत्यंत व्यापक एवं बहुआयामी है।जिसमें 'कथकली',' मोहिनियाट्टम', जैसे नृत्यरूप, 'मुडियेट्ट' जैसे अनुष्ठान प्रधान नाट्य प्रकार, "सर्पकाव" की नागपूजा परंपरा, तथा 'कल्लियंकाटु नीलि' जैसी यक्षि कथाएँ प्रमुख हैं। यह लोक साहित्य केवल कलात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है बल्कि मानव व्यवहार, सामाजिक मूल्यों तथा सामुदायिक विश्वासों और स्थानीय परंपराओं का भी चित्रण होते हैं। लोकसाहित्य द्वारा केरल की संस्कृति और विरासत को समझ सकते हैं।

* **सहायक प्राध्यापक, भारतमाता कॉलेज (स्वायत्त), त्रिक्काकरा, एरणाकुलम.**

केरल कई तरह की कहानियों से भरपूर एक मनोहर भूमि है। ये कहानियाँ पीढ़ियों से चली आ रही हैं। केरल दूसरे राज्यो और देशों में ईश्वर का अपने देश के रूप में जाना जाता है। यहाँ कुछ कहानियाँ और किंवदंतियाँ हैं जो कई पीढ़ियों से चली आ रही हैं।

पहली केरल की उत्पत्ति की कहानी है। यह कहा जाता है कि विष्णु अवतार परशुराम अपना फरसा कन्याकुमारी में जाकर उत्तर दिशा में भेंका, जिस भूमि पर वह गिरा, वह समुद्र से ऊपर उठी और केरल बन गई। इस के कारण देश भऱ में केरल को परशुराम की भूमि के रूप में जाना जाता है।

लोक कथाएँ

केरल की लोक कथाओं में सबसे प्रमुख कहानियाँ परशुराम की कहानी और राजा महाबली की कहानी है।ओणम केरल का एक प्रसिद्ध त्योहार है। किसी समय महाकबली नामक एक असुर राजा केरल का शासन करते थे। वे धर्म, परोपकार और भलाई के लिए जाने जाते थे। उसकी स्मृति के लिए फसल उत्सव ओणम मनाया जाता है। यह धर्म का भी विजय था। वामन मूर्ति, भगवान विष्णु के अवतारों में एक है। यह कहानी दर्शाता है कि ईश्वर के आगे मनुष्य अपना सबकुछ समर्पण करता है। आँगन के सामने अत्त पूक्कलम डालना, पारिवारिक समागम, स्वादिष्ठ पारंपरिक भोज, भूलों की सजावट, विशेष ओणम खेल और प्रदर्शन जैसे पुलिकली (बाघ नृत्य), कैकोट्टिकली, उरियडी (मटका फोड़ने का खेल) आदि ओणम के दौरान होते हैं। ओणम केरल का एक सबसे बड़ा सांस्कृतिक त्योहार है। इस मिथक से संबंधित कई मतभेदों के बावजूद सभी महाबली के आगमन का जश्न मनाते हैं।

परयीपेटा पंतिरुकुलम कथा (अछूत महिला द्वारा पैदा किए गए बारह बच्चे)

यह कहानी केरल की एक लोककथा है जो समाज में जातिवाद और छुआछूत को दर्शाती है.। वररुचि नामक एक ब्राह्मण जो विक्रमादित्य के सदस्य के पण्डित थे।उनको परयी समुदाय के पंचमी नामक एक अछूत महिला से उत्पन्न 12 संतानों को परयी पेट पंदिरुकुलम नाम से जानी जाती है। विभिन्न जाति के लोग इन बच्चों को पाल- पोसकर बड़े किये। यह कहानी केरल की संस्कृति और परंपराओं का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

भोजन

केरल का पारंपरिक व्यंजन सद्या है। यह केलों के पत्तों पर परोसे जाते हैं। यह पारंपरिक व्यंजन भी केरल की लोकसंस्कृति में शामिल हैं जैसे पुट्टु कडलकरी (काले चने के साथ कुटा हुआ चावल से बनता है जो भाप में नारियल के साथ पकाया जाता है)। इडियप्पम, कल्ल्प्पम आदि। इडियप्पम चावल के आटे से बनता है। इसे नूडलस के आकार में तैयार करता है। कलत्तप्पम केरल का एक पारंपरिक व्यंजन है जो चावल, नारियल और गुड़ से बनता है और इसे भाप में पकाकर तैयार करते हैं। कोलकली, तिरुवातिरक्कली, गोलीकली, दफुमुट्टु, ओप्पना, वल्लम कली आदि केरल के लोक खेल है।

लोककला

केरल की लोककलाओँ में ''कथकलि' (नृत्य नाटिका), 'मोहिनीयाट्टम' (एक शास्त्रीय नृत्य), 'थेय्यम' (एक मुखौटा नृत्य),'मुडियेट्ट', 'पुलिकली' (एक बाघ नृत्य), 'तिरुवातिरक्कली' (एक पारंपरिक महिला नृत्य), 'कोलकली', 'दफमुट्ट','ओप्पना' (मुस्लिम समुदाय का सामूहिक नृत्य),ओटनतुल्लल, वल्लमकली आदि आते हैं। इन कलारूपों में पौराणिक कथाओं, धार्मिक अनुष्ठानों, सामुदायिक परंपराओं को दर्शाया जाता है। अन्य पारंपरिक कलारूप ये हैं कि 'कलरीप्पयटु,' 'चविट्टुनाटकम', 'चाक्यारकूत'। कलरीप्पयटु केरल की एक प्राचीन मार्शल आर्ट है। चाक्यारकूत एक एकल नृत्य शैली है, यह केरल के प्राचीन नाट्यकलाओं में एक है जो मंदिरों में प्रस्तुत की जाती है। 'चविट्टुनाटक' केरल के एक नृत्य- नाटिका है जो ईसाई शास्त्रीय कला रूप है। थेय्यम एक प्रसिद्ध लोक नृत्य है। थेय्यम कलाकार को ईश्वर का अवतार माना जाता है। पुलिकली एक अनूठी लोककला है जिसमें कलाकार अपने शरीर में बाघों की तरह रेंगते हैं और पारंपरिक वाद्ययंत्रों की धुन पर नृत्य करते हैं। यह साधारतय ओणम के दौरान देखा जा सकता है। 'कोलकली' केरल के उत्तरी मलबार की एक लयपूर्ण पारंपरिक लोकनृत्य है। 'दफुमुट्टु' भी उत्तरी मलबार की पारंपरिक लोकनृत्य है। वल्लमकली केरल की एक पारंपरिक नाव दौड़ है जिसे स्नेक बोट रेस के रूप में जाना जाता है। केरल के प्रमुख त्योहार ओणम के दौरान यह आयोजित की जाती है।

'मुडियेट्ट' केरल का एक पारंपरिक अनुष्ठानिक नृत्य-नाटक है जो देवी काली और राक्षस दारिक की पौराणिक कथा पर आधारित है।

लोकगीत

केरल का कोई एक लोकगीत नहीं होता है। कई तरह के लोकगीत ओर संगीत शैलियाँ हैं। जिसमें माप्पिला पाटु व ओप्पना पाट्टु (मुसल्मि समुदाय का गीत) वंजीपाटु (नाव चलानेवालों का गीत), तिरुवातिरकली (महिलाओं का पारंपरिक गीत और नृत्य), मार्गम कली (ईसाइयों द्वारा किया जानावाला एक पारंपरिक नृत्य) रूप है। कृषि से जुडे लोकगीत, कुम्माटिकली (उत्तरी केरल का मुखौटा नृत्य) आदि शामिल हैं।

केरल के लोकगीतों में माप्पिलपाट्टु, नाटनपाट्टु, वंजीप्पाटु. ओप्पन पाटटु. तिरुवाथिर पाट्टु आदि शामिल हैं। माप्पिलपाट्टु केरल के मुस्लिम समुदाय का लोकगीत हैं जिसमें स्थानीय धुनों और अरबी प्रभाव का मिश्रण होता है। ओप्पना पाट्टु विवाह के अवसर पर गाया जानेवाली गीत है। वंचीपाट्टु या नाव गीत नौकायन के दौरान गाया जाता है। नाटन पाट्टु केरल का पारंपरिक लोकगीत है जो केरल ग्रामीण क्षेत्र की लोककथाओं और जीवन शैली को दर्शाता है। यह गीत खेत में पौधे रोपने के समय गाये जाते हैं। कुम्माटी कली (उत्तरी केरल का मुखौटा नृत्य) पुल्लुवन पाट्टु केरल की प्रसिद्ध लोक कला है जो नाग देवताओं को समर्पित स्थानीय लोक गीत है। केरल के पुल्लुव समुदाय ने इस कला के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

निष्कर्ष

केरल का लोक साहित्य भारतीय लोकसंस्कृति की समृद्ध परंपरा का एक जीवंत उदाहरण है, जिसमें लोकजीवन की आत्मा, जनमानस की भावनाएँ और सामाजिक आस्थाएँ परिलक्षित होती हैं। लोक साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि जीवन मूल्यों, आचार-विचार, रीति-रिवाजों, लोकविश्वासों और सामुदायिक एकता का प्रतीक है। यह समाज की सामूहिक चेतना, जीवन दृष्टि और सांस्कृतिक विरासत का संवाहक है।

केरल के लोक साहित्य में धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का गहरा संगम दिखाई देता है। यहाँ के लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएँ, पर्व-त्योहार, भोजन परंपराएँ और लोककलाएँ केरल की जीवंत संस्कृति को निरंतर संजोए हुए हैं। कथकली, मोहिनीयाट्टम, थेय्यम, ओप्पना, वल्लमकली जैसे कलारूप केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि लोकजीवन की सामाजिक, धार्मिक और भावनात्मक गहराइयों का प्रतिनिधित्व करते हैं। केरल की लोककथाएँ—जैसे परशुराम कथा, महाबली की कथा, परयीपेटा पंतिरुकुलम—सामाजिक समानता, जाति-विरोध और मानवीय करुणा के संदेश देती हैं। वहीं लोकगीतों में प्रकृति, प्रेम, श्रम और आस्था का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। इस प्रकार केरल का लोक साहित्य जनजीवन से गहराई से जुड़ा हुआ है और यह अपनी मौलिकता, जीवंतता और विविधता के कारण भारतीय संस्कृति की धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित है।

अतः कहा जा सकता है कि केरल का लोक साहित्य न केवल क्षेत्रीय पहचान का प्रतीक है, बल्कि भारतीय लोक परंपराओं की सार्वभौमिक मानवीय भावना को भी अभिव्यक्त करता है। यह संस्कृति और परंपरा के संरक्षण का माध्यम बनकर आज भी हमें अपनी जड़ों से जोड़ता है और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना को साकार करता है।

संदर्भ :-

1. विष्णुनंबूतिरी, डॉ. एम. वी. *तेय्यवुम तिरयुम*. तिरुवनंतपुरम: यूनिवर्सिटी ऑफ केरला.
2. पणिक्कर, कावालम नारायण. (1991). *केरल का लोककथा*. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
3. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव. (1957). *लोक साहित्य की भूमिका*. इलाहाबाद: साहित्य भवन.
4. विकिपीडिया. *विकिपीडिया से साभार* [वेबसाइट]. https://hi.wikipedia.org/

लोक संस्कृति एवं साहित्य

डॉ. विजय नारायण तिवारी*

vijay1974tiwari@gmail.com

भारत एक बहुजातीय, बहुभाषी, बहुधर्मी और बहुरंगी संस्कृति वाला देश है। यहाँ की सांस्कृतिक धारा प्राचीन काल से ही विविध परंपराओं, मान्यताओं, रीति-रिवाजों, गीतों, कथाओं और कलाओं से समृद्ध रही है। इस सांस्कृतिक वैभव का सबसे जीवंत और सशक्त रूप लोक संस्कृति है। लोक संस्कृति वह चेतना है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोक जीवन में रची-बसी रहती है और समाज को उसकी जड़ों से जोड़ती है। इसी लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति साहित्य में भी हुई है, जिसे हम लोक साहित्य कहते हैं।

लोक संस्कृति और साहित्य दोनों ही समाज की आत्मा हैं। संस्कृति जीवन पद्धति को दिशा देती है तो साहित्य उसे शब्द, भाव और कलात्मक रूप प्रदान करता है। इसीलिए लोक संस्कृति एवं साहित्य का परस्पर संबंध गहरा और अविभाज्य है। भारत की सांस्कृतिक धरोहर विश्व में अद्वितीय मानी जाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसकी विविधता है। यहाँ प्रत्येक प्रांत, प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक जनसमूह की अपनी-अपनी परंपराएँ, मान्यताएँ, कला, साहित्य और रीति-रिवाज हैं। यही विविधता मिलकर भारतीय संस्कृति को समृद्ध और जीवंत बनाती है। संस्कृति का एक महत्वपूर्ण आयाम है लोक संस्कृति, जो जनमानस के जीवन, अनुभव और भावनाओं का प्रतिबिंब है।

लोक संस्कृति न केवल किसी समाज की आत्मा होती है, बल्कि वह उस समाज की जीवनशैली, विश्वास, मूल्य और परंपराओं की अमूल्य निधि भी होती है। आधुनिकता और वैश्वीकरण के युग में जब सभ्यताएँ एकरूपता की ओर बढ़ रही हैं, तब लोक संस्कृति का महत्व और भी बढ़ जाता है।

लोक संस्कृति की परिभाषा-

लोक संस्कृति का अर्थ है दृश्यलोक अर्थात जनसमुदाय और संस्कृति अर्थात जीवन जीने की शैली का संगम। यह किसी समाज की उस सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को कहा जाता है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परंपरा और व्यवहार के माध्यम से चलती है। लोक संस्कृति में लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएँ, कहावतें, लोक नाट्य, मेले-त्योहार, परिधान, भोजन-पान, हस्तकला, चित्रकला, लोकविश्वास, लोकदेवता और ग्रामीण जीवन की रीति-नीति सब सम्मिलित हैं।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ. रामनारायण मिश्र के अनुसार - लोक संस्कृति वह संस्कृति है, जिसे साधारण जनता अपने जीवन के अनुभवों से रचती है और उसे लोक में पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचारित करती है।

विद्वानों ने इसे विभिन्न रूपों में परिभाषित किया है –

रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "लोक संस्कृति वह है जो जनता के बीच स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है और जनमानस की जीवनचर्या का मार्गदर्शन करती है।"

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी मानते हैं "लोक संस्कृति ही वह आधार है जिस पर भारतीय संस्कृति की विशाल इमारत खड़ी है।" लोक संस्कृति के स्वरूप को यदि देखा जाए तो इसमें लोकगीत, लोककथाएँ, लोकनृत्य, लोकभजन, मेले-त्यौहार, लोक-

* **असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, संत तुलसीदास पी.जी.कालेज कादीपुर सुल्तानपुर**

नाट्य (नौटंकी, स्वांग, जत्रा, तमाशा), ग्रामीण चित्रकला (मधुबनी, वारली, फड़, पट्टचित्र), वेशभूषा, भोजन-पद्धति आदि सभी शामिल होते हैं।

लोक संस्कृति की विशेषताएँ

लोक संस्कृति समाज की आत्मा होती है, जो जनजीवन की संवेदनाओं, परंपराओं और मूल्यों को अभिव्यक्त करती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसकी **मौखिक परंपरा** है — यह पुस्तकों में कम, परंतु जनमानस की वाणी में अधिक जीवित रहती है। लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति गीतों, कथाओं, कहावतों और लोककथाओं के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती रही है। इसमें किसी एक रचनाकार का नाम नहीं होता, क्योंकि यह **सामूहिक रचना** होती है; यह समाज की सामूहिक चेतना और अनुभव का परिणाम है। लोक साहित्य की भाषा में **सरलता और सहजता** होती है — यह बोलचाल की, जनजीवन से जुड़ी और आम जनता द्वारा आसानी से समझी जाने वाली होती है। इसमें **स्थानीयता और सार्वभौमिकता** का अद्भुत संगम दिखाई देता है; जहाँ एक ओर स्थानीय रंग-ढंग, रीति-रिवाज और बोली की झलक मिलती है, वहीं दूसरी ओर इसके भाव और विचार सार्वभौमिक मानव अनुभवों को स्पर्श करते हैं। अंततः, लोक संस्कृति की सबसे प्रमुख विशेषता इसकी **सामाजिक उपयोगिता** है — यह समाज को शिक्षित करती है, मनोरंजन का साधन बनती है और साथ ही नैतिक एवं सांस्कृतिक मार्गदर्शन प्रदान करती है। इस प्रकार लोक संस्कृति समाज की चेतना का जीवंत दस्तावेज़ है।

लोक संस्कृति और साहित्य का परस्पर संबंध

लोक संस्कृति और लोक साहित्य एक-दूसरे के पूरक हैं। संस्कृति जीवन की धारा है, जबकि साहित्य उसका दर्पण कहा जा सकता है। समाज के त्यौहार, रीति-रिवाज, संस्कार और परंपराएँ जब गीतों, कहानियों या कथाओं के रूप में अभिव्यक्त होती हैं, तो वे लोक साहित्य का रूप ले लेती हैं। उदाहरण के लिए, विवाह संस्कार के अवसर पर गाए जाने वाले **सोहर, बधाई गीत, गालियाँ** आदि लोक संस्कृति की ही साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ हैं। इसी प्रकार **कृषि कार्यों, ऋतुओं के परिवर्तन** और **जीवन के अन्य प्रसंगों** से जुड़े लोकगीत भी लोक संस्कृति और लोक साहित्य के गहरे संबंध को दर्शाते हैं।

लोक साहित्य का लोक संस्कृति से यह संबंध इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सीधे **जनजीवन से जुड़ा** हुआ है — इसमें आम जनता के अनुभव, भावनाएँ और जीवन की सादगी झलकती है। इसकी **मौखिक परंपरा** पीढ़ी-दर-पीढ़ी समाज के भीतर प्रवाहित होती रही है, जिससे यह एक जीवंत सांस्कृतिक धरोहर बनी हुई है। लोक संस्कृति में **सामूहिकता और सहभागिता** का भाव प्रबल होता है; यह किसी एक व्यक्ति की नहीं बल्कि पूरे समुदाय की रचना होती है। इसकी **सादगी और स्वाभाविकता** इसे कृत्रिमता से मुक्त बनाती है, जिससे यह आम जन के जीवन का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है।

भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में लोक संस्कृति की **क्षेत्रीय विविधता** भी देखने को मिलती है, जो प्रत्येक क्षेत्र की भाषा, जीवनशैली और परंपराओं के अनुसार भिन्न रूप में प्रकट होती है। इसके अतिरिक्त, लोक संस्कृति का **धर्म और अध्यात्म** से गहरा संबंध होता है — लोकदेवताओं की पूजा, लोकमान्यताएँ और धार्मिक आस्थाएँ इसमें प्रमुख भूमिका निभाती हैं। अंततः, लोक संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसकी **जीवनोपयोगिता** है — यह जन्म, विवाह, उत्सव, खेती और त्योहार जैसे जीवन के प्रत्येक अवसर से जुड़ी रहती है। इस प्रकार, लोक संस्कृति और लोक साहित्य न केवल एक-दूसरे के प्रतिबिंब हैं, बल्कि समाज की आत्मा के भी जीवंत अभिव्यक्ति हैं।

लोक संस्कृति के प्रमुख अंग

भारतीय लोक संस्कृति देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का आधार है, जो विभिन्न क्षेत्रों, परंपराओं और समुदायों की विविधता को दर्शाती है। यह ग्रामीण और सामाजिक जीवन की आत्मा है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से संचरित होती रही है। लोक संस्कृति के प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं:

लोकगीत: लोकगीत ग्रामीण समाज की आत्मा हैं, जो जीवन के हर अवसर को जीवंत बनाते हैं। ये गीत बिना किसी लिखित रूप के जनता की जुबान से पीढ़ियों तक पहुँचते हैं। विवाह के अवसर पर बन्ना-बन्नी, सोहर, सैरा जैसे गीत, जन्मोत्सव पर सोहर, खेती-बाड़ी के दौरान रोपाई, बुवाई और कटाई के गीत, तथा भक्ति भाव से भजन, कीर्तन और आल्हा जैसे गीत गाए जाते हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता इनका सहज और मौखिक स्वरूप है।

लोकनृत्य: लोकनृत्य समाज की सामूहिक भावनाओं और उत्साह का प्रतीक हैं। ये न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि सांस्कृतिक संवाहक भी हैं। पंजाब का भांगड़ा और गिद्धा, गुजरात का गरबा और डांडिया, राजस्थान का घूमर, उत्तर प्रदेश का रासलीला और नौटंकी, बिहार का झूमर और सोहराई, मध्य प्रदेश का कर्मा और भगोरिया, तथा असम का बिहू नृत्य इसके प्रमुख उदाहरण हैं। ये नृत्य क्षेत्रीय संस्कृति को जीवित रखते हैं।

लोककथाएँ: लोककथाएँ जनमानस की कल्पना और अनुभव का सुंदर मिश्रण हैं। पंचतंत्र, कथासरित्सागर और जातक कथाएँ प्राचीन लोककथाओं के उदाहरण हैं, जो नैतिकता और जीवन मूल्यों को सिखाती हैं। ये मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ियों तक पहुँचती हैं।

लोककला और शिल्प: लोककला भारतीय संस्कृति की कलात्मक अभिव्यक्ति है। बिहार की मधुबनी पेंटिंग, मध्य प्रदेश की पिथौरा चित्रकला, महाराष्ट्र की वारली कला, ओडिशा का पटचित्र, और राजस्थान की फड़ चित्रकला इसके प्रमुख उदाहरण हैं। ये कलाएँ क्षेत्रीय सौंदर्य और परंपराओं को दर्शाती हैं।

मेले और त्योहार: भारत के गाँवों और कस्बों में लगने वाले मेले और त्योहार लोक संस्कृति की जीवंत परंपराएँ हैं। कुंभ मेला, छठ पर्व, नवरात्रि, बैसाखी, होली और दिवाली जैसे उत्सव सामूहिकता, आस्था और सांस्कृतिक एकता का संदेश देते हैं। ये अवसर लोगों को जोड़ते हैं और सामाजिक बंधन को मजबूत करते हैं।

लोकविश्वास और लोकदेवता: लोक संस्कृति में ग्रामदेवता, कुलदेवता और लोकदेवताओं की पूजा का विशेष स्थान है। गाँवों में आज भी ये परंपराएँ प्रचलित हैं और सामुदायिक आस्था का प्रतीक हैं।

क्षेत्रीय विविधता: भारतीय लोक संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता इसकी क्षेत्रीय विविधता है। उत्तर भारत में काव्यात्मक आल्हा, रासलीला और नौटंकी, दक्षिण भारत में यक्षगान, कथकली और कुचिपुड़ी, पूर्वोत्तर भारत में बिहू, झूम नृत्य और आदिवासी लोककथाएँ, तथा पश्चिम भारत में गरबा, घूमर और कालबेलिया जैसे नृत्य इस विविधता को समृद्ध करते हैं।

निष्कर्ष-

लोक संस्कृति किसी भी समाज की आत्मा होती है। यह हमारे जीवन के हर पहलू - जन्म से मृत्यु तक - में मौजूद रहती है। लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएँ, त्योहार और लोककला न केवल मनोरंजन और आस्था के साधन हैं, बल्कि वे समाज की सामूहिक स्मृति और पहचान को भी सुरक्षित रखते हैं।

आधुनिकता और वैश्वीकरण के दबाव में लोक संस्कृति कहीं-कहीं संकटग्रस्त होती दिखाई दे रही है, लेकिन यदि हम इसे अपनी अस्मिता का आधार मानकर संजोएँ, तो यह आने वाली पीढ़ियों के लिए भी प्रेरणा और गौरव का स्रोत बनी रहेगी।

संदर्भ :

1. चौधरी, राजेश. (2018). *भारतीय मेले और त्योहार*. मुंबई: संस्कृति प्रकाशन.
2. दास, डॉ. श्याम सुंदर. (1928). *कबीर ग्रंथावली*. काशी: नागरी प्रचारिणी सभा.

3. जैन, नीलम. (2021). *मन्नू भंडारी के कथा-साहित्य में स्त्री विमर्श*. नई दिल्ली: मेजेस्टिक पब्लिशिंग हाउस.
4. जायसी, मलिक मुहम्मद. *जायसी ग्रंथावली: पद्मावत प्रेमखण्ड*.
5. पांडेय, गोपाल. (2012). *लोक साहित्य का सामाजिक आयाम*. प्रयागराज: हिंदी साहित्य सम्मेलन.
6. बाबू, डॉ. सी. जय शंकर. (2022). *भाषा प्रौद्योगिकी का सामान्य परिचय* [ऑनलाइन कोर्स]. कंसोर्टियम फॉर एजुकेशनल कम्युनिकेशन. https://onlinecourses.swayam2.ac.in/cec23_lg09/preview
7. मिश्र, रामनारायण. (2005). *भारतीय लोक संस्कृति और परंपराएँ*. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ.
8. मिश्र, शिवकुमार. *भक्ति आन्दोलन और भक्तिकाव्य*.
9. मीरा. *मीरा की पदावली* (सम्पा./सम्पा. संस्करण के अनुसार).
10. राजकिशोर. (2010). *स्त्री परम्परा और आधुनिकता*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
11. रेणु, फणीश्वरनाथ. *मैला आँचल*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
12. लखनपाल, चन्द्रभान. *स्त्रियों की स्थिति*.
13. शर्मा, सत्येन्द्र. *लोक साहित्य और संस्कृति*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.
14. शर्मा, शिवकुमार. (2014). *भारतीय लोक नृत्य और कला*. जयपुर: राजस्थानी प्रकाशन.
15. शुक्ल, रामचंद्र. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा.
16. सिंह, डॉ. नित्यानंद. *रैदास ग्रंथावली*.
17. सिंह, नामवर. *कहानी, नयी कहानी और यहाँ तक*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
18. सिंह, रघुवंश. (2016). *भारत की लोककला और शिल्प परंपरा*. दिल्ली: संस्कार पब्लिशिंग.
19. सूरदास. *सुर सारावली: सूरदास पद संग्रह*.
20. ठाकुर, सुनील. *लोक नाट्य परंपरा और वर्तमान*. दिल्ली: साहित्य अकादमी.
21. त्रिपाठी, रामनरेश. (2010). *लोकगीत और लोकसंस्कृति*. वाराणसी: साहित्य भवन.
22. यूनेस्को. (2015). *भारतीय लोककला और परंपरा*. (प्रकाशक विवरण उपलब्ध नहीं)

हिंदी साहित्य में स्त्री स्वर और सांस्कृतिक विमर्श: मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य के संदर्भ में

देविका किशोरभाई मकाणी*
devikamakani5388@gmail.com

सारांश:

हिंदी साहित्य के इतिहास में स्त्री-लेखन एक महत्वपूर्ण धारा के रूप में उभरा है, जिसने पारंपरिक, पितृसत्तात्मक साहित्यिक विमर्श को चुनौती देकर एक नई वैचारिक भूमि तैयार की है। इसी धारा की एक प्रमुख और जुझारू हस्ताक्षर हैं मैत्रेयी पुष्पा। उनका साहित्य स्त्री-अनुभवों के उस सघन यथार्थ का दस्तावेज है, जो ग्रामीण-अर्धशहरी पृष्ठभूमि में पितृसत्ता, जाति, वर्ग और लैंगिक असमानता की जटिल बुनावट में उलझा हुआ है। यह शोध लेख मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य के माध्यम से हिंदी साहित्य में स्त्री स्वर के विकास और सांस्कृतिक विमर्श में उसके योगदान का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

बीज-शब्द: *मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री विमर्श, सांस्कृतिक विमर्श, हिंदी साहित्य, पितृसत्ता, देह की राजनीति, ग्रामीण स्त्री, प्रतिरोध।*

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में स्त्री-लेखन की परंपरा को एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में देखा जा सकता है, जिसने साहित्य को केवल मनोरंजन का माध्यम न मानकर सामाजिक परिवर्तन का हथियार बनाया। आधुनिक काल से लेकर समकालीन दौर तक, स्त्री रचनाकारों ने अपने अनुभवों, संवेदनाओं और आकांक्षाओं को अभिव्यक्त किया है, जो पुरुष-केंद्रित साहित्यिक दुनिया में लंबे समय तक उपेक्षित रहे। इसी परंपरा में मैत्रेयी पुष्पा का नाम एक ऐसे साहित्यकार के रूप में उभरता है, जिन्होंने ग्रामीण भारत की स्त्री की आवाज़ को बुलंद किया और उसके जीवन के यथार्थ को साहित्य की मुख्यधारा में स्थापित किया।

उनका साहित्य स्त्री-विमर्श और सांस्कृतिक विमर्श के अंतर्संबंधों को समझने की एक महत्वपूर्ण कुंजी है। सांस्कृतिक विमर्श, जो कि किसी समाज की रीति-रिवाज़, परंपराएँ, मान्यताएँ और सामाजिक संरचनाओं की आलोचनात्मक समीक्षा करता है, मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं में स्त्री-जीवन के प्रति गहरी संवेदनशीलता के साथ उपस्थित है। उन्होंने दिखाया कि स्त्री का शोषण और उस पर अत्याचार कोई पृथक घटना नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक संरचनाओं की ही देन है। इसलिए, उनके साहित्य का अध्ययन केवल साहित्यिक मूल्यांकन नहीं, बल्कि एक सामाजिक-सांस्कृतिक अनुसंधान भी है।

साहित्यिक परिप्रेक्ष्य: हिंदी साहित्य में स्त्री स्वर का उदय

हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श की नींव छायावादी युग की कवयित्रियों (महादेवी वर्मा आदि) से पड़ी, जिन्होंने नारी के दुख और वेदना को अभिव्यक्ति दी। परन्तु यह अभिव्यक्ति एक प्रकार की रहस्यवादिता और वैयक्तिक पीड़ा तक सीमित थी। आधुनिक युग में प्रेमचंद जैसे रचनाकारों ने स्त्री-समस्याओं को उठाया, किंतु वह भी एक पुरुष दृष्टिकोण से। स्वतंत्रता के बाद के दौर में, विशेषकर 1960-70 के दशक में, नई कहानी आंदोलन ने नारी को psychological depth के साथ चित्रित किया, फिर भी वह अक्सर शहरी, मध्यवर्गीय स्त्री तक ही केंद्रित रहा। इस पृष्ठभूमि में 1980-90 का दशक एक निर्णायक मोड़ लेकर आया, जब स्त्री-विमर्श ने एक सुस्पष्ट विचारधारात्मक रूप लिया। कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, उषा प्रियंवदा और मैत्रेयी पुष्पा जैसी लेखिकाओं ने स्त्री की sexuality, देह, desire और पारिवारिक-सामाजिक संरचनाओं के प्रति उसके प्रतिरोध को सीधे और बेबाक तरीके से उठाया। इन्होंने स्त्री को 'विषय' (object) के स्थान पर 'कर्ता' (subject) के रूप में स्थापित किया।

मैत्रेयी पुष्पा: एक सामाजिक-सांस्कृतिक पुरोहित

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म उत्तर प्रदेश के एक गाँव में हुआ और उनकी शिक्षा-दीक्षा भी ग्रामीण परिवेश में ही हुई। इस अनुभव ने उन्हें भारतीय ग्राम्य-जीवन की जड़ों तक पहुँच प्रदान की। उनकी रचनाओं में गाँव का चित्रण रूमानियत से भरा नहीं

* **शोध छात्रा, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट**

है, बल्कि वहाँ की कठोर सामाजिक वास्तविकताओं—जातिगत भेदभाव, स्त्री-दमन, गरीबी और सामंतशाही—का यथार्थवादी विवरण है। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से उस 'अन्य' (subaltern) स्त्री की आवाज़ बनने का काम किया, जिसे इतिहास और साहित्य दोनों में ही उपेक्षित किया गया था।

स्त्री देह की राजनीति और सांस्कृतिक नियंत्रण

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य का एक केंद्रीय विषय स्त्री-शरीर पर पितृसत्तात्मक नियंत्रण और उसके विरुद्ध स्त्री का संघर्ष है। उनकी रचनाएँ दर्शाती हैं कि स्त्री की देह केवल एक भौतिक अस्तित्व नहीं, बल्कि सांस्कृतिक नियंत्रण, उत्पीड़न और प्रतिरोध का एक क्षेत्र (site) है।

उपन्यास **'चाक'**: यह उपन्यास इसका प्रमुख उदाहरण है। नायिका आल्मा का चरित्र एक ऐसी स्त्री का है जो पुरुष-प्रधान समाज द्वारा थोपे गए नैतिकता के बंधनों को तोड़ती है। उसकी कामनाएँ और यौनिकता उसकी निजी पहचान का हिस्सा हैं, जिस पर वह स्वयं का अधिकार जताती है। समाज उसे 'कुलटा' और 'चरित्रहीन' का तमगा देता है, लेकिन आल्मा उन सभी लेबलों को ठुकराकर अपने जीवन का नियंत्रण स्वयं संभालने का प्रयास करती है। यह देह पर अधिकार का सीधा राजनीतिक Statement है।

'कस्तूरी कुंडल बसै': इस उपन्यास में नायिका कस्तूरी के माध्यम से लेखिका ने स्त्री-शरीर के शोषण के economic पहलू को उजागर किया है। कस्तूरी का शरीर पुरुषों की वासना का शिकार तो होता ही है, साथ ही वह पारिवारिक आजीविका का साधन भी बन जाता है। यह दोहरा शोषण स्त्री-देह की सांस्कृतिक-आर्थिक वस्तुकरण (commodification) को दर्शाता है।

मैत्रेयी पुष्पा दिखाती हैं कि स्त्री की देह पर समाज, परिवार और धर्म का नियंत्रण उसे एक 'वस्तु' में बदल देता है, जिसका उपयोग और हस्तांतरण किया जा सकता है। उनकी नायिकाएँ इसी वस्तुकरण का विरोध करती हैं और अपने शरीर और आत्मा पर स्वयं का अधिकार स्थापित करने का संघर्ष करती हैं।

पारंपरिक सांस्कृतिक प्रतीकों का पुनर्पाठ

मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री-विमर्श को केवल Victimhood तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने सांस्कृतिक प्रतीकों और मिथकों का पुनर्पाठ (re-reading) करके एक नई स्त्री-चेतना का निर्माण किया।

'**इदन्नमम**': यह उपन्यास महाभारत की चर्चित पात्र विदुर की पत्नी 'सुशीलता' (जिसे पुत्री के रूप में भी जाना जाता है) की कहानी है। मैत्रेयी ने इस उपेक्षित पात्र को केंद्र में रखकर महाभारत जैसे महाकाव्य का एक स्त्री-केंद्रित पाठ प्रस्तुत किया है। वह सुशीलता के मनोभावों, उसकी पीड़ा, उसके अस्तित्व के संकट और उसकी इच्छाओं को उजागर करती हैं। इस तरह, वह पौराणिक कथाओं के पुरुष-केंद्रित Narrative को चुनौती देती हैं और दर्शाती हैं कि इतिहास और मिथकों में स्त्री का Perspective कितना उपेक्षित रहा है।

ग्रामीण लोकगीत और बोलियाँ: उनकी रचनाओं में ग्रामीण उत्तर भारत की बोलियाँ, लोकगीत और मुहावरे सजीवता से आए हैं। ये सांस्कृतिक तत्व केवल स्थानीय रंग भरने के लिए नहीं हैं, बल्कि स्त्री-जीवन के द्वंद्व को व्यक्त करने के माध्यम हैं। लोकगीतों में अक्सर स्त्री की वेदना, विरह और प्रतिरोध के स्वर मिलते हैं, जिन्हें मैत्रेयी पुष्पा ने अपने साहित्य में स्थान दिया है।

जाति, वर्ग और लिंग का अंतर्विभाजन

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य की एक बड़ी ताकत यह है कि वह स्त्री-उत्पीड़न को केवल लिंग आधारित नहीं मानतीं। उनका विश्लेषण अंतर्विभाजीय (intersectional) है। वह दर्शाती हैं कि एक दलित या गरीब स्त्री का शोषण न केवल पुरुषों द्वारा, बल्कि उच्च जाति की स्त्रियों और सामाजिक-आर्थिक ढाँचे द्वारा भी होता है। उनकी कहानियों में गाँव की ऊँच-नीच, जातिगत संघर्ष और सामंती मानसिकता साफ़ झलकती है। एक स्त्री होने के साथ-साथ वह किस जाति और वर्ग से आती है, यह उसके अनुभवों को गहराई से प्रभावित करता है। यह दृष्टिकोण स्त्री-विमर्श को और अधिक समावेशी और यथार्थवादी बनाता है।

भाषा और शैली: एक विद्रोही अभिव्यक्ति

मैत्रेयी पुष्पा की भाषा में ही उनका विद्रोह छुपा है। उन्होंने खड़ी बोली हिंदी के शुद्धतावादी रूप को तोड़ा है और उसमें बुंदेलखंडी अंचल की बोली, मुहावरों और ग्राम्य शब्दों का सहज समन्वय किया है। यह भाषा उनके पात्रों की Authenticity को बनाए रखती है और पाठक को सीधे उस सामाजिक यथार्थ से जोड़ती है। उनकी शैली अक्सर आत्मकथात्मक और डायरी शैली जैसी है, जो स्त्री के निजी अनुभवों को सार्वजनिक विमर्श में लाने का एक प्रभावी तरीका है। यह शैली पाठक को नायिका की आंतरिक दुनिया से सीधे जोड़ती है और उसके संघर्षों के प्रति सहानुभूति पैदा करती है।

मैत्रेयी पुष्पा का रचनात्मक योगदान हिंदी साहित्य में अमिट है। उन्होंने साहित्य को स्त्री-दृष्टि से समृद्ध किया है और ग्रामीण भारत की स्त्री के जीवन के जटिल यथार्थ को उसकी संपूर्णता में प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाएँ केवल कहानियाँ नहीं हैं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक मान्यताओं की आलोचना तथा स्त्री-अधिकारों के पक्ष में दिए गए ठोस बयान हैं।

उन्होंने स्त्री की देह, उसकी इच्छा और उसके श्रम को साहित्य का वैध विषय बनाया और पाठकों को यह सोचने पर मजबूर किया कि स्त्री-जीवन में आने वाली समस्याएँ व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं की देन हैं। मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य ने न केवल हिंदी साहित्य को नई दिशा दी, बल्कि एक ऐसी सांस्कृतिक चेतना का विकास किया जो निरंतर प्रश्न करती है और परिवर्तन की माँग करती है। वे हिंदी साहित्य में स्त्री स्वर की एक सशक्त और अत्यंत महत्वपूर्ण आवाज़ बनकर उभरी हैं।

निष्कर्ष :

यह शोध इस बात की पुष्टि करता है कि मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य हिंदी में स्त्री-विमर्श की धारा को सशक्त बनाने वाला एक स्तम्भ है। उन्होंने न केवल स्त्री के निजी और सार्वजनिक संघर्षों को अभिव्यक्ति दी, बल्कि एक ऐसी सांस्कृतिक चेतना का निर्माण किया जो पितृसत्तात्मक मानदंडों को लगातार प्रश्नांकित करती है और एक समतामूलक समाज के निर्माण की दिशा में सैद्धांतिक आधार प्रदान करती है।

संदर्भ

1. कुमार, रजनी. (2019). मैत्रेयी पुष्पा का कथा-साहित्य: सामाजिक-सांस्कृतिक विश्लेषण. *अनुसंधान पत्रिका, 12*(4), 112-125.
2. तिवारी, रजनी. (2015). *हिंदी में स्त्री-लेखन: एक सांस्कृतिक अध्ययन*. कोलकाता: पिपुल्स पब्लिशिंग हाउस.
3. देवी, शशि. (2010). *हिंदी उपन्यास में स्त्री-जीवन*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
4. पुष्पा, मैत्रेयी. (1988). *चाक*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
5. पुष्पा, मैत्रेयी. (1994). *अल्मा कबूतरी*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
6. पुष्पा, मैत्रेयी. (1996). *इदन्नमम*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
7. पुष्पा, मैत्रेयी. (2000). *कस्तूरी कुंडल बसै*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
8. पुष्पा, मैत्रेयी. (2005). *गुनाह बेगुनाह*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
9. भारद्वाज, अलका. (2004). *हिंदी कथा-साहित्य में ग्राम्य-जीवन*. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल.
10. मिश्र, नमिता. (2012). *स्त्री विमर्श: सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
11. मेनन, निवेदिता. (2007). *स्त्रीवादी सिद्धांतों के संदर्भ हेतु: Seeing like a Feminist*. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स इंडिया.
12. सिंह, नम्रता. (2008). मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री-चेतना. *साहित्यिक पत्रिका, 45*(2), 56-72.

आधुनिक हिंदी साहित्य और भारतीय नवजागरण

Pavasiya Bhumikaben Rameshbhai*

vaishali.patoliya87@gmail.com

प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी साहित्य पर नवजागरण का प्रभाव इस संदर्भ में प्रस्तुत है। इस नवजागरण की नींव डालने वाली सामाजिक संस्थाएँ, अंग्रेजों द्वारा रेल, डाक, अंग्रेजी शिक्षा, प्रेस आदि की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी नवजागरण की शुरुआत भारतेंदु युग से होती है और उसका प्रभाव प्रयोगवाद और प्रगतिवादी साहित्य पर भी स्पष्ट दिखाई देता है। भारतीय इतिहास का आधुनिक काल 19 वीं शताब्दी से प्रारंभ होता है। जिस प्रकार भक्ति आंदोलन सारे देश में एक साथ नहीं फैला, उसी प्रकार नवजागरण भी देश के किसी अंचल में पहले आया और कहीं बाद में। ऐसीसी सरकार के अनुसार सन 1957 में बंगाल में आधुनिक काल का उदय और मध्यकाल का अंत होता है। इसी वर्ष प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों की विजय और बंगाल के नवाब की पराजय होती है। यद्यपि बंगाल को अंग्रेजी राज्य में मिलाया नहीं गया था, किंतु उस पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। सन 1818 में महाराष्ट्र अंग्रेजों के आधीन हो गया था। वहाँ भी आधुनिक काल का प्रारंभ माना जाता है। सन 1856 में अवध भी अंग्रेजी राज्य का अंग बन गया। सन 1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल बजा। हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र विशेषत: उत्तर प्रदेश में इसी वर्ष से आधुनिक काल का प्रारंभ माना जाता है। यानी बंगाल के आधुनिक काल के सौ साल बाद। उससे ध्वनित होता है कि आधुनिक काल को ले आने का श्रेय अंग्रेजी 'उपनिवेशवाद' को है। जिस तरह भक्ति आंदोलन के बारे में प्रश्न उठाया जाता है कि यदि मुसलमान न आए होते तो भक्ति आंदोलन की लहर न उठती, उसी प्रकार कहा जाता है कि यदि अंग्रेज न आए होते तो आधुनिक काल न आता।

नवजागरण कोई सिद्धांत या विचारधारा नहीं है और न ही इसका कोई बना-बनाया स्वरूप है, जिसे लेकर निश्चित तौर पर कहा जा सके कि भारत का नवजागरण है। यह मध्ययुगीन सीमाओं का अतिक्रमण करनेवाली सांस्कृतिक प्रक्रिया है, जो परिवेश के तात्कालिक दबावों से ओपनिवेशिक आधुनिकताओं की वाहक बनी, जिसने राष्ट्रवाद के लिए भी एक वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार की। इससे देश में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्र में एक नवीन चिंतन का प्रादुर्भाव हुआ। यह पश्चिम की देन न होकर अपनी ही परिस्थितियों के भीतर से फूटा। देशने पारंपरिक रूढ़िवाद को त्यागकर आधुनिक विचारधारा को ग्रहण किया। इसका प्रारंभ 19 वीं सदी के पूर्वार्ध में हुआ। इस युग में गद्य का प्रारंभ पत्र-पत्रिकाओं का चलन तथा दूसरी भाषाओं से उपयोगी सामग्री का अनुवाद, पाठ्य-पुस्तक लेखन आदि संपूर्ण देश में कम या अधिक मात्रा में होने लगा, जिसने नवजागरण को एक नई दिशा दी। इसके केंद्र में 1857 की क्रांति का विशेष महत्व रहा है। जिन प्रदेशों में इस क्रांति का प्रत्यक्ष असर न था, वहाँ क्षेत्रीय स्तर पर अनेक विद्रोह हुए। इसी समय एशिया के सभी देशों में नवजागरण की भावना दिखाई देती है। भारत में नवजागरणकर्ताओं द्वारा सामाजिक क्षेत्र में सती प्रथा, पर्दा प्रथा, अस्पृश्यता जैसी कुरीतियों का विरोध हुआ। आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में स्वदेशीयता व राष्ट्रीयता की लहर उठी।

नवजागरण का अर्थ :

जागरण का अर्थ है जागृत होना, नींद से जागना, सुषुप्त जनमानस में नवचेतना, स्वतंत्र चिंतन, ऐसी चेतना जो पहले कभी न आई हो। यहाँ जागरण का अर्थ नींद से शारीरिक रूप से जागना नहीं, अपितु मानसिक रूप से जागना है। "पारिभाषिक रूप से जागरण शब्द संस्कृत भाषा के नव उपसर्ग 'जागृ' धातु में ल्युट प्रत्यय के योग से व्युत्पन्न है।"[1] इसका अभिप्राय है

* **शोधार्थी, हिंदी विभाग, महाराजा कृष्णकुमारसिंहजी भावनगर युनिवर्सिटी, भावनगर**

जागृत अवस्था या जागते रहने की चेतना। "लाक्षणिक अर्थ में 'जागरण' वह अवस्था है जिसमें किसी जाति, देश, समाज आदि को अपनी वास्तविक परिस्थितियों और उनके कारणों का ज्ञान हो जाता है और वह उन्नति और रक्षा के लिए सचेष्ट हो जाता है।"[2]

जागरण की कोई समय सीमा या कालखंड निर्धारित नहीं की जा सकती। जागरण किसी भी समय, किसी भी परिस्थितियों में हो सकता है। जब मनुष्य तत्कालीन समाज, युग और परिस्थितियों में जकड़ी हुई रूढ़ियों से स्वतंत्र होकर आत्मविवेक से निर्णय लेता है, तो उस अवस्था को जागरण कहा जाता है।

नवजागरण : परिभाषा और स्वरूप

परिभाषा :

नवजागरण के लिए प्राय: कई पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जैसे – पुनर्जागरण, पुनरुत्थान, नवजीवन, नवजागृति, नवोत्थान आदि। परंतु यदि आधुनिक संदर्भ में देखे तो अंग्रेजी शब्द रिनेसाँ का पर्यायवाची ही नवजागरण को माना जाता है। भिन्न-भिन्न देशों में नवजागरण की अवधारणा का विकास विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों, कालों और विभिन्न रूपों में हुआ है। नवजागरण एक अवधारणा है। नवजागरण की कल्पना के प्रचार का श्रेय स्विस विचारक बर्कहार्ट को है। "जैकब बर्कहार्ट की कृति 'सिविलिजेशन ऑफ दि रिनेसाँ इन इटली' (इटली की पुनर्जागरण कालीन सभ्यता) के प्रकाशन 1860 के साथ यह मान्यता अपने चरम शिखर पर पहुंच गई।"[3]

यद्यपि ऐसा माना जाता है कि रिनेसाँ शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांसिसी इतिहासकार 'मिशेसेट' ने 19 वीं सदी के पूर्वार्ध में किया। लेकिन डॉ. मीना रानी बल के शब्दानुसार "आधुनिक संदर्भ और अर्थ में 'रेनसाँ' शब्द का प्रयोग संभवत: पहली बार बाल्जाक ने 1829 ई. में अपनी नाट्यकृति "Blade Seeaux" में किया था।"[4]

नवजागरण का स्वरूप :

रिनेसाँ प्राय: पश्चिमी यूरोप जिसमें इटली, फ्रांस, ब्रिटेन, स्पेन, जर्मनी जैसे देश आते हैं। इनकी सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति का काल माना जाता है। इस काल में कला संगीत, साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में परिवर्तन हुआ। सर्वप्रथम पुनर्जागरण का आरंभ इटली से माना जाता है। इसी संदर्भ डॉ. रामविलास शर्मा के मतानुसार – "सोलहवीं सदी में इटली के लोगों ने नए युग को ला रिनास्विता (पुनर्जन्म) कहना शुरू किया। अठारहवीं सदी में फ्रांस के विद्वानों ने उसे रेनैसान्स कहा। वहाँ से यह शब्द अंग्रेजी में आया। इटली के लोगों ने संस्कृति के पुनर्जन्म की बात इसलिए सोची थी कि तीसरी, चौथी, पाँचवीं सदियों में जर्मन हमलावरों ने उनकी प्राचीन रोमन सभ्यता का नाश कर दिया था। अब वह सभ्यता मानो नए सिरे से जन्म ले रही थी। इसीलिए पुनर्जन्म की बात उनके मन में आई।"[5] और इटली की भाँति अन्य देशों ने भी नई सभ्यता के युग को पुनर्जन्म कहा।

यूरोपीय संदर्भ में यदि देखा जाए तो यूरोप में नवजागरण की जगह पुनर्जागरण अधिक तर्कसंगत मालूम पड़ता है। यूरोप के रिनेसाँ को पुनर्जागरण अथवा पुनर्जन्म कहने का मुख्य कारण यह है कि यूरोप ने लंबे अंधकार युग और सामंती मध्यकाल से छुटकारा पाया था। पुनर्जागरण की परिभाषा यूरोपीय संदर्भ में हिंदी विश्वकोश (नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी) ने दी है – "पुनर्जागरण का अर्थ पुनर्जन्म होता है। मुख्यतः यह यूनान और रोम के प्राचीन शास्त्रीय ज्ञान की पुनः प्रतिष्ठा का भाव प्रकट करता है। यूरोप में मध्य युग की समाप्ति और आधुनिक युग का प्रारंभ इसी समय से माना जाता है।"[6] यूरोपीय संस्कृति में नई सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना का संचार होने लगा था। जिसमें प्रथम उन्मेष इटली में दिखाई पड़ता है। "इस प्रकार यूरोप का एक प्रकार से नया जन्म हुआ और इसी कारण उस युग को नवजन्म या पुनर्जन्म के पर्यायभूत नवजागरण या पुनर्जागरण का अभिधान प्रदान किया गया है।"[7]

14 वीं सदी के अंतिम दशक से ही ग्रीक साहित्य लोकप्रिय होने लगा। देशी भाषाओं में ग्रंथों का संग्रह होने लगा। मनुष्य में ईश्वर के स्थान पर व्यक्ति को समझने की जिज्ञासा पैदा हुई। धर्म की अपेक्षा में विज्ञान का महत्व बढा। भावना का

स्थान तर्क ने लिया। संक्षेप में कहा जाए तो "सामंतवाद और धार्मिक सत्ता के कठोर नियंत्रण से मुक्ति, व्यक्तिवाद, भौतिकवाद, वैज्ञानिकता, जिज्ञासा, सचेत रूप से समाज सुधार के प्रयास, बुद्धिवाद, प्रशासनिक, न्यायिक सुधार, नवीन जीवन शैली, नयी संस्कृति और नयी दुनिया की ओर प्रयास आदि नवजागरण की सामान्य विशेषताएँ हैं।"[8]

नवजागरण काल में साहित्य के क्षेत्र में भी परिवर्तन आए। धार्मिक लेखन के अतिरिक्त गैरधार्मिक लेखन आरंभ हो चुका था। मूर्तिकला, चित्रकला चर्च की दीवारों से बाहर निकलकर स्वच्छंद वातावरण में उड़ान भरने लगी थी। कलाकार मात्र ईश्वर के आदेश की पूर्ति करने वाला है, इस धारणा का अंत हुआ। देशी भाषाओं में उन्नति आरंभ हुई।

भारतीय नवजागरण :

प्रत्येक राष्ट्र की परिस्थितियों में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। 19 वीं सदी के जागरण काल में भी पराधीन भारतीय समाज में एक नवीन चेतना आई। यह चेतना नवीन नहीं थी बल्कि परिष्कृत रूप था उस चेतना का जो पहले से चली आ रही थी। परंतु भारतीय नवजागरण को लेकर अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग राय दी थी। 19 वीं सदी के नवजागरण में भारतीय जीवन दर्शन निवृत्तिवाद दृष्टि से प्रवृत्तिवाद दृष्टि में परिवर्तित होने लगा था। प्राचीन धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सामाजिक रीति-रिवाजों पर आँख मुँद कर भरोसा करने की बजाय तर्क के निष्कर्ष पर कसकर उसका सूक्ष्म वैज्ञानिक आंकलन किया जाने लगा। इसी परिस्थिति में उस नवीन विचारधारा का जन्म हुआ जिसे 'राष्ट्रीयता' का नाम दिया गया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दानुसार – "यूरोप में जन्मी हुई विचारधारा ने धीरे-धीरे भारत के विचारशील लोगों को भी प्रभावित करना शुरू किया। राष्ट्रीयता भारतवर्ष के लिए नवीन विश्वास थी। इसके पहले इस देश में यह बात अपरिचित थी। राष्ट्रीयता का अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का अंश है और इस राष्ट्र की सेवा के लिए, इसको धन-धान्य से समृद्ध बनाने के लिए, इसके प्रत्येक नागरिक को सुखी और संपन्न बनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सब प्रकार से त्याग और कष्ट स्वीकार करने चाहिए।"[9]

नवजागरण पूर्व जागरण था। जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन की ललक दिखाई देने लगी थी। पुरानी बेडियों से मुक्ति की छटपटाह, नयी चेतना का स्पंदन, नया जोश और नयी उमंग दिखाई पड़ती है। एक ओर ऊँच-नीच, ब्राह्मण-अब्राह्मण और छुआछूत जैसी व्यवस्था को बदलने का साहस दिखाई पड़ता है, तो दूसरी तरफ सामंत विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी विचारधारा का उद्भव होता है। सामाजिक कुरीतियों तथा प्रथाओं के खिलाफ नवजागरण का बिगुल बजाया जाता है। सामाजिक और साहित्यिक दोनों स्तर पर परिवर्तन दिखाई देता है।

भारतीय नवजागरण और यूरोपीय पुनर्जागरण में अंतर यह है कि जहाँ यूरोप में एक सभ्यता का पुनर्जन्म था, वहीं भारत में पुनर्जन्म न होकर जागरण की नयी चेतना थी। भारतीय नवजागरण की अवधारणा यूरोप से इस बात में भी भिन्न थी कि यूरोप के देश किसी विदेशी सत्ता के अधीन नहीं थे, जबकि भारत अंग्रेजों के अधीन था। यहाँ के नवजागरण में स्वदेशी राज्य, एक देशीय संस्कृति और एक जातीयता का भाव मिलता है। शंभूनाथ के मतानुसार – "भारतीय नवजागरण के अनेक दुर्भाग्यों में से एक यह भी है कि इसे सौ वर्ष से ज्यादा न मिल सके, जबकि पश्चिमी देशों को तीन-तीन, चार-चार सौ वर्ष मिले। वहाँ विज्ञान, प्रौद्योगिकी, सुधारवाद, अनुभववाद, आदर्शवाद, अंतर्राष्ट्रीयतावाद आदि को पनपने का पूरा अवसर मिला। नवजागरण वहाँ विकसित राष्ट्रीयता पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व में आया तथा स्वतंत्र राजनीतिक वातावरण में आया।"[10]

डॉ. रामविलास शर्मा जिन तर्कों के आधार पर भारत में नवजागरण को स्वीकार करते हैं अथवा नवजागरण की परिभाषा देते हैं, वे बिलकुल तर्कसंगत है। क्योंकि भारत में यूरोपीय मध्यकाल जैसी स्थितियाँ कभी नहीं रहीं। यूरोपीय इतिहास दृष्टि से देखने पर निश्चित समय सीमा को मान लेने भर से कोई कालखंड मध्यकाल नहीं हो जाता है। क्या भारतीय मध्यकाल की प्रवृत्तियाँ यूरोपीय प्रवृत्तियों से मेल खाती है? विश्लेषणों से पता चलता है कि भारत में ज्ञान की सतत प्रक्रिया चलती रही है।

यही वह दौर था जब इस्लाम और भारतीय संस्कृति का मेल होता है। भाषाओं में प्रयोग को लेकर रचनाकार सजग होते हैं। अमीर खुसरो एक बहुत बड़े उदाहरण के रूप में मौजूद है। इसी काल में उर्दू नामक भाषा का विकास होता है। इसलिए

भारतीय नवजागरण एक नयी स्फूर्ति थी, न कि सोई हुई जनता का जागृत होना। इसी संदर्भ डॉ. नामवर सिंह के शब्दानुसार – "यूरोप के पास सिर्फ रिनेसांस है, तो भारत में नवजागरण की एक लंबी श्रृंखला है।"[11]

निष्कर्ष:

भारत के विभिन्न प्रांतों में नवजागरण को अपने-अपने उद्देश्य थे, परंतु यह उद्देश्य ही एक बड़े सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तन की ओर संकेत कर रहे थे। भारतीय नवजागरण के मूलभूत तत्वों को जनसाधारण तक संप्रेषित करते हैं। भारतीय नवजागरण अपने स्वरूप में ऐतिहासिक महत्त्व को समेटे आधुनिकता की ओर अग्रसर होने की वह प्रक्रिया है, जो अपने तमाम अंतर्विरोध के बावजूद विकास की ओर उन्मुख है।

संदर्भ :

1. बल, डॉ. मीरा रानी. (2012). *राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 18.
2. बल, डॉ. मीरा रानी. (2012). *राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 18.
3. गुप्ता, पार्थ सारथि. (2001). *आधुनिक पश्चिम का उदय*. दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृ. 1.
4. बल, डॉ. मीरा रानी. (2012). *राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 19-20.
5. शर्मा, डॉ. रामविलास. (1996). *भारतीय नवजागरण और यूरोप*. नई दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय (या राजकमल प्रकाशन). पृ. 192.
6. नागरी प्रचारिणी सभा. (1966). *हिंदी विश्वकोश: खंड-7*. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा. पृ. 240.
7. अमरनाथ, डॉ. (2009). *हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 397.
8. अमरनाथ, डॉ. (2009). *हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 397.
9. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद. (1952). *हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन पृ. 209.
10. शंभूनाथ. (1993). *दूसरे नवजागरण की ओर*. दिल्ली: ज्ञान भारती प्रकाशन. पृ. 1.
11. जैन, महेंद्रराजा. *नामवर विचारकोश*. पृ. 280.

भारत रत्न अटल बिहारी वाजपेयीजी के काव्य में सांस्कृतिक चेतना

बापोदरा विशाल रसिकभाई*

vrbsurmilap007@rocketmail.com

सार संक्षेप :

भारतीय संस्कृति का स्वरूप विश्व में अद्वितीय माना गया है। यहाँ धर्म, अध्यात्म, कला, दर्शन, मानवीय मूल्य और राष्ट्रभक्ति का संगम देखने को मिलता है। कवि एवं राजनेता अटल बिहारी वाजपेयी ने अपने काव्य में इस सांस्कृतिक चेतना को गहराई से स्वर दिया है। उनकी कविताएँ केवल भावाभिव्यक्ति नहीं बल्कि भारतीय अस्मिता का उद्घोष हैं। वे एक ओर जहाँ भारत के गौरवपूर्ण इतिहास और परंपरा की स्मृति कराते हैं, वहीं दूसरी ओर आधुनिक चुनौतियों का सामना करने के लिए सांस्कृतिक शक्ति जगाने का आह्वान भी करते हैं।

अटल बिहारी वाजपेयी भारतीय राजनीति के एक अद्वितीय व्यक्तित्व थे, जिनकी साहित्यिक अभिरुचि ने उन्हें एक संवेदनशील और प्रभावशाली कवि बना दिया था। वे हिन्दी के एक संवेदनशील और जागरूक कवि थे। उनके काव्य में भारतीय संस्कृति, लोकजीवन, परंपराएँ, धार्मिक चेतना, सामाजिक मूल्यों और राष्ट्रभक्ति के गहरे भाव प्रकट होते हैं। यह शोध पत्र उनके काव्य-संसार में उपस्थित सांस्कृतिक बोध की विविध परतों को उद्घाटित करते हुए उनकी कविताओं में निहित सांस्कृतिक चेतना की व्याख्या करता है, जिससे उनकी कविताओं के माध्यम से भारतीय समाज, परंपरा और सांस्कृतिक अस्मिता की गहन समझ विकसित होती है।

मुख्य बिंदु :

अटल बिहारी वाजपेयी, सांस्कृतिक चेतना, संस्कृति, भारतीयता, सांस्कृतिकता, कविता, परंपरा, राष्ट्रवाद।

भूमिका :

भारतीय साहित्य का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि भारतीय काव्य मात्र मनोरंजन का साधन न होकर समाज, राष्ट्र और संस्कृति का दर्पण रहा है। भारतीय काव्यधारा में कवियों ने समय-समय पर राष्ट्रीय चेतना, मानवीय संवेदनाओं और सांस्कृतिक मूल्यों का उद्घोष किया है। इसी परंपरा में अटल बिहारी वाजपेयीजी एक विशिष्ट कवि के रूप में हमारे सामने उभरे है।

अटल बिहारी वाजपेयी जी का साहित्यिक व्यक्तित्व उनके राजनीतिक जीवन जितना ही प्रभावशाली रहा है। उनके व्यक्तित्व का सबसे अंतरंग पक्ष उनकी काव्य-संवेदना है, जो भारतीय संस्कृति और परंपरा से गहराई से जुड़ी हुई है। उनके काव्य में भारतीय संस्कृति के सभी प्रमुख आयाम जैसे कि आध्यात्मिकता, नैतिकता, राष्ट्रभक्ति, लोकजीवन, परंपरा, और आधुनिकता आदि दृष्टिगोचर होते हैं। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से न केवल आत्माभिव्यक्ति की, बल्कि राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत को भी स्वर दिया। उनके काव्य में लोकमानस, भारतीय सभ्यता, जीवनमूल्य और समय की चुनौती के बीच संतुलन देखने को मिलता है। वे मानते थे कि बदलते युग में भी हमारी सांस्कृतिक चेतना ही हमें जीवित रखती है और हमारी राष्ट्रीय पहचान को अक्षुण्ण बनाए रखती है।

* **शोध छात्र, हिन्दी विभाग, श्री पारेख सायन्स, आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, महुवा**

(महाराजा कृष्णकुमारसिंहजी भावनगर विश्वविद्यालय)

अटल बिहारी वाजपेयी का साहित्यिक अवदान केवल एक राजनेता के रूप में नहीं, बल्कि एक गम्भीर चिन्तक और भावनाशील कवि के रूप में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य में उनका स्थान विशिष्ट है। उन्होंने जीवन के विविध पहलुओं को अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया, जिनमें भारतीय संस्कृति की जड़ें गहराई से जुड़ी हुई है। उनकी रचनाओं में वेद, उपनिषद, गीता, रामायण जैसे सांस्कृतिक ग्रंथों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

सांस्कृतिक चेतना की अवधारणा:

सांस्कृतिक चेतना का तात्पर्य उस बौद्धिक, भावनात्मक और आत्मिक दृष्टिकोण से है, जिससे व्यक्ति या समाज अपनी संस्कृति के प्रति जागरूक होता है। इसमें परंपरा, मूल्य, कला, भाषा, धर्म, और राष्ट्रीय पहचान सम्मिलित होते हैं। सांस्कृतिक चेतना एक ऐसा भाव है जो व्यक्ति या समाज को अपनी सांस्कृतिक विरासत, मूल्य प्रणाली, भाषा, धर्म, कला और परंपराओं के प्रति जागरूक बनाता है। यह चेतना इतिहास और वर्तमान के बीच एक सेतु का कार्य करती है, जिसमें व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा रहता है। वाजपेयी जी की कविताएँ इस सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती हैं।

वाजपेयी जी काव्य में सांस्कृतिक चेतना :

१. भारतीयता का बोध :

वाजपेयी जी की कविताओं में भारतीयता की भावना अत्यंत प्रबल है। वे भारत को केवल एक भूगोलिक इकाई नहीं मानते, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक सत्ता के रूप में देखते हैं। उनकी कविताएँ भारतीयता से ओतप्रोत हैं। "भारत जमीन का टुकड़ा नहीं" जैसी कविताएँ भारत को मात्र एक भूखंड नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक सत्ता के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

"भारत मात्र जमीन का एक टुकड़ा नहीं है, वह एक जीताजागता राष्ट्रपुरुष है।-
हिमालय इसका मस्तक है, गौरी शंकर शिखा है।
कश्मीर किरीट है तो पंजाब और बंगाल इसके दो विशाल कंधे है।
विंध्याचल इसका मध्यांग है तो नर्मदा इसकी करघनी है।
पूर्वी और पश्चिमी घाट इसकी दो विशाल जंघाएँ है।
कन्याकुमारी इसके चरण है और सागर इसके पग पखारता है।
पावस के कालेकाले मेघ इसके कुंतल केश है।-
चाँद और सूरज इसकी आरती उतारते हैं।
यह चंदन की भूमि है, अभिनंदन की भूमि है।
यह तर्पण की भूमि है, यह अर्पण की भूमि है।
इसका कंकरकंकर शंकर है-, इसका बिन्दुबिन्दु गंगाजल है।-
हम जिएंगे तो इसके लिए और मरेंगे तो इसके लिए।"

इस पंक्ति में भारत की भौगोलिक सीमा से ऊपर उठकर उसे एक सजीव और सांस्कृतिक इकाई के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

उनकी कविताओं में वेद, उपनिषद, गीता, रामायण और महाभारत की परंपरा का भी प्रभाव देखने को मिलता है। वे भारतीय संस्कृति को अनश्वर मानते थे –

"हमने तोड़ दीं हैं जंजीरें, हम हर बंधन को तोड़ेंगे।
भारत की धरती पर जन्म लिया, इस मिट्टी को हम न छोड़ेंगे।।"

इस उद्धरण में सांस्कृतिक गौरव और राष्ट्रप्रेम का गहरा संगम दिखाई देता है।

२. धर्म और अध्यात्म :

भारतीय संस्कृति की आत्मा आध्यात्म है। वाजपेयी जी की कविताओं में भक्ति, आत्म अन्वेषण और जीवन-मूल्यों का विशेष महत्त्व है। वे धर्म को आडंबर नहीं, बल्कि सत्य और करुणा रूपी जीवन का सार मानते हैं। वे राम, कृष्ण, शिव और गीता जैसे प्रतीकों के माध्यम से सांस्कृतिक चेतना को उजागर करते हैं। अटल जी की कविताओं में धर्म का स्वरूप रूढ़िवादी नहीं, बल्कि जीवनदृष्टि और आचरण के स्तर पर दिखाई देता है। वे गीता के कर्मयोग की भावना से प्रेरित हैं। वे लिखते हैं –

"कर्मठ बनो, निर्भय बनो, जीतो न हारो धर्म के लिए..."

यह पंक्ति धर्म को कर्म और कर्तव्य से जोड़ती है – यह भारतीय अध्यात्म का मूल है।

वाजपेयीजी **'परिचय'** नामक कविता में पौराणिक-धार्मिक प्रतीकों और उपमानों के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं, जैसे -

"मैं शंकर का वह क्रोधानल कर सकता जगती क्षार-क्षार।
डमरू की वह प्रलय-ध्वनि हूँ जिसमें नचता भीषण संहार।
रणचंडी की अतृप्त प्यास,मैं दुर्गा का उन्मत्त हास।
मैं यम की प्रलयकर पुकार, जलते मरघट का धुआँधार।
भय से व्याकुल फिर दुनिया ने प्रारम्भ किया मेरा पूजन।
मैं नर, नारायण, नीलकंठ बन गया न इस में कुछसंशय।"

३. परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों की झलक :

वाजपेयी जी की कविता में परंपराएँ केवल अतीत की स्मृति नहीं, वर्तमान की प्रेरणा हैं। वे राम, कृष्ण, शिव जैसे सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग करके भारतीय मानस से जुड़ते हैं। वे लिखते हैं –

"राम तुम्हारा चरित स्वयं ही कविता है..."

यहाँ पर राम को एक काव्यात्मक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करना भारतीय सांस्कृतिक चेतना का प्रतिबिंब है।

वाजपेयीजी ने अपनी कविता 'आज सिन्धु में ज्वार उठा है' में सिन्धु सभ्यता और सिन्धु नदी के गुणगान करते हुए हमें प्राचीन सिन्धु सभ्यता और सिन्धु संस्कृति की पहचान कराई है। कवि वाजपेयीजी सिन्धु प्रेम और सिन्धु ज्वार को कभी भुला नहीं पाए। जिस तरह सिन्धु में ज्वार उठता था उसी तरह कवि के राष्ट्रभक्ति में भी ज्वार उठता था। वे लिखते हैं –

"आज सिन्धु में ज्वार उठा है, नगपति फिर ललकार उठा है,
कुरुक्षेत्र के कण-कण से फिर, पाञ्चजन्य हूँकार उठा है।
विश्व-गगन पर अगणित गौरव के, दीपक अब भी जलते हैं
कोटि-कोटि नयनों में स्वर्णिम, युग के शत सपने पलते हैं।"

४. लोक-संस्कृति और परम्पराएँ :

भारतीय संस्कृति केवल शास्त्रों और ग्रंथों तक सीमित नहीं, बल्कि यह लोकजीवन की धडकनों में भी विद्यमान है। वाजपेयी जी की कविताओं में गाँव की संस्कृति, किसानों का संघर्ष, मेले-त्यौहार और लोक की सहज आस्थाएँ झलकती है। वे मानते थे कि संस्कृति का आधार जनजीवन है और लोक परंपरा ही भारतीय संस्कृति को जीवंत बनाती है।

"हल चलाता किसान, पसीने से सींचता धरती को,
यही है भारत की सच्ची तस्वीर, यही है हमारी संस्कृति की पहचान।"

वाजपेयी जी की कविताओं में गाँव और लोकसंस्कृति का केवल वर्णन मात्र नहीं है, बल्कि भारतीय जीवनदर्शन का आधार है। वे किसान को केवल अन्नदाता नहीं, बल्कि भारत की संस्कृति और आत्मा का संरक्षक मानते हैं।

५. सामाजिक और मानवीय मूल्य :

भारतीय संस्कृति का मूल आधार 'वसुधैव कुटुम्बकं' है। वाजपेयी जी कि कविताएँ सामाजिक न्याय, समरसता और मानवीय करुणा का संदेश देती है। वे मानव मात्र की गरिमा में विश्वास रखते थे और मानते थे कि संस्कृति तभी जीवित रहती जब उसमें सभी के लिए सम्मान और समानता हो।

"हम न कभी टूटेंगे, न झुकेंगे, न बँटेंगे।
हम सब एक हैं, यही हमारी संस्कृति है।"

६. आधुनिक सन्दर्भ और सांस्कृतिक चेतना :

वाजपेयी जी मानते थे कि भारतीय संस्कृति केवल अतीत कि धरोहर नहीं है, बल्कि वह वर्तमान और भविष्य की प्रेरणा भी है। उनकी कविताएँ इस बात को स्पष्ट करती है कि संस्कृति यदि समयानुकूल परिवर्तन स्वीकार न करे तो वह जीवित नहीं रह सकती। अतः वाजपेयी जी की कविताओं में परंपरा और आधुनिकता का संतुलन देखने को मिलता है। वे वेद, उपनिषद और गीता के आदर्शों का स्मरण करते हुए भी विज्ञान, प्रैद्योगिकी और प्रगतिशील सोच की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं –

"नए दीप जलाएँगे हम, पर परंपरा की ज्योति से जोड़कर।

नए गीत गाएँगे हम, पर जड़ों से ताक़त लेकर।।"

७. वैश्विक दृष्टि और भारतीय संस्कृति :

वाजपेयी जी ने अपने काव्यों में केवल भारत तक ही नहीं, बल्कि समस्त मानवता तक सांस्कृतिक चेतना का विस्तार किया है। वे 'वसुधैव कुटुम्बकं' की भावना को आधुनिक वैश्विक सन्दर्भ में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं –

"धरती केवल हमारे लिए नहीं, यह समस्त मानवता की धरोहर है।

हम सब एक परिवार के अंग हैं, यही है भारत की संस्कृति।।"

वाजपेयी जी कि यह दृष्टि बताती है कि भारतीय संस्कृति आज भी विश्व शांति और मानव एकता के लिए मार्गदर्शक हो सकती है।

८. आधुनिक चुनौतियाँ और सांस्कृतिक समाधान :

आधुनिक युग की सबसे बड़ी समस्या भौतिकवाद और मूल्यहीनता है। वाजपेयी जी की कविताएँ इस संकट का समाधान भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में खोजती हैं। सत्य, करुणा, एकता और आत्मबल जैसे तत्व उनकी कविता में आधुनिक समाज के लिए मार्गदर्शन बनकर आते हैं।

"टूट सकती है तलवार, पर सत्य की शक्ति कभी नहीं।

डगमगा सकता है ताज, पर संस्कृति की नींव कभी नहीं।।"

९. भाषा और शैली में संस्कृति :

वाजपेयी की भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है। उनकी कविताओं में छंद और रस का संतुलन है, जो उन्हें भारतीय काव्य परंपरा से जोड़ता है। उनकी भाषा क्लिष्ट नहीं, बल्कि सहज, भावपूर्ण और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है। उनका शिल्प पारंपरिक हिन्दी काव्यशास्त्र से जुड़ा है। उनके छंदों में ओज, वीर रस और करुणा का समावेश होता है।

वाजपेयी जी ने अपनी कविताओं में सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रभक्ति जगाने के लिए ओजस्वी शैली का प्रयोग कुछ इस प्रकार से किया है –

"हम लड़ेंगे, हम बढ़ेंगे, हम कभी नहीं झुकेंगे।

संस्कृति का दीप जलाकर, हम अंधकार हरेंगे।।"

यह शैली पाठकों के भीतर जोश और उर्जा का संचार करती है।

निष्कर्ष:

अटल बिहारी वाजपेयी की कविताएँ केवल साहित्यिक रचनाएँ नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की गूढ़ व्याख्या हैं। यह केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह भारतीय सांस्कृतिक चेतना का सशक्त दस्तावेज़ है। उनमें न केवल अतीत की सांस्कृतिक स्मृति है, बल्कि वर्तमान की व्याख्या और भविष्य की दिशा भी है। वे अपनी कविताओं के माध्यम से भारतीयता, धर्म, परंपरा, नैतिकता और संघर्षशीलता जैसे सांस्कृतिक मूल्यों का संप्रेषण करते हैं। उनकी कविताएँ सांस्कृतिक चेतना की अमूल्य धरोहर हैं, जो भारतीय समाज के लिए मार्गदर्शक का कार्य करती हैं। साथ ही राष्ट्र और संस्कृति के प्रति गहन आस्था जगाती हुई आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्त्रोत भी है।

संदर्भ :-

1. मिश्रा, राम. (2008). *आधुनिक हिंदी कविता में सांस्कृतिक चेतना*. वाराणसी: ज्ञान मंडल लिमिटेड.
2. वाजपेयी, अटल बिहारी. (1980). *नई दिशा*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
3. वाजपेयी, अटल बिहारी. (1992). *क्या खोया क्या पाया*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.
4. वाजपेयी, अटल बिहारी. (1995). *मेरी इक्यावन कविताएँ*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.
5. शर्मा, रामस्वरूप. (2005). *अटल बिहारी वाजपेयी: कवि और राजनेता*. नई दिल्ली: साहित्य भवन.

नागार्जुन के उपन्यास में सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ

भायाणी संजयकुमार बाबुभाई*

sbbhayani2010@gmail.com

प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी साहित्य में नूतन विचारधाराओं के साथ-साथ अनेकानेक साहित्यिक विधाओं में लेखन कार्य शुरू हुआ। देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजकीय एवं आर्थिक स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में गद्य विधाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। इन गद्य विधाओं में कहानी, निबंध, नाटक एवं उपन्यास अग्रसर साहित्यिक विधाएँ रही हैं। भारतीय समाज में जब जीवन मूल्यों में परिवर्तन होने लगा तब सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के यथार्थ स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए उपन्यास विधा ने प्रेरणात्मक कार्य किया। हिन्दी साहित्य में मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों के साथ समाज की वास्तविक्ताओं एवं सांस्कृतिक स्थिति को यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया गया है। प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन सन 1936 के अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचंद जी ने साहित्य को जीवन की वास्तविक अनुभूतियों के साथ जोड़ने की बात कहीं हैं। इसी अध्यक्षीय भाषण से प्रेरणा लेकर प्रगतिवादी रचनाकारों ने साहित्य के माध्यम से वास्तविक जीवन को लक्ष्य विषय बनाकर साहित्यिक कृतियों का निर्माण शुरू किया। यहाँ हम ऐसे ही एक प्रगतिवादी रचनाकार नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक – सांस्कृतिक यथार्थ को देखने का प्रयास करेंगे।

नागार्जुन का साहित्य लोक जीवन की वास्तविक परिस्थिति का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत करता है। उनके 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बाबा बटेसनाथ', 'वरुण के बेटे', 'नई पौध', 'दु:खमोचन', 'कुंभीपाक', 'हीरक जयंति', 'उग्रतारा', 'जमनिया का बाबा', आदि उपन्यासों में सामाजिक – सांस्कृतिक जीवन की वास्तविक स्थिति का चित्रण हुआ हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ

नागार्जुन का जीवन युगीन सामाजिक परिस्थियों के बीच से गुजरा है। स्वयं के जीवन का भोगा हुआ यथार्थ अपनी रचनाओं में रतिनाथ तो कहीं - कहीं बलचनमा के रूप में प्रस्तुत हुआ है। कबीर की तरह आंखीन की देखी उनकी रचनाओं का मुलाधार हैं। बाबा नागार्जुन स्वयं घुम्मकड स्वभाव के थे अत: अपने रचनाकाल में पूरे भारत में घूमे तथा देश की सामाजिक स्थिति को देखा और फिर उनका यथार्थ सामाजिक स्वरूप प्रस्तुत किया।

नागार्जुन ने प्रथम उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में विधवा नारी की करुण कथा का यथार्थ रूप समाज के सामने रखा है। विधवा गौरी जब अपने विधुर देवर जयनाथ की वासना का शिकार होती है तब उसे गर्भ रह जाता है। यहाँ से विधवा नारी की करुण कथा शुरू होती है। उसका सामाजिक बहिष्कार होता है, तरह-तरह के अपमान जनक शब्द सुनने पड़ते हैं तब गौरी अकारण आयी इस आपति से छुट्कारा पाने के लिए अपने मायके चली जाती है। मायके में अपनी माँ की मदद से एक चमार जाति की औरत से गर्भ गिराया जाता है। तब वह चमारन उच्च जाति के बाह्यांडबर, रूढ़िवादिता, अमानुषी व्यवहार का पर्दाफाश करते हुए कहती है कि – "बड़ी जात वालों की तुम्हारी यह बिरादरी बड़ी मलिच्छ, बड़ी निठुर होती है मलिकाइन। हमारी भी बहु – बेटियाँ रांड हो जाती है पर हमारी बिरादरी में किसी के पेट से आठ – आठ, नौ – नौ महीने का बच्चा निकालकर जंगल में फेंक आने का रिवाज नहीं है। आह कैसा कलेजा होता है तुम लोगों का ! मइया री मइया !"[1] यह कथन वर्तमान समाज की भी वास्तविकता का चित्र प्रस्तुत करता है।

* **पीएच. डी. शोधार्थी, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय-राजकोट**

नारी जीवन की दास्तान प्रस्तुत करने वाले नागार्जुन अशिक्षा के कारण पुरुष प्रधान समाज में नारी जब विधवा, असहाय या त्यक्ता होती है तब आर्थिक उपार्जन के लिए जब वह छोटा – बड़ा काम ढुढ़ने जाती है तो उसे हीन दृष्टि से देखा जाता है। कभी-कभी एसी नारियों के प्रति सहानुभूति दर्शाने वाले लोग उसे आश्रमों में छोड़ आते हैं तब नागार्जुन 'कुंभीपाक' उपन्यास में 'संजीवनी आश्रम' का जिक्र करते हुए राय साहब की उपस्थिति में चंपा से कहलवाते हैं कि – "इस आश्रम शब्द से मैं बहुत घबराती हूँ। रही होगी इनके पीछे कोई अच्छी भावना, अब तो वे आश्रम अनैतिकता के अड़े है"(2) इस प्रकार बड़े-बड़े आश्रमों के भीतर हो रहे काले कामों का नागार्जुन ने यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है।

समाज में जातिवाद को वोट बैंक मानकर चलनेवाले राजनेताओं की स्वार्थवृति का 'अभिनंदन' उपन्यास में नागार्जुन ने बुझावनराम के जीवन की वास्तविक कथा से साक्षात्कार कराया है। बुझावनराम निम्न जाति से विधायक थे फिर भी वह जातिवादी व्यवस्था का सामान्य लोगों पर क्या प्रभाव पड़ता है उसका जिक्र करते हुए अपने विधायकी जीवन की आपबीती सुनाते हैं - "ऊँची जात की हाँ में हाँ मिलाना ही मेरा खास काम रहा है। दल-विशेष ने मुझे खरीद लिया है, शोषक वर्गों की जी-हजूरी और उनका ही हित साधन मेरे इस जीवन का परम उद्देश्य है।"(3) इस तरह साम, दाम, दंड की नीति से आम जनता का शोषण करते हुए राजनेताओं के जीवन गतिविधि का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

भारत में जमींदारी एवं महाजनी सभ्यता के कारण सामान्य लोग तथा कृषकों के जीवन के शोषण की कहानी 'बलचनमा' उपन्यास में हैं। इस उपन्यास में कृषकों की निर्धनता, बेकारी शोषण और अत्याचार के कई वास्तविक चित्र देखने को मिलते हैं। उपन्यास का नायक बलचनमा कहते हैं – "हमारे पास कुल सात कट्ठा जमीन थी। मझले मालिक सौ कसाई के एक कसाई थे। बापू के मरने पर अंगूठे का निशान ले लिया था। सूद देते-देते हम थक गये। मूल ज्यों का त्यों खड़ा था।"(4) इस प्रकार सूदखोरों की वास्तविकता का पर्दाफाश नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में किया हैं।

नागार्जुन ने 'नईपौध' उपन्यास में वर्ग भेद एवं छुआछूत को प्रस्तुत कर के तत्कालीन सामाजिक विषमताओं को पाठकों के सम्मुख रखा हैं। प्राचीन काल से ही हिन्दू समाज में वर्ग व्यवस्था एक आधारशिला रही है, किन्तु समाज की सब से ज्यादा सेवा करने वाला वर्ग जब अछूत समझा जाने लगा तब सामाजिक वैमनस्य खड़ा होने लगा। कालान्तर में निम्न काम करने वाले वर्ग को सामाजिक,आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। "नईपौध उपन्यास में खोखा पंडित उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए भोले-भाले लोगों को धर्म के नाम पर ठगते हैं और लकड़ियों को बेचना जैसे जघन्य अपराध करते हैं।" (5) इस प्रकार वर्ग भेद एवं छुआछूत का वास्तविक वर्णन नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में किया हैं।

कुल मिलाकर नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का यथा – योग्य समकालीन परिस्थिति के आधार पर चित्रण किया है जो समाज को वास्तविकता की ओर ले जाता है। यही वास्तविकता सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में सहायक सिद्ध होती हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों में सांस्कृतिक यथार्थ

ग्रामीण संस्कृति के सितारे नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में रीति-रिवाज, रूढ़ि गत परंपरा, मान्यताओं, अंधविश्वासों आदि का यथार्थ चित्रण किया हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति का लेखा-जोखा उसके उपन्यासों में देखने को मिलता हैं। 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में एक स्थान पर वह लिखते हैं कि - "बैल ठहरे शिवजी के वाहन। इनके चारों पैर धर्म के ही चार लक्षण हैं। इसलिए ब्राह्मण न हल जोतते हैं, न गाड़ी चलाते हैं, चढ़ना भी मना है। " (6) यहाँ हिन्दू धर्म के देवाधिदेव महादेव की महिमा का वर्णन मिलता है।

लोक रीतियाँ और प्रथाएँ लोक संस्कृति के उतने ही महत्वपूर्ण अंग हैं जितने लोक-मानव के अंध - विश्वास। मुण्डन, छेदन, सुन्नत, श्राद्ध तथा चालीसा आदि लोकाचार, लोक – मानव में प्रचलित हैं। 'बलचनमा' उपन्यास में छोटी मलिकाइन के बेटे के जनेऊ संस्कार में " सोलह तो छागर (बकरों) की बलि चढ़ी थी,चार खस्सी पीटे गये थे। तिरहतिया बराहमन औकात रही तो लड़के का जनेऊ बड़ी धूम-धाम से करते हैं।" (7) इस प्रकार रीति रिवाज के नाम पर मूक पशुओं की बलि देना कितना उपयुक्त है ?

'वरुण के बेटे' उपन्यास में मछुओं की लोक प्रथाओं का अंकन किया गया हैं। महुआ जाति कमला मैया की विशेष पूजा अर्चना करते हैं। मंगल की पत्नी को लड़का होने पर छठी के दिन भोज-भात, नाच-गाना और हंसी-खुशी का मंगल आयोजन किया जाता हैं। रंगारंग और मनोरंजन के लिए बस्ती के युवकों की बजरंग मंडली भी आती हैं। वस्तुतः लोग अपनी सुख सुविधा के अनुसार शुभ मुहूर्त निकलवाकर परंपरागत प्रसंगों का आनंद भी मनाते हैं।

नागार्जुन के 'कुम्भीपाक' उपन्यास में लोक संस्कृति में लोकोपचार को विशेष महत्व दिया जाता है। उसके लिए भगवान ही सबसे बड़ा सहारा है तभी तो निर्मला बच्चे न होने पर सोचती है -" भगवान की लीला अद्भुत है। कही ढेर का ढेर कहीं अंधेर।"[8] तो दूसरी ओर कई स्त्रियाँ तंत्र – मंत्र और भभूत चाटकर बच्चे पैदा करने में विश्वास करती हैं। वस्तुतः अंध-विश्वास के चलते इस उपन्यास में स्त्रियाँ तंत्र – मंत्र में विश्वास रखती हैं।

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में मिथिला के लोकमानव के लोक विश्वास, रीति-रिवाज, रूढ़ियाँ आदि का वर्णन मिलता हैं। जो वास्तविक रूप से तत्कालीन सांस्कृतिक स्थिति का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष

नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ का जो व्यापक और गहन चित्र उभरकर आता है, वह उनके जीवनानुभव, लोकसंवेदना और युगबोध का सजीव दस्तावेज़ है। उन्होंने समाज की जटिल समस्याओं—जैसे जातिवाद, वर्गभेद, स्त्री-वंचना, शोषण, गरीबी, और धार्मिक अंधविश्वास—को केवल विषय के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय दृष्टि से देखा और प्रस्तुत किया। उनके उपन्यासों का प्रत्येक पात्र समाज की किसी न किसी सच्चाई का प्रतीक बन जाता है।

नागार्जुन की रचनाएँ लोक जीवन की मिट्टी से जुड़ी हुई हैं। उन्होंने ग्रामीण संस्कृति, लोकरीतियों, लोकविश्वासों और सामाजिक विषमताओं को जिस सहजता से प्रस्तुत किया है, वह उन्हें यथार्थवादी परंपरा का सशक्त प्रतिनिधि बनाती है। उनके यहाँ समाज के निम्न वर्गों की पीड़ा, किसानों की विवशता, स्त्रियों का संघर्ष, तथा धार्मिक-आडंबरों की पोल खोलने वाली निर्भीक दृष्टि दिखाई देती है। सांस्कृतिक स्तर पर नागार्जुन भारतीय लोकसंस्कृति के जीवंत पहलुओं को भी उजागर करते हैं—जहाँ परंपरा और आस्था दोनों हैं, किंतु उनके भीतर व्याप्त अंधविश्वास और रूढ़िवाद को भी उन्होंने चुनौती दी है। इस प्रकार नागार्जुन का उपन्यास संसार समाज और संस्कृति की यथार्थवादी व्याख्या करता है तथा परिवर्तन की चेतना जगाने का कार्य करता है।

अतः कहा जा सकता है कि नागार्जुन के उपन्यास केवल साहित्यिक कृतियाँ नहीं, बल्कि समाज का दर्पण हैं—जो अपनी सादगी, सत्यता और मानवीय दृष्टि के कारण हिन्दी उपन्यास साहित्य में अमिट छाप छोड़ते हैं।

संदर्भ :-

1. नागार्जुन. (1956). *रतिनाथ की चाची*. नागार्जुन संपूर्ण उपन्यास, भाग–2. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 143.
2. नागार्जुन. (1952). *कुंभीपाक*. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 526.
3. नागार्जुन. (1950). *अभिनंदन*. नागार्जुन संपूर्ण उपन्यास, भाग–1. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 175.
4. नागार्जुन. (1952). *बलचनमा*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 60.
5. गुप्त, बाबूराम. (1985). *उपन्यासकार नागार्जुन*. वाराणसी: भारती प्रकाशन. पृ. 66.
6. जोगराणा, विष्णु. (2001). *नागार्जुन के उपन्यासों में संस्कृति*. अहमदाबाद: साहित्य सेवा प्रकाशन. पृ. 120.
7. नागार्जुन. (1952). *बलचनमा*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 134.
8. जोगराणा, विष्णु. (2001). *नागार्जुन के उपन्यासों में संस्कृति*. अहमदाबाद: साहित्य सेवा प्रकाशन. पृ. 12.

भारतीय संस्कृति की धरोहर 'रामचरितमानस'

डॉ. मारांबहन जेरामभाई भोया*

thorats709@gmail.com

संस्कृति मानवशास्त्र की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवधारणा है जिसका प्रयोग भिन्न-भिन्न कालों एवं संदर्भों में भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है। इस अवधारणा को अनेक द्रष्टिकोणों से परिभाषित किया गया है। यथा- ऐतिहासिक, दार्शनिक, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय और मानवशास्त्रीय द्रष्टिकोण आदि से साधारण अर्थों में 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग 'सुसंस्कृत' अथवा 'संस्कार' के अर्थ में किया जाता है। साहित्यिक नीतिशास्त्र, दार्शनिक एवं एतिहासिक अर्थों में 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग सौंदर्य चेतना, बौद्धिक उत्कर्ष, नैतिकता, मधुरता, शिक्षण, प्रशिक्षण से प्राप्त सामाजिक शिष्टता तया कुछ अन्य विशिष्ट लक्षणों को इंगित करने के लिए किया गया है।

भारतीय वाङ्मय में 'संस्कृति' का प्राचीन काल से ही महत्त्व मिलता है यद्यपि वेदों में 'संस्कृति' का कोई स्पष्ट स्वरूप व्यंजित नहीं हुआ है। 'संस्कृति' का उल्लेख मिलता है। जैसे की 'ऐतरेय ब्राह्मण' में 'संस्कृति' को स्वरूपित करने का प्रयास लक्षित होता है। वहाँ 'संस्कृति' मानव के वैयक्तिक और समष्टिगत उत्कर्ष की प्रतिति कराती है।

भारत की संस्कृति का मूल मंत्र है- 'आत्मानं विजानीहि' (अपने आपको जानो) हमारे भारतवर्ष की संस्कृति मुख्य रूप से आध्यात्मिक संस्कृति है। डॉ. रामेश्वर लाल खंडेलवाल के अनुसार- "भारतीय संस्कृति, भारतीय जलवायु में एक विशेषप्रकार की जीवनद्रष्टि, जीवन-मूल्यों के प्रति आस्था तथा एक आदर्श विशेष की प्राप्ति के लिए सतत अभ्यास का प्रतीक है- हमने भारतीय जीवन के कतिपय मूलभूत गुणों, विशेषताओं या मूल्यों को सिद्ध विवादातीत रूप में स्वीकार कर रखा है। वे ही एक शब्द में हमारी संस्कृति है। भारतीय संस्कृति विश्व-संस्कृति का एक अंश या अंग है।"

द्वारिका प्रसाद के अनुसार - "साधारणतया भारत से संबंध रखने वाली संस्कृति को 'भारतीय संस्कृति' कहा जा सकता है। भारतीय संस्कृति की इस पुनीत गंगा में नदी– नालों का मिश्रण अवश्य हुआ है फिर भी उसकी पावनी शक्ति इतनी प्रबल है कि सबको गांगेय रूप मिल गया है और अपनी इसी विशेषता के कारण उसका अनिश्वर रूप यहाँ की कला-कृतियों, आचार-विचारों आदि में सुरक्षित है।" 'अशोक मानक विशाल शब्दकोश में संस्कृति के अर्थ शुद्धि, सफाई संस्कार, सुधार किसी व्यक्ति, जाति, राष्ट्र आदि की वे सब बातें जो उसके मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौधिक विकास की सूचक होती हैं।

भारतीय संस्कृति की परिभाषा थोड़े शब्दों में देना कठिन है, क्योंकि भारत का एक लम्बा इतिहास है जिस पर अनेक जातियों तथा धर्मों का प्रभाव पड़ता रहा है। यहां की शासन व्यवस्था, सामाजिक संगठन, दर्शन, साहित्य, कला आदि समयानुसार विभिन्न प्रकार से प्रभावित होते हैं फिर भी भारतवर्ष की संस्कृति अपना एक चरम आदर्श रखती है जो आध्यात्मिकता की और उत्प्रेरित करती है। 'संस्कृति' का रूप राष्ट्रीयता भी होता है |

'धरोहर' हिन्दी शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ 'विरासत' है। यह एक सांस्कृतिक या पारंपरिक प्रथाओं और ज्ञान को संदर्भित करने के लिए उपयोग किया जाता है जो पीढ़ियों से चला आ रहा हैं। 'रामचरितमानस' तुलसीदासजी द्वारा अवधी भाषा में रचित एक काव्यात्मक ग्रंथ है, जो भारतीय संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण 'धरोहर' है।

तुलसीदासजी ने जिस युग में जन्म धारण किया, वह अनेक विश्रृंखलताओं का युग था। राजनीतिक दृष्टि से विदेशी जाति ने भारतीय जनता को पूर्णतः अपने शासन के पंजे में जकड़ लिया था; धर्म की दृष्टि से परंपरागत हिन्दू धर्म इस्लाम के झंडे के आगे नतमस्तक सा हो रहा था, समाज के आदर्श मुल्ला-मौलवियों एवं पण्डितों की परस्पर विरोधी उक्तियों के कारण लुप्त

* **योगीजी महाराज महाविध्यालय-धारी, जी. अमरेली, पिन.365640**

प्राय होते जा रहे थे, पारिवारिक संबंध एवं दांपत्य जीवन की मधुरता भी नैतिकता के अभाव में दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जा रही थी। साहित्य के क्षेत्र में कबीर जैसा प्रतिभाशाली तो कभी-कभी ही अवतरित होता था। नई संस्कृति के वैभव ने हमारे प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों को निस्तेज तो कर दिया, किंतु वह हमारे हृदय की गहराई में प्रविष्ट नहीं हो सकी क्योंकि सोलहवी-सत्रहवीं शताब्दी में हिन्दू जाति को एक ऐसे लोकनायक, लोकनेता प्राप्त हुए, जिन्होंने यह कार्य एसी लाघवता से किया कि स्वदेशी एवं विदेशी शक्तियों को वर्षों बाद पता चला कि कहीं कुछ हो गया है। इन लोकनायक महापुरुषों और महात्माओं में तुलसीदास भी एक थे।

तुलसीदासजी ने एक ओर प्राचीनता को अपनाया दूसरी ओर उन्हें उसका संस्कार नये ढंग से करना पड़ा। 'रामचरितमानस' के 'राम' का आदर्श प्राचीनता का प्रतीक है तो उसे जिस देवत्व से अभिभूषित किया गया, वह नवीनता की देन है। भारतीय संस्कृति के समस्त इतिहास में पुरुषोत्तम राम का चरित ही ऐसा है, जिसे इस देश के सभी प्रमुख धर्मों एवं आचार्यों ने महत्त्व प्रदान किया है। उसके प्रति प्राचीन हिन्दू धर्म की आस्था तो चिरकाल से ही रही हैं, बौद्धों, जैनियों, योगियों, वैष्णवों और संतों को भी श्रद्धा रही है।

इस समन्वयवाद का श्रेय 'रामचरित' को है तो तुलसीदासजी की क्या विशेषता हो सकती है। किंतु ऐसी बात नहीं है। वन में शताधिक जड़ी-बूटियों के विद्यमान रहते हुए भी हम उनका उपयोग नहीं कर सकते, किंतु एक वैद्य उनके रहस्य को जानकर उन्हीं जड़ी-बूटियों से सहस्त्र रोगियों का उपचार करता है क्या उस चिकित्सक का महत्त्व इसलिए गौण हो जायेगा कि उसने अपनी शक्ति के बल पर नहीं, सिर्फ औषधियों के बल पर उपचार किया। चिकित्सक की सफलता इसी में है कि उसने सही वक्त पर, रोगी को सही औषधि दी। तुलसीदासजी ने भी 'रामचरित' के पौधे को ज्यों का त्यों उपयोग में नहीं लिया, उसे अनेक द्रव्यों से समन्वित करके एक एसा रसायण तैयार किया, जो सभी प्रकार की आधि-व्याधियों के लिए 'रामबाण' बन गया।

संस्कृति किसी देश या जाति विशेष की मौलिक देन नहीं हुआ करती, किंतु वह सारे संसार के मनुष्यों की एक सामान्य मानव-संस्कृति का प्रतिरूप होती है। भारतीय संस्कृति भारतीय जनता की विविध साधनाओं की परिणति ही है जो पूरी तरह से अविरोधी धर्म से जुड़ी हुई है। 'महाभारत' में भी कहा गया है कि जो धर्म दूसरे धर्म को बाधित करता है, वह धर्म नहीं है, कुधर्म है। सच्चा धर्म अविरोधी होता है। तुलसीदास का धर्म भी अविरोधी है यह धर्म मानव की जय यात्रा में सहायक होता है। ऐसा धर्म ही तुलसीदास जी की दृष्टि में भारतीय संस्कृति की रीढ़ है। विश्व की संपूर्ण प्रगति-विकास इसी संस्कृति पर निर्भर है। इसका निर्माण बुद्धि, अनुभव, परंपरा, संस्कार और कर्मों से होता है। तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' में तत्कालिन संस्कृति को पूरी तरह से आत्मसात् करके सत्य की प्रतिष्ठा पर बल देकर परिष्कृत बौद्धिक चेतना का परिचय धर्म, दर्शन, भक्ति, नीति आदि उदात्त मूल्यों के माध्यम से प्रस्तुत करने का' प्रयास किया है।

श्रेष्ठ साहित्यकार अपने युग की समस्याओं से मुंह मोड़कर साहित्य-साधना नहीं करता है, वह युगबोध से जुड़कर युग को संदेश भी देता है। 'रामचरितमानस' में अध्यात्म एवं दर्शन का रूप विद्यमान है। सृष्टि के कर्ता 'ब्रह्म' के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए तुलसीदासजी ने लिखा है-

"बिनु पग चलई, सुनह बिनु काना।

कर बिनु करम, करइ बिधि नाना ॥"

उन्होंने 'जीव' के विषय में भी कहा है-

"ईश्वर अंस जीव अविनासी।

चेतन अमल सहज सुखरासी ॥"

तुलसीदासजी की भक्ति को 'नवधाभक्ति' माना गया है। जिसमें सत्संग, प्रभुप्रेम, गुरुपदसेवा, हरिकिर्तन, विश्वास, विरति, लोकसेवा, संतोष और निश्छलता। मानव शरीर भक्ति के साधनों के लिए आधार भूत है। नाना पुराणों, निगमों-आगमों का सार 'रामचरितमानस' भक्ति से प्रारंभ होता है। श्रद्धा-विश्वास की प्राप्ति के लिए उन्होंने शिव-पार्वती की स्तुति की है-

"भवानी शंकरो वंदे श्रद्धा विश्वास रुपिणौ।

यांम्यो बिना न पश्यंति सिद्धा: स्वांत: स्वथमीश्वरम् |"

तुलसीदास जी मानव मात्र के प्रति अटूट श्रद्धा व्यक्त करते हैं. वे अद्वैतवादी मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हुए कहते हैं.

"सीया राम मय सब मान न मोहा।

लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥

जिनके कपट दम्भ नहीं माया।

तिनके हृदय बसहुं रघुराया ॥"

'रामचरितमानस' में सत्य, अहिंसा, परोपकार, विश्वबंधुत्व जैसे मानवीय संबंधों का भी स्पष्ट वर्णन मिलता है। सत्य को सबसे बड़ा धर्म माना है-

"धर्म न दूसर सत्य समाना।

आगम निगम पुरान बखाना ॥"

तुलसीदास जी ने 'रामराज्य' का आदर्श सारे शासकों के सामने रखा है। जिसे महात्मा गांधी ने अपने जीवन का आदर्श और सिद्धांत घोषित किया 'रामराज्य' के रूप में जिस आदर्श समाज की कल्पना की है, उसमें स्वतंत्रता, न्याय, त्याग, प्रेम, मैत्री आदि का भाव सम्मिलित है। 'रामराज्य' में प्रत्येक जन को उत्पादन-प्रणालियों के साधनों के उपयोग की पूरी स्वतंत्रता है। परिणाम यह हुआ कि संपदा की कमी नहीं हुई और लोग सुखी रहे।

'रामराज्य' में जनसामान्य तक के लिए निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। कला और शिल्प, साहित्य और संगीत का विकास भी हुआ। व्यवस्थित जीवन प्रणाली, शुद्ध आहार–विहार और संयत जीवन होने के कारण दुःखों का नामोनिशान नहीं था। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बताई हुई नीति में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।

'रामचरितमानस' में त्याग का वर्णन बड़े ही विस्तार से मिलता है। राम, लक्ष्मण, भरत, सीता आदि पात्र त्याग की मूर्ति है। राम, लक्ष्मण एवं भरत की त्याग शीलता का चित्रण करते हुए समाज के सामने त्याग का उत्तम आदर्श स्थापित किया है। सच्चे मित्र से स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। उन्होंने ऐसे मित्र की कल्पना की है, जो अपने मित्र को पाप से हटाकर सुमार्ग की ओर प्रवृत्त करें।

तुलसीदासजी ने राम परिवार के रूप में एक आदर्श परिवार की झाँकी प्रस्तुत कर उसे आचरण में लाने का संकेत किया है। पारिवारिक जीवन की सफलता के लिए पति-पत्नी में पारस्परिक श्रद्धा, विश्वास एवं प्रेम भाव अनिवार्य है। दांपत्य प्रेम का बड़ा ही मर्यादित एवं सुंदर चित्रण किया है। दांपत्य मतभेद के भयंकर दुष्परिणामों को चित्रित किया है। महाराज दशरथ के निर्णय के विरुद्ध कैकेयी के द्वारा हठ करने पर श्री रामचंद्र, लक्ष्मण और सीताजी को वनवास के कष्ट उठाने पड़े और राजा दशरथ की मृत्यु से कैकेयी को जीवन भर के लिए कलंक ही मिलता है। दांपत्य की सफलता के लिए जहाँ पत्नी का पतिव्रता होना आवश्यक है, वहाँ पति का भी एक नारी व्रती होना आवश्यक है, श्रीराम तो एक नारी व्रती थे ही, उनके राज्य के नागरिक थी एक नारी व्रती थे।

पारिवारिक शांति में भातृ व्यवहार का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपने भाइयों के प्रति दुर्व्यवहार के कारण बलि तथा रावण का विनाश हुआ और अपने भाई लक्ष्मण और भरत के साथ सदव्यहार एवं प्रेम के कारण राम को विजय मिली।

नारी हमारी सांस्कृतिक चेतना का एक विशिष्ट अंग रहा है। तुलसीदासजी ने नारी के प्रति संवेदनशील एवं नीतिपूर्ण अभिव्यक्ति 'रामचरितमानस' में माता मैना के कथन के माध्यम से अपनी पुत्री पार्वती के विदा करते समय करवाई है-

"कत विधि सृजि नारि जगह माही,'

पराधीन सपने हु सुख नाही ॥"

उन्होंने कभी नारी की निंदा नहीं की है 'रामचरितमानस' में एक स्थल पर बताया है-

"ढोल गँवार शुद्र पशु नारी,

सकल ताड़ना के अधिकारि।।"

इसे देखकर कुछ आलोचक तुलसीदासजी को नारी विरोधी मानते हैं, पर यहाँ 'नारी' विलासी, कामिनी का रूप धारण करती है वह उनकी दृष्टि में ही नहीं, सभी श्रेष्ठ लोगों की दृष्टि में भी निंदनीय है। पतिव्रता नारियों की महिमा का गौरव गान भी किया है- कौशल्या, सुमित्रा, मैना, सुनयना, सती पार्वती, सीता, अनसूया, शबरी, तारा, मंदोदरी, सुलोचना, त्रिजटा और ग्राम वधुएं आदि नारियों का चित्रण उदात गुणों से युक्त है। 'शबरी' अशिक्षित वनवासी नारी है। उन्होंने उसे एक भक्त नारी का गौरव और महत्व प्रदान किया है।

निष्कर्ष

आज की आधुनिक एवं भोगवादी संस्कृति के दौर में अवसरवादिता, भष्ट्राचार, अनाचार, शोषण, अपराधी जगत का बढ़ता हुआ वर्चस्व आदि प्रवृतियों का प्रसार भारतीय समाज में तीव्र गति से बढ़ता ही जा रहा हे जिससे समाज में प्रेम, आपसी विश्वास, सत्य, शील, विवेक, त्याग आदि मूल्यों का पतन हो रहा है ऐसी परिस्थिति में 'रामचरितमानस' में तुलसीदासजी ने जिन उदात्त एवं आदर्श मूल्यों का चित्रण किया है अगर भारतीय समाज इन मूल्यों का आचरण करें तो हमारे समाज और राष्ट्र का अवश्य कल्याण होगा।

संदर्भ:

1. डहेरिया, खेमसिंह (सं.). (2009). *तुलसी साहित्य*. नई दिल्ली: अध्ययन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.
2. तुलसीदास, गोस्वामी. (2015). *रामचरितमानस* (हनुमान प्रसाद पोद्दार, टीकाकार). गोरखपुर: गीता प्रेस.
3. पांडेय, रामसजन. (न.वि.). *संस्कृति और सौंदर्य*. दिल्ली: संजय प्रकाशन.
4. भारद्वाज शास्त्री, डॉ. शिवप्रसाद. (न.वि.). *आधुनिक हिंदी काव्य और संस्कृति*. कानपुर: चंद्रलोक प्रकाशन.
5. भारद्वाज शास्त्री, शिवप्रसाद (सं.). (2007). *मानक विशाल हिंदी शब्दकोश*. नई दिल्ली: अशोक प्रकाशन.
6. रावत, हरिकृष्ण. (2013). *मानवशास्त्र – विश्वकोष*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन.

आजादी का प्रतिबंधित दस्तावेज : 'राजस्थान की पुकार'

रामप्यारी*

22hhph20@uohyd.ac.in

शोध सार

भारत का स्वाधीनता संग्राम केवल एक राजनीतिक विद्रोह नहीं था, बल्कि यह सांस्कृतिक, सामाजिक एवं वैचारिक धरातल पर भी एक व्यापक आंदोलन था। राजस्थान में इसका स्वरूप थोड़ा भिन्न रहा। ब्रिटिशों के साथ हुई सहायक संधियों ने इस प्रदेश के राजाओं को आंतरिक रूप से कमजोर बना दिया था, जिसके परिणामस्वरूप प्रजा को शासन के दोहरे रूप से पीड़ित होना पड़ा। इसी दोहरे शासन के विरुद्ध राजस्थान में अनेक आंदोलन हुए, जिनमें किसान, आदिवासी और प्रजामंडल आन्दोलनों की विशेष भूमिका रही। इन आन्दोलनों के दौरान क्रांतिकारी साहित्य की रचना हुई, जिन्हें 'राजद्रोह' के आरोप में जब्त कर लिया। ब्रिटिश और देशी रियासतों के विरुद्ध होने वाले संघर्षों में ये प्रतिबंधित दस्तावेज क्रांतिकारियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के बीच सेतु का कार्य करते थे। बाबा नृसिंहदास द्वारा लिखित पुस्तक 'राजस्थान की पुकार' ऐसे ही दस्तावेजों में से एक है। राजस्थान के स्वाधीनता आंदोलन में बाबा नृसिंहदास की महत्वपूर्ण भूमिका रही। गांधीजी के आहान पर उन्होंने अपनी संपूर्ण संपत्ति राष्ट्र को समर्पित कर दी थी, जो उनके भीतर राष्ट्र के प्रति समर्पण को दर्शाता है। व्यापारी परिवार से संबंध रखने वाले बाबा नृसिंहदास ने जीवन भर खादी धारण की और सांसारिकता से दूर रहे। 'राजस्थान की पुकार' पुस्तक में लेखक ने अपने आंतरिक जीवन की पीड़ा व्यक्त करने के साथ-साथ जनता की आवाज और सपनों को स्वर दिया है। इस पुस्तक में देशी रियासतों के कठोर शासन और ब्रिटिश सत्ता की शोषणकारी नीतियों की तीखी आलोचना की गयी है। साथ ही, इसमें लेखक का कांग्रेस से मोह भंग और संगठनों के आंतरिक यथार्थ को भी उजागर किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थान के स्वतंत्रता आंदोलन, उसमें बाबा नृसिंहदास की भूमिका तथा उनकी कृति 'राजस्थान की पुकार' को आजादी के एक महत्वपूर्ण दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द :

आज़ादी, प्रतिबंध, स्वतंत्रता, प्रजामंडल, राष्ट्र, आंदोलन, संग्राम, असहयोग, जब्ती, राजद्रोह, दस्तावेज़, रियासत, दमन, शोषण, अभिव्यक्ति, मंडल, क्रांतिकारी, संघर्ष, विचारधारा।

मूल आलेख

"दूला न देणी आपणी, हालरियां हुलराय।

पूत सिखावे पालणै, मरण बड़ाई माय।"[1]

राजस्थान का इतिहास वीरता और बलिदान की कहानियों से महिमा मंडित है। यहाँ की धरती पर महाराणा प्रताप जैसे वीर क्षत्रिय और कविराजा सूर्यमल्ल मिश्रण और बाँकीदास आशिया जैसे कवि हुए, जिन्होंने इस वीर भूमि की शौर्य गाथाओं को अपनी लेखनी के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। सूर्यमल्ल मिश्रण द्वारा लिखित उपर्युक्त पंक्ति में एक माँ अपने पुत्र को पालने में झुलाते हुए धरती की रक्षा के लिए अपने प्राणों के बलिदान की शिक्षा देती है। भारतीय राष्ट्रीय जागरण के सन्दर्भ में गोपीनाथ शर्मा लिखते हैं- "भारतीय राष्ट्रीय जाग्रति एक आकस्मिक घटना नहीं थी, वरन् वह उस आर्थिक शोषण और राजनीतिक असंतोष का परिणाम था जो ब्रिटिश शासन की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण विकसित हुआ था। भाग्यवश विदेशी संपर्क और शिक्षा से यहाँ एक ऐसा वर्ग बन गया था जो समाज में सुधार एवं भारतीय शासन व्यवस्था में हेर फेर चाहता

* **शोधार्थी – (हिंदी विभाग), हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय**

था।"[2] भारत की आजादी की रुपरेखा एक दिन में तैयार नहीं हुई थी, बल्कि सन् 1857 से आरंभ हुआ यह संघर्ष 1947 ई. तक चला। इन वर्षों में देश में अनेक आंदोलन हुए। इन आंदोलनों के दौरान लिखा गया क्रांतिकारी साहित्य सत्ता की दृष्टि से बच नहीं पाया और उस पर पाबंदी लगा दी गई। इतनी पाबंदियों के बावजूद यह साहित्य जन-जन की आवाज़ बना और साहित्यकार दमनकारी नीतियों का सामना कर देश की आजादी के वाहक बने। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर लगने वाले प्रतिबंधों पर विचार करते हुए राघवेन्द्र राघव लिखते हैं- "अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध से अभिव्यक्ति और तीव्र हो जाती है। जब-जब अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध लगा है, विचारों की तीक्ष्णता से आंदोलन का प्रादुर्भाव हुआ है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर लगने वाले पहरे के आलोक में नयी विचारधाराओं का जन्म हुआ है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ है मनुष्य का मनुष्य होना। अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध का अर्थ है मानव को दासता की बेड़ियों से जकड़कर उसे जानवरों सरीखा जीवन जीने के लिए विवश करना।"[3] इस प्रकार स्वतंत्र भारत का इतिहास अनेक बलिदानों और संघर्षों की कहानियाँ कहता है।

आजादी के दस्तावेजों में बाबा नृसिंहदास का योगदान प्रमुख हैं। इनका जन्म 31 जुलाई, 1890 ई. में नागौर में हुआ। बचपन में ही इनकी माँ का देहांत हो गया था, इसलिए पालन-पोषण पिता ने ही किया। इनकी शिक्षा-दीक्षा नागौर, बीकानेर और हैदराबाद से हुई। पिता के व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए मद्रास चले गए, परन्तु उसमें मन न लगने पर कहीं और नौकरी की और बाद में गुजराती व्यापारी मंगलदास के साथ मिलकर कपड़े की दुकान खोली। इनका विवाह शांतिदेवी से हुआ। विवाहोपरांत पुन: मद्रास चले गये और वहाँ व्यवसाय शुरू किया। इसके साथ ही आजादी के आन्दोलनों में भाग लेने लगे, जिनका प्रभाव इनके निजी जीवन पर भी पड़ा। 'सादा जीवन और उच्च विचार' वाली कहावत मानो इनके जीवन पर लिखी गई हो। सत्यदेव विद्यालंकार लिखते हैं- "मुझे वह दिन याद है जब वह अपनी पत्नी के साथ आडंबररहित खादी के सीधे-सादे वेश में वर्धा में पहली बार आए थे। बाबाजी का परिचय यह कहकर दिया जाता था कि वह मद्रास के अपने बड़े कारोबार और स्टोर को समेटकर गांधीजी के असहयोग आंदोलन में सम्मिलित हुए हैं। मारवाड़ी तथा अग्रवाल समाज में उन दिनों किसी महिला का खादी पहनना बहुत बड़ी बात समझी जाती थी और सोना-चांदी का परित्याग करना तो क्रांति का सूचक माना जाता था।"[4] जीवन के इन्हीं विचारों ने उन्हें सच्चा राष्ट्रभक्त बनाया। देश सेवा हेतु इन्होंने मद्रास से श्री क्षेमानंद राहत के साथ मिलकर 'भारत तिलक' पत्र का प्रकाशन शुरू किया, जिस पर प्रतिबंध लगाया गया। इस सन्दर्भ में उल्लेख मिलता है-"1932 में बाबाजी फिर जेल में धर दिए गये। इस बार उन्होंने इस अवसर का उपयोग स्वाध्याय में किया और शैक्षणिक योग्यता इस सीमा तक बढ़ाई कि आगे चलकर उन्होंने बंबई से 'वीरभूमि' और जयपुर से 'प्रभात' नामक साप्ताहिकों का संपादन स्वयं ने किया। आपने 'राजस्थान की पुकार' नामक एक पुस्तक का लेखन भी किया जो ब्रिटिश सरकार द्वारा तत्काल जब्त कर ली गई। स्वाधीनता के बाद बाबाजी ने दिल्ली से 'नेताजी' नामक एक अल्पजीवी दैनिक पत्र का भी प्रकाशन किया।"[5]

गांधीजी द्वारा चलाए गए 'असहयोग' आंदोलन में इन्होंने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, विदेशी वस्त्रों की होली जलाई और खादी पहनने लगे। सन् 1921-22 में जब गांधीजी मद्रास गये तो बाबा नृसिंहदास उनसे मिले और देश सेवा में सहयोग की इच्छा व्यक्त की। इस पर गांधीजी ने त्याग करने को कहा और उसी समय बाबा नरसिंहदास ने अपनी दुकान की चाबियाँ उनके चरणों में समर्पित दी और कहा- "मेरी दुकानों और गोदामों में रखा माल राष्ट्र के चरणों में समर्पित है। आप ये चाबियाँ संभालें और उसका जैसा चाहे उपयोग करें।"[6] राष्ट्र के लिए सर्वस्व समर्पण की इस भावना को देखकर गांधीजी ने उन्हें 'बाबाजी' कहा और यह नाम सदा के लिए उनके साथ जुड़ गया। गांधीजी के 'नमक आंदोलन' के समय इन्हें अजमेर से गिरफ्तार कर लिया गया। इन्हें दो वर्ष की सजा हुई। मजिस्ट्रेट के सामने इन्होंने कहा- या तो मुझे फांसी की सजा दो वरना बाहर आकर फिर से यही काम करूँगा। इतनी हिम्मत और जिन्दादिली उनके भीतर थी कि जब जेल में उन्हें अंग्रेज अधिकारी को सलाम करने के लिए कहा गया तो इन्होंने कहा "उन्हें चाहे कुत्तों से नुचवादे लेकिन वे किसी अंग्रेज अधिकारी को हर्गिज सलाम नहीं करेंगे।"[7] इसके कारण जेल में उन्हें अनेक यातनाएँ दी गई, लेकिन इन्होंने हिम्मत नहीं हारी। उनके इस अदम्य साहस को देखकर गांधीजी ने अपने पत्र 'नवजीवन' में 'सलाम अथवा बैंत' नाम से संपादकीय लिखा। उन्होंने उचित मूल्य पर पुस्तकें उपलब्ध कराने के उद्देश्य से जमनालाल बजाज, धनश्याम बिड़ला और हरिभाऊ उपाध्याय के साथ मिलकर अजमेर में 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना की। इस संस्था से क्रांतिकारी और राष्ट्र भक्ति से ओतप्रोत साहित्य का प्रकाशन हुआ। फलस्वरूप सरकार ने इसे गैरक़ानूनी घोषित कर इसकी सामग्री जब्त कर ली और मंडल को बंद करा दिया। "मंडल को बढ़ोतरी के साथ ही अंग्रेज

सरकार की नजर भी टेढ़ी हुई। मंडल को 'बगावत की जगह' समझा जाने लग। आखिर में सरकार ने 'मंडल' के आठ प्रकाशन जब्त कर लिए।"[8] राजस्थान के अनेक आंदोलनों में उनकी सक्रिय भूमिका रही। सीकर के आंदोलन में भाग लेने के कारण उन्हें दो साल से अधिक जेल में रहना पड़ा। स्वतंत्रता प्राप्ति के दस वर्ष बाद, सन् 1957 में अजमेर में इनका निधन हो गया।

राजस्थान स्वतंत्रता से पूर्व 'राजपूताना' नाम से जाना जाता था, जहाँ उन्नीस रियासतें थी और राजा अंग्रेजी सत्ता के अधीन कार्य करते थे। 'राजस्थान' नाम का प्रयोग सर्वप्रथम कर्नल जेम्स टॉड ने किया, जो आजादी के बाद राजस्थान के एकीकरण को दर्शाता है। किन्तु बाबा नृसिंहदास को इस नाम में लोकतंत्र की छवि दिखाई नहीं देती थी, इसलिए वे इसमें परिवर्तन चाहते थे। सीताराम झालानी लिखते हैं- "बाबाजी को बाईस रियासतों के विलीनकरण से बने राजस्थान के नामकरण पर भी घोर आपत्ति थी। उनकी मान्यता थी कि राजस्थान नाम से राजाओं के स्थान की ध्वनि प्रकट होती है जो लोकतंत्र के साथ मेल नहीं खाती। उनकी राय में इस प्रदेश का नाम गणराज्य होना चाहिए। बाबाजी ने अपनी इसी मान्यता के समर्थन में 'गणराज्य क्यों' शीर्षक से एक लेख भी लिखा था।"[9]

एक प्रतिबंधित दस्तावेज़ : 'राजस्थान की पुकार'

इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 1931-32 में सस्ता साहित्य मंडल, अजमेर से हुआ। लेखक ने इसे अर्जुनलाल सेठी को समर्पित की है। तत्कालीन सरकार ने इस रचना को जब्त कर लिया। यह पुस्तक हाल ही में नयी किताब प्रकाशन, दिल्ली से पुन: प्रकाशित हुई, जिसका श्रेय हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय के सीनियर प्रोफेसर गजेन्द्र कुमार पाठक को जाता हैं। उन्होंने 'उर्दू-हिंदी प्रतिबंधित लेखन' शोध परियोजना के अंतर्गत इस पुस्तक की प्रति ब्रिटिश लाइब्रेरी, लंदन से भारत लाकर पुन: पाठकों तक पहुँचाई। इस पुस्तक में एक ओर पश्चाताप की पीड़ा है, तो दूसरी ओर कांग्रेस से गहन विरक्ति भी झलकती है।

पुस्तक के सन्दर्भ में प्रो. गजेन्द्र कुमार पाठक लिखते हैं- 'राजस्थान की पुकार' उसी साल लिखी गई जिस साल भगत सिंह को निर्मम फाँसी दी गई थी। पूरे देश की युवा पीढ़ी में कांग्रेस और गांधीजी की राजनीति के प्रति जो आक्रोश की भावना थी उसका भी असर इस किताब में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। वैसे, यह किताब राजस्थान के लोकप्रिय नेता और बाबा जी के अभिन्न मित्र श्री अर्जुनलाल सेठी को समर्पित थी।"[10] यह टिप्पणी इस तथ्य को उजागर करती है कि आजादी के समय सक्रिय संगठनों से अनेक क्रांतिकारी मोह भंग अनुभव कर रहे थे। पुस्तक में केवल कांग्रेस की नीतियों की आलोचना ही नहीं की गई, बल्कि राजस्थान के इतिहास की उन अनसुनी कहानियों को भी स्थान दिया गया है, जिन्हें अन्य इतिहासकारों ने उपेक्षित कर दिया। पुस्तक की इन विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए विजयसिंह पथिक लिखते हैं- "इस छोटी सी पुस्तक को ही पढ़ जाने पर पाठक के सामने वर्तमान राजस्थान का जितना सच और सरल चित्र आवेगा एवं उसे जितना ज्ञान मिलेगा, उतना उसे 50 दूसरी पुस्तकें पढ़ लेने पर भी कदाचित् ही मिले। दूसरे, इस पुस्तक से पाठकों को वह मिलेगा, जो उनके इस समय के जीवन संग्राम के लिए जरूरी है। जिसकी आवश्यकता उन्हें पग-पग पर अनुभव होती है। इससे उन्हें मालूम होगा कि उनकी स्थिति क्या है? उनके प्रान्त का क्या रूप है? उनका वास्तविक रूप क्या होना चाहिए? उनके इस समय अपने उद्धार के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों और कार्य पद्धतियों में क्या-क्या दोष हैं? वे कैसे दूर हो सकते हैं? आदि, आदि।"[11]

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान कांग्रेसी की भूमिका निर्णायक रही, किन्तु एक समय ऐसा भी आया जब अनेक क्रांतिकारी उनकी नीतियों और गांधीवादी विचारधारा से विमुख हो गए। इनमें अर्जुनलाल सेठी का नाम प्रमुख था। एक समय उन्होंने गाँधी टोपी को अपनाया और निरंतर पहना, परन्तु बाद में जब वे विरक्त हुए तो सबका त्याग कर दिया। सेठीजी की इस बगावत से कई कांग्रेस नेताओं ने उनके आचरण पर प्रश्न उठाए, जिनमें बाबा नरसिंहदास को बाद में अपनी भूल का आभास हुआ, तो उन्होंने पश्चाताप स्वरूप 'राजस्थान की पुकार' की रचना की। वे अर्जुनलाल सेठी को संबोधित करते हुए लिखते हैं- "पिछली भूलों और अपराधों के लिए क्या मैं आपसे क्षमा मांगूँ? आपसे क्षमा माँगने से कही अधिक संतोष, मुझे आपसे जीवन से जो शिक्षा मिली है उससे होता है। उन्हीं परिस्थितियों ने मुझे यह पुस्तक लिखने को विवश किया है। आप अपने हृदय को उदार कर मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें और अपने हृदय के अतस्तल के कपाट मेरे लिए खोल दे, ताकि मैं उसमें प्रवेश कर सकूँ।"[12]

इस कृति के माध्यम से लेखक ने राजस्थानवासियों की आवाज को सत्ता तक पहुँचाने का प्रयास किया है। उनकी प्रमुख माँगें थी-

1. 18 वर्ष से ऊपर के स्त्री-पुरुष दोनों को मताधिकार का अधिकार मिले।
2. अगर राजा अयोग्य हो तो वंशानुगत परंपरा से हटकर योग्य व्यक्ति के हाथ में सत्ता सौंपी जाए।
3. राज्य से वसूले गए 'कर' का प्रयोग जनता के हित में हो।
4. सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक शक्तियों पर जनता का अधिकार हो।
5. सभी रियासतों से पृथक जिलों का गठन हो और उनका शासन योग्य व्यक्तियों को सौंपा जाए।
6. जिस प्रकार ब्रिटिश भारत का केंद्र है, उसी प्रकार इस प्रान्त का भी केंद्र से संबंध स्थापित हो।

ये मांगें उनके बारह वर्षों के अनुभव पर आधारित थी। इनके माध्यम से वे जनता को जाग्रत करना और राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना चाहते थे। राजस्थान में प्रजा मंडलों की स्थापना भी इसी उद्देश्य से हुई, किन्तु उन्हें गैर क़ानूनी घोषित कर उनके नेताओं को कारावास में डाल दिया गया। लेखक लिखते हैं– "इन अंगरेजी इलाकों में तो प्रेस और लेखनी का विकास इतना व्यापक हो गया है कि इस प्रकार के दमनकारी ऑर्डिनेंसों के रहते हुए भी गुप्त रूप में ही सही, आवश्यक साहित्य प्रकाशित हो जाता है। परन्तु इन रियासतों की हालत अजीब है। वहाँ कुछ न कहो, न लिखो। बाहर से जो चाहे सो लिख दो, छपवा कर बांट दो, सभाएँ करके भाषण समाचार-पत्रों द्वारा वहाँ पहुँचा दो। प्रयत्नकारी लोग आज इस नीति का अवलंबन कर रहे हैं। किन्तु इन सबकी पहुँच शहरों के कुछ शिक्षित और संपन्न लोगों तक ही है। आम जनता तक नहीं है।"[13] देश में जब आजादी का आंदोलन चरम पर था, तब अंग्रेजी सत्ता ने अनेक नये नियम-कानून बनाकर जनता पर थोपे। पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों और भाषणों पर प्रतिबंध लगाया गया। देशी राज्यों में भी यही नियम लागू किए गए और क्रांतिकारी साहित्य को जब्त किया गया। प्रतिबंधित साहित्य की भूमिका पर रुस्तम राय लिखते हैं– "प्रतिबंधित साहित्य चाहे वह किसी भी भाषा या विधा का साहित्य क्यों न हो, स्वातंत्र्य-चेतना की कोख से पैदा होता है। कम ही लोग जानते हैं कि आधुनिक भारतीय भाषाओं का अधिकांश क्रांतिकारी लेखन स्वाधीनता आंदोलन के दौरान अंग्रेजी राज द्वारा जब्त कर लिया गया था।"[14] आज यह जब्तशुदा साहित्य अनेक अभिलेखागारों में संरक्षित है, जिस पर शोध कर इसे मुख्यधारा के साहित्य में शामिल किया जा सकता है। वास्तव में, आजाद भारत का संघर्ष इन्हीं प्रतिबंधित कृतियों के अध्ययन से भलीभाँति समझा जा सकता है। लेखक स्पष्ट करते हैं- "देशी राज्यों के भीतर कार्य करने वालों के सन्मुख इस समय नि:संदेह यही ध्येय होना चाहिए कि जनता को स्वेच्छाचारी राजा और राजतंत्र की श्रद्धा से मुक्त करके, पृथक्-पृथक् शासकों से शासित होने की अपेक्षा हिन्दुस्तान के सम्मिलित शासन-केन्द्रीय सभा से शासित होने की ओर प्रेरित कर दें। जनता को देश के साथ रहने के साथ रहने के लाभ और पृथक संकीर्ण शासन से संचालित होने की हानियों का भली प्रकार ज्ञान करा दिया जाये।"[15] इस प्रकार 'राजस्थान की पुकार' में ब्रिटिश सत्ता और राजतंत्र दोनों की आलोचना के साथ-साथ कांग्रेस की भूमिका पर भी प्रश्न उठाए गए हैं। यह कृति राजस्थान ही नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भारत की आजादी में राजस्थान के क्रांतिकारियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। ब्रिटिश सत्ता द्वारा लागू किये गए कठोर नियम-कानूनों और प्रतिबंधों के बावजूद लेखन कार्य जारी रहा। बाबा नृसिंहदास इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। उनकी रचना 'राजस्थान की पुकार' केवल साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। यह आम जनता की वह वाणी है, जिसने दो सौ वर्षों तक शासन करने वाली ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी। इस पुस्तक के प्रतिबंध ने यह प्रमाणित कर दिया कि कलम और विचारों की शक्ति सत्ता और दमन से कहीं अधिक प्रभावी है। जब इसे रोकने का प्रयास किया गया, तो यह ज्वाला की भाँति प्रज्वलित हुई और उसी अग्नि में दमनकारी शक्तियाँ स्वयं भस्म हो गई।

संदर्भ :

1. राणावत, म. स. (सं.). (2000). *देशी राज्यों में स्वतंत्रता आंदोलन*. उदयपुर: प्रताप शोध संस्थान. पृ. 40.
2. शर्मा, गोपीनाथ. (1991). *राजस्थान का स्वतंत्रता-संग्राम का इतिहास*. बीकानेर: राजस्थान राज्य अभिलेखागार. पृ. 133.
3. शुक्ल, नरेंद्र (सं.). (2020). *अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता: सरकार और सरोकार*. दिल्ली: अनन्य प्रकाशन. पृ. 61.
4. *राजस्थान सुजस*. (2020). वर्ष 29, अंक 8, पृ. 37.
5. गुप्त, लक्ष्मीचंद एवं अन्य (सं.). (1996). *राजस्थान के प्रकाश स्तंभ (भाग 2)*. जयपुर: राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति. पृ. 158.
6. शर्मा, हरिनारायण. (1996). *राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा: बाबा नृसिंहदास*. जयपुर: राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति. पृ. 10.
7. गुप्त, लक्ष्मीचंद एवं अन्य (सं.). (1996). *राजस्थान के प्रकाश स्तंभ (भाग 2)*. जयपुर: राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति. पृ. 158.
8. शिशु, भूषणलाल. (1996). *राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा: हरिभाऊ उपाध्याय*. जयपुर: राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति. पृ. 14.
9. गुप्त, लक्ष्मीचंद एवं अन्य (सं.). (1996). *राजस्थान के प्रकाश स्तंभ (भाग 2)*. जयपुर: राजस्थान स्वर्ण जयंती समारोह समिति. पृ. 160.
10. नृसिंहदास, बाबा. (भूमिका: गजेन्द्र पाठक). (2025). *राजस्थान की पुकार*. दिल्ली: नयी किताब प्रकाशन. पृ. 9.
11. नृसिंहदास, बाबा. (भूमिका: गजेन्द्र पाठक). (2025). *राजस्थान की पुकार*. दिल्ली: नयी किताब प्रकाशन. पृ. 23.
12. जोशी, सुमनेश. (1973). *राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी*. जयपुर: ग्रंथागार. पृ. 146.
13. नृसिंहदास, बाबा. (भूमिका: गजेन्द्र पाठक). (2025). *राजस्थान की पुकार*. दिल्ली: नयी किताब प्रकाशन. पृ. 61.
14. राय, रुस्तम. (2024). *प्रतिबंधित हिंदी साहित्य (भाग 1)* (भूमिका से). दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.
15. नृसिंहदास, बाबा. (भूमिका: गजेन्द्र पाठक). (2025). *राजस्थान की पुकार*. दिल्ली: नयी किताब प्रकाशन. पृ. 101.

हिन्दी भाषा : साहित्य से रोजगार तक

रमीला जे. कारीया*

ramilakariya99@gmail.com

सारांश :

संसार की प्रत्येक भाषा की एक सैद्धांतिक व्यवस्था होती है। हिन्दी एक भारतीय आर्यभाषा हैं। हिंदी भारत और विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा में से एक है। उसकी जड़े प्राचीन भारत की संस्कृत भाषा तक जाती है। परंतु मध्ययुगीन भारत के अवधी, मागधि, अर्ध मागधि, मारवाड़ी जैसी भाषाओं के साहित्य को हिंदी का आरंभिक साहित्य माना जाता है । हमारे देश पर में 14 सितंबर को हिंदी दिवस मनाया जाता है। सन 1949 में इसी दिन हिंदी को भारतीय संविधान में राजभाषा का दर्जा मिला था। हिंदी दिल की भाषा है, संवेदना की भाषा है, संस्कृति की भाषा है, जीने की और समाज को जोड़ने की मातृभाषा है। इसीलिए हिंदी भाषा के बिना भारत और भारतीयता अधूरी है। हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन विभिन्न प्रकार के रोजगार के द्वार खोलता है।

प्रस्तावना :

भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं होती, बल्कि वह समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था की धुरी भी होती है। हिंदी भाषा विश्व की प्रमुख भाषाओं में से एक है। हिंदी साहित्य वह साहित्यिक रचनाएं हैं जो हिंदी भाषा में लिखी गई है और जिन में कला, सौंदर्य, और भावनाओं का समावेश होता है। एक भाषा के रूप में हिंदी न सिर्फ भारत की पहचान है बल्कि यह हमारे जीवन मूल्यों, संस्कृति एवं संस्कारों की सच्ची, संवाहक, सम्पेशक और परिचायक भी है। प्रेमचंद जी ने कहा है कि साहित्य का उद्देश्य "साहित्य केवल मन–बहलाव की चीज नहीं है मनोरंजन के सिवा उसका और भी उद्देश्य है। अब वह केवल नायक नायिका के संयोग–वियोग की कहानी नहीं सुनता ; किंतु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है, और उन्हें हल करता है।"

1884 पुस्तक, इंद्रजालकाला (जादू की कला) में सूर्य का चित्रण; ज्वाला प्रकाश प्रेस, मेरठ

* **Research Scholar, Department of Hindi, KSKV Kutch University Gujarat**

आज हिंदी भाषा के बढ़ते चलन और वैश्विक रूप ने रोजगार की अनेक संभावनाओं को उजागर किया है। विविध क्षेत्रों में इसकी स्वीकृति बढ़ने से हिंदी को नई दृष्टि से देखा जा रहा है। भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं होती बल्कि वह समाज संस्कृति और अर्थव्यवस्था की दूरी भी होती है। हिंदी भाषा विश्व की प्रमुख भाषाओं में से एक है। इसका साहित्य समाज की चेतना संघर्ष जीवन मूल्य और रोजगार तक को प्रभावित करता रहा है हिंदी साहित्य ने समय-समय पर जीवन के विविध पहलुओं का चित्रण किया है और रोजगार भी उसके केंद्र में रहा है विशेष कर समकालीन कवियों में, जैसे **अरुण कमल** ने हिंदी साहित्य को श्रमिक वर्ग किसान और बेरोजगार युवाओं के यथार्थ से जोड़ा। हिन्दी भाषा साहित्य से लेकर रोजगार तक पहुंच गई है। हिंदी भाषा से कई सारे क्षेत्र में रोजगार के अवसर मिलते हैं। जो इस लेख में प्रस्तुत किए गए हैं। खास कर पत्रकारिता, अनुवाद, कंटेंट राइटिंग, शिक्षण, मीडिया और तकनीकी क्षेत्र में रोजगार के अवसर पैदा हुए हैं।

हिन्दी भाषा – रोजगार तक :

हिन्दी भाषा और साहित्य में पढ़ाई करने वाले छात्रों के लिए शिक्षक, पत्रकारिता, अनुवाद, जनसंचार, डिजिटल मीडिया और सरकारी नौकरियां जैसे कई सारे रोजगार के अवसर हैं। सरकारी विभागों में हिंदी अनिवार्य है और मनोरंजन के क्षेत्र में टीवी फिल्मों और रेडियो में हिंदी की मांग है। हम देखें तो इसके अलावा तकनीकी क्षेत्र में भी हिंदी की उपयोगिता बढ़ रही है। आजकल हिंदी में अवसरों की भरमार छाई हुई है। अब हिंदी केवल राजभाषा तक ही सीमित नहीं रही है, बल्कि यह दुनिया के बाजारों में भी अपनी जगह बना चुकी है।

'हिन्दी भाषा एक, करियर की राहें अनेक'.....

1. **अनुवादक :** यदि आप किसी दूसरी भाषा पर भी पकड़ रखते हैं तो एक अनुवादक बन सकते हैं। कर्मचारी चयन आयोग हर साल हिंदी अनुवाद को की भर्ती करता है। मीडिया के क्षेत्र में भी ऐसे लोगों की काफी डिमांड रहती है जिन्हें हिंदी भाषा का ज्ञान होने के साथ-साथ अंग्रेजी पर या किसी अन्य भाषा का ज्ञान हो। ट्रेवल एजेंसीयों और सरकारी संस्थान ऐसे लोगों को मौका देते हैं।
2. **मीडिया :** हिंदी से ग्रेजुएट उम्मीदवारों के लिए मीडिया के क्षेत्र में अवसरों की कोई कमी नहीं है। प्रिंट मीडिया इलेक्ट्रॉनिक मीडिया रेडियो में रोजगार के अवसर हैं। हिंदी भाषा पर पकड़ रखने वाले उम्मीदवारों को पत्रकारिता के क्षेत्र में करियर बनाने में आसानी होती है। राज्य सरकारों के और केंद्र के विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्र पत्रिकाओं में भी हिंदी के छात्रों की जरूरत पड़ती है। अपने विविध रूपों में मीडिया हिंदी के छात्रों को कई तरह से काम करने का अवसर प्रदान करती है। हमारे प्रख्यात कवि अरुण कमल जी पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित करते हैं यह एक उदाहरण है कि कैसे हम मीडिया के माध्यम से रोजगार प्राप्त कर सकते हैं।
3. **हिन्दी अधिकारी :** हम देख सकते हैं कि आजकल सभी बैंक राजभाषा अधिकारी नियुक्त करते हैं। हिंदी भाषा अधिनियम के मुताबिक हिंदी अधिकारी की नियुक्ति अनिवार्य हो गई है। भारत सरकार के कार्यालय में राजभाषा अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं।
4. **फिल्म के क्षेत्र में :** यदि आपके शब्दों से खेलने में मजा आता है तो फिल्म और टीवी सीरियल में काम मिल सकता है। आप स्क्रिप्ट राइटर के तौर पर इस फील्ड में भी अपना कैरियर बना सकते हैं।
5. **अध्यापन के क्षेत्र में :** अगर आप हिंदी विषय से बी ए और बी एड करते हैं तो इसके बाद स्कूलों में हिंदी अध्यापक की नौकरी मिल सकती हैं। कॉलेज में पढ़ाने के लिए एम. ए. के एम फील और पीएचडी करना आवश्यक होता है। पीएचडी के बाद लेक्चरर की नौकरी आपको आसानी से मिल सकती है।

हिंदी भाषा और साहित्य का संबंध :

हिंदी का विकास लोकभाषा और जनभाषा से हुआ है। साहित्यकारों ने इसे जीवन और समाज से जोड़कर एक जीवंत अभिव्यक्ति दी। हिंदी साहित्य ने लोकजीवन, संघर्ष और रोज़मर्रा के श्रम को अपनी कथाओं और कविताओं में स्थान दिया। इस प्रकार हिंदी भाषा और साहित्य ने रोजगार / श्रम की समस्याओं पर चिंतन को जन्म दिया।

हिंदी साहित्य में रोजगार और श्रम का स्वर :

भक्तिकाल में श्रम को भक्ति और कर्मयोग से जोड़ा गया (कबीर, तुलसी)।

रीतिकाल में भले ही श्रम का चित्रण कम है, लेकिन सामाजिक संरचना अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती है।

आधुनिक काल में विशेषकर प्रगतिवादी और समकालीन कवियों ने रोजगार और श्रम को साहित्य का केंद्रीय विषय बनाया।

प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों से लेकर नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध और फिर अरुण कमल तक यह परंपरा आगे बढ़ती है।

साहित्य में रोजगार का चित्रण

अरुण कमल की कविताओं में रिक्शेवाला, मजदूर, किसान, दिहाड़ी मज़दूरी करने वाले और बेरोज़गार युवक बार-बार दिखाई देते हैं। उनकी कविताएँ बताती हैं कि श्रम केवल रोज़गार नहीं, बल्कि मनुष्य की गरिमा और अस्तित्व का आधार है। कवि यह भी दिखाते हैं कि व्यवस्था मजदूर और श्रमिक वर्ग का शोषण करती है, परंतु संघर्ष और परिवर्तन की संभावना इन्हीं वर्गों से जन्म लेती है। इसके अलावा आप हिंदी लेखक, कॉपी राइटर, जर्नलिज्म में रोजगार के लिए कई तरह के क्षेत्र में रोजगार के लिए अवसर प्राप्त करने में हिन्दी भाषा काम में आती है। निजी क्षेत्र में भी बैंकिंग कारोबार बढ़ाने के लिए उपनगरों व ग्रामीण इलाकों में स्थानीय लोगों को भर्ती कर उन्हें स्थानीय भाषा में काम करने के लिए प्राभिक्षित किया जाता है। इसीलिए इसमें कोई संशय नहीं की हिंदी में है दम और इसे हिंदी के दम पर हम दुनिया में परचम लहरा सकते हैं।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष यह हम कह सकते हैं की हिन्दी भाषा में रोजगार की अपार संभावनाएं हैं। यह हिन्दी भाषा नए अवसर भी प्रदान करती है। इसी कारण से आजकल देश और विदेशों में हिंदी भाषा एक्सपर्ट की मांग बढ़ रही है। इस प्रकार हिंदी भाषा के आधार पर रोजगार के अवसर मिलते रहे हैं। इस प्रकार हिन्दी भाषा साहित्य न केवल सांस्कृतिक धरोहर हैं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और रोजगार संबंधी यथार्थ को भी अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है और हिन्दी भाषा से बहुत सारे रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं।

संदर्भ :

1. शुक्ल, रमेश. (2008). *समकालीन हिंदी कविता और श्रम का यथार्थ*. **हंस**, अंक 7.
2. साहित्य अकादमी. (n.d.). *साहित्य अकादमी की आधिकारिक वेबसाइट*. प्राप्त किया गया: https://sahityaakademi.gov.in
3. कमल, अरुण. (1983). *नए लोग*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
4. कमल, अरुण. (1990). *सबूत*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
5. जनसत्ता. (n.d.). *हिंदी भाषा और रोजगार*. प्राप्त किया गया: https://www.jansatta.com/politics/hindi-language-and-employment/1821871/

ગાંધીજીની ગુજરાતી સાહિત્ય પર અસર : 'ચૂંટેલી વાર્તા' સંદર્ભે

ડૉ. હરેન્દ્રકુમાર વી.ચૌધરી*
chaudhariharendrakumar@gmail.com

દક્ષિણ આફ્રિકામાં સત્યાગ્રહ વિજય મેળવીને ઈ.સ.૧૯૧૫માં સત્યવીર ગાંધીજી હિન્દુસ્તાનમાં આવ્યા. અહીં આવીને તેમણે અમદાવાદમાં સાબરમતી તીરે સત્યાગ્રહ આશ્રમ સ્થાપ્યો અને પાછળથી ગુજરાત વિદ્યાપીઠ શરૂ કરી. અને હિન્દ-સ્વરાજ્ય માટે હિંસક લડતો આરંભી. આમ આશ્રમો, શિક્ષણની પ્રવૃત્તિઓ, પુસ્તકો-છાપો, સ્વરાજ્યની લડતો અને રચનાત્મક કાર્યક્રમો ધ્વારા તેમણે પ્રજા -શિક્ષણ અને પ્રજાઘડતરની વિવિધ પ્રવૃત્તિઓ આરંભી, જેનાથી પ્રજામાં નવો પ્રાણ ફૂંકાયો, આ રીતે ગુજરાતમાં સત્ય-અહિંસા મૂલક નવા યુગનાં ગાંધીયુગનાં મંડાણ થયાં. ઈ.સ. ૧૯૨૦ થી ૧૯૭૦ સુધીમાં ક્રમશ: ગાંધીજીનાં જીવન-કાર્ય, વિચારો અને પ્રવૃત્તિઓ, તેમના લખાણો, તેમની ભાષાશૈલી વગેરેની ગુજરાતી સાહિત્યનાં વિવિધ સ્વરૂપોની જેમ વાર્તાઓમાં દેશભકત, સ્વાતંત્ર્ય-લડત અને સત્યાગ્રહની અસર પડેલી અનુભવી શકાય છે.

ગાંધીજીનું દેશમાં આગમન થયું ત્યારે રાષ્ટ્રભકિતની ભાવના પ્રજામાં પ્રસરેલી હતી. પરંતુ સ્વરાજ્યની વિવિધ લડતો દ્વારા આ રાષ્ટ્રીયતાની ભાવનાને ઓર બહેલાવી. એટલું જ નહિ પણ એ દેશભકિતને સત્યાગ્રહો અને રચનાત્મક કાર્યક્રમો ધ્વારા સર્જનાત્મક-રચનાત્મક માર્ગે વાળી લીધી. આ ભાવનાની અસરો પણ વાર્તા-સાહિત્યમાં જોવા મળે છે. 'કુસુમના કુમારભાવ' વાર્તામાં કુસુમે આ રાષ્ટ્રપ્રેમ અને રાષ્ટ્રસેવાની ભાવના આમ વ્યકત કરી છે : "અને વળી આપણા ખખડી ગયેલા દેશની સેવા અમારે કરવાની, ગુલામીનાં બંધનો તોડી સ્વાતંત્ર્ય ની દિવ્ય જ્યોત અમારે ઝબકાવવાની, લાખો, કરોડો માણસોને એક વખત પણ ખાવાનું પૂરું નથી મળતું અને અંગ ઢાંકવાને પૂરા કપડાં નથી મળતાં તેના ઉપાય અમારે કરવાના..."[૧]

'મંદિરનું રક્ષણ' વાર્તામાં "ભારત માતાના મંદિરને બચાવવા સહુએ પ્રત્યેક વ્યકિતએ-નાયક બની વીરત્વપ્રવેશ કરવાની ક્ષણ આવી ચૂકી છે."[૨] તે પથે લોકોને સતેજ કરવામાં આવ્યા છે. 'નરહરિ અને ચંદ્રિકા' વાર્તામાં લગ્ન અને દેશસેવા વચ્ચે વિરોધ ન હોઇ શકે માટે બન્ને દંપતીએ પ્રતિજ્ઞા લીધી : "અમે બંને અમારી માતૃભૂમિની સેવા કરશું."[૩] અને બંને ગામડામાં દેશસેવાની ભાવનાથી ગરીબ અને દુ:ખી લોકોની સેવાનું કાર્ય સ્વીકારી લે છે. 'વિલોપન'માં વાસુદેવે મોટાભાઈને નિષ્કામભાવે દેશસેવા કરવા માટે નિર્દેશ કર્યો છે."[૪] 'પુરુષોત્તમદાસનો પુત્ર' એ વાર્તામાં 'દેશસેવા કરવી એ તો ઉત્તમ છે.'[૫] એમ કહી ને પિતાએ પુત્રને દેશસેવા માટે ઉત્તેજન આપ્યું છે.

દોઢસો વર્ષની ગુલામીમાં સબડતા દેશની રાષ્ટ્રીય ભાવના જગાવીને સ્વરાજ્ય પ્રાપ્ત કરવા માટે ગાંધીજીએ કમર કસી હતી. એ સ્વરાજ્ય ભાવનાની અસરો પણ થયા વિના રહી શકે નહિ. 'દર્પણના ટુકડા'માં ચકલીનાં બચ્ચાંને પિંજરામાં પૂરતી શાંતિને વાસુદેવે સ્વતંત્રતાનું મહત્ત્વ દર્શાવ્યું છે : "પણ પાવાપીવા અને રહેવા કરતાં પણ એક મોટી વસ્તુ છે, તે તું જાણે છે? ગમે તેટલી સગવડવાળી લાગતી પણ પાંજરાની જિંદગી તે પાંજરાની ! બેન ! સૌને સ્વતંત્રતા વહાલી હોય... અને સ્વતંત્રતામાં ભય હોય, મુશ્કેલી હોય, જીવનનું જોખમ હોય- તો પણ... પશુઓ, માણસો અને મોટી મોટી પ્રજાઓ પાંજરાના બંધનમાં પડી રહેવા કરતાં જીવને જોખમે પણ સ્વતંત્ર થવું બહેતર ગણે છે."[૬] "નાસ્તિકતા' વાર્તામાં સંન્યાસી આનન્દે રાજકીય સ્વરાજ યની સાથે આર્થિક-સાંસ્કુતિક ક્ષેત્રે સ્વરાજ્યની હિમાયત કરી છે."[૭] 'પુરુષોત્તમદાસનો પુત્ર'[૮] પૂર્ણ સ્વરાજ્યની ઝંખના કરેછે. 'પરબીડિયાં',[૯] વાર્તામાં લેખકે જગદીશની સ્વાતંત્ર્યધૂનનું

* ગુજરાતી વિભાગ, શ્રીમતી બી.વી.ધાણક આર્ટ્સ, કોમર્સ,સાયન્સ એન્ડ મેનેજમેન્ટ કૉલેજ,બગસરા.

દર્શન કરાવ્યું છે. 'પંકજ' વાર્તામાં હિન્દુસ્તાનની આઝાદીથી આગળ વધીને એબીસિનિયાના હબશીઓની મુક્તિ માટે મધુકરે પોતાની પ્રિય પત્નીનીની સ્મુત્તિમાં સંકલ્પ જાહેર કર્યો છે.[૧૦]

ગાંધીજીની રામરાજ્યની ભાવના 'તણખા મંડળ'-માં સુકેશી ને મુળે પ્રગટ થઈ છે, આરણ્યક અને સુકેશી એ ભાવનાનાં પ્રતીકો જેવાં છે. "ત્યાં... રાજ ન હતું, રાજા ન હતો કાયદો ન હતો.... હતો માત્ર (પારસ્પરિક પ્રેમ) પ્રેમથી વસ્તુ મળતી અને ચપાતી, ધર્મ ખુલ્લા મેદાનમાં ઈશ્વરની પૂજા કરતો. સૌ પોતે પોતાના રાજા હતા. નીતિ એ કાયદો હતો. સત્ય એ મર્યાદા હતી. સદગુણને સૌ ધર્મ માનતા, શૌર્યને મંત્ર સમજતા..."[૧૧] રાજાશાહીને બદલે લોકશાહી અને ગામેગામ લોકોનું રાજ્ય ગ્રામ સ્વરાજ્ય થાય એમ ગાંધીજી ઈચ્છતા હતા. એ ગ્રામ સ્વરાજ્ય ચા લોકરાજ્યની ભાવનાનું દર્શન 'બારભાયાનો કારભાર', વાર્તામાં કાશીગર ગોસાઈની લોકો સાથેની ચર્ચામાંથી પ્રગટ થાય છે: "આપણો વહીવટ વળી બીજા શું કામ કરે? આપણે લોકો શું કામ ન કરીએ? માપણે વેપાર કરી શકીએ, નાતનો વહીવટ કરી શકીએ, ધંધો કરી શકીએ. તો પછી રાજ કેમ ન ચલાવી શકીએ?" [૧૨]

'સાંભળે છે જ કોણ?' વાર્તામાં કનૈયાલાલનું લોકસ્વરાજ્ય માટેનું મનોમંથન પણ જોવા જેવું છે. "બધી વસ્તીનો વિચાર સરકાર જ કરે અને બધું સારું કામ કરવાની લોકોને ફરજ પાડયા કરે તો પ્રજાશકિત કેમ કરીને ખીલે?... નહી, નહિ... પ્રજાના માણસોએ જાગૃત રહેવું જ જોઈએ. એવું નહી કરી શકે તો આધુનિક સરકારો માનવીને યંત્ર જ બનાવી દેશે !"[૧૩]

ગાંધીજીએ સ્વરાજ હાંસલ કરવા માટે અહિંસાના પાયા પર વિવિધ લડતો ચલાવી હતી. અસહકાર, સવિનયકાનૂનભંગ, સત્યાગ્રહ, વગેરે ધ્વારા તેમણે પ્રજામાં જાગૃતિ આણી હતી. તેની અસરો વાર્તાસાહિત્ય પર પર અચૂક પડી છે. 'નરહરિ અને ચન્દ્રિકા'વાર્તામાં બન્નેય પતિ-પત્નીએ બારડોલીની ના કરની અહિંસક લડતમાં સક્રિય હિસ્સો નોંધાવ્યો છે."[૧૪] 'પહેલુ ઈનામ' વાર્તામાં શ્રી રા.વિ.પાઠકે હાઈસ્કૂલનું ભણતર છોડીને માઝાદી માટે કૂદી પડેલા પોતાના મિત્ર હરજીવનનું ઈ. સ. ૧૯૨૦- ૨૨ ની ચસહકારની લડતમાં પ્રદાન દર્શાવ્યું છે.'[૧૫] 'ઈન્દુ' વાર્તામાં શ્રી રા.વિ. પાઠકે ૧૯૩૦-૩૨ની સવિનય ભંગની લડતમાં ભાગ લેતા વીરેન્દ્ર નરેન્દ્રનું સરસ વર્ણન કર્યું છે. સવિનયભંગની લડતમાં નેતા તરીકે વીરેન્દ્ર ધ્વજવંદન, સભાઓ, લાઠીમાર, ધરપકડ અને કોર્ટની કાર્યવાહી તથા વીરેન્દ્રને થતી સાડાત્રણ વર્ષની સજા-આ બધું મિતાક્ષરી ભાષામાં છતાં સરસ રીતે શ્રી રા.વિ.પાઠકે દર્શાવ્યું છે. જેલમાં જતા વીરેન્દ્રને તેની વીરપત્ની જમના ભાવભરી વિદાય આપે છે : તમે તમારે જાઓને જેલમાં લહેર કરજો... કશી ચિન્તા કરશો નહીં... ત્રણ વરસ તો ઘડીમાં નીકળી જશે!"[૧૬] પત્નીના આ શબ્દો કેટલા પ્રેરણાદાયી બન્યા હશે!

'બે મુલાકાતો વાર્તામાં શ્રીરા.વિ.પાઠકે વિનુએ મીઠાના સત્યાગ્રહોમાં લીધેલા ભાગ અંગે બયાન કર્યું છે. "વિનુ બીએ. પાસ થયો. નોકરી માટે તે કંઈક વિચાર કરે એટલામાં ગાંધીજીએ મીઠાના સત્યાગ્રહ માટે દાંડીકૂચ કરી અને આખો દેશ ખળભળી ઊઠયો. વિનુએ પણ આ જંગમાં તરત ઝુકાવ્યું."[૧૭] 'રમા અને જયંત' વાર્તામાં શ્રી બ્રોકરે જયંતની ૧૯૩૦ની લડતમા બજાવેલી દેશસેવાનું બયાન કર્યું છે. જયંત જૂનો સત્યાગ્રહી સૈનિક હોવાથી ૧૮૩૦માં સ્વરાજ્યની લડત માટે સવિનય ભંગનું રણશિંગુ ફૂંકાતાં ભણતરને લાત મારીને તે સત્યાગ્રહ મોરચે પહોંચી ગયો હતો. ત્રણ વર્ષમાં તે ત્રણવાર જેલ જઈ આવ્યો હતો. જેલમાંથી છૂટયા પછી દેશજેવાની તેની તમન્ના ઓછી થઈ ન હતી."[૧૮] 'અભિમાની' વાર્તામાં વાસુદેવ ૧૯૩૦-૩૨ અને ૧૯૪૦-૪૨ની લડતોમાં લીધેલા ભાગનું લેખકે અસરકારક રીતે વર્ણન કર્યું છે.[૧૯]

રાજકીય લડતો ઉપરાંત અસત્ય, ચન્યાય મને અનિષ્ટનો અહિંસક રીતે પ્રતિકાર કરવાની સત્યાગ્રહ ભાવના પ્રજાના સામાજિક-ધાર્મિક જીવનમાં કેટલી બધી વ્યાપક બની ગઈ હતી એનું દર્શન વાર્તાસાહિત્યમાં થાય છે. 'કીર્તિ કેરાં કોટડાં' વાર્તામાં જયંતકુમારે મહાવીરને જણાવ્યું છે કે પોતે અસહકારી હોવાથી સરકારને કોઈપણ પ્રકારના સહયોગમાં સામેલ થશે નહિ.[૨૦] 'સબધો પાડોશી' વાર્તામાં મોટાભાઈ પોતે અસહકારની ચળવળમાં ભાગ લેવા કૉલેજ છોડી હતી તેમ જ જેલમાં ગયા હતા. પ્રસ્તુત વાર્તામાં ભાડુઆત તરીકે રહેતી એકલવાયી અમીના અને તેનાં બાળ બચ્ચાંને ઘર

ખાલી કરતા સત્યાગ્રહી પિતા મોટાભાઈ સામે તેમની જ પુત્રી સત્યાગ્રહ જાહેર કરે છે. "અભરામકાકાની જેમ તમે ઘેર આવતા ન હો અને બાને કોઈ કહે કે તમે ઘર ખાલી કરીને જાવ. તો બા કયાં જાય... અમીનામાસી ઘર ખાલી કરીને એકલા ક્યાં જાય? બાળકી સુધાના આ માનવતાપૂર્ણ શબ્દો અને સામેના ગાંધીજીનો ફોટો મોટાભાઈને જાગૃત કરે છે. ત્યારે પિતા ગળગળા બની જાય છે અને અમીનાને ઈચ્છે ત્યાં સુધી રહેવા માટે અનુમતિ આપે છે."[૨૧]

'અમલદાર કોણ?'વાર્તામાં કાજીસાહેબ અન્યાયનો અહિંસક પ્રતિકાર કરતાં નિરપરાધીઓ માટે જાન કુરબાન કરવા માટે તૈયાર થઈ જાય છે. 'સમાધિ' વાર્તામાં નિર્દોષ મૂલચંદને જેલમાં પૂરનાર નવાબસાહેબ સામે બાવાજીએ સત્યાગ્રહની જાહેરાત કરીને લોકોનો વાજ પ્રસ્તુત કર્યો છે.[૨૨] 'મહેતાની સમાધ' વાર્તામાં રાજા રાયધણના અન્યાયોનો સામનો નવયુવકો અહિંસક રીતે કરે છે.[૨૩]

'હૃદયપલટો' વાર્તામાં શ્રી રા.વિ પાઠકે દેવુસણા તાલુકામાં અંગ્રેજ સરકારના અન્યાય સામે પ્રજાએ ઉપાડેલી ના કરની લડત, જપ્તીઓ, દમન, ખાલસા કરેલી જમીન અને માલમિલકતોની હરાજીથી પ્રજા ઓર જુસ્સામાં ચાવી ગઈ. આ સ્થિતિમાં એક્સાઈઝ ખાતાના અમલદાર ફોન્સેકાએ પ્રસ્તુત જમીન હરાજીમાં ખરીદી. પરંતુ લોકોએ તેની ખેતીમાં અસહકાર જાહેર કર્યો. બીજી બાજુએ તેની પત્ની જેનીની પ્રસૂતિ આવી. આ સ્થિતિમાં માનવદયાની ભાવનાથી પ્રેરાઇને અબ્દુલ ધાંચી બાઈને સુખરૂપે પ્રસુતિ કરાવે છે બાળક અને બાઈને બચાવી લે છે. આ પ્રસંગથી ફોન્સેકા અને જેનીની માનવતા જાગી ઊઠે છે. અને ગામ લોકોને તેમની ખરીદેલી જમીન પુન: પાછી સોંપી દે છે. બ્રિટિશ સરકારે સમાધાન કરતાં ગામલોકોની વિનંતીથી ફોન્સેકા અને જેની લોકસેવા માટે ત્યાં જ જીવન વિતાવે છે. આમ આ વાર્તામાં સત્યાગ્રહથી થતું હૃદયપરિવર્તન અને માનવીય ભાવોનું બન્ને પક્ષે થયેલું પ્રાગટ્ય અસરકારક રીતે શ્રીરા.વિ. પાઠકે વર્ણવ્યું છે.[૨૪] 'ઊછરતાં છોરું' વાર્તામાં વાંકી ટોપીવાળો લોકસેવક હોટેલ બોયના ગંદા, ભ્રષ્ટ અને અસંસ્કારી જીવન પ્રત્યે તથા ઓછા પગાર, ગંદા કપડાં, હલકા ખોરાક અને ગંદા નિવાસ સામે અહિંસક રીતે વિરોધ પોકારે છે. હોટેલમાં નોકરી કરતા નવયુવક નારુભા અને તેમની મંડળી હોટેલ માલિકોનો અસહકાર કરે છે. અન્યાય સામે રાજીનામાં, અસહકાર અને સભા-સરઘસોથી છેવટે લોકજાગૃત્તિ થતાં સમાધાન થાય છે. અને હોટેલ બોયને યોગ્ય પગાર, સારો ખોરાક, સુઘડ નિવાસ અને સંસ્કારી વર્તણૂકથી ખાતરી અપાય છે.[૨૫]

'ધાડ આવે છે' વાર્તામાં કન્યા આશ્રમની બહેનોને લઈને ખબર મળતાંની સાથે ગૃહમાતા માલતીબહેન શંકર અને કુલજી જેવા બહારવટિયાઓની ટોળીનો મહિંસક રીતે સામનો કરે છે. સ્ત્રીઓની નિર્ભયતા અને વીરતા જોઈને બહારવિટયાઓ લજ્જિત થઈને પાછા. કરે છે. આાામ બહેનો ગામને લૂંટફાટમાંથી અહિંસક પ્રતિકાર ધ્વારા બચાવે છે.[૨૬] આમ સામાજિક પ્રશ્નો પરત્વે સત્યાગ્રહી શકિતનો પ્રભાવ પણ વાર્તા સાહિત્યમાં જોવા મળે છે.

આ સ્વરાજ્ય સંગ્રામમાં યુવકો અને યુવતીઓએ સભા, સરઘસ, પ્રભાતફેરી, ભીંતપત્ર-સંચાલન, પત્રિકા-પ્રકાશન તથા ધવાયેલા સત્યાગ્રહીઓની સેવાશુશ્રૂષા જેવી અનેકવિધ પ્રવૃત્તિઓ કરીને પ્રશસ્ય ભાગ ભજવ્યો હતો. 'જેલ ઓફિસની બારી'માં સ્ત્રીઓનાં પરાક્રમો સામે વ્યંગ કરતાં ઉપદેશિકા બાઈના ઉદ્દગારો જુઓ : "પેલાં સારાં કુટુંબોનાં વહુ-દીકરી....સરકાર સામે ગુના કરી, ધણી-છોકરાંને રઝળવા મેલી, હાથમાં ઝંડા-ઝંડી અને મુઠ્ઠીમાં મીઠાં લઈ, દારૂડિયાને, છાકટાઓ ને ખભે હાથ મૂકી..ભાઈ, પીઠું છોડ ! ભાઈ દારૂ છોડ ! કરતાં માર ખાતાં, પીધેલાઓના મુખની ગાળો સાંભળતાં અહીં આવ્યાં છે એ...[૨૭] 'રમાને શું સૂઝયું?' વાર્તામાં રમાને દેશસેવાની લગની લાગતાં રાષ્ટ્ર ધ્વજો વેચવા, ખાદીની ફેરી કરવી, દારૂનાં પીઠાં પર પિકેટિંગ કરવું એમ એણે કરેલી વિવિધ પ્રવૃતિઓનું દર્શન લેખકે કરાવ્યું છે.[૨૮]

આમ, વાર્તા સાહિત્યમાં વિશેષત: જીવનલક્ષી દ્રષ્ટિ, માનવધર્મ, દેશભક્તિ, સ્વાતંત્ર્ય લડતો, સત્યાગ્રહો, સત્ય, અહિંસા, વિશ્વ શાંતિ, સ્ત્રી-પુરુષ સમાનતા, કોમી એકતા,ગ્રામોદ્ધાર, ખાદી ગ્રામોદ્યોગ, અસ્પૃશ્યતા નિવારણ વગેરે રચાનાત્મક વિચારો અને ભાવનાઓનું નિરૂપણ વિપુલ પ્રમાણમાં થયું છે. અર્વાચીન ગદ્યના ઘડતરમાં ગાંધીજીનો ફાળો

જેવો તોવો નથી. ધૂમકેતુ, રા.વિ.પાઠક, સુંદરમ અને ઈશ્વર પેટલીકરે ગાંધીજીના જીવન-કાર્ય, ભાવનાઓ અને પ્રવૃત્તિઓને વાર્તા સાહિત્ય ક્ષેત્રે પ્રગટાવ્યાં છે.

સંદર્ભ :-

1. યાજ્ઞિક, ઈન્દુલાલ. (1941). *કુમારનાં સ્ત્રીરત્નો* (ત્રીજી આવૃત્તિ), પૃ. 16–17.
2. દેસાઈ, ર. વ. (1950). *દીવડી* (બીજી આવૃત્તિ), પૃ. 207.
3. સોપાન. (1938). *અખંડ જ્યોત* (પ્રથમ આવૃત્તિ), પૃ. 70.
4. મેઘાણી, ઝવેરચંદ. (1951). *વિલોપન અને બીજી વાતો* (બીજી આવૃત્તિ), પૃ. 77.
5. બ્રોકર, ગુલાબદાસ. (1940). *વસુંધરા અને બીજી વાતો* (પ્રથમ આવૃત્તિ), પૃ. 236.
6. પુરાણી, ચંબાલાલ બા. (1957). *દર્પણના ટુકડા* (બીજી આવૃત્તિ), પૃ. 127.
7. ચાવડા, કિષ્ણસિંહ. (1956). *કુમકુમ* (બીજી આવૃત્તિ), પૃ. 28.
8. બ્રોકર, ગુલાબદાસ. (1940). *વસુંધરા અને બીજી વાતો* (પ્રથમ આવૃત્તિ), પૃ. 231.
9. જોશી, ઉમાશંકર. (1938). *ત્રણ અર્ધું બે અને બીજી વાતો* (પ્રથમ આવૃત્તિ), પૃ. 98.
10. દેસાઈ, ર. વ. (1953). *પંકજ* (ત્રીજી આવૃત્તિ), પૃ. 285.
11. ધૂમકેતુ. (1948). *તણખા – 1* (બીજી આવૃત્તિ), પૃ. 160.
12. આચાર્ય, ગુણવંતરાય. (1956). *ભૂતકાળના પડછાયા* (બીજી આવૃત્તિ), પૃ. 121.
13. શુકલ, દામુ અને શુકલ, કુમુદ. (1961). *ભણેલી વહુ અને બીજી વાતો* (બીજી આવૃત્તિ), પૃ. 80.
14. સોપાન. (1938). *અખંડ જ્યોત* (પ્રથમ આવૃત્તિ), પૃ. 70.
15. પાઠક, રા. વિ. (1967). *દ્વિરેફની વાતો – 1* (નવમી આવૃત્તિ), પૃ. 86, 91.
16. પાઠક, રા. વિ. (1967). *દ્વિરેફની વાતો – 1* (નવમી આવૃત્તિ), પૃ. 86 – 90.
17. પાઠક, રા. વિ. (1961). *દ્વિરેફની વાતો – 3* (ત્રીજી આવૃત્તિ), પૃ. 1 – 4.
18. પાઠક, રા. વિ. (1962). *દ્વિરેફની વાતો – 2* (ત્રીજી આવૃત્તિ), પૃ. 84.
19. બ્રોકર, ગુલાબદાસ. (1940). *વસુંધરા અને બીજી વાતો* (પ્રથમ આવૃત્તિ), પૃ. 4.
20. દેસાઈ, ર. વ. (1953). *પંકજ* (ત્રીજી આવૃત્તિ), પૃ. 157.
21. પેટલીકર, ઈશ્વર. (1958). *પેટલીકરની શ્રેષ્ઠ વાર્તાઓ* (પ્રથમ આવૃત્તિ), પૃ. 207, 213.
22. આચાર્ય, ગુણવંતરાય. (1956). *સોરઠની સંધ્યા* (ત્રીજી આવૃત્તિ), પૃ. 53.
23. આચાર્ય, ગુણવંતરાય. (1956). *ભૂતકાળના પડછાયા* (બીજી આવૃત્તિ), પૃ. 41.
24. પાઠક, રા. વિ. (1962). *દ્વિરેફની વાતો – 2* (ત્રીજી આવૃત્તિ), પૃ. 27.
25. સુંદરમ. (1963). *ઉન્નયન* (બીજી આવૃત્તિ), પૃ. 62.
26. પેટલીકર, ઈશ્વર. (1950). *ચિનગારી* (પ્રથમ આવૃત્તિ), પૃ. 266.
27. મેઘાણી, ઝવેરચંદ. (1960). *જેલ ઓફિસની બારી* (ત્રીજી આવૃત્તિ), પૃ. 106.
28. મેઘાણી, ઝવેરચંદ. (1946). *મેઘાણીની નવલિકાઓ – 1* (બીજી આવૃત્તિ), પૃ. 166.

પ્રાચીન સાહિત્યમાં સંસ્કૃતિ અને જીવનદૃષ્ટિકોણ

હરદીપ બી.વાળા*
hardipvala777@gmail.com

સારાંશ:

વાલ્મીકિનું રામાયણ ભારતીય પ્રાચીન સંસ્કૃતિનું જીવંત પ્રતિબિંબ છે. તેમાં સામાજિક, ધાર્મિક, રાજકીય અને નૈતિક જીવનના અનેક પાસાંઓનું સુંદર નિરૂપણ થયેલું છે. અયોધ્યાના કુટુંબપ્રેમ, સ્ત્રીના પાતિવ્રત્ય, રામનું સત્યનિષ્ઠ અને કર્તવ્યનિષ્ઠ જીવન, હનુમાનની ભક્તિ તથા રામરાજ્યની આદર્શ શાસનવ્યવસ્થા આ તત્વો ભારતીય સંસ્કૃતિના મૂળ આધારસ્તંભ છે. રામાયણ માત્ર એક કાવ્ય નથી, પરંતુ આદર્શ માનવી અને આદર્શ સમાજનું દર્પણ છે, જે આજના યુગમાં પણ માનવતાને દિશા દર્શાવે છે.

પ્રસ્તાવના:

ભારતીય સંસ્કૃતિનું મૂળ પ્રાચીન સાહિત્યમાં છે વેદ ઉપનિષદ, મહાકાવ્ય, પુરાણ, કાવ્ય, નાટ્ય તેમજ જૈન- બૌદ્ધ સાહિત્યમાં સમાજજીવન,ધાર્મિક વિચારધારા અને માનવ જીવનના આદર્શોનું પ્રતિબિંબ જોવા મળે છે. આ સાહિત્ય માત્ર કાવ્ય રચના કે કથા નથી પરંતુ માનવ જાતને આદર્શ જીવન જીવવાનો માર્ગ દર્શાવતું સંસ્કૃતિનું જીવંત દર્પણ છે. પ્રસ્તુત શોધપત્રમાં પ્રાચીન સાહિત્ય સાહિત્યમાં સંસ્કૃતિ અને જીવનદ્રષ્ટિકોણ તેમજ રામાયણમાં સંસ્કૃતિ અને જીવંતદ્રષ્ટિકોણનો પરિચય આપવાનો ઉપક્રમ સેવ્યો છે.

પ્રાચીન સાહિત્ય: ભારતીય પ્રાચીન સાહિત્ય વિશ્વનું સૌથી જૂનું ગૌરવપૂર્ણ અને વૈવિધ્યસભર સાહિત્ય છે.તેમાં વેદકાલીન સાહિત્ય(ઋગ્વેદ,યજુર્વેદ સામવેદ, અથર્વવેદ) મહાકાવ્ય સાહિત્ય (રામાયણ,મહાભારત) પુરાણ સાહિત્ય શાસ્ત્રીય કાવ્ય અને નાટ્ય સાહિત્ય તેમજ જૈન અને બૌદ્ધ સાહિત્યનો સમાવેશ થાય છે.

સંસ્કૃતિ: "સંસ્કૃતિ" શબ્દનો અર્થ માત્ર પરંપરા કે કલા સુધી સીમિત નથી, પરંતુ તે માનવજીવનના સર્વાંગી વિકાસનું પ્રતિબિંબ છે. ભારતીય પરંપરામાં સંસ્કૃતિ માનવમૂલ્યો, આધ્યાત્મિકતા,આચાર-વિચાર અને સામાજિક વ્યવહારનું સમન્વય દર્શાવે છે.

સંસ્કૃતિની વ્યાખ્યા:
સંસ્કૃતિ અંગે વિભિન્ન વિદ્વાનો જુદી જુદી વ્યાખ્યા આપે છે.
"સંસ્કૃતિ એટલે જીવનના દરેક ક્ષેત્રમાં માનવ મૂલ્યની અભિવ્યક્તિ."
ડૉ. એસ. રાધાકૃષ્ણન indian philosophy
"સંસ્કૃતિ માણસને માણસ બનાવે છે તે જીવનને સત્ય,અહિંસા અને પ્રેમના માર્ગે દોરી જાય છે."
. મહાત્મા ગાંધી 'હિંદ સ્વરાજ'
"સંસ્કૃતિ એ માનવ જીવનના ભૌતિક નૈતિક સામાજિક અને આધ્યાત્મિક વિકાસનું સમન્વય છે."

રઘુવીર ઠાકર 'ભારતીય સંસ્કૃતિનો ઇતિહાસ'

રામાયણમાં સંસ્કૃતિનું નિરૂપણ:
વાલ્મીકિનું રામાયણ માત્ર એક મહાકાવ્ય નથી, પરંતુ પ્રાચીન ભારતીય સમાજ અને સંસ્કૃતિનું જીવંત દર્પણ છે. તેમાં રાજકીય, સામાજિક, ધાર્મિક અને નૈતિક જીવનના વિવિધ પાસાંઓનું પ્રતિબિંબ જોવા મળે છે. રામાયણની કથા પરા

*શોધછાત્ર, ગુજરાતી વિભાગ, ભક્ત કવિ નરસિંહ મહેતા, યુનિવર્સિટી, જૂનાગઢ.

પૂર્વથી રમીએ ગણાય છે. (रम्या रामायणी कथा) અને આ કથામાં કુલ સાત કાંડ પાંચસો સર્ગ અને 24000 શ્લોક આવેલા છે. રામાયણના સાત કાંડ ના નામ આ પ્રમાણે છે બાલકાંડ,અયોધ્યાકાંડ,અરણ્યકાંડ, કૃષિકંધાકાંડ,સુંદરકાંડ,લંકાકાંડ અને ઉત્તરકાંડ.

સામાજિક સંસ્કૃતિ

- પરિવાર વ્યવસ્થા : સંયુક્ત કુટુંબની ભાવના ભારતીય સંસ્કૃતિની દેન છે ત્યારે રામ, ભરત, લક્ષ્મણ અને શત્રુધ્ન ભાઈઓ વચ્ચેનો પ્રેમ ભારતીય કુટુંબ સંસ્કૃતિનો આદર્શ છે. ભગવાન રામના 14 વર્ષના વનવાસ દરમિયાન ભાઈ ભરત અયોધ્યાની ગાદી ઉપર રામના ચરણપાદુકા રાખી તેની સેવા કરે છે ત્યારે આપણને ભાઈ- ભાઈ વચ્ચેની મૈત્રીના દર્શન થાય છે.

- સ્ત્રીનું સ્થાન :

સીતા પતિવ્રતાનું પ્રતિક છે. જનની અને જન્મભૂમિ સ્વર્ગથી પણ ચડિયાતી છે ત્યારે કૈકેયી, સુમિત્રા અને કૌશલ્યા માતૃત્વ ગુણ આદર્શરૂપ છે.એક સ્ત્રીમાં કેવા પ્રકારના ગુણો હોવા જોઈએ આ ઉપરાંત સ્ત્રીનું માન સન્માન જળવાય તેનું વર્ણન પણ રામાયણમાં કરેલું છે.જ્યારે રાવણ માતા સીતાને લંકા લઈ જાય છે ત્યારે માતા સીતા રામને ખબર પડે કે સીતા કઈ દિશામાં ગયા છે તેથી સીતા પોતાના આભૂષણો નીચે ફેંકે છે ત્યારે રામ લક્ષ્મણ ને કહે છે કે આ આભૂષણ સીતાના છે ત્યારે લક્ષ્મણ જવાબ આપે છે હું દરરોજ માતા સીતાના ચરણ સ્પર્શ કરું છું મેં ક્યારેય તેમનો ચહેરો નથી જોયો અહીં આપણને એક સ્ત્રીનું માન શું હોય છે તેનો ખ્યાલ આવે છે.

- લોકજીવન :

અયોધ્યા, મિથિલા, લંકા જેવા રાજ્યોનું વર્ણન તે સમયના સમાજજીવનનું પ્રતિનિધિત્વ કરે છે. સમાજમાં રહેલા નૈતિક મૂલ્યો આદર્શો વગેરેના દર્શન આપણને રામાયણમાં મળે છે જે ભારતીય સંસ્કૃતિની મહત્વની બાબત છે.

સંદર્ભ : રામાયણ (અયોધ્યાકાંડ, સુંદરકાંડ)

ધાર્મિક અને નૈતિક સંસ્કૃતિ

- સત્ય અને ધર્મ :

' सत्यमेव जयते સૂત્રને સાર્થક કરતા ભગવાનશ્રી રામને 'મર્યાદા પુરૂષોત્તમ' કહેવામાં આવ્યા છે કારણ કે તેમણે જીવનભર સત્ય અને ધર્મનું પાલન કર્યું.ભારતીય સંસ્કૃતિમાં સત્યને ખાતર પ્રાણ ત્યજી દેવા પણ ક્યારેય અસત્યના બોલવું ભારતીય સંસ્કૃતિમાં સત્ય એ જ પરમેશ્વર તેમ કહેવામાં આવે છે.આજે પણ અદાલતમાં ન્યાય. તોળવામાં આવે છે ત્યારે ભગવતગીતા અને રામાયણ જેવા મહાકાવ્યો પર સોગન લેવડાવવામાં આવે છે.

- અહિંસા અને કરુણા :

અહિંસા પરમો ધર્મ સૂત્રને સાર્થક કરતા પણ ધર્મની રક્ષા માટે કરવામાં આવતી હિંસા તે હિંસા કેહવાતી નથી. ભગવાન રામેવાનર, ભીલ, ઋષિ, સર્વ સમાજપ્રતિનો પ્રેમ અને સમાન વ્યવહાર કર્યો હતો કોઈપણ જાતિના ભેદભાવ રાખવા ના જોઈએ તે આપણને પ્રાચીન સાહિત્યમાં જોવા મળે છે. ભારત દેશ તો અનેક ધર્મો ને આશ્રય દેનારો દેશ છે.

- ભક્તિભાવ :

હનુમાનજીની ભક્તિ અને રામપ્રતિ પ્રેમ આપણને ભારતીય સંસ્કૃતિની ઝાંખી કરાવે છે.હનુમાન જ્યારે લંકામાં જાય છે ત્યારે તેને લંકામાં વિનાશ કરવાનો વિચાર આવે છે ત્યારે હનુમાન ભગવાન રામની આજ્ઞા વિરુદ્ધ જતા નથી.

ભક્તિમાર્ગમાં ગમે તેટલા કષ્ટ આવે તો પણ ભક્તિ છોડવી ના જોઈએ કારણકે ભગવાન ભક્તની પરીક્ષા લેતો હોય છે આ પણ ભારતીય સંસ્કૃતિમાં કહેવામાં આવ્યું છે.

સંદર્ભ : રામાયણ (અરણ્યકાંડ, યુદ્ધકાંડ)

રાજકીય સંસ્કૃતિ

- રાજધર્મ : પ્રજાના સુખે સુખી અને પ્રજાના દુખે દુઃખી તે એક આદર્શ રાજાના ગુણો હોય છે તે ગુણોને ઉજાગર કરતા દશરથ અને રામ બંને આદર્શ રાજધર્મનું પાલન કરે છે. પિતાની આજ્ઞાનું પાલન કરવા માટે રામ જ્યારે અયોધ્યા છોડી વનમાં જાય છે ત્યારે ભરત અને તેની સાથે નગરજનો પણ પોતાના રાજા ને અયોધ્યામાં લાવવા માટે જંગલમાં જાય છે. આ બાબત આપણને ભારતીય સંસ્કૃતિમાં રાજધર્મ કેવો હોવો જોઈએ તેની માહિતી મળે છે.

- ન્યાય અને કર્તવ્ય : રામે પોતાના પિતાનું વચન રાખવા માટે વનવાસ સ્વીકાર્યો. પ્રાણ જાય પણ વચન ન જાય તે યુક્તિને સાર્થક કરતા ભગવાન શ્રીરામ પિતાના અવસાન પછી પણ વનવાસારી રાખે છે અહીં આપણને ભારતીય સંસ્કૃતિમાં રહેલા ન્યાય અને કર્તવ્યના દર્શન થાય છે.

- રામરાજ્ય : પ્રજાસત્તાક, ન્યાયસંગત શાસન અને સુખી-સંતોષી પ્રજા. હંમેશા પ્રજાલક્ષી કાર્યો કરવા તેમજ પ્રજાને કોઈપણ પ્રકારની મુશ્કેલી ન પડે તે મુક્ત મને રહી શકે તેમને યોગ્ય ન્યાય મળે આ બાબત ભારતીય સંસ્કૃતિમાં રહેલી છે.

સંદર્ભ : રામાયણ (અયોધ્યાકાંડ, ઉત્તરકાંડ)

નૈતિક મૂલ્યો

- પતિવ્રત્ય : સીતા પતિવ્રતાનો આદર્શ. ભારતીય સંસ્કૃતિમાં પતિને પરમેશ્વર ગણવામાં આવ્યા છે ત્યારે માતા સીતા રામની સાથે પોતે પણ ચૌદવર્ષ વનવાસમાં જવા નીકળી પડે છે પતિના સુખમાં સુખી અને પતિના દુઃખમાં દુઃખી આ ભારતીય સંસ્કૃતિની મહત્વની દેન છે

ઉપસંહાર

રામાયણમાં વર્ણવાયેલી સંસ્કૃતિ માત્ર ધાર્મિક કે પૌરાણિક નથી, પરંતુ તે ભારતીય સમાજજીવનની આદર્શ પરંપરાનો આધાર છે. સત્ય, ધર્મ, પાતિવ્રત, કર્તવ્ય, ભક્તિ અને આદર્શ રાજશાસન જેવા મૂલ્યો આજના સમયમાં પણ જીવનને દિશા આપે છે.

સંદર્ભ :

1. વાલ્મીકિ. (ઈ.સ. પૂર્વે 500-100). *રામાયણ (મૂળ સંસ્કૃત ગ્રંથ).*
2. તુલસીદાસ. (1574). *શ્રીરામચરિતમાનસ.* વારાણસી: ગીતા પ્રેસ.
3. રાધાકૃષ્ણન, એસ. (1923-1927). *Indian Philosophy (Vol. 1-2).* લંડન: જ્યોર્જ એલન એન્ડ અનવિન લિમિટેડ.
4. બશમ, એ. એલ. (1954). *The Wonder That Was India.* લંડન: સિડ્ગવિક એન્ડ જેક્સન.
5. ઠાકર, ર. (1956). *ભારતીય સંસ્કૃતિનો ઈતિહાસ.* અમદાવાદ: ગુજરાત યુનિવર્સિટી પ્રકાશન.
6. ઉપાધ્યાય, બા. (1962). *પ્રાચીન ભારતીય સાહિત્યનો અભ્યાસ.* અમદાવાદ: સંસ્કાર પ્રકાશન.

लोकसाहित्य में संस्कृति और परंपरा

आयर ज्योतिका मनसुखभाई*
ahirjyotika@gmail.com

सारांश

लोक साहित्य की परंपरा प्राचीन है। लोक साहित्य में मनुष्य के जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों एवं विभिन्न क्रियाकलापों का चित्रण मिलता है। अत: लोक साहित्य एक ऐसा साहित्य है जिसमें लोक मानस के हर्ष उल्लास सुख-दु:ख एवं राग-विराग की अभिव्यक्ति मिलती है। लोक साहित्य किसी समुदाय की संस्कृति और परंपराओं को व्यक्त करने वाला साहित्य है। जिसमें जनमानस के मनोभावों को दर्शाया जाता है इसी वजह से लोगो के दिलों तक आसानी से पहुंचाता है। और जन मानस के सुख-दु:ख हर्ष-विषाद, मान्यताओं और जीवन के विभिन्न पहलुओं का सहज और स्वाभाविक चित्रण होता है,जैसा की यह लोक संस्कृति के दर्पण के रूप में कार्य करता है। यह,प्राचीन और मौखिक परंपराओं से युक्त है,और विभिन्न लोकगीतों, लोककथाओं, पहेलियों, कहावतों और अनुष्ठानों के माध्यम से प्रसारित होता है।भारत जैसे विविधता पूर्ण देश में, लोक साहित्य सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा देने और क्षेत्रीय सहयोग बढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मुख्य शब्द:

लोक साहित्य, लोक संस्कृति, लोक परंपरा, मौखिक परंपरा, सामूहिक पहचान, लोकगीत, लोककथा, लोकनृत्य, परंपरा, रीति-रिवाज, सामुदायिक चेतना, सांस्कृतिक विरासत, सामाजिक एकता, जीवनशैली, लोक जीवन.

भूमिका

लोकसाहित्य किसी समुदाय की संस्कृति, मान्यताओं, रीति–रिवाजों और परंपराओं का सजीव प्रतिबिंब होता है। यह न केवल जन–जीवन की अभिव्यक्ति है, बल्कि समाज की भावनात्मक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धारा को भी जन–जन तक पहुँचाने का माध्यम है। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में प्रत्येक प्रदेश का अपना विशिष्ट लोकसाहित्य, लोकभाषा, पहनावा और जीवन–संस्कृति है, जो उसे अन्य से भिन्न बनाती है, परंतु यह भिन्नता ही "अनेकता में एकता" के भाव को और अधिक प्रगाढ़ करती है। त्योहार, सामाजिक रीति–रिवाज, विवाह संस्कार, पूजा–पाठ आदि सभी में क्षेत्रीय विविधता के साथ-साथ एक साझा सांस्कृतिक चेतना विद्यमान रहती है। लोकसाहित्य उन मौखिक परंपराओं और पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित करता है, जो किसी समुदाय की अस्मिता, अनुभव और जीवन–दर्शन के मूल में स्थित होते हैं।

लोक साहित्य की विशेषताएं

लोक साहित्य किसी भी समाज की संस्कृति, परंपराओं, मान्यताओं और रीति-रिवाजों का सजीव दर्पण होता है, जो समाज के जीवन-मूल्यों को जन-जन तक पहुँचाता है। यह किसी समुदाय की सामूहिक चेतना और सांस्कृतिक विरासत का परिचायक है। लोक साहित्य का सबसे बड़ा आधार इसकी मौखिक परंपरा है — यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से प्रचलित होता आया है, हालांकि समय के साथ इसके लिखित रूप भी उपलब्ध होने लगे हैं।

* **शोधार्थी, क्रांतिगुरु श्यामजी कृष्णा वर्मा कच्छ विश्वविद्यालय भुज-कच्छ**

यह साहित्य जनता द्वारा और जनता के लिए रचा गया है; इसकी उत्पत्ति और संवर्धन दोनों ही लोकमानस की सहज, स्वाभाविक अभिव्यक्ति से जुड़ी हुई हैं। इसकी विषयवस्तु अत्यंत व्यापक होती है, जिसमें मानव जीवन के प्रत्येक चरण — जन्म से लेकर मृत्यु तक — के संस्कार, व्यवहार और सामाजिक गतिविधियाँ सम्मिलित रहती हैं।

लोक साहित्य का स्वरूप अत्यंत विविध है। इसमें लोकगीत, लोककथाएँ, पहेलियाँ, मिथक, नाटक, कहावतें और अनुष्ठान जैसी विधाएँ शामिल हैं, जो लोक जीवन के विविध रंगों और भावनाओं को प्रकट करती हैं। इस प्रकार, लोक साहित्य समाज के सांस्कृतिक जीवन का प्रतिबिंब होने के साथ-साथ उसके जीवन दर्शन का भी परिचायक है।

लोक साहित्य का महत्त्व:-

1. **सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा:-** भारत जैसे विविधता पूर्ण देश में लोक साहित्य विभिन्न भाषाओं परंपराओं और संस्कृतियों के बीच सेतु का कार्य करता है। उन्हें जोड़ने का कार्य करता है।
2. **अमृत सांस्कृतिक विरासत:-** यह मानवता की अमृत सांस्कृतिक विरासत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।
3. **सामूहिक प्रयास:-** साहित्य अकादमी जैसे संगठन लोक साहित्य के संरक्षण और प्रसार के लिए विभिन्न प्रयासों में लगे रहे है, जैसे लोक साहित्य के लिए पुरस्कार देना और सम्मलेन आयोजित करना।

लोक साहित्य में संस्कृति:- लोक संस्कृति किसी समुदाय या समाज की मान्यताओं, रीति-रिवाजों,त्योहारों,कलाओं और जीवन शैली का समूह है, जबकि लोकसाहित्य,लोकसंस्कृति का ही वह हिस्सा है जो मौखिक परंपराओं,कहानियों गीतों,कहावतों और मुहावरों के रूप में व्यक्त होता है। दोनों का अटूट संबंध है,जहाँ लोक साहित्य लोक संस्कृति को दर्शाता और सहेजता है।

लोक संस्कृति(Folk culture):-
परिभाषा:- यह लोगों के समूह के विशिष्ट ज्ञान विश्वास,प्रथाओं और कलाओं का एक संचित रूप है।
उदहारण:- गीत-संगीत,नृत्यअनुष्ठान,चित्रकारी और पारंपरिक भवन शैलियाँ इसके अंतर्गत आती है।
महत्व:- यह समाज की पहचान और सामुदायिक भावना को दर्शाती है।

लोक संस्कृति की विशेषताएँ

लोक संस्कृति किसी समाज या समुदाय की सामूहिक जीवन शैली, परंपराओं और मूल्यों का जीवंत रूप होती है। यह **सामूहिक पहचान पर आधारित** होती है, अर्थात् यह व्यक्ति की निजी पहचान के बजाय पूरे समुदाय की साझा पहचान को अभिव्यक्त करती है। लोक संस्कृति में व्यक्ति की भूमिका सामूहिक परंपराओं के संरक्षण और निरंतरता को बनाए रखने में होती है। यह संस्कृति पूर्णतः **परंपरागत** होती है, क्योंकि यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही मान्यताओं, रीति-रिवाजों और प्रथाओं पर आधारित है। इसके माध्यम से समुदाय अपने अतीत से जुड़ा रहता है और अपनी सांस्कृतिक जड़ों को संरक्षित रखता है। लोक संस्कृति हमेशा **स्थानीय परिवेश से जुड़ी** होती है — यह किसी विशिष्ट क्षेत्र, भाषा, जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप विकसित होती है, जिससे उसमें उस क्षेत्र की विशिष्टता झलकती है।

लोक संस्कृति के स्वरूप में **निश्चित नियमों का अभाव** होता है। इसे लोग अपने जीवन के अनुभवों और आवश्यकताओं के आधार पर स्वाभाविक रूप से अपनाते हैं; इसलिए इसमें लचीलापन और परिवर्तनशीलता बनी रहती है। लोक संस्कृति की **व्यापकता** भी उल्लेखनीय है। इसमें लोगों का रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, लोकगीत, नृत्य, कला-कौशल और भाषा आदि के विविध आयाम शामिल होते हैं। उदाहरण के रूप में भारत में क्षेत्रीय विविधता के अनुसार लोकगीतों की अनेक शैलियाँ देखने को मिलती हैं — जैसे पंजाब का भांगड़ा, महाराष्ट्र की लावणी, बंगाल के बाऊल गीत,

असम के बिहुगीत, गुजरात का गरबा और राजस्थान का घूमर गीत। इसी प्रकार माघपूर्णिमा के व्रत, मकर संक्रांति के मेले, स्थानीय हस्तशिल्प, लोककथाएँ तथा धार्मिक और सांस्कृतिक अनुष्ठान भी लोक संस्कृति के अभिन्न अंग हैं।

इस प्रकार, लोक संस्कृति किसी भी समाज की आत्मा है, जो उसकी सामाजिक एकता, परंपरा और सांस्कृतिक विरासत को सशक्त रूप में प्रस्तुत करती है।

लोक संस्कृति का महत्व

लोक संस्कृति किसी समाज की आत्मा होती है, जो उसकी परंपराओं, मूल्यों, और जीवनशैली का सजीव रूप प्रस्तुत करती है। यह किसी समुदाय की सांस्कृतिक पहचान का निर्माण करती है और उस समाज के जीवन मूल्यों, आस्थाओं, तथा परंपराओं को परिभाषित करती है। लोक संस्कृति समाज के भीतर सामाजिक सामंजस्य और जुड़ाव को भी सुदृढ़ करती है — यह लोगों को एक साथ लाती है, उनमें सहिष्णुता, सहयोग और एकता की भावना उत्पन्न करती है, जिससे समुदाय के सदस्यों के बीच सामाजिक बंधन मजबूत होते हैं।

लोक संस्कृति के माध्यम से नैतिक मूल्यों और पारंपरिक ज्ञान का संचार भी होता है। लोककथाएँ, लोकगीत और लोक कहानियाँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि वे समाज को नैतिकता, जीवन-दर्शन और ऐतिहासिक चेतना से भी जोड़ती हैं। यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी ज्ञान और अनुभव के हस्तांतरण का माध्यम बनती है। साथ ही, लोक संस्कृति स्थानीय भाषा और बोलियों के संरक्षण में अहम भूमिका निभाती है। यह भाषा को जीवित रखती है क्योंकि लोकगीतों, कहावतों और कथाओं के माध्यम से लोक की भाषाई पहचान संरक्षित रहती है।

लोक संस्कृति का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू इसका प्रकृति से जुड़ाव है। लोक परंपराएँ प्रायः भूमि, जल, वनस्पति और स्थानीय संसाधनों से गहराई से जुड़ी होती हैं, जिससे यह मानव और पर्यावरण के बीच सामंजस्य का प्रतीक बनती है। इसके अतिरिक्त, लोक संस्कृति का आर्थिक और पर्यटन विकास में भी योगदान है। लोक उत्सव, पारंपरिक शिल्पकला और क्षेत्रीय कलाएँ पर्यटकों को आकर्षित करती हैं, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था को बल मिलता है और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ते हैं।

मनोवैज्ञानिक द्रष्टिकोण:- लोक साहित्य लोक मानस की मनोवैज्ञानिक वृत्तियों और व्यवहारों को समझने में मदद करता है, जो व्यक्तिगत और सामूहिक परंपराओ से जुदा होता है।

लोक परंपरा :- किसी समाज या जातीय समूह की वह साँझा सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है जिसमें सदियों पुरानी मान्यताएं प्रथाएं रीति-रिवाज और जीवन शैली शामिल होती है। यह मौखिक कहानियों लोकगीतों, नृत्य, कलाओं त्योहारों, भोजन, पारंपरिक शिल्प और अनुष्ठानों के रूप में पीढ़ियों तक हस्तांतरित होती है। लोक परंपरा किसी समुदाय के मूल्यों इतिहास और सामूहिक अनुभवों का एक दर्पण होती है, जो उनकी सामूहिक पहचान का अभिन्न अंग है।

लोक परंपरा की मुख्य विशेषताएँ

लोक परंपरा किसी समाज या समुदाय की सांस्कृतिक निरंतरता और सामूहिक जीवन अनुभव का प्रतीक होती है। यह सामुदायिक और सांझा स्वरूप की होती है, क्योंकि इसे किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं, बल्कि पूरे समुदाय या सामाजिक समूह द्वारा अपनाया और संरक्षित किया जाता है। यह सामूहिकता समाज के भीतर एकता और सांस्कृतिक बंधन को मजबूत करती है। लोक परंपरा का स्वरूप मुख्यतः मौखिक और प्रदर्शन-आधारित होता है। इसका ज्ञान औपचारिक शिक्षा के माध्यम से नहीं, बल्कि मौखिक निर्देश, अनुभवजन्य ज्ञान और प्रदर्शन के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित होता है। लोकगायक, कथावाचक, नर्तक, और शिल्पी इस परंपरा के संवाहक माने जाते हैं।

यह परंपरा अतीत से जुड़ी होती है, क्योंकि इसमें पुरखों की प्रथाएँ, विश्वास, और परंपरागत ज्ञान निहित रहता है। साथ ही, यह केवल अतीत तक सीमित नहीं है; बल्कि वर्तमान में भी प्रासंगिक बनी रहती है। कला, नृत्य, संगीत, लोककथा, और कहानी कहने जैसी विधाओं के माध्यम से यह आज भी समाज में जीवंत रूप से उपस्थित है।

लोक परंपरा का स्वरूप अत्यंत विविध है। इसमें लोकगीत, लोककथाएँ, मिथक, किवदंतियाँ, कहावतें, लोकनृत्य, पारंपरिक व्यंजन, त्योहार, और जीवनशैली के विभिन्न पहलू शामिल होते हैं। उदाहरण के रूप में, मौखिक परंपराओं में कहानियाँ, लोककथाएँ, मिथक, कहावतें और गीत पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुनाए जाते हैं। कला और शिल्प में पारंपरिक हस्तकला, मूर्तिकला और भवन निर्माण की लोक शैलियाँ आती हैं। नृत्य और संगीत में समुदाय विशेष के लोकनृत्य और लोकगीत शामिल होते हैं। वहीं, त्योहार और रीति-रिवाज जैसे विवाह, जन्म, फसल कटाई और धार्मिक उत्सव समाज की सामूहिक भावनाओं और सांस्कृतिक एकता को अभिव्यक्त करते हैं।

निष्कर्ष

लोक साहित्य, लोक संस्कृति और लोक परंपरा – ये तीनों किसी समाज की सांस्कृतिक चेतना के प्रमुख स्तंभ हैं। लोक साहित्य समाज के विचारों, भावनाओं और जीवनानुभवों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है, वहीं लोक संस्कृति उस समाज की सामूहिक जीवनशैली, आचार-विचार, कला, संगीत और सामाजिक व्यवहार का दर्पण है। लोक परंपरा इन दोनों का जीवंत सेतु है, जो अतीत की स्मृतियों, मान्यताओं और रीति-रिवाजों को वर्तमान में संरक्षित रखते हुए भविष्य तक पहुंचाती है। ये तीनों एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं और मिलकर किसी समुदाय की पहचान, इतिहास और सामाजिक एकता को सुदृढ़ करते हैं। आधुनिक युग में भी लोक साहित्य, लोक संस्कृति और लोक परंपरा समाज के मूल्यों और संवेदनाओं को जीवित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

संदर्भ :

1. *पूर्वोत्तर की लोक संस्कृति.* नई दिल्ली
2. पाण्डेय, डॉ. रघुनाथ. *पूर्वोत्तर लोक संस्कृति और कला.* नई दिल्ली
3. रस्तोगी, डॉ. शिखा. (2024). *लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति.* आगरा : एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग.
4. *Britannica.* (n.d.). प्राप्तिशर्मा, श्यामबाबू.
5. आहूजा, राम. (2019). भारतीय सामाजिक व्यवस्था. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स.
6. रावत, हरिकृष्ण. (2018). सामाजिक शोध विधियाँ. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स.
7. पाण्डेय, राजकुमार. (2020). निजामाबाद की काली मृद्भांड परंपरा का कलात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन. वाराणसी.
8. ब्रह्म स्वरूप. (2017). निजामाबाद के मृण्मय पात्र: एक अध्ययन. वाराणसी.
9. राय, गोविन्दचंद्र. (1997). प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन. वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन.
10. Perryman, Jane. (2000). Traditional Pottery of India. London: A & C Black.
11. Saraswati, Baidyanath. (1979). Pottery-Making Cultures and Indian Civilization. New Delhi: Abhinav Publications.

हिन्दी साहित्य का सांस्कृतिक वैभव

Dr. Vaishali U. Patoliya*
vaishali.patoliya87@gmail.com

सारांश :

साहित्य समाज और संस्कृति का दर्पण होता है। सांस्कृतिकता मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति का वह रूप है, जो उसे अन्य जीवों से भिन्न बनाता है। यह जीवन में सद्गुण, शिष्टाचार, नैतिकता, कला-रस, मानवीयता और बौद्धिकता का समावेश कराता है। सांस्कृतिकता का अर्थ है—संस्कृति का वह आचरणात्मक रूप जो मानव जीवन को सुंदर, अनुशासित, नैतिक और मूल्यवान बनाता है। भारतीय संस्कृति विविधता में एकता की संस्कृति रही है और यही विविधता का प्रतिबिंब हमें हिन्दी साहित्य में भी देखने को मिलाता है।

भूमिका

भारत विश्व की उन प्राचीन सभ्यताओं में से है, जिसकी संस्कृति आज भी जीवंत और सशक्त है। भारतीय संस्कृति का मूल आधार सहिष्णुता, आध्यात्मिकता, करुणा और विविधता में एकता है। यही कारण है कि, भारत को सांस्कृतिक राष्ट्र कहा गया है। इस संस्कृति का सबसे प्रामाणिक प्रतिबिम्ब साहित्य है। हिन्दी साहित्य भारतीय संस्कृति का दर्पण है। साहित्य केवल शब्दों का संयोजन नहीं है, बल्कि यह जीवन के अनुभवों, संघर्षों और मूल्यों की अभिव्यक्ति है। भारतीय संस्कृति विविधताओं से परिपूर्ण रही है – यहाँ अनेक धर्म, भाषाएँ, परंपराएँ और सामाजिक व्यवस्थाएँ समानांतर रूप से चलीं। यही विविधता हिन्दी साहित्य की आत्मा बनकर उभरती है।

हिन्दी साहित्य भारतीय संस्कृति की जीवित धारा है, जिसमें मानव जीवन के विविध रूप, भावनाएँ, संघर्ष, आदर्श और अनुभूतियाँ अभिव्यक्त हुई हैं। हिन्दी साहित्य भारतीय संस्कृति का जीता-जागता इतिहास है। इसमें समाज के बदलते स्वरूप, धार्मिक आस्थाएँ, लोकजीवन, कला, संगीत, पर्व-त्योहार, नारी की स्थिति, राष्ट्रीय चेतना और आधुनिक समस्याएँ सब कुछ प्रतिबिम्बित हुआ साहित्य को यदि समाज का दर्पण कहा जाए तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि यह प्रत्येक युग के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवेश का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। हिन्दी साहित्य विशेष रूप से विविधता का साहित्य है। इसमें आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की रचनाओं में भक्ति, श्रृंगार, वीररस, लोकगीत, सामाजिक चेतना, राष्ट्रीयता, यथार्थवाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद और नई कविता तक अनेक स्वर देखने को मिलते हैं। यही विविधता हिन्दी साहित्य को बहुआयामी और संस्कृति को जीवंत बनाती है।

साहित्य शब्द का अर्थ ओर परिभाषा

'साहित्य' शब्द संस्कृत भाषा का है और उसकी व्युत्पति दो शब्दों के मेल से हुई है। 'सम' का अर्थ साथ, पूर्णता, समग्रता है और 'हित' का अर्थ कल्याण या भलाई से है। सम+इति=साहित्य साहित्य शब्द का शाब्दिक अर्थ हुआ जो सबके हित में हो या जनकल्याण करने वाला। संस्कृत आचार्य ने इसे 'काव्य' भी कहा है। हिंदी संस्कृत भाषा से निकली हुई एक ऐसी भाषा है, जिसका साहित्य अधिक मात्रा में संस्कृत साहित्य से प्रभावित है।

आचार्य भामह - "शब्दार्थ सहितम काव्यम" अर्थात जिसमें शब्द और अर्थ साथ-साथ हो वह साहित्य।[8]

आचार्य विश्वनाथ - "वाक्य रसात्मक काव्यम" अर्थात साहित्य दर्पण में रस को काव्य की आत्मा मानते हुए रसयुक्त वाक्य को काव्य कहा गया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने "ज्ञानराशि के संचित कोश का नाम साहित्य माना है।"

* **Adhyapak Sahayak (Hindi) Smt V. P. Kapadia Mahila Arts College, Bhavagar**

डॉ. गुलाबराय ने लिखा है "साहित्य संसार के प्रति हमारी मानसिक प्रतिक्रिया की शाब्दिक अभिव्यक्ति है।" अर्थात हम जो भी अनुभव करते हैं, उसे जब शब्दों के माध्यम से व्यक्त करते हैं तो उसे साहित्य कहते हैं।

सिडनी के अनुसार "साहित्य वह अनुकरणात्मक कल है। जिसका लक्ष्य शिक्षा और आनंद प्रदान करना है।"

मैथ्यू आनार्ड "LIteratureIs crItIcIsm of lIfe अर्थात साहित्य जीवन की आलोचना है।"

सांस्कृतिकता का अर्थ और परिभाषा

'सांस्कृतिकता' शब्द 'संस्कृति' से निर्मित है। संस्कृति का अर्थ है—मानव जीवन की उन समस्त उपलब्धियों, परंपराओं, मान्यताओं, विचारों, मूल्यों, कला, साहित्य, विज्ञान और आचार-विचार की वह संपूर्ण अभिव्यक्ति जो समाज को विशिष्ट पहचान प्रदान करती है।

इस प्रकार सांस्कृतिकता का अर्थ है—किसी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र या मानवता के जीवन में संस्कृति का प्रभाव, उसकी गहनता तथा उसका व्यावहारिक रूप। सरल शब्दों में सांस्कृतिकता वह गुण है, जिसके द्वारा मनुष्य के जीवन में सभ्यता, refInement, नैतिक मूल्य और सृजनात्मक दृष्टि विकसित होती है।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार—

"सांस्कृतिकता जीवन की उस उच्चतर अवस्था का नाम है, जिसमें मनुष्य मात्र भौतिक उपलब्धियों तक सीमित न रहकर नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक मूल्यों को भी अपने आचरण में धारण करता है।"

महात्मा गांधी के मत से —

"सांस्कृतिकता का अर्थ मनुष्य को उसके वास्तविक स्वरूप में ढालना है, जिससे उसकी आत्मा और हृदय का विकास हो तथा वह समाज और मानवता के प्रति उत्तरदायी बने।"

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—

"सांस्कृतिकता का मापदंड केवल भौतिक प्रगति नहीं है, बल्कि यह इस बात में निहित है कि मनुष्य ने अपनी प्रवृत्तियों को कितना संयमित और सुशोभित किया है।"

साहित्य और संस्कृति का परस्पर संबंध

साहित्य और संस्कृति एक-दूसरे के पूरक हैं। संस्कृति समाज के जीवन-मूल्यों, आचार-विचार, परंपराओं, जीवन-शैली और विश्वासों का समुच्चय है, जबकि साहित्य उन्हीं जीवन मूल्यों और संस्कारों को अभिव्यक्ति देता है। भारतीय संस्कृति की जड़ों में धर्म, अध्यात्म, सहिष्णुता, बहुलता और लोकजीवन की गहरी छाप है। यही सब साहित्य की विविध धाराओं में प्रतिबिंबित होता है। संस्कृत साहित्य से लेकर अपभ्रंश और फिर हिन्दी साहित्य तक, सांस्कृतिक चेतना की यह धारा निरंतर प्रवाहित रही है। साहित्य संस्कृति को संरक्षित करता है।

हिन्दी साहित्य का सांस्कृतिक वैभव

हिन्दी साहित्य का विकास संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और अवहट्ट से हुआ। संस्कृत साहित्य में वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत और पुराणों ने धार्मिक और दार्शनिक संस्कृति को स्थापित किया। प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में लोकजीवन और सामाजिक संस्कृति का चित्रण हुआ। इन्हीं परम्पराओं से हिन्दी का जन्म हुआ और इसमें भारतीय संस्कृति का सहज और वास्तविक स्वरूप सामने आया। इस प्रकार हिन्दी साहित्य की जड़ें भारतीय संस्कृति की प्राचीनतम परम्पराओं में निहित हैं। साहित्य और संस्कृति एक-दूसरे के पूरक हैं। संस्कृति में मानव जीवन के मूल्य, आचार-विचार, भाषा, कला, धर्म और परंपराएँ शामिल होती हैं। साहित्य उन्हीं मूल्यों को शब्द और कला का रूप देता है। कबीर ने कहा—

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।"

यहाँ कबीर संस्कृति में व्याप्त जातिगत संकीर्णता का विरोध करते हुए ज्ञान और आचरण पर बल देते हैं। साहित्य ने हमेशा संस्कृति को सुधारने और नये रूप देने का कार्य किया है।

आदिकाल और सांस्कृतिक वैभव

हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक काल सन 10वीं से 14वीं शताब्दी आदिकाल रहा, जो वीरगाथा काल के नाम से भी जाना जाता है। यह काल वीर रस और युद्ध प्रधान संस्कृति का द्योतक है। पृथ्वीराज रासो और परमार रासो (आल्हाखण्ड) जैसी रचनाएँ केवल शौर्य और पराक्रम का ही नहीं बल्कि तत्कालीन राजपूती संस्कृति का भी चित्रण करती हैं। इसमें नारी की भूमिका, युद्ध में पुरुषार्थ, निष्ठा, वफादारी और सामंती संस्कृति स्पष्ट झलकती है। वीरता और शौर्य को सर्वोच्च मूल्य माना गया। क्षत्रिय संस्कृति, सामन्ती जीवन और नारी-गौरव का चित्रण। दरबारी संस्कृति और राजवंशों की प्रतिष्ठा। इस युग का साहित्य भारतीय संस्कृति के उस पक्ष को दिखाता है, जिसमें वंश-गौरव और युद्ध-नीति को सम्मान प्राप्त था।

भक्ति काल और सांस्कृतिक वैभव

भक्ति काल (14वीं से 17वीं शताब्दी) हिन्दी साहित्य का सुवर्ण युग है। भक्ति आंदोलन ने साहित्य और संस्कृति दोनों में व्यापक परिवर्तन किया। तुलसीदास, सूरदास, कबीर, मीरा, रसखान जैसे कवियों ने धार्मिक भक्ति, समन्वयवाद, प्रेम, लोकजीवन और सामाजिक सुधार की परंपरा को मजबूत किया। कबीर ने निर्गुण भक्ति और सामाजिक कुरीतियों के विरोध के माध्यम से सुधारवादी संस्कृति का निर्माण किया। सूरदास ने भक्ति और श्रृंगार दोनों को गहरी संवेदना दी। तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से मर्यादा पुरुषोत्तम राम की आदर्श संस्कृति का प्रचार किया। मीरा ने स्त्री-स्वातंत्र्य और प्रेम को सांस्कृतिक चेतना से जोड़ा। भक्तिकाल ने साहित्य को आध्यात्मिक ऊँचाई और संस्कृति को सहिष्णुता तथा सर्वधर्म समभाव की दृष्टि दी। भक्ति काल में भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता, समानता, प्रेम और लोकमंगल की चेतना को गहराई से स्थापित किया। तुलसीदास ने रामचरितमानस में भी हमारी भारतीय संस्कृति के उच्च आदर्शों को प्रस्थापित किया है।

"खेती न किसान को भिखारी को न भीख

बति बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।।"

इस प्रकार तुलसीदास ने साहित्य के माध्यम से समाज में व्याप्त भी संगतियों का चित्रण किया और लोगों में सांस्कृतिक उत्थान के बीज बोये।

रीतिकाल और सांस्कृतिक वैभव

रीतिकाल समय 17वीं से 19वीं शताब्दी तक का रहा है। इस काल को श्रृंगारिकता और दरबारी संस्कृति का युग कहा जाता है। बिहारी, केशवदास, घनानंद जैसे कवियों ने नारी-सौंदर्य, प्रेम, श्रृंगार और नीति पर आधारित काव्य रचा। इसमें तत्कालीन दरबारी संस्कृति, समाज की रूढ़ियाँ, पुरुष-नारी संबंधों की जटिलता और काव्य शिल्प की विविधता झलकती है। यद्यपि इसे कृत्रिम कहा गया, परन्तु भाषा और अलंकारों की दृष्टि से इस काल का योगदान अद्वितीय है। यह काल भले ही भोगवादी संस्कृति का प्रतीक रहा हो, लेकिन इसने कला और सौन्दर्य की दृष्टि से संस्कृति को अत्यन्त समृद्ध किया।

आधुनिक काल और सांस्कृतिक वैभव

आधुनिक हिन्दी साहित्य का उद्भव उन्नीसवीं सदी में हुआ। आधुनिक काल में साहित्य का स्वरूप सर्वथा बदल गया। इस काल में सामाजिक सुधार, राष्ट्रीय चेतना और आधुनिकता प्रमुख रहे। आधुनिक काल को कई युगों में विभाजित किया गया जैस भारतेन्दु युग, द्रिवेदीयुग, छायावद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद । भारतेन्दु युग में सामाजिक जागरण, नारी शिक्षा, राष्ट्रीय चेतना आदि को केंद्र में रखा गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'भारत दुर्दशा' में राष्ट्रीय जागरण किया। द्विवेदी युग आदर्शवाद, नीतिपरकता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का युग रहा। मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द, रामधारी सिंह दिनकर आदि ने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता की संस्कृति को सशक्त किया। मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में सांस्कृतिक गौरव और राष्ट्रप्रेम को वर्णन किया है। प्रेमचन्द के गोदान और कफन में किसानों की पीड़ा और सामाजिक संस्कृति का यथार्थ चित्रण किया है। इस युग ने साहित्य को केवल भावुकता से निकालकर यथार्थ और राष्ट्रीयता से जोड़ा।

छायावाद युग में आत्मानुभूति, प्रकृति-प्रेम और सौंदर्य बोध की ओर अग्रसर रहा। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद: समाजवादी दृष्टिकोण, श्रमिक-जीवन, अन्याय के विरुद्ध स्वर, यथार्थवादी संस्कृति का रहा। नई कविता और समकालीन साहित्य में आज का साहित्य राजनीति, विज्ञान, तकनीक, शहरीकरण, नारी-विमर्श, दलित चेतना और वैश्वीकरण जैसी सांस्कृतिक चुनौतियों का चित्रण कर रहा है। मीरा से लेकर महादेवी वर्मा और अमृता प्रीतम तक हिन्दी साहित्य ने नारी जीवन, उसकी पीड़ा, संघर्ष और स्वतंत्रता की आकांक्षा को अभिव्यक्त किया। समकालीन साहित्य में नारी विमर्श एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक पहलू बन चुका है। आज के समय में हिन्दी साहित्य वैश्विक परिप्रेक्ष्य से संस्कृति को देख रहा है। इसमें शहरी जीवन और अकेलेपन की संस्कृति, प्रवासी अनुभव और बहुसांस्कृतिकता, नारी-विमर्श, दलित विमर्श, पर्यावरण चेतना, विज्ञान और तकनीक की संस्कृति, इंटरनेट, सोशल मीडिया और डिजिटल साहित्य का प्रभाव दिखाई देता है। यह दर्शाता है कि साहित्य आज भी समाज और संस्कृति की धड़कनों से जुड़ा हुआ है।

निष्कर्ष

हिन्दी साहित्य का सांस्कृतिक वैभव केवल अतीत की धरोहर नहीं है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी मार्गदर्शक है। हिन्दी साहित्य का इतिहास विविधता और समन्वय का इतिहास है। इसमें वीरता, भक्ति, श्रृंगार, राष्ट्रप्रेम, समाज-सुधार, नारी अस्मिता, दलित चेतना, पर्यावरण, तकनीक और वैश्वीकरण तक सबका समावेश है। हिन्दी साहित्य ने समय-समय पर संस्कृति को न केवल प्रतिबिंबित किया, बल्कि उसका मार्गदर्शन भी किया। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य को भारतीय संस्कृति की आत्मा कहा जाता है।

संदर्भ सूची

1. अवस्थी, देवी शंकर. *साहित्य विधाओं की प्रकृति*. नई दिल्ली.
2. उपाध्याय, डॉ. कैलाश बी. *साहित्य के सिद्धांत*. नई दिल्ली.
3. गोहिल, डॉ. वक्तसिंह. *संक्षिप्त साहित्य समीक्षा*. अहमदाबाद.
4. गोस्वामी, डॉ. नवनीत. *साहित्य शास्त्र*. जयपुर.
5. बंदीवडेकर, डॉ. चंद्रकांत. *हिंदी साहित्य और सामाजिक संस्कृति*. मुंबई.
6. गंगवार, श्री राजेश्वर. *सांस्कृतिक समन्वय की प्रक्रिया और हिंदी साहित्य*. लखनऊ.
7. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. *हिंदी साहित्य का इतिहास*. वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा.
8. नगेंद्र, डॉ. *हिंदी साहित्य का इतिहास*. दिल्ली : विश्वविद्यालय प्रकाशन.
9. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद. *कबीर*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
10. पटेल, मीना (सं.). *हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक चेतना*. दिल्ली.
11. तुलसीदास. *कवितावली*. गोरखपुर : गीता प्रेस.

हिंदी भाषा : साहित्य से रोजगार तक

डॉ. धवलकुमार रमणभाई चौधरी*
dchaudhari473@gmail.com

सारांश:
प्रस्तुत शोध पत्र "हिंदी भाषा : साहित्य से रोजगार तक" हिंदी के विकास, विस्तार और व्यावहारिक उपयोगिता का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है। हिंदी भाषा न केवल भारत की सांस्कृतिक और साहित्यिक चेतना का प्रतीक है, बल्कि आधुनिक युग में यह आर्थिक, तकनीकी और व्यावसायिक प्रगति का भी प्रभावशाली माध्यम बन चुकी है। आरंभ में हिंदी साहित्य ने समाज को नैतिक, धार्मिक और मानवतावादी मूल्यों से जोड़ा — जहाँ कबीर, तुलसीदास और प्रेमचंद जैसे रचनाकारों ने इसे जनमानस की भाषा बनाया। 21वीं सदी में तकनीकी क्रांति ने हिंदी को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाई। प्रिंट मीडिया, दूरदर्शन, फिल्म, सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म ने इसके प्रयोग को जनसामान्य तक पहुँचाया। आज हिंदी रोजगार सृजन का सशक्त माध्यम बन चुकी है — मीडिया, अनुवाद, शिक्षा, कॉर्पोरेट, ग्राहक सेवा, तकनीकी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे क्षेत्रों में इसकी मांग निरंतर बढ़ रही है। यद्यपि अंग्रेज़ी का प्रभुत्व और तकनीकी दक्षता की कमी जैसी चुनौतियाँ हैं, फिर भी हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है। यह अब केवल साहित्य की भाषा नहीं, बल्कि भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रेरक शक्ति बन चुकी है।

मुख्य शब्द:
हिंदी भाषा, साहित्य, तकनीकी क्रांति, रोजगार, मीडिया, अनुवाद, शिक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल युग, आर्थिक विकास

भूमिका

हिंदी अनेक भाषाओँ से कहीं बढ़कर, भारत की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना का प्रतीक है। इसे सदियों तक साहित्य और संस्कृति की वाहक के रूप में देखा गया, जहाँ इसने साहित्य के माध्यम से कविता, कहानी और दर्शन के माध्यम से भारतीय समाज को आकार दिया। हालाँकि, 21वीं सदी में वैश्वीकरण और तकनीकी क्रांति ने हिंदी की पहचान को एक नया आयाम दिया है। आज, यह केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति या साहित्यिक विरासत का भंडार नहीं, बल्कि आर्थिक प्रगति, सूचना प्रौद्योगिकी और रोजगार सृजन का एक शक्तिशाली माध्यम बन गई है।

भाषा

'भाषा' शब्द संस्कृत की भाष धातु से बना है, जिसका अर्थ है बोलना या कहना। भाषा वह है जो – मनुष्य के विचारों का लिखित मौखिकी अभिव्यक्ति है।

भाषा की परिभाषाएं:

प्लेटो – " विचार आत्मा की मूक या अद्वान्यात्मक बातचीत है,, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठो पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।"[1]

डॉ. भोलानाथ तिवारी; "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चारित यादृच्छिक ध्वनी-प्रतिकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज –विशेष के लोग आपस में विचारो का आदान – प्रदान करते हैं।"[2]

साहित्य: हिंदी की गौरवशाली इतिहास :

* **अध्यापक सहायक, श्रीमति वी.पी.कापडिया, महिला आर्ट्स कॉलेज,भावनगर गुजरात**

हिंदी भाषा की जड़ें उसके समृद्ध साहित्य में निहित हैं। साहित्य की परिभाषा देखे तो "विषय की दृष्टि से किसी वर्ग विशेष से संबंधित न होकर मानव-मानस की रुचि से संबंधित हो और दूसरा यह कि वह आनंदप्रद तथा कलात्मक हो"[3] आदिकाल और भक्तिकाल के कवियों ने, जैसे कि कबीर, सूरदास और तुलसीदास, ने अपनी रचनाओं के माध्यम से भाषा को जन-जन तक पहुँचाया और उसे आध्यात्मिक तथा सामाजिक विचारों का सशक्त माध्यम बनाया। तुलसीदास की 'रामचरितमानस' और कबीर के दोहे आज भी भारतीय समाज की नैतिकता और दर्शन का अभिन्न अंग हैं। रीतिकाल में भाषा ने कलात्मकता और श्रृंगार का रूप धारण किया, वहीं आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चंद्र, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद और महादेवी वर्मा जैसे साहित्यकारों ने इसे सामाजिक यथार्थ, राष्ट्रवाद और मानवतावाद का हथियार बनाया। प्रेमचंद की कहानियों ने ग्रामीण भारत की पीड़ा और संघर्ष को दर्शाया, जबकि प्रसाद के नाटकों ने ऐतिहासिक गौरव का पुनर्स्मरण कराया। इस साहित्यिक यात्रा ने हिंदी को एक मजबूत व्याकरणिक और वैचारिक आधार प्रदान किया, जिसने इसकी अभिव्यक्ति क्षमता को अनंत बना दिया। यही साहित्यिक गहराई आधुनिक संदर्भों में इसके व्यावसायिक उपयोग के लिए एक ठोस नींव बनी।

तकनीकी का उदय

आधुनिक युग 20वीं सदी के उत्तरार्ध में और 21वीं सदी की शुरुआत में मीडिया और प्रौद्योगिकी ने हिंदी को साहित्य की सीमाओं से बाहर निकालकर उसे एक नए युग में प्रवेश किया। सबसे पहले, प्रिंट मीडिया ने समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी को देश के कोने-कोने तक पहुँचाया। इसके बाद, रेडियो और दूरदर्शन ने दृश्य-श्रव्य माध्यम से मनोरंजन और सूचना का संचार कर हिंदी को लोकप्रिय बनाया। हिंदी फिल्में और टेलीविजन धारावाहिक आज भी भारतीय मनोरंजन उद्योग की रीढ़ हैं और इनका वैश्विक प्रभाव लगातार बढ़ रहा है।

सबसे बड़ा परिवर्तन डिजिटल क्रांति के साथ आया। यूनिकोड और बेहतर फ़ॉन्ट्स के विकास ने कंप्यूटर, स्मार्टफोन और इंटरनेट पर हिंदी का उपयोग आसान बना दिया। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स, ब्लॉग्स और यूट्यूब ने हिंदी में कंटेंट निर्माण को बढ़ावा दिया, जिससे हर कोई अपनी मातृभाषा में लिख और बोल सकता है। 'हिंग्लिश' का बढ़ता चलन भी भाषा के इस बदलते स्वरूप को दर्शाता है, जहाँ युवाओं ने अपनी सुविधा के अनुसार हिंदी और अंग्रेजी को मिलाकर एक नई संवाद शैली विकसित कर ली है। गूगल, अमेज़ॅन और माइक्रोसॉफ्ट जैसी वैश्विक कंपनियों ने हिंदी को अपने उत्पादों और सेवाओं में शामिल किया, जिससे तकनीकी क्षेत्र में भी हिंदी की आवश्यकता बढ़ी।

हिंदी भाषा का रोजगार के क्षेत्र

हिंदी भाषा अब केवल साहित्यिक या सांस्कृतिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक प्रमुख रोजगार-सृजनकर्ता के रूप में उभरी है। रोजगार की परिभाषा देखे तो " रोज़गार का अर्थ है किसी संगठन या नियोक्ता द्वारा किसी व्यक्ति (कर्मचारी) को वेतन या मुआवजे के बदले विशिष्ट कार्य, कर्तव्य या सेवाएँ प्रदान करने के लिए नियुक्त करना. यह नियोक्ता और कर्मचारी के बीच एक औपचारिक या पारस्परिक कार्य समझौता होता है, जिसमें कर्मचारी को काम के बदले वेतन मिलता है और नियोक्ता को सेवाएँ मिलती हैं।"[4] आज विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी के ज्ञान और कौशल की अत्यधिक मांग है:

1. मीडिया और संचार: यह हिंदी के लिए सबसे बड़ा रोजगार क्षेत्र है। समाचार चैनलों और अखबारों में पत्रकार, एंकर, रिपोर्टर, संपादक और उप-संपादक के रूप में काम करने के अवसर हैं। रेडियो जॉकी, स्क्रिप्ट राइटर और कंटेंट प्रोड्यूसर जैसे पद भी उपलब्ध हैं। डिजिटल युग में, सोशल मीडिया मैनेजर, ब्लॉग लेखक और यूट्यूबर भी अपनी हिंदी कौशल से कमाई कर रहे हैं।
2. अनुवाद और भाषाई सेवाएँ: वैश्वीकरण के इस दौर में सरकारी और निजी क्षेत्रों में अनुवादकों की भारी मांग है। भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों और यहाँ तक कि अंतरराष्ट्रीय संगठनों में भी हिंदी से अंग्रेजी और अन्य भाषाओं में अनुवाद करने वाले पेशेवरों की आवश्यकता होती है। यह क्षेत्र एक आकर्षक करियर विकल्प बन गया है। "हिन्दी में अनुवाद का अर्थ है – एक भाषा में कही हवी बात को दूसरी भाषा में कहना। यह शब्द अंग्रेजी के ट्रांसलेशन के पर्याय के रूप में अपनाया गया है।"[5]

3. शिक्षा और अकादमिक क्षेत्र : हिंदी के पारंपरिक रोजगारों में शिक्षण सबसे महत्वपूर्ण है। प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक, हिंदी शिक्षकों और प्रोफेसरों की मांग बनी हुई है। इसके अलावा, भाषाविद् और शोधकर्ता भी हिंदी भाषा के विकास और उसके अनुप्रयोगों पर काम कर रहे हैं।
4. कॉर्पोरेट जगत और ग्राहक सेवा : भारत के बड़े हिंदी भाषी उपभोक्ता बाजार को देखते हुए, कॉर्पोरेट कंपनियाँ ग्राहक सेवा, विपणन (मार्केटिंग) और बिक्री के लिए हिंदी बोलने वाले कर्मचारियों को प्राथमिकता दे रही हैं। यह सेवा क्षेत्र के लाखों युवाओं के लिए एक महत्वपूर्ण रोजगार का अवसर बन गया है।
5. तकनीकी क्षेत्र और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) : कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग के युग में हिंदी डेटा साइंस का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई है। गूगल असिस्टेंट और एलेक्सा जैसे वॉयस असिस्टेंट को हिंदी में प्रशिक्षित करने के लिए, डेटा एनोटेटर्स और भाषा विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। सॉफ्टवेयर लोकलाइज़ेशन (सॉफ्टवेयर को स्थानीय भाषा के अनुसार ढालना) भी एक उभरता हुआ क्षेत्र है जहाँ हिंदी विशेषज्ञों की भारी मांग है।

चुनौतियाँ और भविष्य की राह :

हिन्दी भाषा में तकनीकी क्षेत्र के कार्य करते समय इसमें कोई संदेह नहीं कि हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है, लेकिन इस राह में कुछ चुनौतियाँ भी हैं। कॉर्पोरेट और उच्च शिक्षा में अंग्रेजी का प्रभुत्व आज भी एक बड़ी बाधा है। हिंदी बोलने वाले कई युवाओं में तकनीकी और डिजिटल कौशल की कमी भी एक समस्या है। इसके अलावा, हिंदी की मानकीकरण की प्रक्रिया अभी भी जारी है, क्योंकि 'हिंग्लिश' और क्षेत्रीय बोलियों के कारण एकरूपता बनाए रखना मुश्किल हो जाता है।

इन चुनौतियों का सामना करने के लिए, हमें हिंदी को केवल एक साहित्यिक भाषा के रूप में देखने की मानसिकता बदलनी होगी। शिक्षा प्रणाली में व्यावसायिक और तकनीकी विषयों को हिंदी में पढ़ाया जाना चाहिए। सरकारी नीतियों को हिंदी के उपयोग को बढ़ावा देना चाहिए, विशेषकर ई-शासन और डिजिटल सेवाओं में। साथ ही, युवाओं को हिंदी के साथ-साथ आधुनिक कौशल जैसे कोडिंग, डेटा विश्लेषण और डिजिटल मार्केटिंग में भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष :

हम कह सकते हैं की हिंदी का सफर साहित्य की अमर रचनाओं से शुरू होकर आधुनिक रोजगार के गतिशील अवसरों तक पहुँचा है। यह अब केवल भावनाओं की भाषा नहीं, बल्कि बाजार की भाषा बन गई है। हिंदी ने अपनी साहित्यिक विरासत को बनाए रखते हुए तकनीकी क्रांति को अपनाया है और नए अवसरों को जन्म दिया है। यह साबित हो चुका है कि हिंदी सिर्फ एक भाषा नहीं, बल्कि भारत के आर्थिक और तकनीकी विकास का एक आवश्यक इंजन है। भविष्य में, हिंदी का प्रभाव और भी बढ़ने वाला है, जिससे यह लाखों छात्रों और लोगों के लिए रोजगार और समृद्धि का मार्ग इंतजार कर रहा है।

संदर्भ :

1. सोनटक्के, माधव. (2013). *प्रयोजनमूलक हिंदी प्रयुक्ति और अनुवाद* (प्रथम सं.). नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 13
2. सोनटक्के, माधव. (2013). *प्रयोजनमूलक हिंदी प्रयुक्ति और अनुवाद* (प्रथम सं.). नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ.14
3. क्षेमेन्द्र 'सुमन', योगेन्द्रकुमार. (2027). *साहित्य विवेचन*. दिल्ली: आत्माराम एंड संस. . पृ. 27
4. गोस्वामी, कृष्ण कुमार. (2016). *अनुवाद विज्ञान की भूमिका* (प्रथम सं.). नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. . पृ. 16
5. विकिपीडिया. (n.d.). *विकिपीडिया लेख*. Retrieved from https://www.google.com/विकिपीडिया

NOTES FOR AUTHORS

PADCHINHA: A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

1. Submissions

Authors should send all submissions and resubmissions to padchinha@muditeducation.com some articles are dealt with by the editor immediately, but most are read by outside referees. For submissions that are sent to referees, we try to complete the evaluation process within one month. As a general rule, Padchinha operates a double-blind peer review process in which the reviewer's name is withheld from the author and the author's name is withheld from the reviewer. Reviewers may at their own discretion opt to reveal their name to the author in their review, but our standard policy is for both identities to remain concealed.

Absolute technical requirements in the first round are: ample line spacing throughout (1.5), an abstract, adequate documentation using the author-date citation system and an alphabetical reference list and a word count on the front page (include all elements in the word count). Regular articles are restricted to an absolute maximum of 8,000 words, including all elements (title page, abstract, notes, references, tables, biographical statement, etc.).

2. Types of articles

In addition to Regular Articles, Padchinha publishes the Viewpoint column with research-based policy articles, Review Essays, Book Review and Special Data Features.

3. The manuscript

The final version of the manuscript should contain, in this order:

(a) title page with name(s) of the author(s), affiliation and Email

(b) Abstract

(c) Main text

(d) List of references

(e) Biographical statement(s)

(f) Tables and figures in separate documents

(g) Notes (either footnotes or endnotes are acceptable)

Authors must check the final version of their manuscripts against these notes before sending it to us.

The text should be left justified, with an ample left margin. Avoid hyphenation. Throughout the manuscripts, set line spacing to 1.5.

The final manuscript should be submitted in MS Word for Windows.

4. Language

Padchinha is a Bilingual Journal, i.e. English and हिंदी. The main objective of an academic journal is to communicate clearly with an international audience.

Elegance in style is a secondary aim: the basic criterion should be clarity of expression. We allow UK as well as US spelling, as long as there is consistency within the article. You are welcome to indicate on the front page whether you prefer UK or US spelling.

5. The abstract

The abstract should be in the range of 200-300 words. For very short articles, a shorter abstract may suffice. The abstract is an important part of the article. It should summarize the actual content of the article, rather than merely relate what subject the article deals with. It is more important to state an interesting finding than to detail the kind of data used: instead of 'the hypothesis was tested', the outcome of the test should be stated. Abstracts should be written

in the present tense and in the third person (This article deals with...) or passive (... is discussed and rejected). Please consider carefully what terms to include in order increasing the visibility of the abstract in electronic searches.

6. Title and headings

The main title of the article should appear at the top of pg. 1, followed by the author's name an institutional affiliation. The title should be short, but informative. All sections of the article (including the introduction) should have principal subheads. The sections are not numbered. This makes it all the more important to distinguish between levels of subheads in the manuscripts – preferably by typographical means.

7. Notes

Notes should be used only where substantive information is conveyed to the reader. Mere literature references should normally not necessitate separate notes; see the section on references below. Notes are numbered with Arabic numerals. Authors should insert notes by using the footnote/endnote function in MS Word.

8. Tables

Each Table should be self-explanatory as far as possible. The heading should be fairly brief, but additional explanatory material may be added in notes which will appear immediately below the Table. Such notes should be clearly set off from the rest of the text. The table should be numbered with a Roman numeral, and printed on a separate page.

9. Figures

The same comments apply, except that Figures are numbered with Arabic numerals. Figure headings are also placed below the Figure. Example: Figure 1.

10. References

References should be in a separate alphabetical list; they should not be incorporated in the notes. Use the APA form of reference.

11. Biographical statement

The biosketch in Padchinha appears immediately after the references. It should be brief and include year of birth, highest academic degree, year achieved, where obtained, position and current institutional affiliation. In addition authors may indicate their present main research interest or recent (co-)authored or edited books as well as other institutional affiliations which have occupied a major portion of their professional lives. But we are not asking for a complete CV.

12. Proofs and reprints

Author's proofs will be e-mailed directly from the publishers, in pdf format. If the article is co-authored, the proofs will normally be sent to the author who submitted the manuscripts. (Corresponding author). If the e-mail address of the corresponding author is likely to change within the next 6–9 months, it is in the author's own interest (as well as ours) to inform us: editor's queries, proofs and pdf reprints will be sent to this e-mail address. All authors (corresponding authors and their co-authors) will receive one PDF copy of their article by email.

13. Copyright

The responsibility for not violating copyright in the quotations of a published article rests with the author(s). It is not necessary to obtain permission for a brief quote from an academic article or book. However, with a long quote or a Figure or a Table, written permission must be obtained. The author must consult the original source to find out whether the copyright is held by the author, the journal or the publisher, and contact the appropriate person or institution. In the event that reprinting requires a fee, we must have written confirmation that the author is prepared to cover the expense. With literary quotations, conditions are much stricter. Even a single verse from a poem may require permission.

DOWNLOAD LOGO
International Impact Factor Services
Home
Evalutaion Methology
Journals List
Journal Submission
Journal Search
Contact Us
Padchinha
ISSN
2231-1351
Country
India
Impact Factor
8.0
Publication Year
2011
Indexed
Website
https://www.muditeducation.com/Padchinha
Home
Evalutaion Methology
Journals List
Journal Submission
Journal Search
Contact Us
Copyright © 2013 IIFS . All Rights Reserved.
Web Hall
Admin

Best
AWARD
IIFS IMPACT FACTOR
CERTIFICATE OF ACKNOWLEDGEMENT
This is certified that our evaluator evaluated the Journal "Padchinha" E/P-ISSN 2231-1351 and the journal got the Impact Factor 8.0 and the process adopted for the evaluation of the journal is blind.
This Impact Factor/Evaluation is Valid up to 16/7/2026 .
Team IIFS
INDIA
Visit Us: http://impactfactorservice.com/